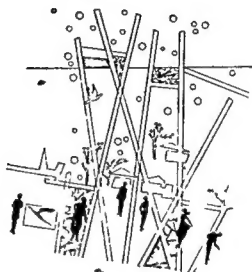




नई कहानी : दशा : दिशा : सम्भावना

३१६३  
५१० भास्व.





अपोलो पब्लिकेशन

सवाई मानसिंह हाईवे

जयपुर

नई कहानी

श्री सुरेन्द्र

दशा दिशा  
सम्मानना

१  
• प्रकाशक  
• अपोलो पब्लिकेशन,  
• जयपुर ,

• मूल्य' पंद्रह रुपये मात्र  
• प्रथम संस्करण १९९६

• मुद्रक  
• मधु प्रिंटर्स जयपुर

प्रकाशकीय  
भूमिका

अनुक्रम

(क)  
(ख)

नई कहानी ?	
हमारी ममता और संवेदना का आनंद	
एकरसता टूट और बकली बन	
हिन्दी कहानी की शिक्षा	
नयी जीवन दृष्टि और नए जीवनानुभव का अभाव	
हिन्दी की नवीन कथा दृष्टि	

शिवशानसिंह चौहान	८
सदमोनारायण लाल	१६
दवीशकर भवस्थी	२१
नित्यानंद तिवारी	२५
श्रीकान्त वर्मा	३०

नई कहानी	एक पयवेगण	—
नयी कहानी	एक बहु चित्रित सदम	
नया कहानी	नाम की साधकता	
माध्यम की सौज		
आज की कहानी	परिभाषा के नए सूत्र	
नया कहानी	कुछ आगप	कुछ निगकरण
		कुछ समाधान
नयी कहानी की उपलक्ष्यता		
नयी कहानी	धु धनी स्थापना	

जनद्रुमार	३५
चन्द्रगुप्त विद्यालंकार	३६
महापाल	३६
उपद्रनाथ अग्र	४०।
मुरद	५०
मुरेद	५६
मान्य राव	६५
राजद्र मान्य	७२

विजयद्र स्नातक	८०
धनत्रय वर्मा	८५
मनहर चौहान	१०८

नयी कहानी समस्याएँ सम्भावनाएँ  
 नयी कहानी और एक शुद्धात  
 नयी कहानी की बात और वक्तव्य  
 ० आज की हिन्दी कहानी प्रगति और प्रयोग  
 कहानी से कहानी फिर कहानी  
 स्वतंत्रता के बाद की कहानी  
 प्रेम कहानियाँ का बदला हुआ स्वरूप

नयी कविता बनाम नयी कहानी  
 समीक्षा अविवेक का एक और उदाहरण  
 नयी कहानी नए पुराना के बीच से गुजरती हुई  
 नयी कहानी सम्भावनाओं की खोज  
 आज की कहानी और प्रतिपद्धता का प्रश्न  
 नयी कहानी और आलोचक  
 आज की हिन्दी कहानी  
 नयी कहानी एक विचार  
 नयी कहानी क्या मानो की एक  
 नयी कहानी और उसका रूपरंग  
 नयी कहानी उसका यथाय और पाठक

प्रभाकर माचव १२१  
 नामवर सिंह १२६-  
 कमलेश्वर १४६  
 इन्द्र नाथ मजान १६३  
 ममयनाथ गुप्त २१६  
 श्रीमती विजय चौहान २२३  
 आकाश वमा २२६

दवीश कर अवस्थी २३६  
 सुरेंद्र २५७-  
 रवीन्द्र कानिया ३२४  
 ज्ञान रजन ३३६  
 गापास कृष्णा कीन ३३६  
 रामचरण मिश्र ३४३  
 भोम प्रकाश निमन ३५२  
 सुरेंद्र ३५६  
 सुरेंद्र ३६६  
 राजेंद्र शर्मा ३७८

जिनके साहित्यिक व्यक्तित्व ने  
मुझे साहित्यिक रुझान दी उन्होंने  
डा० राजेन्द्र शर्मा  
के लिए  
सादर





चाहे हुए व अनुसार अगर तयार हुई होती तो  
 नई कहानी पर यह पहली आलोचनात्मक पुस्तक होती,  
 एक विशय अथवा नई कहानी पर प्रकाशित पुस्तक में  
 यह आज भी पहली पुस्तक है, और आखिरी तो हम  
 बस कह सकते हैं क्योंकि हम मानते हैं कि निश्चय ही  
 हमारे विशिष्ट साहित्यकार और प्रकाशक इस विषय पर  
 अथस्तम् साहित्य व प्रकाशन की ओर प्रयत्न करेंगे।  
 पुस्तक के प्रकाशन विलम्ब में जहाँ सम्मानित  
 नेवका से धीरे-धीरे सामग्री प्राप्त हो सकने का  
 एक कारण रहा है वहाँ एक और कारण थी  
 मुरद्र का काय व्यस्त होना भी रहा है। फिर भी  
 उन्होंने जिस श्रम से यह पुस्तक-काय सम्पन्न किया है  
 उसका मूल्यांकन हम कुछ भी औपचारिक गणना द्वारा नहीं  
 करना चाहते। हम तो चाहते हैं कि व अपनी काय व्यस्त  
 चया से हम इतना कुछ समय ही देते रहें।  
 प्रकाशक जन व मौज्जाय से हम हमारी ममता और मम-  
 दाना का आनाक हिन्नी की नवीन कथा मृष्टि 'नयी  
 कहानी एक पयवेक्षण' निबन्ध प्राप्त हो सके हैं इसके  
 लिए हम उनके हृदय में आभारी हैं।  
 और जमी कुछ है अब यह पुस्तक आपने हाया है।



चाहे हुए व अनुसार अगर तयार हुई हानी तो  
 नई कहानी पर यह पढ़ली आलोचनात्मक पुस्तक हाती  
 एक विषय अथ म नई कहानी पर प्रकाशित पुस्तको म  
 यह आज भी पहली पुस्तक है और आखिरी तो हम  
 'कैसे कह सकते हैं' क्योंकि हम मानते हैं कि निश्चय ही  
 हमारे विभिन्न साहित्यकार और प्रकाशक इस विषय पर  
 अष्टतम साहित्य व प्रकाशन की ओर प्रयत्न करेंगे।  
 पुस्तक के प्रकाशन विलम्ब म जहाँ सम्मानित  
 सबका से धीरे-धीरे सामग्री प्राप्त हो मकने का  
 एक कारण रहा है वहाँ एक और कारण थी  
 मुराद का काय व्यस्त होना भी रहा है। फिर भी  
 उहाँ जिस धम स यह पुस्तक-काय सम्पन्न किया है  
 उसका मूल्यांकन हम कुछ औपचारिक शब्दों द्वारा नहीं  
 करना चाहते। हम तो चाहते हैं कि व अपनी काय व्यस्त  
 चर्चा स हम इतना कुछ समय ही देने रहें। थी  
 प्रकाश जन व सौजन्य स हम हमारी ममता और मम  
 यदना का आभार 'हिन्दी की नवोन कथा कृष्टि' नयी  
 कहानी एक पर्यवसान निबन्ध प्राप्त हो सक है इसक  
 लिए हम उनके हृदय से आभारी हैं।  
 और जमी कुछ है अब यह पुस्तक आपन हाथा है।

## भूमिका

भूमिका लिखना मैं जरूरी नहीं समझ रहा था

इसलिए कि 'नई कहानी' पर मुझे ओ कहना था वह यहाँ मेरे मवलिन निबन्धों में कहा जा चुका है। लेकिन इसीलिए भूमिका लिखने की जरूरत घनी भी हुई थी। क्योंकि वह सब जो निबन्धों में नहीं कहा जा सका—निबन्धों की अपनी सीमाओं के कारण व वे सब बातें जो कहे जाने से छूट गईं या जिन्हें ब्रूकर छाड़ दिया गया था जिन्हें महज भूमिका में ही कहा जा सकता था भूमिका लिखने की लगातार मांग कर रही थी।

यहाँ भी हा सकता है कि बहुत कुछ लिखे जान से रह जाय या रह जान निया जाय लेकिन वह सब अब अर्थ था उस जहाँ भी वह सबना महसूस कर सकूँ, कहा।

'नई कहानी' की धर्मा शायद मुग़लरा पकड़ती जा रही है लेकिन नई कहानी' अभी मुहावरों नहीं हो पाई है।

इस लिए वह सही समय यही है जब हम नई कहानी को उसकी सामिया और उपनयियों के माय, इतिहास रोष के समानांतर विवेचन कर सकें क्योंकि जिस तरह नए कथाकारों की बात की पीढ़ी में कथा के मूलन स्तर पर तत्कीय काए

उभर रहा है और उनके कथा रस जिन आयामों में आकार (शेप) ल रह है, उससे एक बात स्पष्ट हो रही है, कि नई कहानी एक निश्चित बाल खण्ड तक परम्परा से जुड़ी हुई थी या परम्परा ॥ आगे लिखी जा रही थी, लेकिन अब वह परम्परा के विरोध में उसे विस्थापित करते हुए उनके प्रति विद्रोह में अपने इतिहास को मिरे से बनाने में उठ खड़ी हुई है, हालांकि यह बात अलग है कि परम्परा के विरोध में विरोध के कारण पर परम्परा में (कथावि विरोध के कारण रूप में परम्परा उसके लिने जाने का वायस है) वह आज भी जुड़ी हुई है। अभी तो नहीं, लेकिन अभी में उस पर विचार में समीक्षा कोण बनेगा अपि आचार्यों ने जिन जग खाए तत्व औजारों में कथा का आपरेशन किया था उसमें कथा शरीर में जहरवाद हो गया था इस जहरवाद के आपरेशन की जितनी सन्न जलरत महसूस हो रही थी, उससे बड़ी ज्यादा सन्न जलरत इस बात की थी कि इन जग खाए तत्व औजारों वाली समीक्षाबुद्धि का आपरेशन किया जाय (शायद एक समय तक यह तत्व बोधक कथा समीक्षा प्रारम्भिक दौर पर कथा को समझने में कामयाब रही हा, लेकिन अब पूरे दौर पर वह अपहोत हो चुकी है), छ तत्वा में बनी हुई इस समीक्षा बुद्धि ने कहानी के साथ साथ उपयोग नाटक धारि (यों हिन्दी का नाटक मूल और समीक्षा आज भी अपवाहन बहुत धारि विद्युते हुए हैं) दूसरे गद्य रूप में उत्तन ही असाध्य जहरवाद का पनपन पूटन किया था, जिससे इन गद्य रूपों की एकाविति और प्रमावातिन बराबर भावरी हावी जा रहा थी। जहरवाद के आपरेशन और भावरी पहनी हुई 'एकाविति' को धार देने का काम बाकी था। जिसे नए कथाकारों और नए समीक्षकों ने पूरा किया।

लेकिन इसमें पहले भी, शुद्ध में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने छोटी कहानियों की बात कही थी और उनके मुपावरवाणी कोण को लेकर प्रशंसा भी की थी। छोटी कहानियों में भाव के नाम पर ५० उवालादत्तशर्मा आदि कहानीकारों का स्मरण भी किया था लेकिन उस इतना भर ही, इसमें अधिक कुछ नहीं। ऐसा नहीं था कि उस समय कहानी साहित्य समृद्ध न रहा हा उस निम्न से प्रेमचंद और प्रसाद की कहानियां ही पर्याप्त हो सकती थी। इन्हीं का लेकर लिखे में कहानी समीक्षा तक की रचना थी जो गवनी थी, लेकिन ऐसा नहीं। कथा को चला यह अग्रगम्य भाव कवन साहित्य समीक्षा में ही नहीं था। पठकों में भी था। अब कही कहानी को हल्के मनोरंजन और समय बरतने के लिए ही पढ़ा जाता था। निमित्ती और जासूसी आयामों में हावी हुई कथा समय प्रमचंद और प्रसाद तक स्वयं का स्थान जगमग और बना सक हाता तो अनुभव करने समी थी। लेकिन इस कथात्मक समय का कहानी के स्थान में विस्थापन नहीं होता था। शुद्ध जग समीक्षक का पूरा ध्यान बाध्य समीक्षा

पर ही रहा। प्रगतिवादी समीक्षकों ने जरूर क्या साहित्य का समीक्षा का विषय बनाया। यहाँ क्या त्रुटि विशेषण की पूरी सम्भावना थी, लेकिन ये समीक्षक भा उपन्यास और दूसरे साहित्य रूपा पर ही अपनी समीक्षा बुद्धि की आजमाइश करते रहे और छोटी कहानी इनके लिए भी छोटी ही बनी रह गई।

शुक्ल व पश्चान् इस युग के समय और बड़े आनाचक डा० नगेंद्र ने साहित्य पर चोतरफा विचार किया, काव्य की अद्यतन प्रवृत्तियों पर लिखा, स्थापनाएँ दी लेकिन इस आशय ही कहा जायगा कि कहानी समीक्षा की ओर उन्हें भा खास रुचि नहीं हुई।

इस बीच कहानी समीक्षा के नाम पर पाठ्य क्रमांश में आयोजित कहानी सत्रों में बीस-बीस पचीस पचीस पृष्ठों की भूमिकाएँ ही लिखी जाती रही और उनमें भी सतही तौर पर कहानी सम्बन्धी इतिहास और तत्वों में बड़ी हुई ऊपरी सूचनाएँ ही निवेदित की जाती रही, कुछ प्रबंध भी 'कहानी' का लेकर लिख गए लेकिन वे भी एकदम 'गिबेडेमिक' रहे, कभी कभी क्या 'संवेदना की भविष्य' की भी बात उठाई गई, लेकिन वह महज शब्द का अनुवाद हाकर विश्लेषित होकर नहीं। इस बीच कहानी को उच्च कलाशास्त्र के लिए अध्ययन योग्य भी मान लिया गया—पूरी अपेक्षा के साथ और आज भी विश्व विद्यालयों में कहानी के पाठ्यक्रम का पठन पाठन का हालत खासी मनाजक है। अध्यापकों ने अपनी सीमाओं में (गोविंद सीमाएँ उन्हीं के द्वारा निर्धारित की गई थीं) जो छिन्न-भुट क्या-समीक्षा यत्न किए वे पूरे तौर पर त्रिहर्णीय नहीं हैं, उनका काल-वृष्ट के समानांतर कुछ तो महत्व है, अध्यापकों ने इनका तो किया (हालांकि यहाँ मरा इरादा अध्यापकीय समीक्षा की विवर्धन करना जैसा बिल्कुल नहीं है, क्योंकि बने बनाए साचों में होने वाली इस समीक्षा की स्तरहीनता रुचिहीनता और सतहीपन से मैं परिचित हूँ) जबकि इसी बीच जनेन्द्र यशपाल, इलाचंद्र जोशी अनेक, अमृतलाल नागर नागायु न जैसे क्या लगवा के हाते हुए भी कहानी समीक्षा अध्यापकों तक ही सीमित क्यों रही? यह होता हुआ भी कि इन में से कुछेक रायक अच्छे समीक्षक भी हैं और 'नई समीक्षा' में महत्वपूर्ण योग देने वाले भी। इसका मतलब साफ था कि ये जसक भी कहानी को विवेच्य नहीं मानते थे। दरअसल समीक्षा बुद्धि के सतुला अभाव में प्रतिपत्ति कोण के हाँके हुए भी हमारे यहाँ अध्यापकीय आलोचना की इतनी आलाचना नहीं हुई है जितना कि स्वयं अध्यापकों की ओर इन आलोचना का कारण निम्नग क्या

समझ का होना उतना नहीं है, जितना कि उसका स्वयं में एकदम निजी और सतही होना है जिसमें वही वही हीन भाव या भाव भा रहा है यानी इस दिशा (?) के आलोचक हैं विश्व विद्यालयों में आने व इच्छुक हताश लेखक या व लेखक जो विश्व विद्यालया से निकाले गए हैं या वे जिन्हें विश्व विद्यालया में लिए जान के योग्य नहीं समझा गया है या जो विश्व विद्यालया में हात हुए भी वहा खप नही सक क्योंकि जहा लेखन एक कला है वहा अध्यापन भी, और जरूरी तहो कि आप लेखक के साथ साथ सफल अध्यापक भी हो सकें । अध्यापकीय कथा समीक्षा की आलोचना जरूरी है, लेकिन आग्रह मुक्त होकर । ग्रहम मसला यह नहीं है कि कौन लेखक कहा जान को उत्सुक है और कि कौन लेखक कहाँ से निकाला गया है । मसला यह है कि अध्यापक की आलोचना या उसकी आलोचना की आलोचना जो कि फैशन पक गई है उसे हम व्यक्तिगत स्तर और फ़ायन परक स्थितिया से उठकर सही और ठीक जमीन दे सकें ।

नयी कविता के काफी बाद कहानी चर्चा शुरू हुई । १८५४-५५ के पास यह चर्चा तूल पकड़ने लगी । ५६ में इस 'नई कहानी' नाम देन की सिफारिश की गई । ५७ व ५८ तक यह मृजल स्तर पर अपना अस्तित्व प्रमाणित करने लगी । कहानी, कल्पना, विनोद, लहर नानोदय नई कहानिया आदि पत्रों ने 'नई कहानी' की चर्चा और उसके उभय में पर्याप्त योग दिया । कथा-लोप्टिया और कथा समा रोहो ने भी अपनी हल में इसे काफी प्रचार दिया (और शायद नई कहानी का जोरा की चर्चा का एक कारण विभिन्न पत्र पत्रिकाओं में कथाकार संपादक का होना भी रहा है और कविता की प्रभुत चर्चा भी) इस तरह कुल दो दशक में कहानी आलोचना और प्रत्यालोचना का केन्द्र बन गई और यह देखकर आश्चर्य हुआ कि जा विधा साहित्य में अब स पल तक एकत्र उपस्थित रही थी यवापक वही साहित्य की सर्वाधिक महत्वपूर्ण विधा कविता के समानान्तर मजबूती में अपने परो लडा हुई है । यह ६०, ६१ का समय था, जब कहानी का नई नाम स्वीकृत ही रहा हुआ था, उसका रूप भी खुल आया था, यानी उसमें सम्प्रचित कुछ साम आया सामने आने लग था ।

अब से पहले कहानी में जहा आदमी की मरी और गहरी आंतरिक सत्ता का गन्त नहीं हुआ था वहा कहानी के आंतरिक रचाव का आर भी ध्यान नहीं गया था, इसलिए जब इसमें जुड़ा हुआ सत्ता यवाप का प्रश्न सामने आया तो हमी न गाप अनुभव की प्रामाणिकता का सवाल भी उठाया गया और प्रामाणिकता अन्त



पर ही रहा। प्रगतिवादी समीक्षकों ने जरूर क्या साहित्य की समीक्षा का विषय बनाया। यहाँ क्या जोष विशेषण की पूरी सम्भावना थी, लेकिन ये समीक्षक भा जायासों और दूसरे साहित्य रूपों पर हाँ अपनी समीक्षा बुद्धि की मात्रमाइश कर रहे और छोटी कहानी इनके लिए भी छोटी ही बनी रह गई।

शुक्ल के परवानू, इस युग के समय और बड़े आलोचक डा० नगद ने साहित्य पर चीनरफा विचार किया, बाव्य की अद्यतन प्रवृत्तियों पर लिखा, स्थापनाएँ दी लेकिन उसे आश्चर्य ही कहा जायगा कि कहानी समीक्षा की ओर उन्हें भी खास रुचि नहीं हुई।

इस बीच कहानी समीक्षा के नाम पर पाठ्य क्रमा में आयोजित कहाना सत्रों में बीम-बीम पचीस-पचीस पृष्ठों की भूमिकाएँ ही लिखी जाती रही और उनमें भी सतही तौर पर कहानी सम्बन्धी इतिहास और तत्वों में बंदी हुई ऊपरी सूचनाएँ ही निवेदित की जाती रही, कुछ प्रबंध भी कहानी का लेकर लिख गए, लेकिन वे भी एकदम टेकेडेमिक रहे कभी कभी क्या सवेदना की अविर्त की भी बात उठाई गई लेकिन वह महज शब्द का अनुवाद हाकर, विश्रपित होकर नहीं। इस बीच कहानी को उच्च कलाक्रा के लिए अध्ययन योग्य भी मान लिया गया— पूरी उपेक्षा के साथ और आज भी विश्व विद्यालयों में कहानी के पाठ्यक्रमा व पठन पाठन की हालत खासी मनोरञ्जक है। अध्यापकों ने अपनी सीमाओं में (गोविं य भीमाएँ उहीं के द्वारा निर्धारित की गई थी) जो छिट-मुट कथा-समीक्षा करने किए थे पूरे तौर पर विगहर्णीय नहीं हैं उनका काल-खण्ड के समानांतर कुछ ता महत्व है, अध्यापक ने इनका तो किया (हालांकि यहाँ मेरा इरादा अध्यापकीय समीक्षा की विधानत करना जैसा बिल्कुल नहीं है, क्योंकि बने बनाए साक्षों में हाने वाली इस समीक्षा की स्तरहीनता रत्निवादिता और सतहीपन से मैं परिचित हूँ) जबकि इस बीच जनेन्द्र, यशपाल इलाचन्द्र जोशी अनेक, अमृतलाल नागर नागा गुन जैसे कथ सखवा के होते हुए भी कहानी समीक्षा अध्यापकों तक ही सीमित क्यों रही? या होते हुए भी कि इन में से कुछ क सख अच्चे समीक्षक भी हैं और 'नई समीक्षा' महत्वपूर्ण योग देने वाले भी। इसका मतलब साफ था कि ये खराब भी कहानी के विवेच्य नहीं मानते थे। दरअसल समीक्षा बुद्धि के अनुपलब्ध प्रभाव में अतिवादी कोण के हाने हुए भी हमारे यहाँ अध्यापकीय धारोचना की इतनी आलोचना नहीं हुई है जितनी कि स्वयं अध्यापकों की और इस आलोचना का कारण निम्नग क्या

ममझ का होना उतना नहीं है, जितना कि उसका स्वयं म एकदम निजी और सतही होना है जिसमें वही वही हीन बोव का भाव भी रहा है यानी इस दिशा (?) के आलाचक है विश्व विद्यालय म आने के इच्छुक हुआ लेखक या वे लेखक जो विश्व विद्यालय से निकाले गए हैं या वे जिन्हें विश्व विद्यालयों में लिए जाने के योग्य नहीं समझा गया है या जो विश्व विद्यालयों म होते हुए भी वहां लप नही सब क्योंकि जहां लेखन एक कला है वहां अध्यापन भी, और जरूरी तभी कि आप लेखक के साथ साथ सफल अध्यापक भी हो सकें। अध्यापकीय कथा समीक्षा की आलोचना जरूरी है, लेकिन आग्रह मुक्त होकर। अहम मसला यह नहीं है कि कौन लेखक कहा जान का उत्सुक है और कि कौन लेखक कहा से निकाला गया है। मसला यह है कि अध्यापक की आलोचना या उसकी आलोचना की आलोचना जो कि फैशन पकड़ गई है उसे हम व्यक्तिगत स्तरों और फ़ैशन परक स्थितियों से उठकर सही और ठोस जमीन पे सकें।

नयी कविता के काफी बाद बहानी चर्चा शुरू हुई। १९५४-५५ के पास यह चर्चा तूल पकड़ने लगी। ५६ में इस 'नई बहानी' नाम देन की सिफारिश की गई। ५७ व ५८ तक यह मृजन स्तर पर अपना अस्तित्व प्रमाणित करने लगी। बहानी, कल्पना, विनोद, लहर, नानोदय, नई कहानिया आदि पत्रों ने 'नई बहानी' का चर्चा और उसके उभेप म पर्याप्त धाम दिया। कथा गोष्ठिया और कथा ममा रोहो ने भी अपनी ह म इसे काफी प्रचार दिया (और शायद 'नई बहानी' की जारों की चर्चा का एक कारण विभिन्न पत्र पत्रिकाओं म कथाकार सम्मानों का होना भी रहा है और कविता की प्रभुत चर्चा भी) इस तरह कुल २१ दशक म बहानी आलोचना और प्रत्यालोचना का बद्र बन गई और यह देखकर आश्चर्य हुआ कि जो विधा साहित्य म अब से पहले तक एकदम उपमित रही थी, पचापन मनी साहित्य की सर्वाधिक महत्वपूर्ण विधा कविता व समानान्तर मजबूती म अपना पैर मढ़ी हुई है। यह ६०, ६१ का समय था, जब बहानी का 'नई' नाम मधीन ही रहा हुआ था, उसका रूप भी चुन आया था यानी उभय मध्यम मृदु नाम आया म समन आने लगे थे।

अब से पहले बहानी म जहां आत्मी की सही और गहरी आत्मनिर्णय तथा का खनन नहीं हुआ था, वहां बहानी के आन्तरिक रचाव की धार भी ध्यान नहीं गया था, इसलिए जब हमने जुड़ा हुआ सही यथाथ का प्रश्न सामने आया तो इस का साथ अनुभव की प्रामाणिकता का सवाल भी उठाया गया और प्रामाणिकता मजबूत

परिवेश (भादमी के अपने भीतर और बाहर के समाज का साम्राज्य) की प्रामाणिकता से जुड़ी हुई ही नहीं मानी गई, बल्कि उससे पूरे तौर पर पृथक् स्वीकार की गई। इस तरह परिवेश ही वह कुतुबनुमा का काटा ठहरा, जो अनुभव का प्रामाणिकता का नहीं निशा सकलक हुआ। इसीलिए 'आई कहानी' में चरित्र निर्माण भाषण नहीं रहा और न ही वस्तु पर समतलाशी करने का आग्रह रहा, क्योंकि समतलाशी में व्यवस्था और उसके फटाव तो उभारे जा सकते हैं लेकिन उनके भीतर के झिलते तार में उनका सम्बन्ध नहीं बँठाया जा सकता।

यही अनुभव मध्य भी बदला

क्योंकि कि भादमी खुद के घटित को ही महसूस करता है, दूसरो के का नहीं और जब वह दूसरो के घटित को भेनता हाता है तब वहा वह खुद महा होता दूसरे होते हैं या वे सब जिनको या जिनके लिए वह महसूस करता है। व्यतीत कथाकारों का अनुभव मध्य यही था वे अनुभव का माध्यम दूसरा का मानने थे, आचार्य शुक्ल कथित पद्धति ही इन के लिए आग्रह वाक्य थी कि दूसरा की परिस्थिति में स्वयं को डालकर उसी के अनुकूल भावा का अनुभव करो इसी आरोपित पद्धति के कारण व्यतीत कथाकारों में अनुभव की प्रामाणिकता चुकती थी। नया कथाकार महज अपने घटित को महसूस करता है य उन सत्रवा भी जो उसके 'घटित' से अनायास जुड़े हुए हैं या जुड़ जाते हैं यानी उन सबके लिए वह योगता भी है, लेकिन स्वयं हाथ और वे उसके भाव हाते हैं (बल्कि उसमें स्वयं हात हैं) लेकिन पहल और माध्यम उनका स्वयं का अनुभव सत्य हाता है। वह अब दूसरो के अनुभव का आधार पर कथा गढ़न की मुविधा छोड़ चुका है।

राजेंद्र यादव ने एक दुनिया समानान्तर में खींच और नपुंसक आशोधन में (यह आशोधन आज का समूची पीढ़ी का भा है जो यथाय का न बल पाने की अमान्यता में उपजा है) कुछ उत्तेजित प्रश्न उठाए हैं, जिन में चीनरफा सब मूल्य माता का अधीन मानकर उठ नकारा गया है और नकार ही को आज की नियति भी मान लिया गया है। अस्त म य सार प्रश्न एक ही प्रश्न 'सही यथाय' के प्रश्नोत्तर हैं। प्रश्न उत्तर का आपको एक तो है (मविधान भी एक को जायज मानता है) लेकिन उनके उत्तर का या उत्तर सम्भावनाया का आप नकार नहीं मारत, क्योंकि कि प्रश्न बरस प्रश्न नहीं है यानी उसका अन्त प्रश्न होकर महा होता उनका अन्त उत्तर म है और वही उनकी अन्तिम नियति भी है। इस तथ्यीय जमाने में जब सब कुछ अधीन हो रहा है तब प्रश्न की मापनता इसी में है (क्योंकि यह युग था कि हर प्रश्न मार्गक नहीं होता) कि वह उत्तर की नपानार तथ्य हो,

यह बात प्रत्यक्ष है कि उत्तर आपके पास न ही (और हा सचना है कि समूची पीढ़ी के पास न ही) लेकिन इसीलिए यह मान लिए जान का कोई कारण नहीं कि उसका उत्तर ही नहीं है। नई कहानी इसी उत्तर की समानार समान है और यही उत्तर उसका सही वास्तव और अन्तिम निर्यात भी है।

नयी कहानी के मान स्थिर करते हुए एक नया समीक्षक न खण्डित बाप या खण्डित रुचि का सवाल उठाया या, हालांकि इस तरह के दूसरों की खण्डित रुचि को बसवत बाह्य पक्ष न कर सके हा लेकिन अनजान ही उन्होंने अपनी खण्डित रुचि का विनाश जल्द कर दिया है। बू कि यह कम 'अनजान' ही हुआ है इसलिए वे दावा नहीं ठहराए जा सकते ?? दावा तो व लोग है जो इस दावा का मद्देनजर रखते हुए उन पर दापारोपण करते हैं ??

विचली पाठो के एक समीक्षक मित्र न बंश दिनचर्या दावा किया है "घटना प्रसंग जितना वास्तविक होगा, कहानी उनकी ही जोरदार होगी। याया एकदम जोरदार कहानी के लिए एकदम वास्तविक घटना प्रसंग जाना ही काफी है। व सभी कहानिया 'जोरदार' ही हैं जिनमें घटना प्रसंग वास्तविक हैं, व न सिर्फ कहानी ही है, बल्कि 'नई कहानी' भी हैं ? इस दिनचर्या दाव से प्रबुद्ध पाठकों का स्वागत मनाकरना हुआ है। घटना प्रसंग या माया में सच्चे बड़ा दना या चरित्र की कल्पित द दना या ही कहानी नहीं है यह रचना में किसी एक जगह भी नहीं होती कि आप व गली रखकर बता दें, वह अनुस्यूत सृष्टि है जिसमें रचना में हर बाग पर घाताक भरता है वह सत्य की खोज या स्ताइवा है वस्तु और रूप उन्हीं के सबाह्व हैं, व उन समयमें में हल्की मात्रा भर कर सकते हैं।

अन्त में यह 'घटना प्रसंग' का सवाल क्यातक का ही सवाल है, जबकि यह बात काफी साफ हो चुकी है कि क्यातक वह और कहा ही नहीं है जहां उन मममा जाता रहा है। यह कहना भी ज्यादा सही नहीं है कि क्यातक का लेकर धारणा बना है बल्कि यह कहना ज्यादा सही होगा कि कहानी का समान धारणाओं के समक्ष व हमारी कल्पना हुई धारणाएं बना कर एक धारणाओं प्रक्रिया से गुजर रहा है इसीलिए अनुचित क्यामाना की भाग करना (वास्तविक घटना प्रसंग या क्यातक की भाग गती ही एक भाग है और यह भाग किसी तरह भी तत्वा में बड़ी हुई धारणायाय क्या समीक्षा के स्तर से ऊपर नहीं उठ पाई है। य स्वनाम धाप समीक्षा सोट फिर कर द्वा तत्व की बात करत हैं जबकि दावा इनका इन ऊपर उठ जाने का है) कहानी और कहानी समीक्षा में विकासमान धारणाओं के स्तरों व प्रयोगों के प्रति उन्मील होना है और कहानी में क्या विरायी रूप अपनाता है (इस कोश में

देखन पर स्पष्ट हो जाता है कि विचली पीढी ने पितामहा के खिलाफ जिहाद बोलते हुए भी उही का अनुसरण किया है) साथ ही अपनी समीक्षा बुद्धि को जड़ चिंतन के मातहत भी करना है।

इस धारणा का गलत मानते हुए भी कि साहित्य के तमाम रूपों में एक ही बात कही जाती है 'विचली पीढी के समीक्षक पश्चिमी उपन्यास और कविता के मनुलित माना से नई कहानी' की ओर लेते रहे हैं, गोया उनके लिए कहानी उपन्यास भी है और कविता भी। इसका मतलब हुआ कि साहित्य के तमाम रूपों में एक ही बात कही जाती है 'क्योंकि एक जैसे प्रतिमानों से कविता और कथा का माप लेने में उन्हें कोई हज़ महसूस नहीं हुआ (हालांकि उनके पास किसी विदेशी लेखक की इस क्रम के औचित्य के लिए दो गई दलीलें भी मौजूद हैं) य परस्पर विरोधी बातें और कथनी करनी का अंतर उन लेखकों की समीक्षा का ही अलंकार नहीं है इनकी जिदगी को भी अलङ्घित करता है। गाँधी देवीशंकर अवस्थी ने इस खतरे की ओर अरसा पहले इशारा किया था, 'नकिन लगता है कि इस बदले जमाने में समझदारों के लिए इतना काफी' वाला मुहावरा नाकाम हो रहा है।

विचली पीढी के कथा समीक्षकों ने (आज का पीढी में पहले के) नए कथाकारों को एक 'मुश्किल रिटायर' करने की सिफारिश की है, पुराने कथाकारों को 'उन्होंने पढ़ा ही रिटायर' करवा दिया था (नृत्य बनाए रखने का यह नुस्खा काफी पुराना पड़ चुका है) लेकिन अभी अपनी रिटायरमेंट तिथि की घोषणा नहीं की है (और न व ऐसा करेंगे) जबकि मजे की बात यह है कि 'रिटायर' होने पर भी व स्वयं को आनन्द्युटी समझने का मुनासिबता पाते हुए हैं।

जिन परिस्थितियों से हम गुजर रहे हैं उनमें संयोजक कम अतिरिक्त प्रसन्नता की बात नहीं रह गई है। सार मृज्जन के घटित होने का स्वयं (लेखन) माध्यम होने के कारण, वह एक लगातार अभिशाप हा गया है। इस संक्रमण में व्यतीत रचना क्रिया से उसकी नियति कही अधिक दूर है कारण—व्यतीत लेखन हमारे के लिए हुए को माध्यम बनाते थे जबकि नए कथाकार के लेखक की पत्नी जित स्वयं को जीकर निर्यता है। जैसे जैसे कथा (या कोई भी रचना) भट्टक पढ़नी जाती है वैसे-वैसे रचना पर उमर हाथों की पकड़ कमजोर पड़ती जाती है रचना एक भट्टके में उमर टूट कर स्वयं तिनकी पूरा होती है लेकिन उनका ही टूटता और खाली होता जाता है हर महत्वपूर्ण रचना उसके साथ यहाँ मरूट जाती है और हर बार यह पढ़ने से अतिरिक्त अभिशाप होता है। स्वतंत्रता प्राप्ति का उत्साह दश विमानों के समय के तरह तब विभ्र-मुद्रा का प्रभाव, इस भव हो और अनहोने परिवर्तन

ने हमारे बचाकार का अपनी नियति से जूझने के लिए एकदम प्रकला छाड़ दिया है और लेखकीय प्रक्रिया की यात्रा की सहता हुआ वह पूरे समुदाय में कट कर सब से भला पड़ गया है। इसीलिए 'नई कहानी' आदमी की विडम्बना नपुंसकता, टूटने और अनेकते पड़कर रहते जाने की भी कहानी है।

यह सही है कि दोनों विश्वयुद्ध हमारी जमीन पर नहीं लड़े गए लेकिन यह आवश्यक की बात है कि एक माइने में उनका घातक असर (उन देशों की निस्वतन्त्रता जहाँ वे लड़े गए थे) हम पर अधिक पड़ा है इस भय में कि पश्चिमी देशों में युद्धों के सलबे को साफ कर निर्माण तेजी से हुआ है जब कि हमारे यहाँ एक खास किस्म की गिरावट ने जन्म लिया है और इसी गिरावट के तहत संकट पर अधिकाधिक अमेरिकन और पश्चिमी साहित्य के प्रभाव में लीपी जाने वाली कहानियाँ स्वतन्त्र यौन मोग को दुर्गन्ध इच्छा (जो एक भ्रम में चौरफा घपहीनता के कारण भी उपजी है) के साथ लगातार नपुंसक होते हुए दग हो स्थिति को भी सामने ला रही हैं भावों में नारी को उलसाया जा रहा है। पुरुष की यौनेच्छा के स्वातन्त्र्य के लिए इस दिशा में नारी को उलसाया जा रहा है। मेरा हरावा यहाँ सख्त चित्रण पर भला से कुछ कहने का नहीं है (इसके लिए देखिए 'नई कहानी' एक बहुचित्रित सन्म) सिवाय इसके—

‘हिन्दू के शायरो सूरतगरो भफमाना निगार  
भाह बचारी के भासाव प औरन है सवार।

कुछ समीक्षा का स्थान है कि पिछले दो दशक कहानी की नयी समीक्षा के दशक हैं और उनका यह स्थान सही भी है लेकिन उतना ही सही यह भी है कि इन दो दशक में (और अब भी) तेजी से बढ़ते हुए जीवन की सृजन स्तर पर नई कहानी न स्फीति के साथ पकड़ने की कामिश हो नहीं की है उसे क्या उप सचिया में पकड़ भी पाया है। म दशक कहानी के समीक्षा दशक ता हैं ही इस भय में कि कहानी समीक्षा की नई शुरूआत यहाँ हुई है, लेकिन इन से कोई सारी समीक्षा पद्धति निकल पाई हा ऐसा नहीं है, यह सही है कि वह विकास की प्रक्रिया में जरूर है उसकी शब्दावली भी भ्रम से निमित्त नहीं हा पाई है गोवि विचली सीरी के भिन्नवाणी समीक्षक न नयी समीक्षा शब्दावली देने का दम्भ में अधिकांश कविता समीक्षा के शब्दा (एक हूँ तक यह उचित भी कहा जा सकता है) व पर्याप्त उही बूढ़ शब्दा का प्रयोग किया है जिनका एक आरामा हुए कुम्बड़ निकल भाया था और मुह्त हुए चहरा मुरिया से भर गया था। एक समीक्षक न तो अपना क्या समीक्षा में 'भावत्मिक' शब्द का इस्तेमाल न प्रयोग किया है कि तत्कालीन हुई

## नई कहानी

शिवदानसिंह चौहान

‘हम कहेंगे हाले दिल और वह करमायेंगे, क्या?  
अर्थात् खुदा वरसे, इस आयामबाजी से ।’

मैं नहीं जानता था कि मैं जितना सुस्त हूँ (व्यस्त कहना शायद भ्रातृ शब्दादा ही लगे) आपकी जिद उसमें भी बढ़कर है। तीन महीनों से आपने नाक में दम कर रखा है। करीब हर हफ्ते एक बाइ सरवा देते हैं, गोया अपने वक्त और पोस्तेज की कुछ कीमत ही नहीं लगाते। मानता हूँ कि मैंने लिखने का वायदा कर लिया था लेकिन क्या हर वायदा को पूरा करना आज के जमाने में जरूरी है? “गान जा पढ़ बचन न जाई”? लेकिन भई, यह तो भक्त तुलसीदास ने अपने बैठा युग के आराध्य के बारे में लिखा था। इस जमाने की व्यस्तताओं और परेशानियों का ज्ञान तो शायद ‘ऑस्कर वाइल्ड की ही ताकदी करते कि नव इराजों की तरफ वायदे भी तोड़ने के लिए ही किये जाते हैं। खर लगता है कि आप भी नये जमाने की गर्दश से दूर बैठा युग नहीं तो किसी ऐसे ही पुराने जमाने में रहते हैं—मेरा मतलब है जहनी तौर पर—इसलिए यह गवारा नहीं कर सकते कि कोई वायदा लिनापी कर जाय, यानी जब तक आप वायदा पूरा नहीं करा लेंगे, तब तक धन नहीं लेंगे। इसलिए आपकी इन कोशिशों का कुछ तो एहतराफ करना ही पड़ेगा चाहे जून। इस मू में जब हीट स्ट्रोन का खतरा हर वक्त और हर गिद महाराता रहता है कि पर गीला तौलिमा लपट कर ही क्यों न सही आपके लिए दोन्वार भंसार। लिखने ही पड़ेंगे। सो लिख रहा हूँ। लेकिन शुक्ति भी तो क्या निगू तीन महीने पढ़ल आपन कहानी भर की याजना के बारे में एव

ने हमारे ब्यापार का अपनी नियति से ज़रूरत के लिए एकत्र भेजा था दिया है और सत्त्विय प्रक्रिया की यात्रा को सहता हुआ वह पूरे समुदाय में बंट कर सब से भय प्रद गया है। इसीलिए नई कहानी आत्मी की विडम्बना नपुसकता दृष्टि और अनेक पठक सहते जानू की भी कहानी है।

यह सही है कि दोनों विश्वयुद्ध हमारी जमान पर नहीं लड़े गए, लेकिन यह आवश्यक की बात है कि एक मानने में उनका घातक असर (उन देशों की निस्वतन भी जहाँ वे लड़े गए थे) हम पर अतिरिक्त पड़ा है इस अर्थ में कि पश्चिमी देशों में युद्धों के मलबों को साफ कर निमाण तब से हुआ है जब कि हमारे यहां एक लाख किस्म की गिरावट ने ज़रूर लिया है और इसी गिरावट के सहित सैकड़ों पुराने अधिकाधिक अमरिक्त और पश्चिमी साहित्य के प्रभाव में लिखी जाने वाली कहानियाँ स्वतंत्र और मोग की दुर्दाज़ इच्छा (जो एक भय में जीतकर अपनी ही मान्यता के कारण भी उपजी है) के माध्यम लगातार नपुसक होते हुए दबती स्थिति को भी मान्यता ला रही हैं आपो जित उतने जना इसका प्रमाण है। पुरुष की यौनच्छा के स्वातंत्र्य के लिए इस दिशा में नारी को उकसाया जा रहा है। मेरा डराना यहाँ सत्त्व चित्रण पर अलग से कुछ कहने का नहीं है (इसके लिए दक्षिण नई कहानी एक बहुचिन्तित सदन) सिवाय इसके—

हिन्दू के शायरी औरतगरी अपमाना निगार  
आह बचारी के आभाव में औरत है सवार।

कुछ समीक्षकों का ख्याल है कि पिछले दो दशक कहानी की नयी समीक्षा के दशक हैं और उनका यह ख्याल ज़ही भी है लेकिन उतना ही सही यह भी है कि इन दो दशकों में (और अब भी) तेज़ी से बदलत हुए जीवन की सूख स्तर पर नई कहानी न स्वीकृति के साथ पकड़ने की कोशिश ही नहीं की है उस कथा उप संचियों में पकड़ भी पाया है। ये दशक कहानी के समीक्षा दशक तो हैं ही इस अर्थ में कि कहानी समीक्षा की नई शुरूआत यहाँ हुई है, लेकिन इन में कोई सखी समीक्षा पद्धति निकल पाई हा ऐसा नहीं है, यह सही है कि वह विकास की प्रक्रिया में ज़रूर है उसका शब्दावली भी भ्रमण से निमित्त नहीं हो पाई है गाँव विचलती प्रीति के मितवाणी समीक्षा न नयी समीक्षा शब्दावली इन के दम में अधिकाधिक कविता समीक्षा के शब्दों (एक हज़ार तक यह उचित भी कहा जा सकता है) के पर्याय जहाँ बड़े शब्दों का प्रयोग किया है जिनका एक बारसा हुए मुन्बुद निकल आया था और मुदत हुए चहारा झुरिया से भर गया था। एक समीक्षक ने तो अपनी कथा समीक्षा में आकस्मिक शब्दों का इस ब्रह्मायन से प्रयोग किया है कि तकचुन हुई



उनकी सारी कथा-समीक्षा महज आत्मिक (और एक झुझाव) होकर ही रह गई है। नई कथा समीक्षा में न कुछ शान्तवली उपलब्धियाँ के अतिरिक्त लफाजी लतीफें मसखरे पन से भरे छुटकुले और वाग्वदग्ध का काफी शोर शरावा रहा है।

‘नई कहानी’ में व्यंग्य पर्याप्त उभरा है जिस तरह व्यंग्य जरा सी भ्रष्टाचारी से वक्तव्य हो जाता है, इसी तरह के द्रव्य वस्तु बोध ‘विवरण’ होकर रह जा सकता है। इस स्थिति में हिन्दी का नया कथाकार पूरे तौर पर परिचित है।

नए के प्रति अतिरिक्त मोह या आग्रह हमारे कथा-क्षेत्र के लिए खतरनाक साबित हो सकता है साथ ही एक खास किस्म का रोमान हमारी दृष्टि में जगह बन सकता है और तब हम वहाँ बौद्धिक पहल और आधुनिक बोध में चुक्ते होते हैं, यह जानते हुए भी कि कथा-सृजन में निस्संगता की कितनी गहरी आवश्यकता है। नए के प्रति इस अतिरिक्त माह ने कुछ लेखकों के कथा-बोध को बचकाना बना दिया है, तो कुछ ने कम खतरे को उठाते हुए सशक्त कृतियाँ भी दी हैं। दरअसल यह बात बहुत कुछ लेखकीय सामर्थ्य से जुड़ी हुई है।

आतंक, आस, तनाव, भयावह सपना नई कहानी में युग की सही तस्वीर उकेर रहे हैं, लेकिन यह बोध अपने सही अर्थ में बहुत कम लेखकों के महा है।

पिछले दिनों कविता का क्षेत्र तेजी से ताजी (बासी) नगी (घनगी) (क्षमा करें ब्रेकिट वाले नाम मैंने जोड़ दिए हैं) भूखी और विद्रोही-कविता जैसे नाम आए हैं और कुछ कम तेजी में यथा नहीं लेकिन इन्हीं जैसे नाम कहानी में भी, लेकिन यह बहुत साफ है कि इन नामों की नियति भरे हुए बच्चे की नियति में अधिक कुछ भी नहीं है।

‘नई कविता और नई कहानी को लेकर जो अग्रहीन दिवा’ कथा-समीक्षा में चला है उस पर मुझे अलग से कुछ नही कहना है, सिवाय इसके कि वह कथा समीक्षा के अतिरिक्त उत्साह का एक मनोरंजन नमूना है और कभी-कभी बल्कि अक्सर यह देखने में आया है कि अतिरिक्त उत्साह में लोग गलत रास्ता पर भी चले गए हैं।

अपने दिल्ली प्रवास में अनुभव में स्तम्भ शुरू करने के बारे में माई देवी शर्मा अवस्थी (अपने स्मृतियोग ही रह गए हैं) से परस्पर विचार करने के दौरान यह बात सामने आई थी कि कहानी की चर्चा कथा माहित्य में सम्पूर्ण तदर्थ में होनी चाहिए क्योंकि वाग्वद सारी सगतिओं के कहानी की अपनी मोमाएँ हैं और यह भी कि इसकी अधिवाधिक चर्चा में सशक्त मध्य रूप उपयोग उपलब्ध हो गया है जब

कि हिन्दी गद्य को आयास गत अथ मजाब देने में उसका खास स्थान है। तब यह बात तब पायी गई थी कि क्या-साहित्य के पूरे मद्दम में 'नई कहानी' पर विचार करने से इसके स्वरूप को स्पष्ट करने में मदद हो मिलेगी, जो जरूरी भी है।

इस पुस्तक के बारे में मुझे कुछ नहीं कहना है (यह काम दूसरों का है और उही के लिए) ) अगर कहना है तो इतना भर बल्कि कहने के नाम पर महज य कुछ सूचनाएँ कि निबंधों के क्रम में जूनियर-सोनीयर प्रतिष्ठित या प्रतिष्ठित होत हुए लेखकों का ध्यान नहीं रखा गया है और अकारादि क्रम जैसी भी कोई औपचारिकता नहीं बरती गई है क्योंकि 'निबंध बोलेंगे क्रम नहीं (शमशेर) से समा चाहते हुए)

मेरा ऐसा भाव नहीं रहा कि केवल 'नई कहानी' के समयका से ही निबंध लिखा जाय, बल्कि मैं चाहता कि 'नई कहानी' पर चौरफा विचार के लिए निम्न-निम्न दृष्टिकोणों और विरोधी मन रखने वाले लेखकों से भी निबंध आमंत्रित किए जायें, क्योंकि इस तरह 'नई कहानी' को हमें अलग अलग कोणों और विरोधी दिशाओं के माध्यम से समझ में कही ज्यादा मदद मिल सकती है।

आभार और आभार उन सभी लेखकों के प्रति मैं आभार में कही कुछ अधिक ही अनुभव कर रहा हूँ, जिनका निबंध सहयोग मुझे इस पुस्तक में मिल सका है, क्योंकि जिस उत्तरदायित्व और तत्परता के साथ उन्होंने समय से सामग्री भेजी उनके लिए आभार जसी बात महज औपचारिकता ही है और नाकाफी भी, फिर भी तो मुझे इन में स अनेक लेखकों के प्रति—जिनमें 'नई कहानी' प्रवृत्ति और पाठ सुनने में सहयोग मिला है—अलग से इतनाता आपित करने होगी। उन सभी पत्र पत्रिकाओं के प्रति आभार प्रार्थित करना जरूरी समझना हूँ, जहाँ से मुझे सामग्री सुविधा मिल सकी है। बहरहाल।

२५ मई ६६

'अनुवर्ण' कार्यालय 'चंद्रलोक' गुरुश भाग

बापु नगर जयपुर

—सुरेन्द्र

## नई कहानी

शिवदानसिंह चौहान

‘हम कहेंगे हालां दिल और वह फरमायेंगे, क्या?’  
अर्थात् खुदा वरुण, इस आशामबाजी से ।’

मैं नहीं जानता था कि मैं जितना सुस्त हूँ (व्यस्त रहना शायद आत्म श्लाघा की लग) आपकी जिद उससे भी बूढ़कर है। तीन महीनों से आपने नाक में दम कर रखा है। करीब हर हफ्ते एक बाइ सरका देते हैं गोया अपने वक्त और पोस्टेज की कुछ कीमत ही नहीं लगाते। मानता हूँ कि मैंने लिखने का वायदा कुछ लिया था लेकिन क्या हर वायदे को पूरा करना आज के जमाने में जरूरी है? मान जायें पर बचन न आई ? लेकिन यदि यह तो भक्त तुलसीदास ने अपना वक्त युग के आराध्य के बारे में निभाया। इस जमान की व्यस्तताओं और परेशानियों का जानते तो शायद ‘मॉस्कर वाइल्ड’ की ही ताबीद करते कि नक़्शे-रादा की तरह वायदे भी तोड़ने के लिये ही किये जाते हैं। खर समझता है कि आप भी नये जमाने की गर्दिश से दूर वैताम्य नहीं तो किसी तेरे ही पुराने जमान में रहते हैं—मेरा मतलब है जहनी तौर पर—इसलिए यह गवारा नहीं कर सकते कि कोई वायदा गिलाफी कर जायें यानी जब तक आप वायदा पूरा नहीं करा लेंगे, तब तक चन नहीं लेंगे। इसलिए आपकी इन कोशिशों का कुछ तो एहनराम करना ही पड़ेगा चाहे जून की इस मूँ में जब हीट स्ट्रोक का सतरा हर वक्त और हर गिन मडराता रहता है फिर पर गीना तौलिफ़ सेपेट कर ही क्या न सही आपका लिए दो चार अगर ठी निरतने ही पड़ेंगे। सो तिस रद्दा हूँ। लेकिन लिखू भी तो क्या लिखू ? तीन महीने पहले आपने कहानी भक् की याचना के बारे में एक धारा

दृष्टा परिपत्र' भेजा था जिम्मे 'नई कहानी' की 'दस्ता निगा और सम्भावना' का जायजा लेने के लिए एक 'परिसवाद' का ऐतान किया था। उसमें भाग लेने वाले अग्र महानुभावों के साथ न जाने कसे मेरा नाम भी जोड़ दिया था। साथ में एक टाइप की हुई जिद्दी थी, जिम्मे लिखने के इसराज के साथ इस 'परिसवाद' (काग यह परी) सवाद होता तो एण्टरमन की एक दिलचस्प कहानी बन जाता।) की बजाह्त भी की थी और मुझ विस दायरे में बंध कर लिखना चाहिये हमके लिए सवाला की गवन के कुछ नुक्ते भी उठाय थे—नई कहानी के भुतलिक। इन सवाला में नई कहानी के कुछ ऐसे जमातियानी ममला की और इसारा था फनकारी की कुछ ऐसी नडाकता का हुवाला था और नई कहानी में वस्तु के बटते हुए आयाय' की आर सक्त था, कि यकीन कीजिए मेरा निमाण ही 'ध्यायाम' करने लग गया। आपन अपने आखिरी सवाल में पूछा था कि 'क्या नई कहानी किसी असन्तुष्ट आत्मा की तरह भटकती हुई नहीं लगती जो अभिव्यक्ति की दिशा में चन ही नहीं पा रही?' सच मानिए, नई कहानी अगर इन्सान होनी (या हैवान ही होती तो भी) मैं उसमें मिलकर उसकी आत्मा की कुछ जांच-परख करता, आपने की कोशिश करता कि वह वाक्यी असन्तुष्ट है भी या नहीं और अगर है तो अपने इजहार (अभिव्यक्ति) के लिए कसी-कसी धेड़दी हरकतें करती हुई गली-बूचा या बियावाना की जानी अजानी राहा पर भटकती फिर रही है। नई कहानी बेचारी की आत्मा क्या भटकती फिर रही होगी, मेरी आत्मा जम्पर भटक रही है कि वहाँ और कसे पता करूँ कि नई कहानी भटक गयी है या गाय' उससे त्वालिक (मूट्टा) ही भटक गया है। और अगर इनमें से भी कोई नहीं भटका हो, इत्मीनान रखिये कि 'नई कहानी' पर तय्युरा करने वाले नववाद (आलोचक) तो जरूर ही भटक गये हैं। और किमो का नाम क्या लूँ, जब मैं खुद इनको मिसाल हूँ।

लविन मेरा सवाल बन्सूर बायम है। आपन इस 'परिसवाद' में मेरा नाम क्या रखा? डा० खमीलारायण साल और श्रीबालु बर्मा तो स्वयं कहानी लेखन हैं—गायद आपकी गदायली में दुरस्त करके लिखें तो 'नई कहानी लेखन' हैं। (इसरा क्या मतलब होता है, यह आप सुन समझें, या आपसे 'नई कहानी पाठक' समझते हों तो समझें, मेरे लिए समझना तो अज जैसे बूढ़े सोन का पटना है।) डाक्टर नामवरसिंह का नाम तो खैर रहना ही चाहिए था क्योंकि वे 'नई कहानी' 'नई कहानी लेखन' और गायन 'नई कहानी पाठक' (नई कहानी की पत्रिवाया और गाष्टिया की भी न भूलें)—इन सब के एक अग्रमे से चुम्न बकील (इसारा 'बकील चुम्न मुहूर्द मुस्त' की ओर बतई नहीं है) और भावा, और मरपस्त रहे हैं। भाई प्रनागचन्द्र गुन मेरी पीढ़ी के हैं, चुनाव 'पुरान' खयाल और पुराने अन्वी गऊ के बन् जान चाहिए, लेकिन इनाहावाद में सगानार रहने के कारण, जहां मैं हिन्दी मदव की जनीद तगनीफान के लिए हूँ

पाचव साल किसी नय नाम को ईजाद की जाती है, वे शायद वक्त का साथ दत आय है। और फिर अगर एक पुराने उस्ताद की भी सार्ईद हमिल हो जाय तो इसम फायदा ही फायदा है। लेकिन मेरा नाम इस फहरिस्त में बिल्कुल बसूद और बेतुका लगता है। इस जमात में, न जान किस बमूर की बजह से, आपने मुझ जबरन बिठा दिया है, वहां मेरी कफियत कुछ बसी ही हो जायगी, जसी कफियत अपनी व नियाज महसूस क सामन मियाँ गालिब की हुई थी—यानी “हम कहें हाल तिल और वह परमाथग, क्या ?” बात या है कि इन सब दास्ता क साथ मेरा भी कुछ बसा हो रिश्ता है। इन सबके लिए मेरे दिल में इज्जत है। लेकिन एक इतना है कि इस बीच जब (मिसाल के लिए) नामवरमिह ‘नई-कहानी’ का फलसफा गढ़ने के लिए अल्वेयर कामू और सान और गायद ग्राहम ग्रीन के दरवाज पर सजदे कर रहे थे, और यह साबित करने के लिए कि ‘नई कहानी’ कथानक वस्तु, चरित्र चित्रण जैसे पुराने दकियानूसी अनामिर को पीछे छोड़कर अलिफ लला (मेरे भाई, हीगाइन का नाम ‘शहरजाद’ है शहरजानी नहीं, जमा कि आप हर महीने ‘हासिए पर’ काढ़त आय हैं। औरत हान के लिए उस दश में ककारान्त की कद नहीं है।) और पचत्तन की पुरानी दुनिया से परवाज करके चाद और सितारा में पबंद लगाने लगे हैं—यानी अफसाना निगार के त्तिमाग की भीनरी कायनाम के ओर-छार नापने लगे हैं। व ई एम फोर्स्टर की उपन्यास सम्बन्धी एक स्थापना को कहानी पर लागू करके चलत और खुकी साबित कर रहे थे। मैं उस वक्त भी तालस्ताय चेखव, गोर्की, मोषासा और शरत और रबोद्र के अफसाना में ही रमा रहा। यह नहीं कि नई कहानिया (मुरात भाजकल लिखी जान वाली कहानिया स हैं) में स मुझ काइ पसन्द नहा आयी या मैं उनको पसन्द का काशिश नहीं की। लेकिन जा इसकी खुकी, वतन-फ-वतन पसन्द आयी, वे क-किस्मती स ‘कहानिया’ की, नई-कहाना जसी अधकचरी खचानी और ‘बार खीख काई नहीं था। मेरा मतलब है कि उनमें स ऐसा काई नहीं थी, जिसका ‘गिरप सौन्य ही भिन्न’ हो, जिसका सप्रप्य भाव, प्रभाववाणी स्वरूप, कथन-वधिस्थ वस्तु के बढ़ते आयाम के कारण अभूतपूर्व लगा हो—जो कि गायद आपन गला में नई-कहानी का समूहियात है। जिनका ‘गिरप-सौन्य कहानी में ‘भिन्न’ था, वे क्या चीख थी—वस्था की म-क या पावन का प्रनाप या त्तिमागी उलभन और पिछले सस्कार का नमूना—यह दाना मुक्तिव है। क्याकि किसी में कोई ता जिस में कोई अन्तर वासातर था। बहरहास, आप गायद इह नई-कहाना का नाम देने हैं। मुझ कतर एतराज नहीं। आप कहें कि मैं सिक सफजा पर रतनी टूजत कर रहा हू। लेकिन गम क्या बमूर मेरा है? एक श्रवण तापद का काइ इन्तमास कर रता है, कुछ तापत बिना गमभ वृभे, उमपा स उठन हैं, माना अन्त निस्मि का धाया हाप भा गया हो। अब अगर काई दानिगम दानि गमभाय, आगाह कर कि यद् परव है, फूट है, तो वे उस पर ही पिस पान हैं। जरा साधिय।

हम हिंदी कहानी का जायजा नैन बढे हैं, ता उसे 'कहानी' कह कर पुकारिय, यह 'नई' क्या बता है ? 'नई' मे अगर आपका मतलब, 'नय ढग' की कहानी स हा, जो अपनी वस्तु और टेक्नीक की रू से प्रेमचन्द, मुद्गल, बौगिक की कहानी मे ज्यादा चुम्न, गटो हुई, कतामव और युग की नयी चेतना की अभिव्यक्ति करती है ता उन 'नई' कहन से काम नही चना और न उनमे निए एक नया मौल्य गात्र गान की जम्गत ही महसूस होगी। क्याकि जो पुरान ढरें म निखी हुई या पुगन वक्ता म निखी हुई थोछ कहानिया हैं, व आन भी नई लगती हैं, ग्राम भी न लगती जायगी। 'नई-कहानी' जमे नाम का दुराग्रह लेकर चनन म आनाचका क मामन मूल्यावन म बढी गढबडी पैग हा जायगी, क्याकि साहित्य म 'नई-कहानी' का संमा गाढत ही उनक हर 'नयपन' का, चाह वह कल्पित हा या वास्तविक, औचित्य खोजना होगा। और तब मूल्यावन वग्न समय 'नई-कविता' के व्याख्याकार और कबीला की तरह, 'नई-कहानी' के व्याख्याकार और कबोल भी मिफ अपन का ही दखे और अपन स पुरान वक्ता क सभी महान क्याकारा की इनिया को हच और दकियानुमी वगर दकर रही की टोकरो म फव देंगे—यानो तॉलन्साय, चेखव और मोपामा मे निमल वर्मा या विजय चौहान (माफ बोजिएगा, भर इगारा श्रीमती विजय चौहान की और नहीं है जो एक अलग गम्मियन हैं और जिनकी कहानिया मे कुछ हो या न हा, कम मे कम बचकानापन नही है) का बडा कहानीकार धापित करने लगेंगे, क्याकि व 'नय कहानीकार' हैं और उनकी 'नई-कहानिया' म 'बन्नु के बढते आयाप' (?) कुछ ऐसे हैं, जिनकी 'तॉलन्साय चेखव-मार्को-मापासा' कल्पना भी नही कर सके थे। क्या मजाक है ? और तकलीफ होती है यह देखकर कि हमारे कुछ दोस्ता की 'न-आलाचना' कुछ ऐसे ही मनगढन्त, हवाई मूत्रा को पकड़कर जमीन और आममान क झुलावे मिलान पर तुल गई है। इसके अलावा 'नई-कहानी' का यह नया 'गिल्प-मौल्य' नई 'भावधारा' 'प्रभाववादी स्वरूप' 'कथन-वचित्र्य' वगरह एमी कौन-सी नई अनामनें हैं, जा पिछेने दस साला म ही (ज मे 'नई-नई' का गोर मचाया जान लगा है) कहीं आममान स टपक कर नमूनार हा गई हैं ? क्या 'कहानी' म स साफ-मुपरा (चमत्कार-हीन नही) बन्नु बियास, चरित्र चित्रण, कथानक वगरह यानी 'कहानीपन' निवाल दन म ही कहानी अपना चोना बन्नकर 'नई-कहाना' बन जाती है ? और अगर ऐसा है ता एसी पंगु, अपाहिज और लगढी कहानी को, जिसम और बहुत मे चमत्कार हैं मिफ 'कहानीपन' नही है, क्या समझा जाय ? कहानी-कता का बिराम या हाम ? इस सवाल से ही आप अन्तज गगा मकन हैं कि विकास या इतका म मेरा विश्वास है—बाई अल्लमन आन्मी उमम इन्वार पर ही कम सक्ता है ? इसलिए 'कहानी' का रूप और गिप कोई हमेगा क लिये त-गुन और मयसूस चीज हो, यह नहीं है। आन्मी का हा सीजिय। हर आन्मा की गपल एक-दूसर म मुन्तलिफ है, और आन्मी

का खूबसूरती का भी आज तक कोई आखिरी मयार कायम नहीं हो सका। गाँव  
हर जमाने में हमकी वांछित हुई हैं। और मिसाल के तौर पर हमारे सामने यूनान का  
मूर्तियाँ हैं, माइकल एंगेला, रफेल और दूसरे चित्रकारों की तस्वीरें हैं, अजन्ता के  
चित्र हैं। लेकिन हर जमाने के कलाकारों की दृष्टि आदमा के व्यक्तित्व और शरीर  
में ऐसे सौन्दर्य की भत्क पाती है, जिस पर किसी का निगाह नहीं गई और उम  
चित्रित या मूर्तित्व करने की कोशिश करते हैं। कोई जरूरत नहीं कि वे जो तस्वीर  
बनायें वह किसी खास आदमी से हूबहू मिलती ही हो। मुमकिन है कि वे किसी  
खास इंसानी जड़ब, रिस्ते, मूड या पसन्दिली के पहलू का उभारने के लिये, ऊपरी  
नजर से देखने में खडित और विवृत भी लगें लेकिन उनसे इंसानी जिंदगी के सत्य का  
ऐहसास बढ़ता ही है कमतर नहीं होता। अगर ऐसा हो तो कौनसे पर चाह जितना  
रंग बिखेरा जाय, चाह जिस 'अभूतपूर्व' आदाम में रेखाएँ खींची जाय, बात नहीं बनगी  
और वह चित्र खूबसूरत नहीं कहा जा सकेगा। मतलब यह कि जिस तरह चित्र में  
चाह वह पुरानी गली का हा, या नई शली का—हकीकत का कोई ऐसा पहलू नजर  
नहीं आता था। उसी तरह कहानी में भी (और कहानी ही क्या, हर प्रकार की  
कलाकृति में भी) जिंदगा (या हकीकत) का कोई नया पहलू नजर आना चाहिए।  
उसमें हमारी नजर को कुछ विस्तार और गहराई मिलनी चाहिए। इसलिये कथन  
वचिभ्य, अभिव्यक्ति का नवीनता और शिल्पगत चमत्कार अपने आप में विनायक मूल्य  
नहीं रखते। 'नयापन' अपने आप में पूजा का चीज नहीं है, इंसानी इतना की कोई  
सम्बन्धी मजिलें पार करके हम इस दौर में पहुँचे हैं, जहाँ सभ्य और असभ्य का इन्तिपाज  
करने लग हैं। सभ्य आचरण के लिए हमारी कोशिशें हैं। लेकिन अगर कोई वह कि  
सम्पत्ता मनुष्य को पुसखहान बना रही है (पश्चिमी दुनिया में आज ऐसा आवाज उठाने  
वाले बुद्धिजीवियों की कमी नहीं है) और वह जान बूझ कर असभ्य आचरण करने लग  
और दावा करें कि नया मानव का यह नया आचरण है, 'तो क्या यह 'नयापन' एक  
'विकास' माना जायगा? साहित्य में भी अवसर हास की प्रक्रिया, जिस 'डिक्टेन्स'  
पुकारते हैं, शिल्पगत नवीनता का बाना पहिन कर उभरती है। मरी गुजारिश सिर्फ  
इतनी है कि इस बार में हम आगाह रहना चाहिए। हिन्दी की तथाकथित नई-कहानी,  
कहानी-कला के 'हाम' या 'विकास' का सूचन करती है, इसका निगाह तो भलग  
भलग कहानीकारों की असभ्य भलग कहानियों की जाँच करने की सामान्य रूप से किया  
जा सकेगा। पहले से कोई नियम बना व्यर्थ है, क्योंकि 'नई-कहानी' नाम की फार्म ठोस  
इवाई जैसी चीज नहीं है। सबका एक साठ से हाँकना वहाँ की दानिगमना हागी?

और अगर नई कहानी' से शोम्ना को यह मुगल है कि वह कहानी का नया (उम्र के  
लिखावट से) कहानीकारों का सिंगी कहाना है, तो नई उम्र या नई पीढ़ी की भी  
व्याप्ति वहाँ तक माना जाय? कितना उम्र तक के सत्य का 'नया' मानना चाहिए?

क्या 'रेणु' और 'राजेश' नय कहानीकार कहे जायग या अब पुराने पढ गय हैं ?  
 यह सवाल मैंने इसलिए उठाया है कि हमारा कुछ नय आलाचक और उनकी देखा  
 देखी विचारहान अयापक नई और पुराना पीढी की चर्चा करन लगे हैं। कुछ इस  
 सनरनाक अंशज म, माना पुरानी पीढी के लख सारे के सार दकियानुसी नजरिय  
 न हा और नय लख सार के सार युग की नवीनतम चेतना के बाहक हा। मानो दाना  
 पीढिया म भयन चीत-युद्ध चल रहा हा, जो कभी भी गरम युद्ध का रूप ल सकता  
 है माना पुरानो पाढी वाल इतन तग-नजर खुन-परस्त और तग दिल हा कि नई  
 पाढी न लखका को साहित्य म बढने ही न दमा चाहने हा—बगरह। मुभम पूछिय  
 तो मैं साहित्य म नई या पुरानी किसी भी पीढी का न कायल हू न हमद और न  
 मुरी। मैं सिर्फ प्रतिभा का कायल हू चाह लख नई पीढी का हो या पुरानी।  
 और जीवन क प्रति ध्यापक मानववाणी प्रगतिशील दृष्टिकोण का हामी हू इसलिए  
 एसा दृष्टिकोण अगर पुरानी पीढी क लख म मिले तो, और नई पीढी क लखका  
 म मिल ता, मैं उसका दास्त, हमन और हमनवा हू। इसलिए अगर नीत या गरम  
 युद्ध किसी क बीच है ता दो दृष्टिकोण क बीच है दो पीढिया क बीच नही है।  
 नद और पुरानी दाना पीढिया म कुछ प्रतिभावान हैं तो अधिकतर प्रतिभावान  
 लख हैं जता कि हर जमान म गहा है, और दाना पीढिया म कुछ उत्तर और  
 व्यापक मानवीय दृष्टि बाल हैं ता कुछ मनीष-हृदय और मानवद्रोह दृष्टि बाल  
 लख है। नय 'गिल्प-मीन्य' नयन-वचिष्य आदि का इजारा न नई पीढी क  
 लखका क पास ह और न पुरानी पीढी क लखका क पास न मानववाणी दृष्टिकोण  
 बाला क पास है, और न मानवद्रोह दृष्टिकोण बाला के पास। इसलिए आप  
 खुन दल मवन हैं कि एम समष्टि-मूचक शब्दा (नई कहानी या नद पीढी आदि)  
 क प्रयाग, जिनका कार्द तान्त्रिक आधार नही है नितना बढा घपला पैग कर दन  
 है। कार्द समभार आत्मी उनकी टागल हिमायन या मुपातपन कैस कर सकता  
 है जब कि उनकी समष्टि मूचक गार्धिक इवार्द अरमल एक टोम इवार्द है ही नही ?  
 तर इन हवाद बाना म क्या कायन ? आप नई कहानी ( जिसका मतलब मैं  
 आजकन लिखी जान वाली कहाना हो चाहता हू ) की दगा दिगा और सम्भावना  
 पर मरो राय जानना चाहत हैं। उम्मीद है कि नय आलाचक भा नयन-वचिष्य  
 आदि क्षणिक स्फुरगा स ही नई कहाना का दगा का अन्तज नही लगान हागे,  
 नहा ता उन पर मार' का गर चर्चितार्थ हागा कि—उनक भान स जा आजाता  
 है मुह पर रीतर वह समभन हैं कि बामार का हाल अच्छा है।' इसका अन्तज  
 तन काफी है, क्याकि अस्सर दास्त आलाचका न एसी कहानिया का सराहा है,  
 जो बुनियाती तौर पर निहायन वार' है। बामार निमाण की उपज हैं और कहाना  
 गहा तिर' अपन या किया की कुष्टाभा पर कहाना क से अन्तज म लिय गय



उपट्याग निवृत्ति हैं—कारण उनमें कही-कही छुस्त फिर जोड़ दिये हैं, यानी 'कथन-वचिन्त्य' का विधान कर दिया गया है जो कि नये रीतिवादी आलोचकों के लिए काफी है।

मगर म्याल में हिन्दी कहानी का विकास तेजी से हो रहा है। यानी साल में चार पाँच कहानियाँ तो ऐसी लिखी ही जाती हैं जो कि 'नई कहानियों' का सबसे खतम हाजाने के बराबर भी दिखती रहती हैं। यह बहुत बड़ी उपलब्धि है। बीस साल पहले शायद ऐसी जानकार कहानियाँ बीस-तीस साल में तीन-चार या कह दो-तीन से ज्यादा नहीं होती थीं। इस तरह हिसाब जोड़कर देखें तो पिछले पचास साल में अगर सौ अच्छी स्मरणीय कहानियाँ हिन्दी में लिखी गई हैं तो इनमें आजादी के बाद की कहानियाँ का तादाद आधे के करीब है। इनके लिखन वाले दोना पीढ़ियाँ हैं, और नये और पुराने दोना डरों हैं। इसलिए 'नई कहानियों' अगर खुद मियाँ मिट्टी बनना चाहती हैं तो उन पर कौन एतबार करेगा? दरअसल गौर से देखा जाय तो पिछले बीस-पचास साल की पचास जानकार कहानियाँ की रचना में दोना पीढ़ियाँ का करीब करीब बराबर का योगदान है। इनकी पहचान तो मैं इस वक्त नहीं कर सकता लेकिन नये आलोचकों अगर स्वाम्या मायूस न हों तो इतना जरूर कहेंगे कि इन पचास कहानियों में से 'मानवद्रोही' कहानी एक भी नहीं है। यानी नवीनता की खाद में लपेटकर कहानियाँ में इंसानी ज़ख्मों की जिह्मों की उछाई है। वक्त की छतनी में ये कुछ कचरे की तरह छन कर निकल गई हैं। 'गदल' पान की वेगम', 'मार गये गुलशाम' भल्लू का मालिक' या ऐसी ही कहानियाँ जीयेंगी, न कि जाने दीजिय किसी का दिल दुखाने से क्या फायदा। खैर किस्सा कौना यह कि और जा सक्ता कहानियाँ हर महिन साप्ताहिक और मासिक पत्र-पत्रिकाओं में छपती रहती हैं—(इस बीच खालिस कहानी की दर्जना पत्रिकाएँ क्षाय होन लगी हैं, जिसमें यह गलतफहमी हाँ गई है कि हिन्दी की कहानी लोकप्रिय है तो अपनी खूबियाँ का कारण हो) ये सब मापदण्ड स्तर की होती हैं। उनकी मर्यादा और लोकप्रियता हिन्दी कहानी की महान (दया) और अजमेन की आर्चनाकार नहीं हैं। यदि ऐसी बात हो तो विचारपाल नाग हिन्दुस्तानी फिल्मों की मर्यादा और लोकप्रियता को ही उनकी थोपना का प्रतिमान मान लें और यह रोज का रोज बात होजाय।

मिमान के लिए नई कहानियाँ का ताजा धक्का (जून ६१) उठाकर लेल ल—ये मामला कही है। इसलिए भाई भवप्रसाद इमोशनल रहें कि मरी मंगा सिर्फ उनकी पत्रिका की मर्यादा करना नहीं है। मगर म्याल में नई कहानियाँ अपनी हमजोनिश में गवग बड़ बढ़ कर हैं। नामी-गरामी लखवा का सत्याग्रह हम प्राप्त है। और तो इसके नये धक्का के पान पलटन जाइय। बाहरी ना पीढ़ियाँ इसमें गव मिल रही हैं। राजनीति में भी 'म्याल' विचारकारों के द्वारा 'म्याल' और 'कथन-वचिन्त्य' पुरानी

पीटी व हैं तो रामकुमार जहराराय, (मिस्टर) विजय चौहान बगरह नई पीटी व हैं (या आप जहराराय का नई पीटी म नहीं शामिल करना चाहते ?) अब इनकी कहानिया का देखिय। राजद्रोह वनी कहानी के अखाड़े के मजे खिलाडी हैं काइ-कोई उह कण्ठचद्र से ऊचा दरजा देन हैं। मेरे पुरान दोस्त हैं और जानता हूँ कि उनकी बातचीत का अन्त्य विनया निचम्प है। लेकिन मेरे यार न इलाहाबाद व हज्जामा व वयान म नद कहानियाँ के बारह सफे रंग डाले हैं, लेकिन बात कतई नहीं वनी। गुरु से आखीर तक जोरियत का समा ठागे रहता है गो वि बुद्ध फिकरा और लतीफा की भरमार है और नुनिया-जहान के ममायल पर तन्मुरा किया गया है। इसके मुकाबले म चन्द्रगुप्त विद्यानकार की कहानी जिन्दगी की कीमत' अपने आप मे एक मुकम्मल कहानी है उसम कहानापन है — पुरान ठग का लेकिन पक्कर मन्ताप ता धनी है। म कभी उनकी कहानिया का प्रगसक नहीं रहा, और उनका व्यक्तित्व ता यू भी निचम्प नहीं है फिर भी जिन्दगी की कीमत' माधारण तथा अच्छी कहानी है यह कहन म मैं गुरेज नहीं करूंगा। जेद्रनाथ 'अक' की तबील कहानी भाग और मुम्बान' एक अच्छी कहानी बन जानी अगर उन्हें मना वनानिक सत्य व साथ व्यय ही सीचतान न की होनी। अगर सय मे इनका कतराना था ता कहानी ही क्या लिखी ? प्रो० मल्हात्रा मेहनतानी सल्लन मे भला दक क्या नहीं परमा सकन ? क्या इसलिए कि वह मेहनतानी है। और अगर मान सीजिय कि व ऊच चरित्र के आत्मी हैं ता कम से कम सल्लन के दमानी जगजगन का एहनराम शक व उस जिन्गी व नरक म से निकलन म मन्ता ता व ही सकत थ। क्या अपनी हमर्नी के बावजूद वे उस नरक म घबेल गेन हैं ? इसका कोई माकूल जवाब कहानी म नहीं मिलता इसलिए यह सवाल मन म विक्षप पदा करना है। लगता है हमारे लखका की मानववाणी भावनाएँ छूआदून, जान-पान व पुरान सम्बारा म कही कुण्ठित हा जानी हैं। हम अभी तक मनुष्य का मनुष्य के रूप म स्वीकार नहीं कर्न। उमे हिन्दू मुसलमान ईसाई के रूप म ही देखन हैं। और और हिन्दू दृष्टा ता उस आदाम धत्री वय गूढ़ के रूप म। इसलिए पुरानी जहान व और भ्रमभाव व खिलाफ लिखन का दम ता सबन भरा लेकिन हमारे प्रतिवा म भा जान-पान का भेन बना रहा। जय कभी अन्तर्जानीय इन्सा-मुदुवत का दाम्पत्य पग का जाता है, ता लडका अमुमन ऊची जात और ऊंचे खानदान का हाता है और लडकी एक नीची जात और नाच खानदान की। चू कि समाज इनक प्रगम-व्ययन का विरोध करना है इसलिए हमारे लख माचने हैं कि दम क्या-वस्तु म कर्गा जान की पूरा सामथी मौजूद है। लेकिन व यह नहीं दखने कि आ-पान का ममान न उठाया जाय ता हमारा समाज ऊची जात और वग के लडक का नाचा जान का लडका म नाजायज ताल्लुक वगुनी जायज सम्भता है या कम

से कम इस दुराचरण को नजर-दाज कर जाने को तयार रहता है। दमलिय शान्ति के हक की मांग, दरअसल, एक तथ्य को मान्यता देने की सुधारवादी मांग है। हमारे लेखक इस तथ्य का ही मनवाने पर लगे रहे हैं सत्य को मनवाने के लिए उन्होंने काशिश नहीं की। सत्य क्या है? सत्य यह है कि यह जाति भेद ही गलत है और इसानी और बबर रहेअमल का आदनाकार है। आखिर हमारे किसी लेखक ने एक भगो के लडके से ब्राह्मण की लडकी की मोहब्बत का विस्सा क्या नहीं लिया? किसी भुमलमान या ईसाई से भी किसी ब्राह्मण की लडकी का इश्क क्या नहीं लिखाया जाता? जब कि ये सभी हिन्दुस्तानी हैं और इस देश के ही नागरिक हैं? क्या इसलिए कि हमारा (हिन्दू) समाज इस 'कुविचार' को बर्नादित नहीं करेगा?—(जबलपुर हत्याकाण्ड इसका सबूत है) या ठर है कि ऐसे लेखक को समाज में बहिष्कृत कर दिया जायगा? लेकिन दोस्ता सत्य के लिए कुछ तो कुर्बानी देनी पड़ेगी ही। नहीं तो हिन्दी कहानी वस्तु की दृष्टि से बँकबड' बनी रहगी। हमारे लेखक गिल्फ का चाहे जितना आडम्बर रचें और नयन क डोल पीटें विद्व साहित्य में उनका स्थान नहीं बनेगा। वह 'लोकल' ही बनी रहेगी। जात-पात और ऊँच नीच का भेद किसी समाज विरोध का सत्य भले ही हो लेकिन 'मानवता' का सत्य नहीं है। इसलिए कला का भी सत्य नहीं है। कला में आप इस भेद भाव को जहाँ प्रच्छन्न स्वीकृति भी दोगे तो वहाँ कला का सत्य खण्डित हो जायगा। इस बात को भ्राम तौर पर हमारे कहानीकार हृदयगम नहीं कर पाते क्योंकि दयियानूमी समाज की मायनाएँ बचपन से ही अचेतन मन का मस्कार बन जाती हैं। तो यह बचारे 'अर्थ' की ही समस्या नहीं है। रबीन्द्र, गरत और प्रेमचन्द भी इन सस्कारों में सज्जा मुक्त नहीं हो पाय थे यद्यपि जीवन और समाज के प्रति उनका सचेतन दृष्टि-कोण मानववादी था। फिर भी अब जमाना आ गया है कि सत्य की खातिर बजाय कला को खण्डित करन का बहुत है कि लेखक समाज की अमानवीय मायनाएँ से चुनौती दे। प्रतिवाद का स्वर सचमुच क्रांतिकारी बने महज सुधारवादी ही बनकर न रह जाय। आखिर इस गमनाम स्थिति का बोझ हम लोग क्या सब ढाँते जायेंगे? लेकिन यह एक लम्बी बहस है यहाँ पर इंगारा कर देना ही काफी है।

अब रामदुमार की कहानी का लीजिये—एक चेहरा'। पूरी पढ़ जाइए मिर-पीर का कुछ पता नहा चम्पगा। कोई प्लाट नहीं है विचार-वस्तु भी नहीं है बिरगार तो भर है ही नहीं। गाया यह मुकम्मल नई कहानी है। एक चेहरा—किसरा? क्या उमर की का चेहरा जिंगवा पनि भर गया है या जिन्ना है? यह नहीं मालूम या नोमू का चेहरा तो हमारा सामान रहता है और कम्बस्न आखिर एक नहीं बातना? जनाय गुजारिग है कि अगर यह नई कहानी न होकर सिर्फ कहानी होती तो या तो उमर की का दमम रिफ हो न होता जा सिफ एक भन्ना रिगार गायन हो जाती है

धीर क्या-बन्धु म जिसरा और कोई रोल या असर नहीं है। या फिर उसको कोई माफ़ूल रोल देना पड़ता। इसके अलावा वह नीमू जो हमेशा गुम-गुम और चुप रहता है, वहाँ की स्टेज पर किसी न किसी वक्त ता मुँह खोलता ही। किसी ठो प्लाइसिम के मौने पर कुछ ऐसे गैर माफ़ूला तरीके से कि पलैट वहाँ की एक्जम उठकर गड़ी हो जानी—खुद उमका करेक्टर जो उठता और पढ़ने वाले को भी मसरत हासिल होता। लेकिन हालत यह है कि पढ़कर दिल की छुटन और बड़ जानी है। यह जो किरदार और क्या-क्या को तर्क बरक नई वहाँ की गढ़ने का स्वागत दिया जाता है, इसमें वहाँ की क्या हासिल हुआ? मेरी समझ में नहीं आता। 'बढ़ने आया' की बात जाने दोजिए, लगता है कि जितने भी आयाय थे, व सब गिराकर जमीन हमवार बरदी गई है, जिसमें म केंचुए निक्कल कर खौरस जमीन पर नजर डालते हैं और फिर अपनी बतुस गति से चलना शुरू करते हैं। राह में जो नहीं बकियाँ मिलती हैं उनके गिर्द से टहो होकर या ऊपर से रगकर निक्कल जाते हैं और सोचत है कि भविष्य की नये आयाय उठने सोज निकाले हैं, क्योंकि जिन्गी में तो मिक लम्बाई चौड़ाई, य वा आयाय ही होते हैं। खुदा बन्ने दस आयायवाजों से। इस पर्वतनेस का आप भविष्य की उठने आयाय कहते हैं?

खर इस सपाट रेगिस्तान के बाद एक छाटा-सा नखलिस्तान नजर आ रहा है,—जहानराय की कहानी है 'आरमी मुम्हक'। गो कि बहने का अन्त्य पुराना है और क्या-बस्तु भी पुरानी है और वहाँ की भी महान नहीं है, लेकिन उसमें एक सरमता है, जो सिर्फ वही पत्ता कर सकता है, जिसे जवान भी आती है और बवान भी। और पुराने इस्लामी क़त्तर के अंदर इसानी रिना में जो कुछ भी रगीन और मरम है, उसमें प्रेम करना भी आता है। लेकिन इस छोटे-से नखलिस्तान में थोड़ी-सी मसरत हासिल करने हम अज वहाँ पागता और अन्तर की दुनिया में आ कैसे? जो नहीं, यह मिस्टर विजय चौहान की बटुनलिया का समाना है, जो 'एक प्रेम-कहानी' का अपने बचवान पिंमो अन्दाज में अभिनय कर रही है। लाहौर बिला बूबन। जित लड़का का अभी प्रेम का बार्द अक्षर तो दूर, उच्चारण तक नहीं आता, वे ही सबने आगे बढ़कर प्रेम की कहानी लिखा करत हैं। खैर, 'नई-कहानी' के लिए मूम-मूम, ममक, तजुर्बा और नजरिया गैर-जफ़री पते हैं। इन बातों का कोई तकाबा उन पर भावद नहीं होता। फिर जिन्ना जिन्ना तो होते नहीं, कि इन बातों के लिए हमारा करें। बटुनलियों की आप जैसा चाहें नाच नचवा सकते हैं। माना कि हिंदी क्या, हिन्दुस्तान के सेवक आप तौर पर प्रेम या मोहब्बत का मनन नहीं समझते और जिन्हें प्रेम की बात करने हैं, वह सामंती समजुर से ऊँच दर्जे की चीज नहीं होता। जिसमें औरत सिर्फ जन्म मानी जानी थी। फिर भी वे इस सर्वोच्च मनबोध भावना का मजाप बब तक उठाने जायेंगे? यानी हमारे सेमक—नाम तोर घर नय बटनीवार,

जिसका नमूना ये हजरत हैं, कब तक इसान बनने से इन्कार करते रहेंगे ? कब तक उनकी समझ में यह नहीं आयेगा, कि मोहब्बत का जज्बा वच्चा का खेल नहीं है, कि एक लड़की को देखा और सी जान से फिन्ग हांगय । लेकिन उसकी आर से जरा सी भी लापरवाही पावर फिन्मी अन्दाज में कुछ राय धाय, कुछ गीत गाये, कुछ शराब पी, कुछ पागलपन का ढाग रचा और जब वह लड़की मिताने आयी तो उसमें कफियत तलब बिय वगैर ही उस बेवफा समझ कर चलत बन । यह प्रेम-कहानी नहीं, प्रेम-कहानी की परोडी है—कौन जान विजय चौहान ने परोडी ही लिखी हो ? खर, जो भी हो, इतनी लचर और वचवानो चीज है कि मजा बिरबिरा होगया । एक बात पढ़कर तो मुझे लेखक की दिमागी कमिनी और अधकचरपन पर गुस्सा और तरस भी आया । कहानी में प्रेमी महाशय अविनाशचंद्र अपन राजपा गापाल से फरमाने हैं, 'सुनो, एक प्रेमी हाता है और उसकी एक प्रमिका । वस आदमी के पास धन और समय अधिक हो तो एक में अधिक भी प्रमिकाएँ हो सकती हैं ।' याद रह कि यह अल्फाज उस वक्त कह गये हैं, जब अविनाशचंद्र के दिल में गीता के प्रति प्रेम का समन्दर हिलोरें मार रहा है । य अल्फाज अगर हँसी-मजाक में कहे जाय तो भी निम्न स्तर की सामन्ती जहनियत का ही सबूत समझा जाना चाहिए । धन और समय वाले विलामी एक स अधिक 'प्रमिकाएँ' नहीं, रखेलें रखते हैं । एक विलामी औरत के पास भी धन और समय हो तो एक से अधिक पुरुषों को रखेल रख सकती है । लेकिन यह व्यभिचार है । प्रेम नहीं । प्रेम एक Exclusive चीज है । प्रेमी अपनी प्रमिका में ही जीवन की सर्वोच्च सायकता और प्राप्ति महसूस करता है । यही स्थिति एक प्रमिका के मन की भी होती है । जिनकी आत्मा इस उच्च मानवीय स्तर तक नहीं उठ सकी, उन्हें अविनाश और अध-नाश्रुत मानव ही कहा चाहिये । प्रेम के प्रदन पर यह अविनाश और अध-नाश्रुत दृष्टिकोण अक्सर हमारा कहानियाँ में व्यक्त होता रहता है, नई कहानियाँ में तो खास तौर पर । यह निम्नीय है । क्या करू भरी दृष्टि इन बातों पर जाती है बार गल्-चमत्कार पर नहीं ।

लेकिन शान में चार-पाँच कहानियाँ थोड़ा निकल आती हैं, यह हमारे साहित्य की सज्जे में बड़ी उपलब्धि है । यह हिंदी-कहानी के विरास की गारंटी है । यह मजबूत बाकी तयोल हांगया है । मन जानबूझकर हिंदा उद् मिसी खान में लिखा है ताकि इसे भी अभिव्यक्ति के बढ़ते आयाम का नमूना समझ लिया जाय । हालाँकि जिना साब समझ भा जा यानें लिखता गया है वे बिनाश्रुत बमानी नहीं बन सकी, इसका मुझे अप्सास है । नहीं तो शायद 'नय आलोचना' की पत्ति में मुझे भी पड़ा हान की जगह मिल जाती ।

# हमारी ममता और समवेदना का आलोक

## लक्ष्मीनारायण लाल

नयी कहानी का मैं आदि में अन्त तक कहानी मानता हूँ। एसा कहानी, जिसका रक्त मांस, दशास, प्राण और नामा हमारे जीवन जगत् और अपनी मानव प्रकृति में प्राप्त है। आप कहें यहाँ तक तो प्रमचन्द की कहानियाँ में था, जिसके ऊपर उन्होंने हमारा आत्मवाद फिर आत्मामुक्त यथायवाद और अन्त में यथायवाद की प्रविष्टि की थी। ठीक ही है।

फिर यह नयी कहानी 'नयी' किस दशा और दिशा में है ? 'नयी' का अर्थ फिर क्या है इस प्रश्न में ?

मैं स्पष्ट स्वीकार कर लूँ—इस 'नयी' का आशय आज़रस के प्रश्न में मैं नहीं जानता। मैं मैं अपने आलाचक के स्तर से इस 'नयी' की व्याख्या और इस पर परिसरों के मित्रमित्रों में खूब इधर की हँक मक्का हूँ। पर इमानदारी की बात यह है कि मैं इस 'नयी' का आज व मद्भ में आफ साफ नहीं जानता।

मैंन विरोधार्थ इस नयी कहानियाँ व ही बात में अपनी कहानियाँ लिखना शुरू की हैं। पर मैं अपना सारी कहानियाँ की मूलतः कहानी ही मानना चाहता और मानता हूँ। आप तब उक्त 'नयी कहानियाँ' कहें—आपका 'नौक' भर मिर भाये। पर मैं आपका यह याद दिला दूँ कि हर अच्छी कहानी सदा नयी कहानी है।

तो अच्छी कहानी क्या है ?

वही मानान की परिभाषा—जो हृदय का अपने एकात्म प्रभाव से स्पष्ट करे। जो आपकी सहज स्वच्छता जगाए। अपने आप में जो आपकी आत्मसात कर ले जाय—एसा आत्मसात कि चेतना प्रबुद्ध हो जाय, प्राण जग जाय। जीवन की कल्याण में वम और उमाह का नया बीज अदृष्टि हो उठ।

यह कहानी व इस मय का चाहे वह प्रमचन्द-टीकार बाल की हो चाहे अनेय और मन्थान के बात की, चाहे आज की (नयी) या भविष्य की—इस अथाप धारा

को सहस्र। 'नयी' में ब्रौघन का प्रयत्न कहानी की सनातनता की अवनता करना है, और अपने का इस महती धारा से अलग हटाना है।

नयी की स्वाभाविक स्थिति है पुरानी। यह पुरानी अथवा पुराना क्या है? इसका मतलब निम्नलिखित है। प्रथम, आज से आठ दस सात पूर्व लिखने वाले हमारे प्रतिष्ठित कहानीकार जन्म अर्थात् जन्मे और यशपाल आदि हमसे इतने पुराने हो गये। और दूसरा सगति यह कि यह जो आजकल का 'नया' है यह केवल अभी प्रयोग मात्र है, असल कहानियाँ तो इस नये दौर के बाद आएँगी।

व्यक्तिगत रूप से मैं इन दोनों सगनियाँ और स्थितियाँ से प्रेरित असहमत हूँ। इनका जन्म अपने आप पर से अविश्वास की दशा में होता है—एसा मैं सोचता हूँ।

जो सुन्दर कहानियाँ अभी बीता है यदि हमारे लिए वह इस तरह पुराना पड़ता है तो हम खूब नये हैं। और उस दूसरी सगति के प्रति मैं स्पष्ट कहूँ—मैं कहानी लिखता हूँ प्रयोग नहीं करता। मैं जो आज कहानियाँ लिख रहा हूँ, वे सब मेरे लिए उत्तम ही असनी मूल्यवान् कहानियाँ हैं जितनी कि अवश्य में लिखूँगा या लिखना चाहूँगा।

अब आपका परिसंवाद के सिलसिले में कुछ प्रश्नों के मेरे उत्तर। आपने पूछा है कि नयी कहानी का स्वरूप क्या है? उसका शिल्प-सौन्दर्य ही क्या उसे पुरानी कहानी से भिन्न रूप दिया है।

वर्तमान का स्वरूप हमारे महत्वपूर्ण गत का विवर्धित रूप है। मैं इस विकास का श्रेय केवल शिल्प-सौन्दर्य को न देकर भाव-सौन्दर्य का देता हूँ जो हमारे जीवन का सच्चा प्रतिनिधित्व करता है। इसमें शिल्प का श्रेय केवल शिल्प के ही स्तर का है शेष उसमें हमारा पल पल विवर्धित जीवन है, भाव है अनुभूति और साहानुभूति है शायद सभी भाषा की कहानी (मैं इसमें नयी नहीं जोड़ता—नयी के नाम पर इनमें अपमान निम्नलिखित कहानियाँ आजकल लिखी जा रही हैं कि उनसे इन स्थापना का दूर दूर तक कोई सरोकार नहीं है।) स्वरा साहित्यिक विधाया में (जहाँ तक अनन्त पाठकों द्वारा रम ग्रहण का उत्साह है) सारप्रिय हो रही है। इसका प्रत्यक्ष प्रमाण है कि हिन्दी में विपुल कहानी पत्रिका व क्षेत्र में करोड़ों आपके दर्जन अर्ध कहानी पत्रिका का अस्मात्पूर्व प्रकाशन।

आपका अन्तिम प्रश्न भूत अत्यन्त आकर्षित कर रहा है कि मैं भट्ट इसका उत्तर दूँ आपका प्रश्न है कि—'क्या नयी कहानी किसी अत्युत्कृष्ट आत्मा की तरह भटवर्त हुई नहीं सगती, जो अभिव्यक्ति की शक्ति में घन हो न पा रही हो?'

येह रामायण प्रश्न है। इस प्रश्न को पढ़ने ही महत्ता कृष्णा गावली की कहानी 'बापता व घर' और निमल वर्मा की 'परि' कहानी याद आता है।

भोग जब दुःख प्रश्न का उत्तर माचन लगना है तो गल पाँच छ वर्षों में अब तक करीब बीसिया अक्षरी खोष्ट कहानियाँ मेरे आयन आ सगे हुई हैं। ये कहानियाँ मुझमें बहती हैं कि हम असंतुष्ट आत्मा की तरह नहीं, दुखी आत्मा की तरह हैं। हममें भटकन नहीं है, हममें वरूणा घोर गहरी सहानुभूति है, उस माते जीवन के लिए जो आज तक बंदी है, अछूता है, जिनका आज तक का 'यास' हा नहीं। हममें 'सक' लिए भटकन नहीं है, दृढ़ निश्चय है कि हमारी समस्या और समस्या की दीपगिता का घातक अप्रकार क हर छोर तक पहुँचा। क्योंकि प्रकाश के भागी सब हैं—एक समान। रही अभिव्यक्ति की दिशा में चने पान का बात। जो यह मय है कि कुलाकार में जब तक मजबूत गति रहती है 'म' वहाँ चने। पर मैं यह भी अनुभव करता हूँ कि कृत्रिम की हर अभिव्यक्ति प्रशिया 'म' चने 'नी' है। अभिव्यक्ति के बाद वह फिर छिन जाय यह दूसरी बात है। 'गाय' यह चने अवेपण और उसका वह आनाकसय पय ही (मजबूत के कारण) हर कृत्रिम बनाकार का व्यक्तित्व ही है। यह उसका सौभाग्य है अथवा दुर्भाग्य, यह उसकी भटकन है अथवा निश्चय, यह उसका असम्पाप है या प्रवृत्ति—यह सारा प्रश्न बनाकार की अपनी अपनी आन्तरिकता से सम्बन्धित है जमा जिसका मूलन स्तर हो।

• •

## एकरसता टूटे और बेकली और बढे

### देवीशकर अवस्थी

आप लोग कहानी पर चीलगा म विचार करना चाहते हैं। बात अच्छी ही नहीं लगती, थोड़ा दिमाक़ क्षय में अतिरिक्त जागरूकता का प्रमाण देती है। हिन्दी में 'कहानी' परिवार न 'कहानी विचार' की परम्परा चलायी, तब से भिन्न भिन्न पत्र-पत्रिकाओं एवं अन्य माध्यमों द्वारा 'नयी कहानी' या कहानी माप का लगा-जोड़ा करने का प्रयास किया गया है। इस सम्बन्ध में स्मरणीय यह है कि अत्यन्त समृद्ध एवं जागरूक समाजों वान माहिया में भी कहानी पर चर्चा बहुत कम होती है, यान् हिन्दी में चर्चा का यह भाविकय, जहाँ एक ओर प्रबुद्ध हाव हुए लेखक-पाठक-वक्ता का सम्पादन व्यक्त करना है, वहीं दूसरे यह भी भावित हाता है कि सामाजिक कहानी में कुछ एका अवश्य है, जो नया है, जन्म बाल की वाचना या मोहना है और उस विचार करता है कि इस नद का उन्मूलन या तोलन का उपक्रम कर। यही पर इन विविध चर्चाओं में उभ न बान दाता पत्र मुक्त माद माने—



हैं। एक ओर तो कहानी को अत्यन्त आधुनिक, समकालीन, हिन्दी के अग्र साहित्य रूप में समझे व्याप्त सत्त एक विविध कहानी कहा जाता है, एक दूसरी ओर आलोचकों के ऐसे भी पन्ने हैं जो बताते हैं कि हिन्दी कहानी में आधुनिकता का बोध नहीं है या उसे प्रयोग बहुत कम हुए हैं (वे कहानी की विधा को भी कभी-कभी इस 'बोध' के लिये अश्वेत मानते हैं।) या कि उसका बहुत 'स्वभाव' बरसा मानते हैं 'चरित्र' नहीं। एक ओर आप अपने पहले ही सवाल में पूछते हैं, 'उसका शिल्प-सौन्दर्य ही क्या उसे पुरानी कहानी में भिन्न रूप दिया है?' दूसरी ओर अक्सर यह कहा गया है कि नयी कहानी में शिल्प सम्बन्धी प्रयोग कम हुए हैं। कुछ लोग न शिल्प-सम्बन्धी इन प्रयोगों की कमी का 'कहानी' का परम्परा-सम्बन्धी दायित्व मानते हैं। एक कहानीकार आलोचक (डा० लाल) ने एक बार बताया कि 'नई कविता' के समान 'नयी कहानी' काई परम्परा भट्ट आन्दोलन नहीं है, कि हाल में हमारे कथाकार आलोचक (राजेंद्र यादव) का कहना है कि 'इस देश की कहानी के सामने तिरस्कार या विवास के लिए कोई परम्परा नहीं थी।' फिर ग्राम कथा, नगर-कथा, कस्बा-कथा, आधुनिक-कथा अथवा शिल्पवादी कहानी, विषय वस्तु प्रधान कहानी आदि नाना प्रकार के परस्पर विरोधी मान लिए जाने वाले स्तर खोज निकाले गये हैं। परस्पर विरोधी मतों की मूर्खी का और धाग बढ़ाया जा सकता है। पर यहाँ पर उद्दिष्ट जितना ही है कि समस्या की जटिलता की ओर सबत किया जाय। समस्या यही कि 'नयी कहानी का स्वरूप क्या है?' कही ऐसा तो नहीं है कि य जो परस्पर विरोधी सी निम्न वाली बातें हैं, य विरोधी न होकर विभिन्न पक्ष हैं, जो बहुत नजदीक से देखे जाने के कारण या तो स्पष्ट नहीं हैं या धीरे-धीरे आभन हैं—फलतः विरोधी भी हैं। बात और अधिक गहरी करने की जाय तो ठीक रहे। विभिन्न क्षणों में सामग्री चुनने के आधार पर अलग-अलग बाँट बना देना न ध्यान पर यह कहना क्या ठीक न होगा कि गाँव, गहर, कस्बा, रस्ता, मुगलमान या आन्ध्रवासी, रस्तन, पहाड़ या घमनाला आदि में जो आज जिनगी की तबी (या गुस्ती) नीरसता, या सरसता वाली हुई चित्तवृत्ति, भिन्न प्रकार के दबावों में पल रहे हुए मध्य करने हुए प्राणी या परिस्थितियाँ, जो भी हैं वे सभी नयी कहानी के अन्तर्गत हैं। 'गाँव नयी कहानी में यह पहचाना गया है कि एक क्षण भी कहानी है और एक समूचा वातावरण भी। अथवा यह कि एक समूह या वातावरण के अन्दर एक व्यक्ति घटना, परिस्थिति या क्षण एक विषय दीप्ति से बोध सकता है, जम कि कम-अधिक ही नीचे भील'। कभी-कभी यदि एक नगम्य भी वस्तु मन में चित्त की प्रतिबिम्बों घनायाग जगा जाती है और य एक कहानी बना जाती है—उत्पत्तिगत अन्तिमदुःख की 'भुजा गरदन वाला उट।' प्रेम पर आगिनन कहानियाँ लिखा है ३। पर प्रेम अथ भी समाज के जटिल सम्बन्धों के कारण ऐसे लोग मरना या उभरना है जो नया सपना है, अननुभूत प्रतीत होता है। प्रेम

और परिवार पर उपा प्रियवदा या मन् नडागी अथवा राजेन्द्र यादव की कितनी ही कहानियाँ मिल जायेंगी। कभी-कभी यह भी आरोप लगाया जाता है कि कोई कोई सख्त एकाध पात्रों का माडल (चित्रकार की भाँति) बनाकर उन्हें ही दहराया करते हैं। पर मुझ यह बात अनुचित नहीं लगती। मास्टर की अनेक सम्भावनाएँ हो सकती हैं एवं निपुण कलाकार ने उनको उजागर किया है। राजेन्द्र यादव में मुझ अक्सर लगा है कि एक माडल को व विभिन्न परिस्थितियाँ (कहानी और उपन्यास दोनों में ही) में रखकर उस पात्र को 'अखिला' प्रदान कर रहे हैं। नय-नय क्षण सोजन के वज्राय एक क्षण का नये कोण में स्थापित करके अधिक कलात्मक सामर्थ्य की माँग करता है।

हिन्दी समीक्षा का एक विचित्र तुराग्रहवाणी इतने वर्तमान कहानी चर्चा में भी चल रहा है और वह आपका प्रथम प्रश्न में भी व्यञ्जित है। यह द्वन्द्व है विषय वस्तु और शिल्प शुद्ध अलग-अलग चीजें हैं। 'रामकुमार' द्वारा आधुनिक जीवन की गहरी उदासी (या बारडम) का चित्रण जाहिर है कि 'रागु' व उस शिल्प से भिन्न होगा जिसमें कि गाँव के अन्तर्गत हुए सम्बन्धों का चित्रण किया होगा या कि छायावादीय आवास्तव की 'बाल सुंदरी' के उस वातावरण का शिल्प भिन्न होगा, जिसमें कस्बे का एक उपेक्षित गरीब को जीवित करने का प्रयास किया गया है। कहानी ने अपने शिल्प में इस बीच में विभिन्न साहित्यिक रूपाएँ एवं कलाओं में भी तत्त्व ग्रहण किये हैं, पर इतना अवश्य है कि 'कथा तत्त्व' तथा 'रजकता' एवं अपभासित बहुजनशास्त्रों का जो आन्तरिक गुण या तत्त्व कहानी में होता है, वह उसे शिल्पगत प्रयोग की दृष्टि से नही देता, जसा कि कविता के क्षेत्र में सम्भव है।

इसी प्रसंग में एक और गेचक तथ्य मुझमें महसूस होता है। इधर पिछले दो वर्षों में हिन्दी-कहानी के क्षेत्र में आभास लगे लगे हैं। लगता है कि पुराने फामूनें दुहराए जाने लगे हैं। उदाहरण लें, मध्य प्रवाणित अमर्याद्वत की कहानी 'मूम'। यह कहानी बड़े अत्यन्त सादर और सज्जत है तथा जन्म के कारण उठने के भी पर कहानी की परम्परा में यह उसी प्रवृत्ति का अन्तर्गत है, जिसमें कि उपनिषद् या विचित्र धर्मों का गांधी-गोप कर लाया गया है। बिन्नी महाराज, हवा जाई अकेला, बाग सुंदरी (नागर जो के वृद्ध और समुद्र का तारि) जमी कहानियाँ इनके पढ़ने एमे के उपेक्षितता का साई हैं। मैं यह नहीं कहना कि एमे प्रयास न हा, पर यह अवश्य है कि इनमें प्रवृत्तिगत नयापन नहा है। एम ही कहानी पत्रिकाओं में प्रकाशित हान जाती दृष्टता कानिणी पन्थि और लगता कि एमे पढ़ने कहा पर चुके हैं। मुझे लगता है कि नया कहानी अमनुष्ट आभा का तरह चाह न भटक रही हा। पर आधुनिक जीवन के गहरे दशाव में पाठक अवश्य दशा जन्मी अमनुष्ट हा उठा है और यह एकरमता का अनुभव करने लगता है। आभासता का लगातार हिन्दी कहानी

मैं पूरी तरह सभी माना जायगा जब इस एक्सना का तोड़ने का प्रयास भी साथ-साथ होता चले। आपका अन्य प्रश्न के उत्तर में अत्यन्त मक्षेप में देना चाहूंगा। सम्भावनाओं के बारे में भविष्यवाणियाँ माहिय के क्षेत्र में न की जानी चाहियें और वह भी किसी एक विधा को लेकर। हम केवल इसना यह मकत हैं कि आज की प्रबुद्ध स्थिति में कहानी अधिक सन्तुलित ढंग से हमारे यथार्थ का तज़ो में बदलती स्थितियों एवं संवेदनाओं को एवं उगते हुए मनुष्य को अपने माध्यम से व्यञ्जित करेंगी या कि अपने माध्यम में समझने का मौका दूँगी। यही इसकी मायबता होगी।

आपके तीसरे प्रश्न का उत्तर है कि अभीतक मुझे नहीं लगती। क्या? इसलिए कि जो नये जीवन का अभूतपूर्व के आश्चर्य में स्तब्ध होकर लेने के बजाय स्वभाविक रूप से स्वाकारना चाहता है, उसका लिये 'नयी कहानी' या 'नयी कविता' अभूतपूर्व न होकर जीवन की सहज धर्मी व्यञ्जनाएँ हैं और वे नयी होकर भी हमारी परिचित हैं; बदली हुई होने पर भी हमारे अंतर्गत के निकट हैं।

जहाँ तक सवप्रियता का प्रश्न है—कहानी सदा सर्वाधिक प्रिय रही है। अतः नयी कहानी सर्वप्रिय बनी रह कर कोई नया संप्रवेष्टन करके पुराने उत्तरदायित्व का ही निर्वाह कर रही है।

आपका अंतिम प्रश्न भी मुझे कहानी की अतिरिक्त स्फीति देता लगता है। पहली बात तो यह कि स्वयं मनुष्य सदैव से अगस्त्य रहा है। उगन अपने का अभिव्यक्त करने के लिये क्या-क्या नहीं किया या कहा? फिर आधुनिकता के बोध को ग्रहण करने वाला मनुष्य, भयकर वेग वाली परिवर्तनता की छाया में चलने वाला व्यक्ति, तो अपने प्रत्येक क्षण का अभिव्यक्त करने के लिए तालाशित हो उठा है। कहानी की अभिव्यञ्जन-आनुगता मनुष्य की उभी स्वभाव की ही प्रकाशिका है। मैं तो यह कहूँगा कि क्या-क्या कहानी हमारे यथार्थ के निकट आएगी त्या-त्या वह आनुगता, यह बेचली और बढ़ती। उमरा बढ़ता हा शुभ लगता है।

# हिन्दी कहानी की दिशा

## नित्यानन्द तिवारी

भारत की हिन्दी कहानी की चर्चा करत समय साधारणतः दो प्रकार की बातें की जाती हैं यह कि हिन्दी-कहानी अनेक-जैसे-द्रो में आगे नहीं बढ़ी है ( दृष्टि की गहराई के रूप में ), यह कि हिन्दी कहानी पहले जो कुछ लिखा गया है उसका पुनः प्रस्तुती काया है, डिस्टाटेंड है विद्वानों लेखकों का अनुसंग है गिल्प-चमत्कार है, या फिर यह कि हिन्दी कहानी 'नयी कविता' की भाँति ही नयी नहीं है। यद्यपि 'कविता में अभी बनी स्थिति नहीं आई है।' इन दो अतिया में बचकर भी बातें हुई हैं, किन्तु एक पारम्परिक शृङ्खला में रखकर इन्हें साधन समझन और मूल्यांकन करने की बात एक सटम्प दृष्टि के रूप में कम हुई है और यदि हुई भी है तो उस ऐतिहासिक नवीनता का कभी-कभी रूप क्या है ? कहानी में वह किस रूप में प्रतिफलित हुई है ? इन बातों पर स्पष्ट विचार नहीं हुआ है। रबि मन्वार सापेक्ष हाता और सत्कार की जड़ परम्परा में बड़ी गहरी होनी हैं। लक्ष्मी की अपनी रबि ( निस्मदेह परिष्कृत ) ही विभिन्न अनुभूतियाँ में विविधता और पृथक्ता लाती है। और यह विविधता ही बाद में एक व्यापक इकाई में प्रवृत्ति का रूप धारण करती है, जो ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में मप्रसन्न नवीनता का वाहक होती है। बन्तुत ऐतिहासिक शृङ्खला में अन्तर्-युगे, अष्ट-अष्ट का प्रदन प्रायः नहीं उठा करता, वह अपनी अविच्छिन्नता में विश्वसित होती रहती है। उस शृङ्खला में साहित्य का कितना भाग जीवित रहता है, वह इस बात पर निर्भर करता है कि उसके द्वारा चित्रित वर्तमान कितने रूप में भविष्य में जी सकता है। अनपेक्षित वर्तमान यथापत्ती की भीड़ में उस, अविच्छिन्न जीवन्तता को कुछ निवानना साहित्यकार के लिए सबसे बड़ी बात है। यह 'अविच्छिन्न जीवन्तता' परिवर्तित सन्दर्भों में विरहित होनी चलती है।

प्रेमचन्द ने लेखन मात्र के नवीनतम कहानीकारों तक इस दृष्टि से विचार करने पर कुछ बातें स्पष्ट होनी हैं। प्रेमचन्द की व्यापक सहानुभूति समाज के हर व्यक्ति के लिए थी। यदि जमींदार द्वारा पीछे उन विमानों की अपनी सहानुभूति दे रहे हैं तो यही उस जमींदार की भी पीछा समझ रहे हैं उसकी भी विवशता में उनकी सहानुभूति है इन सबके प्रति एक अभिभूत करण उपजाना ही प्रेमचन्द का उद्देश्य था। या यदि हमें आगे भी बढ़ें तो एक घाटबट रास्त में गुफार की बातें करत हैं। कारण यह है कि प्रेमचन्द या उस समय अन्य साहित्यकारों की दृष्टि में

परिवर्तन नहीं हुआ था। वे समाज के असामञ्जस्य को अनुभव कर, अपनी सहानुभूति देकर चित्रित कर देते थे। उनकी दृष्टि का सस्वार पुराना ही था भले ही उनमें बाह्य परिवर्तन हुए हो। किन्तु उस अभिभूत करणा में धीरे धीरे एक दृष्टि विवक्षित हो रहो थी। इसे भी ऐतिहासिक प्रदय में ही समझा जा सकता है। बाद में स्पष्ट रूप उभर कर सामने आया। साधारणतया जब इस दृष्टि का वान की जाती है तो इस बात पर ध्यान रखना अत्यन्त आवश्यक है कि दृष्टि एक ऐतिहासिक भाव है जो काल सापेक्ष है और वह मात्र ऐतिहासिक प्रक्रिया (Historical process) में विवक्षित होता चलता है। किन्तु हुना ऐसा है कि वह ऐतिहासिक प्रक्रिया जारी रहती है, लेकिन कभी-कभी इधर-उधर भटकाव भी आ जाता है। यह इसलिए कि आदमी के पास जब नया ठोस आधार नहीं रहता तो वह ऊब जाता है और वही रास्ता न पाकर स्थिति विनाश पर टिक जाता है अथवा किसी तात्कालिक मतवाद विरोध का आग्रह लेकर उस स्थिति में अपने सम्बन्ध व्यवस्थित करना चाहता है। प्रेमचन्द के बाद के लेखकों को आग्रह कुछ ऐसी ही स्थिति का सामना करना पड़ा। यह ठीक है कि जुनेन्द्र, गणपति, अबू, प्रमचन्द स आग्रह लेकर सूक्ष्म और गहनतर भाषा की ओर गये, लेकिन इन सबके पास अपने अपने चौकट थे, गायब इसलिए कि यदि वे इसका सहारा न लेते तो अपने का दिशा बिहीन पाते। यह उनके आत्मविश्वास की कमी थी, दृष्टि का पुँधलापन था और लगता है, प्रत्यक्ष जीवन पर उनकी आस्था कम थी। पलत किमी न तथाकथित वचारिव्यता में अपनी गम्भीरता स्थापित की और बिहीन दान विषय से अपने को जाड़ कर वास्तविक जीवन की अनुभूतियाँ का साथ पाता गया, किसी न अनौपचारिक का आश्रय लेकर आत्मव्याख्या की गूँम जोर जटिल इमारत खड़ी की। लेकिन भरे कहने का मतलब यह नहीं है कि इनमें अनुभूति की सच्चाई थी ही नहीं। थी लेकिन अपना सम्पूर्णता में नहीं लाया। यद्यपि वे बजाय वे वही न वही अपने का चिपकाये रखे। अपने न अपने को किसी मर्यादा - विनाश में मुक्त न कर, जा जैसा लगा, वैसा सीधे जीवन की अनुभूति प्राप्त की। उनकी अनुभूति और अभिव्यक्ति में बहुत सच्चाई है। यहाँ 'राज' कहानी की चर्चा की जा सकती है। 'राज' में अभिभूत कर देने वाली गहरी उदासी है जो निस्संशय जीवन की गहरी यथार्थता है और उसका कारण बहुत ही पाठोपार्थिक है। किन्तु वह एक स्थिति विरोध का स्वीकार मात्र है, इसमें अधिक कुछ नहीं। यद्यपि उसका कारण बहुत ही पाठोपार्थिक स्थिति का पकड़ लेना और उसका स्वीकार बड़ी चीज है लेकिन गतिवाद के लिए उसमें भी बड़ी धाज है उस वर्तमान यथार्थ का पाठित मर्म जो अविच्छिन्न जीवन्तता में उम जोरता है और प्रायः वही उसका साध्य कथ्य भी हुआ करता है, जिसमें प्रभाव में पञ्चोक्तरी और नये गित्य प्रयोग की प्रधानता स्वाभाविक है।

इसके बाद का कुछ काल दिग्ग निर्धारण की तयारी का है। इसलिए कि हम धीरे-धीरे जानना चाहते हैं कि—सम्पत्ति, सामाजिक और रोमांटिक—के विस्तृत स्वरूप को सन्तुष्ट कर रही थी, और उसकी प्रतिक्रिया आवश्यक थी। उस प्रतिक्रिया की वह भूमिका थी। फिर आज एक घंटे बाद कहानी में नयी सम्भावनाएँ और नयी संवेदनाएँ जीवन के नाना स्तर पर सुन्दर नयी बनावटों के माध्यम से व्यक्त हुए। उसमें एक ताजगी और एक जीवन्तता का आभास हुआ। बात यह हुई कि पहली बार यहाँ आत्मीय अपनी बदली दृष्टि और सम्पत्ति के प्रति सचेत हुआ। पहला कालम्ब भी सामान्यतः का अनुभव करने से, किन्तु न तो वह दृष्टि के ही प्रति सचेत थे और न सुन्दर के ही प्रति। 'गोत्र' के बारे में कहा गया है कि वह एक स्थिति विशेष का स्वीकार मात्र थी। पहली बार समझति और असामंजसपूर्ण जीवन की एक विशेष स्थिति की अनुभूति का वह सचित्र की गई। यहाँ एक बात स्पष्ट करना आवश्यक है कि जीवन की समस्त दृष्टियाँ दृष्टा और कार्यो की देखा समझन और व्याख्या करने का हमारा दृष्टिकोण सामान्य से विपरीत की ओर आता था क्योंकि सामान्य की ओर हो गया था। इसके मूल में लीपा बनावट प्रभाव है विनाश एक-एक चीज का निरीक्षण करता है, वर्गीकरण करता है और उनकी विशेषताएँ बतलाकर एक सामान्य नियम पर पहुँचना है। ठीक इसी प्रकार आज का कहानीकार, छाती से छोटी मानवीय प्रियाणा को पूरी शक्ति से अपनी रचनात्मक प्रक्रिया में अनुभव करता है और उस छोटी से छोटी प्रविष्टि या दृष्टि में वह सामान्य अविच्छिन्न जीवन्तता का मार्ग पकड़ कर अभिव्यक्ति देता है, जो वर्तमान की भूत और भविष्य की इकाई में जीवता है। वही सामान्य मार्ग यदि कहानीकार से छूट जाय, तो वर्तमान का अद्विष्ट चित्र होकर रह जायगा। इसी मदम में श्री लक्ष्मीकांत वर्मा द्वारा उठाए गए कुछ प्रश्न (राष्ट्रवादी में) विचारणीय हैं। उनका कहना है कि 'अनुभूति की नवीनता के होने हुए भी वह कौनसे तत्त्व है जो नई कहानी के सम्भाव्य रूप का पूर्णतः विकसित होने का मार्ग में बाधक सिद्ध होत है, और जिनके कारण आज का कथा साहित्य समस्त सम्भावनाओं के बावजूद उसे ग्रहण करने में असफल सिद्ध हो रहा है।' उनके और भी प्रश्न हैं जो मूलतः इसी प्रश्न से सम्बद्ध हैं। आज की सब कहानियों को देखते हुए हममें शोचित्र है। इसलिए कि बहुत सी कहानियाँ केवल स्थिति विशेष के प्रति एक गहरी जाँच और एक कदम उभार करके रह जायें हैं। उसमें प्रियाणवता नहीं रही। मनुष्य इतना बेवस तो नहीं है कि वह बिना ही बना रहेगा। इस गहरी जाँच और कदम के चित्रण में निश्चय ही अनुभूतियाँ नयी और विविध हैं, उनका स्वरूप भी बहुत नया और आकर्षक है किन्तु यदि वह अविच्छिन्न जीवन्तता का तत्त्व पूरा गया, तो सब कुछ गतिमान चित्र है, सब कुछ वर्तमान यथापि का जड़ स्पर्शहीन प्रियाण है। वस्तुतः हम यहाँ मध्यम कहानियों 'राज' से आगे नहीं बढ़ी हैं और यदि

इसी कारण उन पर शिल्प के आरोप लगाए जाते हैं, तो वह सही नहीं है यह कबे सम्भव है। फिर “क्या विकृत रुचि के कारण मानव-भाषा का प्रवाह रुक सकता है?” वस्तुतः ऐतिहासिक प्रक्रिया में प्रवाह रुकना नहीं है, कुछ देर अवरोधित हो कर धीमा हो जाता है और इतिहास की शक्ति इकट्ठी होने लगती है और एकाएक वह धक्का देकर अवरोध से धाग बढ़ जाती है। फलतः इस ऐतिहासिक परिप्रस्थ में कहानियाँ पर विचार करने से स्पष्ट होगा कि कहानी में विविध अनुभूतियाँ विविध संवेदनाएँ और विविध मानवीय सुख-दुख एवं ही स्तर के नहीं हैं। उनकी पुष्टि में गहराई भी आई है और विस्तार भी। यह बात उन कहानियों के आधार पर कही जा सकती है जो इस परिवर्तित सदर्भ में उस जीवन्तता को, मर्म को, जो केवल उस वसमान का ही नहीं है, पकड़ कर व्यक्त कर सकी है।

आज की कहानियाँ में परिवर्तन-बोध की अनुपातता की विकसित चेतना बहुत महत्व की वस्तु है। इसकी सही पकड़ न होने में भ्रांतियाँ हो जाया करती हैं। इस प्रसंग, इस भटवन और इन अनंतुलित मानवीय सम्बन्धों से हटकर आता है कहानीकार को न तो दृष्टि हो मिल सकती है और न दृश्य ही। इसलिए कहानीकार अपने चारों ओर फले वातावरण को अभिव्यक्ति देता है। लेकिन अगर कही उस वातावरण की अभिव्यक्ति में केवल वातावरण ही रह गया तो कहानीकार असफल हो जाता है। इसलिए कि जीवन के अविच्छिन्न प्रवाह को काट कर वह असंगत एक टुकड़े के रूप में रख देता है। उसकी जगमगाहट कुछ देर तक रह पाती है और फिर धीरे में वह निर्जीव शिल्प ही केवल बच रहता है जो अपेक्षाकृत गौण है। इस ह्रासोमुख (Decayed Civilization) सभ्यता की यथार्थ कटुता को स्वीकार कर मवीन संतुलन स्थापन का तीखा दद आज की कहानियाँ में चित्रित हुआ है, जिसे भुलाना समय की धार से भाँस भूँदना है। युग के कसर को पहचान कर आज की कहानी उससे लिए आत्म-चेतना (सामाजिक घेरे में) की घोषणा करती है। आत्म-चेतना इस अर्थ में उस सभ्यता से सम्बद्ध है, जो अपनी यथार्थ तिर्यक स्थिति को पहचान कर उससे उबरने का प्रयत्न करती है। कई कहानियाँ उदाहरण की जा सकती हैं जिनमें यह सभ्यता, यह दद बढ़े व्यापक रूप में व्यक्त हुआ है। यह अवश्य है कि बीसी कहानियाँ की संख्या घोड़ी है।

आज आत्मी के सामने सबसे बड़ा व्यर्थ यह है कि न तो यह किसी का मन सारा है और न किसी को अपना बना सका है। व्यक्ति सम्बन्धों का विघटन एवं बहुत बड़े पैमाने पर हुआ है। साथ ही उसका मन में एक विचित्र प्रकार का भय समाया हुआ है। उससे भीतर से मृज्जनाशीलता भूय गर्भ है जिससे बिना कभी यत्न करने लगता है। उसे यह भी लगता है कि हम जीवित ही क्या हैं? यह मृज्जनाशीलता प्रत्यक्ष मनुष्य

म रहती है। वह उसी के लिए जीना है। उसी से उनके अस्तित्व को मायबता मिलती है। उस मृजन-शील प्रवृत्ति द्वारा वह वाह्य वातावरण में विभिन्न द्रवियाँ, दृष्टा, और घस्तुभा से घपना सम्बन्ध जोड़ता है, और मृजनशीलता स्वयं सामाजिक प्रक्रिया है। व्यक्ति-व्यक्ति एवं व्यक्ति तथा समुदाय के सम्बन्ध एक मतुलित स्थिति प्राप्त करने के लिए निरन्तर सघपरत है। और इस सघप को आज की कहानियाँ ने बखूबी पकड़ा है।

जीवन की छोटी-छोटी अनुभूतियाँ में खिराट संवेदनाओं की आर साहित्य की हर लिखा बढ रही है। कहानी में भी संवेदनाएँ अभिव्यक्त हैं। अनुभूतियाँ और संवेदनाओं का धोष बहुत गहरा और व्यापक हुआ है, लेकिन ने बहुत से अपरिचित स्तरों का उभारा है, इससे कौन इन्कार कर सकता है? दुनिया की सस्कृतियाँ समीपतर आती जा रही हैं और उनका प्रभाव मस्तर के रूप में हमारे मन पर पड़ता जा रहा है। हमारी स्वयं की समस्याएँ भी कुछ दूसरा से पृथक् रहने का दावा कर सकती हैं, जब समय है फिर जातीय साहित्य की बात उठाना बहुत ठीक नहीं लगता। मविता और मनीता चटर्जी (?) का वपद करना किसी का बुरा लगता है, तो हम देखता यह है कि उन बुरे लगने का आधार क्या है? यदि लेकर इन पात्रों को अपनी और पाठकों की पूरी महानुभूति नहीं दिला पाता है तो निश्चय ही वह उह वपद कर रहा है, अपनी हविम पूरी कर रहा है। तैमिन यदि उसे सबकी महानुभूति मिल रही है तो फिर वह उस पीड़ा, उस मम को व्यक्त कर रहा है जो उसमें अतनिहित है। और वह पीड़ा और वह मम उसका उस कठित मृजनशीलता से सम्बद्ध है, जिसमें वह इन अव्यवस्थित संधा के बीच अपना सामाजिक स्थापित कर सके। फिर क्या वह जातीय सम्मान बनाम रखने का पुराना मोह नहीं है, जिससे हमारी रचि अब तक चिपकी हुई है।

आज की कहानियाँ में मम जो नवीनता देख पड़ती है, वह आज की दृष्टि और सन्दर्भ की नवीनता है। आज की समस्याओं और उनमें उसमें तथा महम की नवीनता है। इन प्रकार जीवन की समस्याओं और दृष्टि का बास्वविक नवीनता ने अभिव्यक्ति में नय आयाम भी उभार हैं। चित्रण के नय निरूपण अधिक समथता और अधिक बोधगम्यता भी है। मूढम से मूढम मवन द्वारा बड़ी बातें मजेस्ट' करना आज की मवेदनीयता में नय निमिज खानकर उस निम्नार देना है। जम म्विच बड़ी दवाया जाता है और प्रकाश बड़ी हा जला है और बाव का पूरी प्रक्रिया दिवार्द नहीं पड़ती। अभी प्रकार एक बात कहा बड़ी जानी है और वह आपात बड़ी जावर करती है। बीच की स्थिति टूटी लगती है लेकिन स्थिति लगी नहीं है वह और भी ज्यादा उदनीय बन जानी है। इसीलिए कभी कभी क्यावस्तु में पाठकों का लगता है कि



वान तो कुछ वही नहीं गड़ लेकिन उनक पास उस प्रकाशित संवेदना को पकड़ पाने का संस्कार ही नहीं है। लेखक और रामायण पाठक के बीच की यह खाई चिन्तन है यह प्रश्न भी प्रायः उठाया गया है कि आज के पाठकों द्वारा कहानी पूरी पढ़ ली जायेगी इसमें खारा है। लेकिन यह स्थिति अब सरलतर हानी जा रही है। पाठक वग प्रबुद्ध होने लगा है। आधुनिक नये गिल्फ की बारीबी, जिसमें आज का वास्तविक जीवन अपने मही रूप में संवेदित है उस पाठक केवल समझन ही नहीं लगा है बल्कि उसकी व्याख्या सराहना भी करने लगा है।

आज की कहानियाँ में अनुभूतियाँ का विस्तार तो हुआ ही है साथ ही वह दृष्टि की नवीनता में एनिहासिक प्रक्षय में गहरी भी हुई है। 'रोज़' की संख्या एक स्थिति का स्वीकार थी। भाग चराकर उस स्थिति के प्रति सचेतनता (Consciousness) बनी और माध ही सक्रियता भी। कोई स्थिति वास्तव में तब उतनी उत्कट नहीं लगती जब तक वह स्थिति मात्र रहती है लेकिन जब मनुष्य उसके प्रति सचेत और सक्रिय हो जाता है तब उत्कट मनोवर्तनिक समस्या आ जाती है। आज की कहानियाँ में उससे उबरने की सक्रियता और अनुसाहट तो है ही, साथ ही बढ़ती परिस्थितियों में नयी सम्भावनाएँ भी विकासमान और मूलमान हो रही हैं। अतएव सचेतनता, सक्रियता और सम्भावना के रूप में कहानी की नयी दिशा में अपना क्षितिज अग्रदृश्य बनाया है जिसे सम्पूर्ण मानव प्रगती के साथ समुक्त कर तटस्थ दृष्टि से पहचाना जा सकता है।

● ● ●

## नयी जीवन दृष्टि और नये जीवनानुभव का अभाव

### श्रीकांत वर्मा

कला के नवीनतम आन्दोलन का नेतृत्व चित्रकला करती है मनुष्य के सौन्दर्य-शोध के नय में नय स्तर उद्घाटित करने का उत्तरदायित्व प्रकृति ने चित्रकला को सौंप दिया है। चित्रकला की नियति हा कुछ ऐसी है। जब नहीं थी तब चित्र के अर्थ जब भाषा है, तब भी चित्र हैं। चित्र भाषा से कुछ पहले की चीज़ है और भाषा से कुछ बाद की। ऐसा क्या है ?

वस्तुएँ बलाकार व लिंग विम्व का मोघा सम्बन्ध चित्रकला से है। कला की अथ विधाएँ महज विम्व नहीं। कविता बवल विम्व नहीं, मगीत भी है और यह मगीत उसकी ध्वनि और लय में सन्निहित है। नवानता की अथा पुष्प दोड दोडने वाली इस दुनिया में, यह अथ कनाग्रा के लिए दुर्भाग्य की भी बात है। कारण कि वस्तुग्रा के सम्बन्ध बदलत हैं और पञ्चम्वर्य चाजा का अर्थ बदलता है और इस परिवर्तन का मूलमूल संकेत सबप्रथम चित्रकला में ही नजर आता है। नेत्र, मनुष्य की सबसे सबदन गीत इन्द्रिय है।

नवान कवि और कलाकार, चाहकर और दसकर भा, इतनी तेजी से इस परिवर्तन की अपनी रचना में प्रतिष्ठित नहीं कर पाते, ध्वनि और शब्द में नहीं बांध पाते क्योंकि जितनी तेजी से दुनिया बदलती है उतनी तेजी से भाषा नहीं बदलती भाषा कुछ अधिक अनुसार वस्तु है समाज का बल देने का नारा लगान का साहस सभी को होना है भाषा बदल देने का नारा लगान का दुस्साहस, समाज-सेवी ता क्या, कवि भी नहीं कर पाते।

मगर यह सही है कि चित्रकला के बाद मवेश्यगीतता में दूसरा नम्बर कविता का ही है क्योंकि भाषा का कारण सौंदर्य बिंदु कविता हो है। वह अपने ढंग से सीधेतर और मूलमूल परिवर्तन को ग्रहण और प्रतिष्ठित करती है। विम्व उसकी भी एक आवश्यकता होन का कारण वह चित्रकला के अपलाकृत, कुछ नजदोष पटनी है। इसीलिए बहुधा चित्रकला और कविता के आगलन बहुत निकटवर्ती हात हैं। क्यूडिस्त्रिच चित्रकला, चाह कदम पिकामो और धाव के कारण स्मरण की जाए, मुरगिलिस्त्रिच का आदोलन फास व चित्रकारों से अधिक, कविता व कारण, याद किया जाएगा। यहाँ तक कि उसके आन्तरिक भी मुख्यतः कवि हो थे।

भाषा और विम्व के बगदान से कचित कहाना का यह दुर्भाग्य भी है और सीमाग्य भी कि वह इस सामाजिक और आन्तरिक परिवर्तन को एक मन्दतर गति से पकड़ती है। कहानी मुन बाल और पढ़ने बाल की एक आवश्यकता है कविता लिखन बाल का एक आवश्यकता है। यही कारण है कि कहानी का पूरा पूरा लाभ, लिखन और पढ़न बाल व अधिक बचन वाले उठा लत हैं। (कविता, साम और हाजि में पर है) जब म गण का मगाने र्दशा दुर् है कहानियाँ पढन्ते से बची जा रही हैं। हिन्दी का मुद्रित साहित्य बहुत पुरानी असमारियों में गायपाट बनारस से छपा बिम्बों की पीन पद्मा वाली पुस्तकें अब भी मिल सकती है। तब से लकर अब तक कहानी का व्यापार ही हो रहा है। पाठक की आवश्यकता के नाम पर विबन वाली कहानी कभी 'बटपी' कभी 'गमीना' कभी 'मनाहर' और कभी 'नई' व नाम पर रिबनी रही है। तथाकथित नवीनता भी, व्यापारी कम्पनियों का एक सबल ही हो सकती है।

इसके पक्ष कि यह नवीनता की पंख की जाय, यह स्पष्ट कर देना उचित होगा कि यह कहना सदा भ्रामक है कि पिछले पचास वर्षों में हिंदी कहानी में कोई प्रगति नहीं की है। अब से एक अच्छी कहानियाँ लिखी गयी हैं जिन्हें अथ भाषाभाषी की अच्छी कहानियाँ के समकक्ष रखा जा सकता है। जो लोग कविता और कहानी के क्षेत्र में, समय समय पर, नोद स जागकर, तुलसी और प्रेमचंद का परम्परा को बाग दे दिया करते हैं उनकी रात कभी नहीं बटन वाली है। उन बेचारा का यह भी नहीं भाव्य कि मुझ हाँ चुकी है। दाप उनका नहीं है। तुलसी और प्रेमचंद उनके अन्दर की उस पुरानी दुनिया का प्रतीक हैं, जिससे बाहर निम्न का साहस और प्रतिभा उनमें नहीं है। बाहर निम्न का अर्थ है, नयी समस्याओं से उत्पन्न और नय प्रश्न की चुनौती स्वीकार करना।

मुझे यह कहने में कोई संकोच नहीं कि हिन्दी की कविता और कहानी दोनों ही इस पुरानी दुनिया से बाहर निकल चुकी हैं। संदेह, शका और अविश्वास से भरी इस दुनिया के असत्य प्रश्न उनका समक्ष उपस्थित हैं। जरूरी नहीं है कि जिस अर्थ में और जिस दूरी तक दुनिया नयी हो कविता और कहानी भी उसी अर्थ में और उसी दूरी तक नयी हो। कलाकार कोई टलर-मास्टर नहीं है, जो अपने समय की आवश्यकता के अनुसार माप-जोख कर कपड़े काट ल। कला का परिवर्तन अन्तरात्मा का परिवर्तन है।

कहानी की भी एक आत्मा होती है जो समय समय पर बदलती है। हर अनुभव आदमी को बदल देता है प्रत्येक अनुभव सगुजरता हुआ आत्मा में निरन्तर अभिनव होता रहता है। लेकिन एक कहानी के सम्पूर्ण कायाकल्प के लिए, एक वृद्ध अनुभव की आवश्यकता होती है। मोपासा और सार्त्र, जे० हेनरी और सरोयान की कहानी में कोई तारतम्य ही नहीं, तो इसका कारण है बीच के दो महायुद्ध। युद्ध, समाज का सबसे बड़ा अनुभव है, कला का तो सभबत महानतम अनुभव। युद्ध ही नहीं समूचे सामाजिक ढाँचे का आन्विचारी परिवर्तन भी कहानी को पूरी तरह बदल देता है। हिन्दी कहानी जरूर बदली है, मगर उस अर्थ में नहीं, जिस अर्थ में यूरोप की कहानी बदली है। इसका मुख्य कारण है, किसी प्रमुख अनुभव का अभाव। ऐसा नहीं है कि हमारे देश में, इस दबाव की घटनाएँ नहीं घटी हैं। किसी देश की स्वाधीनता ही, उस देश के इतिहास की सबसे बड़ी घटना हो सकती है। मगर ऐसा प्रतीत होता है, स्वाधीनता, हमारे अनुभव का विषय नहीं हो सकी है,—यह बात कला ही नहीं, इस देश के सामाजिक जीवन के विषय में भी कही जा सकती है। कविता, जहाँ कि मैंने पहले कहा, कुछ प्राइवेट सी वस्तु है, घट उठकी संविन्ना भी हमें स निजी रही है। मगर कहानी का कायाकल्प भी बहुत कुछ अब अपने से बड़ी किसी संवेदना

पर निर्भर करता है। मगर निभगता का अर्थ दासता नहीं है, यह बात कम से कम, समाज की जरूरतों व नाम पर व्यापार करने वाले कहानीकारों और लेखकों को अवश्य याद रखनी चाहिए।

एक दूसरा कारण भी है क्या साज की कहानियाँ, केवल इसलिए नयी हैं कि उनका गठन नया है? गठन, साज से अधिक, वस्तु से टटपुजिये कहानीकारों का नया होगा। फिर क्या कारण है कि साज की कहानियाँ एक अधिक मौलिक और स्थायी ढंग में नयी प्रतीत होती हैं। कारण है, नया जीवनानुभव और नयी जीवन-दृष्टि ही यह चीज है, जो चीजों का अर्थ बदल देती है। जब तक लेखक की जीवन-दृष्टि में परिवर्तन नहीं होगा उनकी दुनिया में भी परिवर्तन नहीं होगा। सब कुछ बदलता नजर आता और इस बदलन का अर्थ समझ पाना दो अलग चीजें हैं।

गम्भीर पाठक हा नहीं, जिम्मेदार कहानीकार भी यह मानेंगे कि हमारी कहानी एक संवया नयी कहानी नहीं है, मगर कहानी का संवया नया न होना, इतनी घड़ी बाधा नहीं कि अच्छी कहानियाँ न लिखी जा सकें। धने पहले हा कहा है कि इसी भाषा में एक से एक अच्छी कहानियाँ लिखी गयी हैं। जिन अर्थ में चित्रबत्ता या अर्थ बत्ताएँ नयी होती हैं उस अर्थ में, किसी भी देश में, कहानी नयी नहीं होती। नयी कथिता के संकलन, हिन्दी में ही नहीं, हर सम्य भाषा में प्रकाशित होने हैं मगर 'नयी कहानी' हिन्दी की ही देन है। किसी अन्य भाषा में 'न्यू स्टोरीज' का कोई संकलन या पत्रिका नहीं देखी। नवीनता के प्रति ऐसी आसक्ति अपने पिछड़ेपन का प्रतीक है। अन्दर की रक्तता का बाहर के लेखन में नहीं छिपाया जा सकता। हिन्दी की 'नई' कहानियाँ की प्रतिनिधि पत्रिका में मगरे पिछड़े हुए सम्पादकीय छपते हैं।

नवीनता के प्रति आसक्ति का एक और भी दयनीय रूप है फाम की नवीनता। मैं फामवाँ का उपागव नहीं हूँ, मगर मैं यह मानता हूँ कि कविता में फामवाद अपने आप में बार्द बुरी चीज नहीं है। कभी-कभी कविता का फाम ही, कविता का कथ्य हो जाता है। एसी अनर्थ कविताएँ रची गई हैं, जिनका फाम ही उनका कथ्य है, और य माधारण कविताएँ नहीं हैं। अनुभव की संगीतमय एकता, चित्रकार और कवि को कभी कभी फाम के आग इस सीमा तक ले जाती है कि प्रथित वस्तु जैसी कोई चीज नहीं रह जाती, केवल अविद्य फाम रह जाता है। यह कला की असफलता नहीं है, एक उपलब्धि है।

मगर कहानी का फाम कहानी का कथ्य कभी भी नहीं हो सकता, क्योंकि कहानी की मौलिक अनिवार्यता, चरित्र है। और चरित्र की आवश्यकता के अनुरूप ही, कहानी का फाम बनता है। फाम सम्बन्धी छान-बछे प्रयोग कर कहानी में आग्नि उपस्थित कर

देन की कल्पना दृष्टि-हीनता की परिचायक है। अन्तर दृष्टि-हीन कलाकार इस प्रकार के प्रयोग करते रहे हैं। कहने की आवश्यकता नहीं कि हर भाषा में ये प्रयोग नितान्त असफल हुए हैं। हिन्दी कहानी की मुख्य धारा फाम-सम्बन्धी इस कुठा से मुक्त है, यह किंचित सतोष का विषय है।

संक्षेप में हिन्दी की समवालीन कहानी, जिसे कहानीकार और उनके विमर्शता 'नयी कहानी' कहना पसंद करते हैं की स्थिति यह है। कहानी ठेठ शास्त्रीय अथवा नयी न होकर भी अच्छी हो सकती है। अगर ऐसा न होता तो हिन्दी में 'भूस' जैसी कहानी न लिखी जाती जो किसी भी भाषा की अच्छी से अच्छी कहानियाँ के समकक्ष रखी जा सकती है। मगर मुझे अच्छी नहीं 'नयी' कहानियों पर आशङ्कित किया गया है। अतः 'परिन्द' 'जिन्दगी और जोक' 'आर्द्रा' तीसरी बसम 'रेवा' 'भाले बालशाह' 'जहा लक्ष्मी क्रीड है' 'बन्धू' 'एक कोई दूसरा' 'सो-सा' 'दृष्टिकरण' 'जसी अनवर' अच्छी कहानियों से केवल क्षमा-याचना ही की जा सकती है। ●●●

## हमारी दृष्टि

## हिन्दी की नवीन कथा-सृष्टि

प्रश्नोत्तर

### ● जैनेन्द्रकुमार ● चन्द्रगुप्त विद्यालङ्कार ● यशपाल

संयोजन-सूत्र 'नई कहानी' पर विवेकात्मक निबन्धन की बात सोचते हिन्दी कथा-साहित्य को स्वरूप देने वाले सुप्रसिद्ध कथाकारों का सहज स्मरण स्वाभाविक ही था। उनके विचार दिग्ग-सहायोगी हूँ। इसीलिए प्रस्तुत परिचर्चा आयोजित की गई। हमारे प्रश्न उन तक गये

- हिन्दी की नई कहानी का जा स्वरूप उभर कर सामने आ रहा है उसमें आपका मन उसके भविष्य के प्रति आशङ्कित होता है या नहीं ?
- आपने हिन्दी कथा-साहित्य में वर्षों का प्रवाह देखा है कथा वर्तमान की कहानियाँ बिनागी की तुलना में आपकी अधिक सामर्थ्यवाला लगती हैं ?
- हिन्दी की नई कहानी में प्रयोग का जा एक छम या नये ढंग से बात कहने का जो प्रयत्न दृष्टिगत है वह आपको नई पौध के पत्तन-मूलने का मनोप दे पाता है ?
- कहानियों के बारे में आपका निजी मत क्या है ? आप कौनसी निगाह को नये रसका के लिए श्रेयस्कर मानेंगे ?

हमारे ये प्रश्न जिनासा और अध्ययन के बंधा पर हैं। दम्भ से सिर-उठाये नहीं नम्रता से श्रद्धावन्त। यह वाक्य हमें कुछ प्राप्त पत्रा के उत्तर में लिखना पड़ा है। अक्की न कुछ बढ़िया सवाल स्वयं ही उठाये हैं नई कहानी क्या है? क्या नई कहानी नाम की चीज पुराने लेखक के यहाँ भी है? क्या लेखक भी पुरानी कहानी लिखते हैं? नई कहानी का विकास सक्षिप्त रूप से क्या है? मैं किन लेखक या कहानियाँ को नये या नयी मानता हूँ? इनके उत्तर उनके पर्यवेक्षण में सन्निहित हैं।

## ● जैनेन्द्रकुमार

प्रश्न हिन्दी की नई कहानी का जो स्वरूप उभर कर सामने आ रहा है उससे आपका मन उसकी भविष्य के प्रति आश्वस्त होना है या नहीं।

उत्तर नई कहानी वही न, जो पत्र-पत्रिकाओं के नये अंक में छपी देखी जाती है? तो क्या यह कहानी एक ढंग की है? अक्षरचार बहुत से हैं और रोज रोज सबके नये अंक आ रहे हैं। इस बहुतायत और बहाव में ठीक कौन नमूना नई कहानी का है यह मैं जानता नहीं हूँ। लिखने वाले के साथ कहानी का रूप जुड़ा है। और सभी तरह के लिखने वाले हैं। हल्के हैं, भारी हैं, धोती वाले हैं, टाई वाले हैं। एक साँचे में दखना भुलसे हो नहीं पाता है।

‘नया’ शब्द सदा पैग़ान का है। पश्चिम का भविष्य नहीं होता, केवल वर्तमान होता है।

प्रश्न आपने हिन्दी कथा-साहित्य में वर्षों का प्रवाह देखा है। क्या वर्तमान की कहानियाँ, विगत की तुलना में आपकी अधिक सामर्थ्य वाली लगती हैं?

उत्तर नहीं। न कम न अधिक। सामर्थ्य समय में से नहीं व्यक्तिज्व में से आता है। नया १९६१ का साल पुराना से समथ हो तो असमर्थों के लिए बने हुए राजनालय भोजनालय और औपचारिक सब खतम हो जायें और लोग कुछ न करें सिर्फ समय का आभारा देखा करें।

सामर्थ्य थड़ा में से आता है। थड़ा का जमाना यह नहीं समझा जाता। इसलिए सामर्थ्य का वो जमाना गायब यह नहीं है। कुछ बिखरा बिखरा है। मानस का गठन और जुगन उतना उपयोगी नहीं समझा जाता, जितना बिखराव। सामर्थ्य से उन्नी चीज है प्रिन्स में से बिखरी यह रणनीति और नुक्ताचीनी। कहानियाँ में ऐसा मगसा मैं आज ज्यादा देखता हूँ।

**प्रश्न** हिंदी की नई कहानी में प्रयोगों का जो एक दम या नय ढंग से बात कहने का जो प्रयत्न दृष्टिगत है, वह आपको नयी पौध के फलने-फूलने का सन्तोष दे पाता है।

**उत्तर** प्रयोग का प्रयत्न मेरी संसभ में नहीं आता। हर सृष्टि प्रयोग है। हर नई कहानी प्रयोग में से आती है। क्या पहले क्या अब। यह प्रयोगशीलता गमित है जीवन में और पुरुषार्थ का नाम है। लेकिन प्रयत्नपूर्वक होना वाला प्रयोग जीवनमय नहीं होता है। इसलिए रूप सिल्प के साथ हुंसा करता है, जा व्ययता है।

**प्रश्न** कहानी के बारे में आपका निजी मत क्या है। आप कौनसी दिशा का नय लेखक के लिए श्रेयस्कर मानेंगे।

**उत्तर** निजी मत कुछ नहीं है। कारण, मैं कहानी लेखक रहा हूँ अब भी हो सकता हूँ। मत अलेखक के लिए जरूरी होता है।

दिशा मुझे वह चाहिए जो किसी भी दूसरी दिशा से असंग या उल्टी हान की मजबूरी से बची रहे। दिशाएँ सब स्पेस में चलती हैं। मैं टाइम की शिक्षा पसन्द करूँगा जो स्पेस की किसी दिशा को नहीं बाटती और सबको भरपूर बनाती है।

टाइम की दिशा की आरम्भ कहना चाहिए। आब्जेक्टिव से स्वतंत्र सब्जेक्टिव।

## ● चन्द्रगुप्त विद्यालकार

आपके प्रश्नों का उत्तर देने से पूर्व मैं स्वयं आप से यह पूछना चाहता हूँ कि 'हिन्दी की नवीन कथा-मृष्टि' में आपका अभिप्राय क्या है? नई यानी ताजा लिखी हुई कहानी या किसी नय तज की कहानी? या आपके हमारी दृष्टि हिन्दी की नवीन कथा-मृष्टि दीर्घक का सीधा अभिप्राय यही प्रतीत होता है कि आज हिन्दी में जो कहानियाँ लिखी जा रही हैं उनमें सम्बन्ध में आप विभिन्न व्यक्तियों की राय जानना चाहते हैं। पर पहले प्रश्न में आपने कहा है हिन्दी की नई कहानी का जो स्वरूप उभर कर सामने आ रहा है—इस वाक्यांश में यदि हिन्दी की नई कहानी की जगह आप हिन्दी कहानी का आज जो स्वरूप—लिखते तो कोई दूसरा ग्रन्थ निबलन की गुंजाइश नहीं थी। पर जब आप हिन्दी की नई कहानी की बात करते हैं तो स्पष्टतः यह हिन्दी कहानी की एक नयी धौंसी की धान प्रतीत होती है। मैं आपसे पूछना चाहता हूँ कि आपका वास्तविक अभिप्राय क्या है?

जहाँ तक मरा सम्बन्ध है आज भी हिन्दी कहानी को भी मैं हिन्दी कहानी को एक शानदार परम्परा का भाग मानता हूँ उसमें पृथक् और विचित्र काइ नयी धारा नहीं मानता ।

अगर मैं गलती नहीं करता तो, समयासीन कहानी को परम्परागत धारा से विचित्र करने का प्रयास आज के लगभग १८ या १९ वर्ष पूर्व श्री शिवदानसिंह चौहान ने शायद सबसे पूर्व किया था । उन्होंने अपने स पूर्व के बहुत से कहानी लेखकों के पास एक प्रस्तावनी भजी थी जिसका कुछ भाग न पूरी ईमानदारी से उत्तर दिया था । स्वभावतः वे उत्तर श्री शिवदानसिंह की धारणाओं से भिन्न थे । उन उत्तरों के आधार पर श्री चौहान ने अपने स पूर्व के कहानी लेखकों की भत्सना में लगभग बसी हो बातें कही थी, जैसी बातें आज के कुछ नये कहानी लेखक अपने से पूर्व के लेखकों जिनमें सम्भवतः श्री शिवदानसिंह भी सम्मिलित हैं, को उनको कहानी-सम्बन्धी धारणाओं के बारे में कह रहे हैं । कठिनाई यह है कि हिन्दी में प्रति वर्ष नये भ्रान्तों के बितने ही कहानी-लेखक अपने से पूर्व के अधिकांश लेखकों को पुराना और प्राउट-आफ़ डट' मानने लगते हैं ।

कहानी के सम्बन्ध में मुझे गहरी दिलचस्पी है । मैं इस बात को जानने का पूरी ईमानदारी से प्रयत्न किया है कि हिन्दी के ये नये लेखक कहानी नामक साहित्यिक माध्यम में क्या आधारभूत परिवर्तन ल आये हैं, जिसके आधार पर वे उसे 'नई कहानी' ( नयी लिखी हुई कहानी के अर्थ में नहीं, अपितु नयी टैक्नीक की कहानी का अर्थ में ) कह रहे हैं । इस सम्बन्ध में जो कुछ लिखा जाना है वह मैं पढ़ने का प्रयत्न करता हूँ । प्रयत्न इसलिए कह रहा हूँ कि जहाँ मुझे उत्साह और निरपेक्ष आलोच्यता के सम्भार दिखाई देते हैं उस सब का पूरा तरह पढ़ जाना शक्य नहीं रहता ।

सब ध्यान तो यह है कि कहानी नामक यह साहित्यिक माध्यम यों भी एकदम नया है जिसका विकास कुछ एक मनी ही बीनी है । यह माध्यम सिर्फ नया ही नहीं है, अपितु शब्दों के विचित्र और मूल्य की दृष्टि से पूरी तरह सावनीय है । सच्चाई का सभी दंगों में कहानी की टैक्नीक और कहानी सम्बन्धी धारणाएँ एक समान हैं । लगभग मैं इसलिए कहूँ कि 'विद्या' और 'अविद्या' में स्वभावतः कुछ न कुछ अन्तर रहता ही है । या कहानी नामक इस माध्यम का निरन्तर विकास भी हो रहा है । उसमें नये-नये प्रयोग भी किये जा रहे हैं । पर यह सब एक अविचित्र धारा के विकासमान निरन्तर प्रवाह के समान है । हिन्दी के कुछ नये कहानी लेखक विचित्र कहानी की धारा में पृथक् बार्ड नयी उपलब्धि प्राप्त कर गये हैं यह स्थापना मुझे हार्मोफोन प्रतीत होती है ।



मैं आज की नयी हिंदी कहानी के पायबन्ध को समझने की चप्टा की बात कर रहा था। मुझे तो यह प्रतीत होता है कि टक्कीक की दृष्टि में कहानी नामक यह साहित्यिक माध्यम क्रमशः इतना नपानुला और एम्ब बट बन गया है कि अच्छी कहानी लिखना एक अत्यंत कठिन कार्य बन गया है। (विश्व के कुछ विचारकों की राय है कि मसार भर में वास्तविक अर्थों में श्रेष्ठ कहानियाँ बहुत कम लिखी जाती हैं।) आज की कहानी में एक वाक्य तो क्या एक शब्द भी ऐसा नहीं होना चाहिये, जो कहानी के केन्द्रीय भाव के चित्रण में सीधे तौर से सहायक न हो। फिर कथानक के केन्द्रीय भाव के चित्रण का माध्यम और उपकरण मात्र है यह उद्देश्य नहीं है। साथ ही यदि कहानी खूब दिलचस्प और कौतुहलोत्पाक न हुई तो कमजोर मानी जाएगी, इस पर केन्द्रीय भाव तो चमत्कारपूर्ण होना ही चाहिए। इन तथा ऐसी ही कुछ बातों के कारण अच्छी कहानी लिख सकना एक अत्यंत कठिन कार्य बन गया है और हमारे यहाँ अथवा बाहर नई कहानी नाम से जो घा दालन खड़ा किया गया है वह वास्तव में उच्च परिस्थिति के खिलाफ विद्रोह है। लोग, जिनमें नय-पुराने सभी तरह के व्यक्ति हैं खूब लिखना चाहते हैं जो जो में भाग कहानी में लिखना चाहते हैं और इस पर वे यह भी चाहते हैं कि उनकी रचनाएँ टक्कीक की दृष्टि से भी श्रेष्ठतम मानी जाएँ। नई कहानी नामक नारा इन्हीं परिस्थितियों का परिणाम है।

अब बहुत संक्षेप में आपके प्रश्नों के उत्तर दे रहा हूँ

- १ आज की हिंदी कहानी का एक ही स्वरूप नहीं है। उसमें खूब विविधता है और इसी विविधता के कारण उसने भविष्य के प्रति मेरा मन पूरी तरह आकर्षित है। क्रमशः कच्चा बट जाएगा और निमल तरंग निखर आएगा।
- २ आज की कहानियाँ विषय की तुलना में कम या अधिक सामर्थ्य वाली हैं इस तरह की स्थापना में सिर्फ व्यर्थ है अपितु आशंक भी है। अच्छी, घुरी तथा शक्तिशाली और सामर्थ्य रहित—सभी तरह की कहानियाँ पहले भी लिखी जाती थी और आज भी लिखी जा रही हैं। या प्रवृत्ति का अध्ययन करना हो, तो मैं यही कहूंगा कि टक्कीक की दृष्टि से हिंदी कहानी क्रमशः निस्तरी है। यद्यपि प्रेमचन्द की कल्पना (जो सन् १९३३ में लिखी गयी थी) की कोटि को मापदण्ड हो कोई दूसरी हिन्दी कहानी आज भी उपलब्ध हो।
- ३ प्रत्येक साहित्यिक माध्यम के विकास के लिए प्रयोग का क्रम उपयोगी होता है। पर प्रयोग करते हुए यदि प्रयोगता पहले से ही निश्चित धारणाएँ बना कर चले, तो वह मजल प्रयोग कहाँ कर पाएगा।

४ कहानी के बारे में मेरा निजी मत क्या है ? इस सम्बन्ध में कुछ न कह कर (या ऊपर मैं कुछ न कुछ कह ही आया हूँ) मैं नये कहानी लेखकों को य तीन सलाह देना चाहूँगा (क) वे ससार के थोड़े कहानी साहित्य का अध्ययन कर यह बात जानने की कोशिश करें कि कौन से तत्त्व कहानियों को अच्छे और प्रभावशाली बनाते हैं (ख) अपने आस-पास की दुनिया का सूक्ष्म दृष्टि में देखकर वे उसे समझें तथा उसके सम्बन्ध में अपनी स्वतन्त्र धारणाएँ बनाने का प्रयत्न करें और (ग) अपने परीक्षण तथा धारणाओं को पूरी ईमानदारी और परिश्रम से अपनी कहानियों द्वारा अभिव्यक्त करने का प्रयास करें। जिस कहानी में जितना अधिक तत्त्व हाथा वह उतनी ही अधिक शक्तिशाली होगी।

• • •

## ● यशपाल

आपके प्रश्नों के उत्तर सक्षम में देन का भलन कर रहा हूँ। अपनी सुविधा के लिए अन्तिम प्रश्न से आरम्भ करूँगा

प्रश्न १—कहानी का सम्बन्ध मैं अपनी मत अपनी कहानियों के संग्रह 'जो भैरवी' की भूमिका में व्यक्त कर चुका हूँ, वही बात संक्षेप में दोहरा रहा हूँ

धरे विचार में कहानियों द्वारा मनुष्य, मानव-समाज का रूप में, अपनी समस्याओं पर चिन्तन करता है। उस चिन्तन को रावक और सुवाच बनाने के लिए काल्पनिक उदाहरणों से कहानी का रूप में उस चिन्तन की अभिव्यक्ति की जाती है। कुछ साधारण बातें हैं कि कहानी का मुख्य लक्ष्य मनुष्य का बौद्धिक या मानसिक विनोद होता है। सन्ताप और विनाद, सौन्दर्य और रुचि का तृप्ति से होता है। सौन्दर्य और रुचि धर्मोन्माधिन है परन्तु व्यवहार में रुचि हनु जान पड़ती है, और सौन्दर्य उसका उपादान और फल जान पड़ता है। रुचि का बिना सौन्दर्य का अस्तित्व की कल्पना नहीं की जा सकती। मनुष्य की रुचि उसके जीवन के विकास और महात्मा देन वाले तत्त्वा से ही हो सकती है। ऐसे विचारों और तत्त्वा में ही सौन्दर्य मिल सकता है। इन विचारों और तत्त्वा को काल्पनिक उदाहरणों में समाज के चिन्तन के लिए अभिव्यक्त करने में ही कहानी बनती है। जब कई विचार और तत्त्व, समाज के उत्तरोत्तर विकास का कारण समाज के लिए निरर्थक अथवा बाधा स्वप्न हो जाने हैं तो यह कहानी के तत्त्वा का भोग नहीं रहन। उदाहरणतः आज चक्रवर्ती सम्राट बनान की महत्वाकांक्षा करने वाले पाशावा की कहानी भयवा स्वामी और मर्दा के सम्बन्ध को पिता-पुत्र का

सम्बन्ध बताने वाली कहानी न रोचक होगी न सायब । समाज, विकास, गति और परिवर्तन के भाग पर चलता है, इसलिये कहानी में भी विकास, गति और परिवर्तन नितांत आवश्यक है ।

ज्या-ज्या समाज, जीवन को रक्षा और विकास के नये उपायाना और उपकरणों को अपनाता है, उसको समस्याएँ भी नयी हो जाती हैं । ऐसी नयी समस्याओं की अभिव्यक्ति के लिए नये माध्यमों और प्रतीकों की खोज स्वाभाविक है । ऐसी प्रवृत्ति, विकास और उन्नति की परिचायक है किमी भी भाषा और साहित्य के लिए वह कल्याणकारी होनी चाहिए ।

पिछले वर्षों में हिन्दी कहानी के विकास की गति बहुत अच्छी रही है । मेरे विचार में नयी पीढ़ी के अनेक लेखक हिन्दी साहित्य के आरम्भिक लेखकों से बहुत आगे बढ़ते जा रहे हैं । और मुझे भरोसा है कि हिन्दी कहानी का भविष्य और भी अधिक उज्ज्वल होगा ।

• • •

## नयी कहानी . एक पर्यवेक्षण

आखिर यह नई कहानी है क्या ?

उपेन्द्रनाथ अक्षक

‘नयी कहानी में वस्तु और प्रकार की कोई सायब उपलब्धि है ?’ इस प्रश्न को लेकर पिछले दिना इलाहाबाद रेडियो से एक परिसंवादन घाटकास्ट हुआ । जिन ‘नये’ कथाकारों ने उसमें भाग लिया उनमें नाम हैं—इलाचन्द्र जोशी भगवती चरण वर्मा यशपाल अमृतनाथ विजयदेव नागायण साहो और अरब । इन नामों का उल्लेख मैंने इसलिये किया है कि जब मुझसे परिचर्चा में भाग लेने के लिए कहा गया था और मुझे नामों का पता चला था तो मैं आपत्ति की थी कि इनमें नये कथाकारों का प्रतिनिधित्व करने वाला कोई नहीं पुराने कथाकार नयी कहानी के अस्तित्व या उपलब्धि कुछ मानेंगे नहीं और यह सेमिनार नयी कहानी के सम्बन्ध में पुराने कथाकारों के विपरीत पक्षों पर खरम होगा ।

और यदि सेमिनार वाले दिन स्थानीय नये कथाकारों न आदरणीय जोगी जी को काफी-हाउस में न धेरा होता तो मान बही होता, जिसका मैंने उल्लेख किया । सेमिनार

से आध-एक घण्टा पहले जब मैं पहुँचा ता रेडियो के लॉन में विद्ये कौचा पर सेमिनार में भाग लेने वाले आदर्शपूर्ण कथाकार बैठे थे। यशपाल अभी पहुँचे न थे और नेप इस बात पर आश्चर्य प्रकट कर रहे थे कि आखिर यह 'नयी कहानी' है क्या ? उन्हें उनके अस्मिन् तक से इन्कार था पर जब सेमिनार के लिए सब अन्तर स्टूडियो में गया और जोगी जी ने एनाउन्समेंट देखा— नयी कहानी में वस्तु और प्रकार की ताँदास इसमें तो नयी कहानी है यह मान कर ही चला गया है हम केवल यह देखना है कि उसकी वस्तु और प्रकार की कोई मायक उपलब्धि है या नहीं ? अपने उद्घाटन भाषण में उन्होंने यही बात मोहरायी और बायीं ओर बैठ सज्जन से कहा कि आप गुरु कीजिए ।

उन सज्जन ने कहा कि नयी कहानी प्रेमचन्द के 'कपन' ही से गुरु हो गयी थी। और तब से लेकर आज तक 'नयी' कहानियाँ सदा लिखी जाती रही हैं। उन्होंने नयी वस्तु और शिप का उल्लेख कर राजेन्द्र यादव की अभिमन्यु की आत्महत्या के नितान्त प्रयोगात्मक प्रयास तक बात को पहुँचा दी बायीं ओर बैठे दूसरे सज्जन की ओर विषय का टल लिया। उन दूसरे सज्जन ने अभिमन्यु की आत्महत्या या किसी दूसरे प्रयोग पर राय देने के बदले अपने सामने बैठे सखनऊ-वासी तीसरे कथाकार मित्र से अपनी पुरानी बहस का उल्लेख किया कि वे नयी कहानी के अस्तित्व को नहीं मानते जबकि मैं मानता हूँ। बिना किसी नयी कहानी या प्रयोग का उल्लेख किये उन्होंने कहा कि वे नयी कहानी की उपलब्धि से आश्चर्य हैं। तीसरे महानुभाव ने उसी बहस का उल्लेख किया जो वे सखनऊ में उन दूसरे सज्जन से किया करते थे (और चूँकि उन्होंने एक ही नयी कहानी न पढ़ी थी) इसलिये कुछ कहानी के आधारभूत तथ्या और कुछ भूते विमारे जमाने में किसी अपनी कहानियाँ का उल्लेख कर इधर-उधर की बातों में दो के बनेले आठ मिनट लगा दिये (तब यह था पहले दौर में सब लोग दो-तीन मिनट बोलेंगे फिर दूसरे दौर में सब को दो-तीन मिनट दिये जायेंगे) और बड़े जोर से कहा कि नयी कहानी की कोई मायक उपलब्धि वे नहीं मानते। चौथे ने उनका समयन किया कि उनकी समझ में नहीं आता, नयी कहानी में क्या क्या है ? उन्होंने प्रेमचन्द की कुछ कहानियाँ गिनाई और पूछा कि वे कम नयी नहीं हैं ? और नय कथाकारों की आठम कहानियाँ के नाम लिए और पूछा कि वे कम नयी हैं ? पाँचवें साहब ने उनका उत्तर ताँके बनेले नयी कहानी के मानवीयपक्ष का उल्लेख कर यह कहा कि उन्होंने कम-से-कम ताँ 'नया' कहानियाँ—कम-से-कम की 'राजा निरवधियाँ' और दोसर जोगी की बोगी का घंटा' ध्यान में पड़ी हैं। इसी सब में गारा समय समाप्त हो गया। तब आदर्शपूर्ण जोगी जी ने जो बहस सुनने के बदले पढ़े और बातचीत की ओर रुख रखा था, उनका नाम बरन का मकन दिया और परम उन्माद में घोषणा की कि आज के परिमवाद में वे इस परिणाम

पर पहुँचे हैं कि नयी कहानी की उपलब्धि खूब धनी और साधक और सभी उपस्थित जन उससे परम सतुष्ट है। और जब रेडियो की लालवती चली गयी तो रेडियो से सलग्न श्रोताग्रा ने ऐसे सफल और मनोरंजक परिमवाद पर उह डेरों वधाइयाँ दी।

मन की बात कहूँ तो ऐसा हास्यास्पद और निरर्थक परिसवाद मैं नभी नहीं सुना, तो भी जिन महानुभाव न नयी कहानीकारों की आठ दस कहानियों का उत्तेजक बर पूछा था कि वे कस नयी हैं, और कसे प्रेमचन्द से भाग हैं उन्होंने एक आधारभूत प्रश्न उठाया था और मेरे खयाल में उस पर पूरी तरह विचार करके उस प्रश्न का उत्तर देना चाहिए था।

जहाँ तक हिन्दी की नई कहानों के आरम्भ और विकास का सम्बन्ध है नयी' के नाम को लेकर वही एक प्रश्न नहीं, प्रश्नों की एक शृंखला सामने आ खड़ी होती है।

● नयी कहानी का आरम्भ कहाँ से माना जाय ? क्या प्रेमचन्द के यहाँ नयी कहानी नाम की कोई चीज है ?

● यदि प्रेमचन्द को पुरानी कहानी का प्रतिनिधि माना जाय और उनसे भिन्न—मनोवैज्ञानिक यथाथ—विशेषकर सबसे का लेकर जो कहानियाँ उही व समय में लिखी जान लगी थी उन्हें नयी' की संज्ञा दी जाय तो क्या इस दृष्टि से जनेन्द्र और अनेय नयी कहानीकार नहीं हैं ? क्योंकि प्रेमचन्द की तुलना में इन दोनों की कहानियाँ वस्तु और शिल्प व सिंहाज से एकदम भिन्न हैं।

● यदि इन दोनों को भी पुराना कहानीकार माना जाय तो क्या यंगपाल से नयी कहानी का आविर्भाव हुआ ? क्योंकि यंगपाल व यहाँ वस्तु और उस देखने वाला जो दृष्टि है, वह बहुत तीना व यहाँ नहीं है।

● और फिर अमनराय ? (जिन्होंने 'आह्वान' का छाप कर शायद कोई भी कहानी पुराने शिल्प में नहीं लिखा और सभी तरह व प्रयोग किया।

● यदि इन सबको ही पुराने कथाकार' मान लिया जाय तो नयी कहानी 'विसस' या 'विास' गुरू हुई ? नयी कविता व सम्बन्ध में निश्चित रूप से कहा जा सकता है (अप्रमाण) कि उसे 'गमशेर और प्रभाकर माधव ने गुरू किया भुक्तिबोध और नेमीचन्द्र जब न उसका समारम्भ में योग दिया और अनेय ने उसका समर्पित रूप प्रस्तुत किया (नामा के आग पीछे व बार में विवाद हो सकता है पर मूल बात से कोई इन्कार नहीं कर सकता।) क्या 'नयी कहानी' व सम्बन्ध में भी कोई ऐसी बात कही जा सकता है ?

घूम फिर कर वही दा प्रदन फिर सामन आने हैं

१ क्या प्रेमचन्द के यहाँ भी कुछ ऐसी कहानियाँ नहीं, जो उनके सतत प्रगतिशील और जागरूक कथाकार न अपने अन्तिम दिनांक लिखी, जो हर लिहाज से उनकी पुरानी आदर्श-मुख कहानियाँ से भिन्न हैं और जिन्हें 'नयी' की सना वस्तु और गिल्फ़ दोना क लिहाज में दी जा सकती है। मिसाल के लिए 'नया' 'बड़े भाई साहब' 'मनोवृत्तियाँ' और 'कपन'।

२ इसका विपरीत क्या आज के नये कथाकारों के यहाँ कुछ ऐसी कहानियाँ नहीं हैं, जिनमें चाहे कुछ खूब उच्च काटि की हैं, लेकिन गिल्फ़ और गली के लिहाज से पुरानी कहानी से भिन्न नहीं? उदाहरण के लिए मोहन राकेश की 'मलवे का भालिक' राजेंद्र यादव की 'जहाँ लम्बी कद है' शिवप्रसादसिंह की 'नन्हा' भावप्रेम की 'गुलरा के बाबा' भीष्म साहनी की 'बीफ की दावत', अमरकान्त की 'हिन्दी कलकत्ता', कृष्णा सोबती की 'सिक्का बरल गया', कमलेश्वर की 'देवी की माँ' आदि आदि।

रेडियो के उपरोक्त सेमिनार में उठाया गया प्रश्न ही का नहीं, इन सभी प्रश्नों का जवाब न कोई उत्तर दिये बिना हम आगे नहीं बढ़ सकते।

जहाँ तक गिल्फ़ और वस्तुगत प्रयोगों का सम्बन्ध है इसमें कोई सन्देह नहीं कि ये प्रयोग निश्चित रूप में (बदलते हुए) राजनीतिक और सामाजिक माहौल के कारण) प्रेमचन्द के यहाँ प्रारम्भ हो गये थे और प्रेमचन्द की उपरोक्त चारों कहानियाँ मेरे इस कथन का प्रमाण हैं। 'कपन' और 'बड़े भाई साहब' में पात्रों का चरित्र चित्रण कथा की कथानकहीनता और यथार्थ की पकड़ आज की किसी भी नयी कहानी की उपलब्धि मानी जा सकती है।

लेकिन इस पर भी नया सब कुछ प्रेमचन्द के यहाँ ही समाप्त नहीं हो गया। जैनद्र न 'बड़े भाई साहब' की मनोवृत्तियोजना की दूसरे घरायश पर (और भी गहरे पठ कर उठाया। जैनद्र की 'अपना पराया', 'फाँसी' अथवा 'पात्रेव' आदि पुरानी तरह की कहानियाँ हैं लेकिन राजेंद्र और उसकी आत्मा, 'जिल्ली बच्चा', 'एक गुरु', 'नीलम देव की राज बन्धा' और 'रत्न प्रभा' उन नवकथनों और भी आगे बढ़ती है।

इस कथन में अन्त की 'जीवनी पत्ति', 'गोज', 'सटर बक्का' और 'हीरोबान की बत्तों' आती हैं और यह निर्विवाद बन जा सकता है कि 'हीरोबान की बत्तों' में यह सभी कथन परमोच्च पर पहुँचा।

यशपाल ने पुराने वस्तु सत्य का भावमानी दृष्टि से देखा और परम्परा । जनद्र और अनेम ने जहाँ तन और उमकी सहज आवश्यकताओं की गहराई में डुबकी लगाकर, खुदबीन से देखी जाने वाली मन की स्थितियाँ का अपनी गहरी अतृप्त दृष्टि से उजागर किया वहाँ यशपाल ने शरीर और मन के साथ अब को जोड़कर सामाजिक अथवा व्यक्तिगत सम्बन्धों को परखा और उस परख के परिणाम रमे । उनकी कहानी 'पराया सुख' उनकी कला का सर्वोत्कृष्ट उदाहरण है और यशपाल की मूक वृक्ष, अकाट्य तन और गहरी अतृप्त दृष्टि की परिचायक है ।

और यो प्रमत्त के जमाने ही से नयी कहानी पुराना के साथ साथ अपने नये गिल्फ, शली और दृष्टि को लिए हुए चलन लगी और यदि मैं कहूँ कि यह विकास अभी जारी है, नयी कहानी दो-चार दिशाओं में ही नहीं दसा दिशाओं में विकास कर रही है तो गलत न होगा । वेणुमार लेखक जिनका नाम, चाह उतना सामन न आय, इस विधा में प्रयोग कर रहे हैं । लेखक का नाम (बार बार सामने न आने के कारण) याद नहीं रहता पर कहानी याद रह जाती है । यह प्रगति इतनी बहुमुखी है कि इस शाखा अथवा शाखगत रुढ़ियों में बाँध पाना कठिन लगता है और किसी नयी निष्ठा में बढन वाला हर कथाकार समझता है कि निष्ठा वास्तव में नयी है—पिछले निष्ठा में नयी कहानी के देहाती और शहरी पक्ष का संकर जा शोर मचा वह हमी धारणा का परिणाम था ।

वास्तव में दो महायुद्धों ने ससार भर का जस भस्मोद कर रख दिया । आज के सत्त्वक न पूरे-पूरे राष्ट्रों का दूसरी जातियाँ अथवा राष्ट्रों से एक अथी, क्रूर पाशविषता का व्यवहार करत हुए एक अमानवीय कठोरता से उम पद दलित करत हुए उनका अस्तित्व तक मिटते हुए नेखा और अज्ञान ही उसकी पुगनी मान्यताएँ बन गयी । ऐसा पाशविषता एसी क्रूरता तो पट्टन कहानियाँ में कही नहीं थी । साहित्य में तो क्रूर-मे-क्रूर व्यक्ति के मन में भी ममता का साज दिखाया जाता था । इस सामूहिक पाशविषता का कारण जानने के लिए समूह की इकाई-व्यक्ति उसका उत्पत्ति विकास उसके मनाभावों और उद्वेगा की आर लम्बन का दृष्टि गयी । डाकिन, भावस और फायड ने इस काम में उमका पथ निर्देश किया । एक ने मानव की उत्पत्ति दूसरे ने उमक द्रव्य-वत्ताप और तीसर ने उसके मनाविज्ञान के सम्बन्ध में पुराना धारणाओं को गलत किया और मानव के कृत्या का कारण पशु में उसके विकास मानव समाज की ऐतिहासिक और आर्थिक यथायथाओं अथवा उसके विविध या अविवक्षित मन का गहराई में खोजा जान लगा ।

इस तहरीर दृष्टि से देखने पर पुराना मान नून मय मूक निष्ठाई दन लग ।—भाई अपनी कहानी से उतना प्यार नहा करत, जिनना वहन अपने भाइया से—हमारे यहाँ

यह एक माना हुआ सच था। पर युद्ध की विभोषिका दिना दिन बढ़ती कीमता और न के विभाजन के बाद जब लड़कियाँ गोवरी करने लगीं व न केवल शारीरिक रूप में स्वावलम्बिनी हुईं, चरण माता पिता धार छोटे भाई बहना की पालन-पोषण वनीं तो घर में उनकी स्थिति अनायाम बदल गयी। भार बराजमार भाइया के लिए कही-कही उनका व्यवहार घमा ही उपक्षान्त हो गया, जैसा कभी पहले भाइया का बहना के प्रति होता था। न केवल यह बल्कि माता पिता को भी ठाक इस व्यवहार में कोई असमर्थता दिखाई नहीं दी। उपा प्रियम्बदा ने अपनी कहानी 'जिन्दगी और गुलाब के फूल' में इसी यन्त्रु मल्य को नयी दृष्टि में परखा है।

भारत पुराने राजनीतिक सामाजिक अथवा वैयक्तिक मल्य इस सहरो दृष्टि के प्रकाश में भूत दिखाया देते लगे। मानव की सद्वृत्तियाँ ही को दखत रहने के बदल, ललक का ध्यान उसकी परिधि, कुप्रवृत्तियाँ और स्वभाव की विशेषताओं को धार भी गया। जब पुरानी कहानियाँ के धारा पात्र और उनकी स्थितियाँ जीवन में कही दृष्टिगावर न हुईं ता वैसा कहानियाँ में विन्यास होन लगे। समक के साथ साथ पाठक की कहानी में मना राजन की अपक्षा कुछ अधिक की माग करने लगे। तब गढ़ गढ़ाए कार्पनिक कथानक का जादू हुआ कथाकार ने वस्तुतः जीवन के उगाद का माग, पहले निर्वैयक्तिक यथायवानी दृष्टि से मानव और समाज का दखत और ऐसी कहानियाँ लिखी जो जीवन का एक पीना-आगता, उसकी गति से स्पष्ट रूप मात्र दिखाई देती थी। ऐसी कहानियाँ प्रमचन्द के वक्त ही से लिखी जान लगी थी। प्रेमचन्द की बड़े भाई साहब अर्थात् की 'राज', धर्मराय की कस्ये का एक दिन ऐसी ही कहानियाँ हैं। नये कथाकारों में धर्मराय की दापहर का भाजन' इस गति का सर्वोत्कृष्ट उदाहरण है। फिर कथाकारों ने वैयक्तिक दृष्टि से अपने पात्रों के अन्दर में भावाँ और अघचतन, उपचतन और अवचतन तब से गति लगाकर मानव की परिधि, विवृत्तियाँ और कुप्रवृत्तियाँ से पूर्ण उठाया। जनर की रत्न प्रभा' और अर्थात् का 'हीताशन की बतलें से ललक माहन राकम का 'मिथ पाल', माकण्य की 'उत्तराधिकार', राजेन्द्र यादव की 'जहाँ सारी वक्त है' और राजनमल चौधरी की 'बम स्टॉप' तब इन कहानियों की लम्बी श्रुतता है। महा नहीं नये कथाकार ने उम वैयक्तिकता में भी नि सग दृष्टि अपनायी और अपने ही मन के भावाँ का एक निरपण दृष्टा का तरह विवरण करने का प्रयास किया। जिनर की य घर य लाल' और राजेन्द्र यादव का 'अभिषेक' की धारमहता' इसने उदाहरण है।

दृष्टि बली मानव और जीवन का दगन के दम बदल, ता कहानी का लिय भी बला। पहले की-भी कथानक प्रधान भटका देन और मधुर टीस उत्पन्न करने वाली गद्य-गठई कहानियाँ के बल जीवन का गहमागहमी, रसाग्यो, बहु-यथायता जटिलता,



सरिलिप्यता का प्रतिबिम्ब लिए हुए<sup>१</sup> सीधे सादे स्वेच की सी<sup>२</sup> निबन्ध की-सी<sup>३</sup> सस्मरण<sup>४</sup> या यात्रा विवरण की सी<sup>५</sup>, कुछ प्रमाणा अथवा स्मृतिया का गुम्फन मात्र<sup>६</sup> धरुतामक<sup>७</sup> चित्रात्मक<sup>८</sup> डायरी के पन्ना<sup>९</sup>, अथवा पत्रा का रूप लिए हुए<sup>१०</sup>। एक ओर साक-बया और दूसरी ओर उपयासा की हदा को छूती हुई<sup>११</sup>—तरह तरह की कहानियाँ लिखी जाने लगी। पहले कहानिया का प्रयोग होता था, जिससे उनको सरलता और सुगमता द्विगुणित हो जाती थी। अब उनमें स्पष्ट अथवा अस्पष्ट बिम्बा और प्रतीका का प्रयोग होन लगा, जिससे उनकी जटिलता और सरिलिप्यता बढ़ी। निमल वर्मा की 'परिन्दे', माकण्ठेय की 'पुन', राजेन्द्र यादव की 'अभिमन्यु की आत्महत्या', भमतराय की 'भगता-चरण' ऐसी ही कहानियाँ हैं। लेकिन कहानी के नये शिल्प में प्रतीका की आवश्यकता थी। उपमाएँ प्रायः बाहर की स्थितियाँ को समझने में सहायता देती हैं बिम्ब और प्रतीक मन की स्थितियाँ को समझने में सहायक होते हैं। कई बार जिस मानसिक स्थिति को समझने के लिए परे और पृष्ठ रहने की आवश्यकता होती है वह एक बिम्ब अथवा प्रतीक के माध्यम से समझा दी जाती है।

लेकिन वस्तु निम्न के ये प्रयोग जसा कि इन तथा दूसरे उदाहरणों से पता चलता है पुराने कथाकारों में भी मिलते हैं और गठी-गठाई भटका देकर खाम होने या मन में एक टीस सी छोड़ देने वाली कहानियाँ नये कथाकारों ने भी लिखी हैं। राबेण के यहाँ 'मलवे का मानिक' और नय बादल', राजेन्द्र यादव के यहाँ 'जहाँ लक्ष्मी बँद है' और खुगू' रेणु के यहाँ 'तीर्थोदक' और मार गये गुलफाम', कृष्णा सोबती के यहाँ 'मिफा बंदस गया' और गुलाब जल गडेरियाँ, मन्नू भण्डारी के यहाँ

- १ जिन्दगी और जाक (भमरकान्त), जानवर और जानवर (माहून राबेण), प्लाट का मार्चा (गमनेर बहादुर सिंह)
- २ लेल (रघुवीर सहाम) नया आदमी नया जन्म (भमतराय)
- ३ गमाति (जनेन्द्र)
- ४ अबल (रामकुमार) धरुआ (नरवप्रसाद गुप्त), द्रोणी (लक्ष्मीनारायण सास)
- ५ पहाड़ की स्मृति (यन्पाल)
- ६ खुगू (राजेंद्र यादव)
- ७ गिम्न के बलक की कहानी (रामकुमार)
- ८ निगा जो (नरेण महता)
- ९ निप्यरगिता की डायरी (नरेण महता)
- १० सदा के सा (भमतराय)
- ११ नीरम दंग की राज कथा (जनेन्द्र) तथा नीसी भील (कमनेवर)

सियानी दुआ' और 'यह भी सच है, माकण्डेय के यहाँ 'गुलरा के बाबा' और 'माही' भ्रमरकान्त के यहाँ 'डिंटी कलकटरी' और 'दापहर का भोजन', मोप्प साहनी के यहाँ 'चौफ की दावत' और 'इमला'—पुरानी और नया कहानियाँ साथ-साथ मिलती हैं।

नय कथाकारों का मैं तीन श्रेणियाँ में बाटना चाहूँगा। ✓

१ वे कथाकार, जिन्होंने चाह दो-एक नय प्रयोग किये हैं, लेकिन साधारणतः उनकी कहानियाँ नए से गिख तक शुद्ध और दुस्त, पुरानी शैली के पूरे मँजाव के साथ लिखी जानी हैं। इन में राकेश, शिवप्रसाद सिंह, रणु मन्मू भंडारी, उषा प्रियम्बदा और शानी प्रमुख हैं।

२ वे कथाकार जिन्होंने चाह चार-छ कहानियाँ पुरानी शैली की लिखी हैं पर जिनका रुझान नये गिल्प और नये वस्तु की ओर है, इनमें राजेंद्र यादव, माकण्डेय राजकमल चौधरी, रामनारायण गुप्त और प्रयाग गुप्त के नाम उल्लेखनीय हैं।

३ वे कथाकार जिन्होंने एकदम नया गिल्प और नयी वस्तु अपनायी है। इनमें राम कुमार, निमल वर्मा, रघुवीर सहाय नरेश महता राजेंद्र किशोर मुद्राराक्षस, रणधीर सिंहा वारुण्ड महता रत्ता, नरेश जाशी आदि के नाम लिये जा सकते हैं।

एक बगिनता नय कथाकार, जिनकी दो-एक कहानियाँ हो मैन पड़ी हैं और जिनकी कहानियाँ का ताँ माल है पर सबका का नहीं इन्हीं तीन श्रेणियों के अन्तर्गत आते हैं। दयानंद धनन्त या ऐसा ही कुछ नाम या आता है जिनकी बड़ी ही मुन्तर नख में गिख तक दुस्त कहानी 'गुदामी गले'। न गन मैन पटा थी और रवीन्द्रनाथ श्रीवास्तव की कहानी बग्या नहीं बनूँगा' अभी पना है जिसमें गिल्पगत नया प्रयोग है। इन सभी कथाकारों के सम्मिलित प्रयत्न से नयी कहानी का जो रूप सामने आता है, वह उजबल दीखता है। पुराना परम्परा में हट कर लिखने वाला ने भी कुछ बड़ी सुंदर कहानियाँ दी हैं—माकण्डेय की 'माही' रामकुमार की 'हम्ना बीबी', राजकमल निमल वर्मा की 'परिष्', नरेश मेहता की 'तथापि', भ्रमरकान्त की 'दोपहर का भोजन', राजकमल चौधरी की 'बस स्टाप'—इस कथन की सबल प्रमाण हैं। एक खतरा अवश्य है कि नया कहानी नया कविता की तरह पश्चिम की वस्तु स्थितिमा और मनाभावनामा का धपन ऊपर लादकर दुर्बोध दुर्गम और अवाम्बविक न हो जाय। विनिष्टता के चक्र में कुछ नय कथाकार इसका भी प्रयास कर रहे हैं। आशान वर्मा की कहानी 'टापा' इसका उदाहरण है। उसका पुरुष न यहाँ का पुरुष लगता है न युवता यहाँ का युवती। माकण्डेय के 'बुन' और भ्रमरकान्त के 'मंगला चरण' का प्रतीक इनका दुर्बोध है कि उसका के समझाए हो समझ में आता है

और इस पर भी वह कथा स स्वतः नि गृत नहीं ऊपर स लादा हुआ प्रतीत होना है । फिर पद्य तो आत्मरत होकर जो सकता है (यद्यपि इसमें मुझे सादेह है) लेकिन गद्य के लिए तृबोध होकर जीना मुश्किल है । अच्छी बात यही है कि कथाकारा म राकण, शिवप्रसाद सिंह भीष्म साहनी कृष्णा सावतो भावण्डेय कमलद्वर, शानी, मन् भण्डारी उपा प्रियम्बला आदि क र्म में ऐसे सूक्ष्म कथाकार हैं, जो परम्परा से कटे नहीं, बरन पुराना परम्परा के गुणा को अपनी शली म समो कर नयो वस्तु को अत्यन्त मनोरञ्जक और हृदयग्राही ढंग से दे रहे हैं ।

जहाँ तक विगत की तुलना म वतमान कहानिया के सामर्थ्य का प्रश्न है, पुराने कथाकार के नाते मेरे लिए उस पर कोई राय न्ना मगत नहीं है । नय कथाकारा और आलोचका को कथन मनोवृत्तिया बड़े भाई साहब तथा एक रात, रत्न प्रभा, पाजेब राजीव और उसका भाभी, जीवन शक्ति, राज लटर बक्स, हीलीबोन की दतवें पराया सुल राज पहाड़ की स्मृति अपना अपनी जिम्मेदारी धममुड, आह्वान और समय जसी उध कोटि की पुरान लेखका की नई कहानिया पढ कर अपनी राय बनानी चाहिए । बड़ी भिन्न के साथ म केवल इतना ही कह सकता हू कि नय लेखका की कुछ कहानियाँ इनके बगबन चाह पढ जायें पर इन पर भारी कम ही पडेंगी । लेकिन साहित्य म तुलना कुछ अच्छी चीज नहीं है । एक सुन्दर रचना की तुलना दूसरी सुन्दर रचना म की ही नहीं जा सकती । केवल दोना का रस लिया जा सकता है । नय कथाकारा म नय ढंग स बात कहन की ओ सालसा है नये रूपाकार को ढूँढने या अपनान की जो छटपटाहट है पुराने के प्रति जो खिजलाहट अथवा आभोग है वह उनकी युवावस्था ही का प्रतीक है और इसीलिए आन्वस्त भी करता है । कथाकि पुरान क प्रति आभोग और नय की खोज जितनी का परिषय देती है । नये लेखका म जो लोग प्रयोग का महज प्रयोग के लिए अपनी विविधता सिद्ध करने या दूसरा को चौकान के लिए लेगे व गायन दूर तक नहीं जा सकेंगे । जो विभिन्न प्रयोग करके ऐसा गली अपना संगे जिसम वे अपनी अनुभूतिया को गपन विविध ढंग से व्यक्त कर सकेंगे और जिदगी भर टामबटाय न मारेंगे वे जरूर साहित्य पर अपनी गती की अमिट छाप छोड़ जायेंगे ।

इसके अनिरिक्त नय राखक के लिए इस बात का भी आन रखता जरूरी है कि वह कौता भी नया प्रयोग बचा न करे उसकी दृष्टि साफ रहे और जो वह कहना चाहता है वह जरूर कह दे । यह नहीं कि वह कहना कुछ चाह और छपी कहानी मुज कहे । अभिमन्यु की आम हत्या' में एसी ही बात हुई है । कथय वहाँ बाधगम्य नहीं रहा और लेखक जा कहना चाहता है वह नहीं कह पाया । कहानी की अन्तिम पंक्ति — वह मेरा आम की लाग था' सारे कथ्य का मुठला दना है । मेर खयाल म आम

की हत्या करके जा आदमी लौटता, वह यह कहानी न कहता। हुआ वास्तव में यह कि क्या का नायक आत्म की हत्या करन गया था हर आत्म की साक्ष नहीं, सजीव आत्म का अपने कंध पर लादे लौट आया। सुमद्रा—उसके अन्तर की मा, यानी मृज्जन शक्ति यानी आत्म और भी गहरे में जाये—आत्मा ही का प्रतीक है। उसने उसे छाटा कहा? खत्म कहा किया? डुबाया कहा? उस तो वह लेकर चला आया है अपने शिशुआ के लिए यानी अपनी रचनाआ के पालन-पोषण के लिए। ऐसा हो किंचित् घु घसापन भावण्डेय की 'धुन' में भी है, लेकिन राजेन्द्र यादव ने अपनी 'कुल पल दूटे डन' में भीम का बड़ी कुशलता से निभाया है और भावण्डेय की माहीं' का छोटी हाने पर भी प्रयोग के नयन और संवेत के (संज्ञान) प्रति सूदम होन के बावजूद मन पर अमिट प्रभाव छाड़ जाती है। क्योंकि जा बात भावण्डेय उस कहानी में कहना चाहता है, वह उसने बड़ी बारीकी, लेकिन पूरी सफाई से कह दी है।

जहां तक मेरे मत का प्रश्न है, मैं समझता हूँ कि सब से महत्व की चीज वस्तु और दखन वाली दृष्टि है। उसके बाद शिल्प का स्थान है। १६ व से ४८ तक उद्ग कहानी में लगभग व सभी प्रयोग किये जा रहे थे, जोकि आज हिन्दी में किये जा रहे हैं (काई प्रवेपी 'मंडे शोक' में उद्ग की पत्रिकाओं को देख कर मेरे कथन की सच्चाई का जान सकता है) और उस वक्त आज की हिन्दी कहानी की तरह उद्ग कहानी की गति में बाढ़ पर आयी मनी का वेग था और क्याकारा की तान पीड़िया एक साथ प्रति स्पर्धा के साथ मृज्जनरत थी। नय-नय प्रयोग आये दिन हो रहे थे। ऐन उस वक्त मायासा और माम के शिल्प से प्रभावित हाकर अटो ने कटानिया लिखनी शुरू की और उमी पुरान शिल्प को पूरी तरह अपना कर अपनी वस्तु के नयन दृष्टि की गहराई और गहन मानवीयता के साथ, उद्ग कहानी पर छा गया।

नये क्याकारा के सामने मैं अटो की मिमास रखना चाहूंगा। शिल्प के कोई भी अपनाए, यदि उनकी दृष्टि साफ और गहरी है, कहन के लिए उनके पास कुछ नया है अपना है, अनुभूत है, चुराया या संयन अपने ऊपर लागा नहीं और उनके हृदय में गहरी मानवीयता है, तो जो वे लिखेंगे, सोया जिन पर असर करेगा। और हिन्दी साहित्य ही नहीं, हिन्दी के माध्यम से विश्व-साहित्य पर अपना नक्का छोड़ जायगा।

और इस पर भी वह क्या से स्वतः निःसृत नहीं ऊपर से लादा हुआ प्रतीत होता है फिर पद्य तो आत्मरस होकर जो सकता है (यद्यपि इसमें मुझे संदेह है) लेकिन मैं के लिए उर्ध्व हाकर जीना मुश्किल है। अच्छी बात यही है कि कथाकारों में शंकर शिवप्रसाद सिंह भीष्म साहनी कृष्णा सावती माकण्डेय कमलेश्वर, गानी, म. भण्डारी उपा प्रियम्बदा आदि व. रूप में ऐसे सूक्ष्म कथाकार हैं जो परम्परा से ब. नहीं बरन पुरानी परम्परा के गुणा को अपना गली में समो कर नयी वस्तु अत्यन्त मनोरञ्जक और हृदयप्राही ढंग से ले रहे हैं।

जहाँ तक विगत की तुलना में वर्तमान कहानियों के सामर्थ्य का प्रश्न है, पुर. कथाकारों के नाते मैंने लिए उस पर चर्चा नहीं करना संगत नहीं है। नये कथाकारों में आलोचकों को कथन मनोवृत्तियाँ थक भाई साहब नशा, एक रात, रत्न प्रम. पाजेल राजीव और उमका भाभी, जीवन शक्ति रोज नटर वक्म, हीलीबोन। धतवें पराया मुख राज पहाड़ की स्मृति अपनी अपनी जिम्मेदारी धमपुड, ब्राह्मण और ममय जसी उच्च काटि की पुरान ललका का नई कहानियाँ पढ़ कर अपनी रस बनानी चाहिए। बड़ी अभिन के साथ मैं केवल इतना ही कह सकता हूँ कि नये ललका की कुछ कहानियाँ उनके बराबर चाहे पढ़ जायें पर इन पर भारी कम ही पड़ेंगी। लेकिन साहित्य में तुलना कुछ अच्छी चीज नहीं है। एक सुन्दर रचना की तुलना दूसरी सुन्दर रचना से की ही नहीं जा सकती। केवल दोनों का रस लिमा जा सकता है। नये कथाकारों में नये ढंग से बात कहने की जो लातसा है नये रूपाकारों को हूँ उन या अपनी ही जो छटपटाहट है, पुरान के प्रति जो विजनाहट अथवा आश्रय है वह उनकी युवावस्था ही का प्रतीक है और इसीलिए आश्चर्य भी करता है। क्योंकि पुरान के प्रति आश्रय और नये की खोज जिदगी का परिचय देती है। नये लेखकों में जो लाम प्रयाग का महज प्रयाग के लिए अपनी विनिष्टता सिद्ध करने या दूसरों को चौकाने के लिए वेगे के घायल दूर तक नहीं जा सकते। जो विभिन्न प्रयोग करके ऐसा गली अपना लगे जिसमें वे अपनी अनुभूतियों को अपने विनिष्ट ढंग से व्यक्त कर सकें और चिन्ता भर टामकनाय न मारने के जहर साहित्य पर अपनी गली की अभिन छाप छाड़ जायें।

इसके अनिश्चित नये वेगव के लिए इस बात का भी ध्यान रखना जरूरी है कि वह कैसा भी नया प्रयोग कथा में कर उसकी दृष्टि साफ रहे और जो वह कहना चाहता है वह जरूर कह दे। यह नहीं कि वह कहना कुछ चाहें और छोटी कहानी कुछ ब. अभिनय की आत्म दृष्टि में गमी हो बात हूँ है। कथन यहाँ बोधगम्य न. रहा और लगन जा कहना चाहता है वह नहीं कह पाया। कहानी की अभिन पक्ति — 'वह मेरी आत्म की जग भा' गारे कथन का भुत्ता गी है। भर गयात में धाम

की हत्या करने जो आदमी लोटता, वह यह कहानी न कहता। हुआ वास्तव में यह कि क्या का नायक आत्म की हत्या करने गया था, हर आत्म की लाश नहीं सजीव आत्म का अपने कंधे पर लादे लौट आया। सुमित्रा—उसके अन्तर की भा, यानी मृज्जन शक्ति यानी आत्म और भी गहर में जाये—आत्मा ही का प्रतीक है। उसने उसे छाड़ा कहा? सत्य कहा किया? डुबाया कहा? उसे तो वह लेकर चला आया है अपने शिशुओं के लिए, यानी अपनी रचनाओं के बालन-पोषण के लिए। ऐसा ही किञ्चित् घु घलापन माकण्डेय की 'धुन' में भी है, सकिन् राजेंद्र यादव ने अपनी खुले पख, टूट डन में भीम को बड़ी कुशलता से निभाया है और माकण्डेय की 'माही' ता छोटी हान पर भी प्रयोग के नयपन और सकेत के (संज्ञान) प्रति मूढम होने के बावजूद मन पर अमिट प्रभाव छाड़ जाती है। क्योंकि जो बात माकण्डेय उस कहानी में कहना चाहता है, वह उसने बड़ी बारीकी, लेकिन पूरी सफाई से कह दी है।

जहाँ तक मेरे मत का प्रश्न है, मैं समझता हूँ कि सब से महत्व की चीज वस्तु और देखने वाली दृष्टि है। उनके बाद शिल्प का स्थान है। १६ व से ४८ तक उद्गू कहानी में लगभग ब समी प्रयोग किये जा रहे थे, जाकि आज हिन्दी में किये जा रहे हैं (काई अन्वयी बड़े गीक में उद्गू की पत्रिकाओं को देख कर मेरे कथन की सच्चाई की जान सकता है) और उस वक्त आज की हिन्दी कहानी की तरह उद्गू कहानी की गति में बाढ़ पर आयी नन्ही का बग था और क्याकारा की तीन पीढ़ियाँ एक साथ, प्रति स्पर्धा के साथ मृज्जनरत थी। नये-नये प्रयोग आय लिन हुए थे। ऐन उस वक्त मापासा और माम के शिल्प से प्रभावित होकर मटो ने कहानियाँ लिखनी शुरू कीं और उमा पुरान शिल्प का पूरी तरह अपना कर अपनी बन्दु के नयपन दृष्टि की गहराई और गन्ध मानवीयता के साथ, उद्गू कहानी पर छा गया।

नये क्याकारा के मामले में मटो की मिमांस रखना चाहूंगा। शिल्प के बाई भी अपनाएँ, यदि उनकी दृष्टि साफ और गहरी है, कहने के लिए उनका पास कुछ नया है अपना है, अनुभूत है, चुराया या सयत्न अपने ऊपर नाग नहीं और उनके हृदय में गहरी मानवीयता है, तो जो ब लिखेंगे, सीधा दिन पर अमर करेगा। और हिन्दी साहित्य ही नहीं, हिन्दी के माध्यम से विश्व-साहित्य पर अपना नक्का छोड़ जायगा।

और इस पर भी वह क्या मे स्वतन्त्र निरुद्ध नहीं ऊपर से सादा हुआ प्रतीत होता है। फिर पद्य तो आत्मरस होकर जो सजता है (यद्यपि दृग्गम मुझे सदेह है) लेकिन गद्य के लिए दुर्योधन होकर जाना मुश्किल है। अच्छी बात यही है कि कथानारायण रावेल, गिब्रसाद सिंह भीष्म साहनी वृष्णा मोवती भावव्यय कमलेश्वर, शानी, मन्मथारी उपा प्रियम्बला आदि के रूप में एस मूखम कथाकार हैं, जो परम्परा से बड़े नहीं, वरम पुरानी परम्परा के गुणों को अपनी शली में समो कर, नयी वस्तु को अत्यन्त मनोरञ्जक और हृदयग्राही ढंग से दे रहे हैं।

जहाँ तक विगत की तुलना में वर्तमान कहानियाँ के सामर्थ्य का प्रश्न है, पुराने कथाकार के नातों में लिए उस पर कोई राय देना समझ नहीं है। नये कथाकारों और आलोचकों को कफन मनावृत्तियाँ बट भाई साहब, तथा एक रात रत्न प्रभा, पाजेर गजीब और उसकी भाभी, जीवन प्रति राज सटर बक्स, हीलीबोन की वस्तु पराया सुख राज पहाड़ की स्मृति अपनी अपनी जिम्मेदारी, धमधुध, आह्वान और समय तसी उच्च कोटि की पुराने लेखकों का नई कहानियाँ पढ़ कर अपनी राय बनानी चाहिए। यही भिन्न के साथ में केवल इतना ही कह सकता हूँ कि नये लेखकों की कुछ कहानियाँ इनके बराबर चाहे पड़ जाय, पर उन पर भारी कम ही पड़ेंगी। लेकिन साहित्य में तुलना कुछ अच्छी चीज नहीं है। एक सुन्दर रचना की तुलना दूसरी सुन्दर रचना से की ही नहीं जा सकती। केवल दोना का रस लिया जा सकता है। नये कथाकारों में नये ढंग से बात कहने की जो लालसा है नये रूपों की हूँडने या अपनाने की जो छटपटाहट है पुराने के प्रति जो खिन्नताहट अथवा आक्रान्ति है वह उनका युवावस्था ही का प्रतीक है और इसीलिए आद्वैत भी करता है। क्योंकि पुराने के प्रति आक्रान्ति और नये की खोज जिन्गी का परिचय देती है। नये लेखकों में जो लाग प्रयोग का महज प्रयोग के लिए अपनी विविधता सिद्ध करने या दूसरा को चौकाने के लिए लेंगे वे गायन दूर तक नहीं जा सकेंगे। जो विभिन्न प्रयोग करके ऐसा गला अपना लेंगे जिसमें वे अपनी अनुभूतियों को अपने विविध ढंग से व्यक्त कर सकेंगे और जिन्गी भर टामबटायन न मारने के जल्द साहित्य पर अपनी शली की अभिष्ट धाप छोड़ पायेंगे।

इसके अतिरिक्त नये लेखकों के लिए इस बात का भी ध्यान रखना जरूरी है कि वह क्या भी नया प्रयोग क्या न करे उसकी दृष्टि साफ हो और जो वह कहना चाहता है वह उम्मीद करे। यह नहीं कि वह कहना कुछ चाहे और अपनी कहानी कुछ बटे। अभिमान का आत्म-हत्या में गयी हो बात हुई है। कथन यहाँ बोधगम्य नहीं रहा और समझ जा कहना चाहता है वह तहाँ कह पाया। कहानी की प्रतिम प्रति— यह मेरी आत्म की लापता थी' मार कथन का भुटला दनी है। मर सवाल में आत्म

का हत्या करने जो आदमी लौटता, वह यह कहानी न कहता। हुआ वास्तव में यह कि क्या का नायक आत्म की हत्या करने गया था, हर आत्म की लाश नहीं सजीव आत्म का अपने कंधे पर लादे लौट आया। सुमित्रा—उसके अंतर की मा यानी मृजल शक्ति यानी आत्म और भी गहरा म जाये—आत्मा ही का प्रतीक है। उसने उसे छोड़ा कहा? सत्य कहा किया? दुवाया कहा? उस तो वह लेकर चला आया है अपने शिशुआ के लिए, यानी अपनी रचनामा के पालन-पोषण के लिए। ऐसा ही किंचित् धु घसापन माकण्डेय की धुन में भी है, सकिन राजेन्द्र मादव न अपनी गुले पख, टूट डने में भीम को बड़ी कुशलता से निभाया है और माकण्डेय की 'माही' ता छोटी हान पर भी प्रयाग के नयन और सवेत के (संज्ञान) प्रति सूत्र होन के बावजूद मन पर अमिट प्रभाव छाड़ जाती है। क्योंकि जा बात माकण्डेय उस कहानी में कहना चाहता है, वह उसन बड़ी बारीकी, लेकिन पूरी सफाई से कह दी है।

जहां तक मेरे मत का प्रश्न है, मैं समझता हूँ कि सब से महत्व की चीज वस्तु और देखने वाली दृष्टि है। उनके बाद शिल्प का स्थान है। १६ से ४८ तक उद्ग कहानी में लगभग व सभी प्रयोग किये जा रहे थे, जोकि आज हिन्दी में किये जा रहे हैं (कोई अन्वेषी बड़े शौक से उद्ग की पत्रिकाओं को देख कर मेरे कथन की सच्चाई को जान सकता है) और उस वक्त आज की हिन्दी कहानी की तरह उद्ग कहानी की गति में बाढ़ पर आँधी नदी का वेग था और कथाकारों की तीन पीढ़ियाँ एक साथ, प्रति स्पर्धा के साथ, मृजलरत थी। नय-नय प्रयाग आय दिन हो रहे थे। ऐन उस वक्त मायासा और माम के शिल्प से प्रभावित होकर मटा ने कहानियाँ लिखनी शुरू कीं और उमी पुरान शिल्प को पूरी तरह अपना कर अपनी वस्तु के नयन दृष्टि की गहराई और गहन मानवीयता के साथ उद्ग कहानी पर छा गया।

नये कथाकारों के सामने मैं मटो की मिमांस रचना चाहूँगा। शिल्प के कोई भी अपनाएँ, यदि उनकी दृष्टि साफ और गहरी है, कहन के लिए उनके पास कुछ नया है अपना है, अनुभूत है, चुराया या सचन अपने ऊपर लाया नहा और उनके हृदय में गहरी मानवीयता है, तो जो वे लिखेंगे, सीधा जिन पर अमर करेगा। और हिन्दी साहित्य ही नहीं, हिन्दी के माध्यम से विश्व-साहित्य पर अपना नक़्क़ा छोड़ जायगा।



## नई कहानी एक बहु चित्रित सदर्म

सुरे द्र

'नई कहानी' एक तरह से नारी-पुरुष के आपस के बदलते रिश्तों की भा कहानी है। (वर्तक यही पक्ष 'नई कहानी' में अधिक सायकता और अधिक विकृति के साथ उमर कर भाया है) इन रिश्ता में चाहे तो सामाजिक सम्भों की धरती रही हो चाहे निरी व्यक्ति स्थिति या प्रेम करते हुए न कर पाने की विवशता हो या फिर बायालॉजिकल दृष्टि से कोई सवाल भाडे भाया हो। हां यह भी सक्ता है कि ये रिश्ते केवल शारीरिक सतह पर ही बने और मिटे हा या उनमें ईमानदार अनुभूति हो और मोड़ी हुई अनुभूति भी हो सकती है।

'नई कहानी' में प्रेम सम्बन्धों की जो अभिव्यक्ति हुई है, वह सामाजिक सदमों से होकर कम गुजरी है जितनी कि निरे व्यक्ति सदमों से होकर। इन सबकों को परिवेश ने बहुत कम सदमित किया है। (कमज कम प्रत्यक्ष रूप से) और वह भी काफी अलग से। युग तनाव ने ज्यादा से अधिक जिन रिश्तों पर असर डाला है या जिन्हें झकझोर है, वे नारी पुरुष के प्रेम सम्बन्ध ही हैं। सस्ती और गीली भावुकता से घीरे घीरे छुटकारा पाता हुआ आजका भादमी इन सम्बन्धों के बौद्धिक घरा तल पर स्पश करना है कही उसे ये सम्बन्ध निरे शारीरिक सगते हैं और इहे लेकर वह बहुशियाना व्यवहार करने लगता है और कही उसे इनमें जीवन की कोमलता और अनुभूति की सायकता नजर आती है। प्रेम सम्बन्धों का लेकर वह द्वय की स्थिति में रहता है। जीवन की यक्षता और प्रायमिकता से हल मागने वाले प्रश्न उसे अन्तरंग लणा को पूरी तरह जीने नडा देते, और वह स्वय को देते हुए भी न दे पान की स्थिति में बना रहता है, इस सब से उसमें कु ठाए पनप उठती हैं, इस तरह वह इन सम्बन्धों को लेकर असहज हो उठता है। यहा तक तो ठीक है और इस अनुपात से भी।

लेकिन पिछले दिना होता कुछ ऐसा भी रहा है कि नारी पुरुष के अन्तर में गहरे भावने और बडा मे नए-नए मयी निवाल पाने की फिरक में पशेवर कहानी बारा ने (क्योंकि कहानी उनके लिए रचनात्मक विधा हो गयी है) जीविका अजित करने का साधन भी है, इसलिए उसे बाजार में खपाना या और उसके लिए बाजार की

ज देसते हुए यह जरूरी था) और उनकी देखा-दखी पशन जीवी दूसर तथावन्त  
 याचारा न 'नई कहानी' को नगी औरत ही बना दिया और उस पर हमले कराने  
 ही नएपन की साथवता मानी और सही दिशा भी । काम प्रसंग नई कहानी म  
 नुभूति की सचाई के कारण उतने अभियुक्त नहीं हुए जितने कि पंशन के कारण ।  
 न अनजान सवम चित्रण नई कहानी का एक मूल्य (?) ही बन गया । सही मानने  
 यह मूल्य भी माना जा सकता था यदि, इसे बाजार को देखकर और बतौर पशन  
 अभिव्यक्ति न दी जाती, इसके माध्यम से नारी-गुरूप के आपस के 'एजस्टमेंट'  
 और जीवन ध्यापी रिश्ते तथा उन पर पड़ने वाले प्रभावा को कलात्मक ढंग से प्रस्तुत  
 किया जाता मानी उन्हें हमारे जीवन के अहम मूल्या की भी पृष्ठ भूमि दी जाती लेकिन  
 ऐसा हुआ नहीं हुआ ऐसा कि युगनद्ध स्थितिया और सम्मोग व्योरा की 'नई कहानी'  
 बाजार म कुछ ऐसी आमददरपत्र हुई कि काम शास्त्र और उसके सीमित भासनों  
 की मस्या, उनका अविष्य और उनकी मौलिकता रखी की रखी रह गई । काम  
 की एक एक सखट और उसके एक एक 'बव' की अभिधापरक शव परीक्षा की गई ।  
 'बवरम साडी ऊपर उठान' (विस्मे ऊपर विस्मा रमेश बन्नी) से लेकर पोंड फकने  
 (विनाय मुदशन खोपडा) तक का चटखारे से लेकर वणन किया गया सपटी  
 नौबत का आविष्कार किया गया और रचना प्रक्रियागत लेखकीय निस्मगता का ठठा  
 कर ताक पर रख लिया गया । नतीजा यह हुआ कि य तथा इस जमी कानिया कथ्य  
 और शिल्प की दृष्टि से कमजोर और निम्न स्तर की बाजार कहानियाँ हाकर ही रह  
 गई । लेकिन म तरह की कानिया से लेखकों ने पाठकों का (प्रबुद्ध पाठका का  
 नहा) चौकाया जन्म और अपनी ओर आकर्षित भी किया कि हम भी लेखक है  
 आपकी हमारी भी (हमारी ही) चीजें पानी चाहिए नहीं तो

कहानी लेखिकाओं में नव्यतम और आधुनिकतम उन्हें माना गया जिन्होंने  
 सवम की मुलकर अभिधापरक चित्रण दिया और मुलकर चित्रण देने रहने की प्रतिना  
 की और आलाचना की आख्यान लिया कि उनकी आर से इस सदम में वे निश्चित  
 रहें । इस सदम म लेखिकाओं न विषय की सहजता और समहजता को नकार लिया,  
 उनकी दृष्टि म भी कोई कलात्मक रुचि उभरकर नहीं आई । जिन महिला लेखिकाओं  
 ने सवम सम्बन्धी बंधे-बँधाए मृदावरे का तोडा (शिल्प और कथ्य के प्रति बन्नी हुई  
 महत्वपूर्ण दृष्टि की वजह म नहीं) व तुरन्त नई कहानी के खेमे में दाखिल करली  
 गई, इस बात का मुतावर कि नए की दृष्टि से उनकी कितनी उपलब्धि है । इतना  
 ही नहीं, इतना और भी कि उनकी कमजोर और सखर कहानिया का 'नई कहानी'  
 के ममूने के बतौर पन किया गया । जबकि उनकी 'अप्रोच और ट्रीटमेंट' में वहीं की  
 चिन्हित कि य ज्ञान योग्य नयापन नहीं था, खास तौर से उन कहानियों में जिनको

कि प्रतिनिधि नई कहानियों के तौर पर पेश किया गया था ।

दरअसल काम ब्योरा के चित्रण की शुरुआत जादू, यशपाल, अशक और अनेय से ही आरम्भ हो गई थी । जनेन्द्र ने औरतो का नया कराना आरम्भ कर दिया था और आज भी 'विान' आदि के नाम पर उन्हें उससे कुछ ज्यादा ही करना पड़ रहा है । यशपाल ने क्या भ 'दही जमवाना' महत्वपूर्ण मान लिया था । और हर कहानी और उपन्यास में उसे बनाए रखने के लिए सारे क्या गन हथकंडों का उपयोग किया था । अनेय का सबसे चित्रण सबका भिन स्तर का था, उसमें बौद्धिकता तो थी ही, रचना प्रतियोगिता तटस्थता भी थी । लेकिन ज्यादा नए कहानीकारों में अनेय की सबसे के प्रति टोटलिट की विशेषता नहीं आ पाई । कहानी का मनोरंजन मानने और उसमें मनोरंजन करने वाले भगवती चरण बना बूढ़ी इन्द्रिया के लिए आज भी 'रेखा' जैसे टाइटिलों का निर्माण कर रहे हैं, यह कितनी विचित्र और तरस जाने लायक बात है ।

कुछ मित्रों को भ्रम हो सकता है कि मैंने यहां शरीर अश्लील, नतिकता और अनतिकता वाले मूल्यों के आधार पर नई कहानी में वसित प्रेम और भवन सम्बंध स्थितियों की जाच-पड़ताल करनी चाहिए है । तो, ये मान मैं साहित्येतर मानता हूँ । इनके लिए समाज सुधारक और नीति पंडित को बधाई दी जा सकती है । नई कहानी में सबसे चित्रण को लेकर जो सवाल उठाया गया है, यह अश्लीलता को लेकर नहीं है अश्लीलता के कारण भी नहीं है, क्योंकि अश्लीलता जसी चीज साहित्य में होती ही नहीं । कोई भी विषय (साहित्य के सदन में) स्वयं में श्लील अश्लील नहीं है । साहित्य में तो सवाल अभिव्यक्ति का होना है, परिष्कृत और भांडी अभिव्यक्ति का, विषय के प्रति पहल का (शक्तियानी और कमजोर चित्रण का) मैंने यह सवाल नई कहानी में आई हुई सबसे सम्बंधी 'मानोटनी' के कारण उठाया है और सबसे का लक्ष्य बनाकर लिखने के कारण । क्योंकि सबसे स्वयं में कोई स्वतंत्र स्थिति लिए हुए नहीं होता ऐसा वह हो भी नहीं सकता कमजोर, प्रबुद्ध व्यक्ति के लिए । वह तो नारी-पुरुष के परस्पर सम्बंधों की एक सात शिखा की अभिव्यक्ति है इसलिए महत्वपूर्ण है और इसलिए महत्वपूर्ण नहीं भी है क्योंकि महत्वपूर्ण तो नारी-पुरुष के सम्बंध हैं और उनके लिए सबसे । इसलिए हम आन्तरिक सत्य और नारी-पुरुष के परस्पर सम्बंधों के नाम पर सबसे को चित्रण-लक्ष्य नहीं मान सकते और साथ तोर से पिष्टपेषित सबसे ब्योरा और युगनन्द स्थितियों को तो और भी नहीं, लेकिन हमें ऐसा ही है कि हमने अभिधात्मक रूप से सबसे ब्योरा और स्थितियों का चित्रण ही अधिक किया है नारी-पुरुष के इस कारण बनने बिगड़ते सम्बंधों को कम अभि-  
दी है ।

इस विषय से हम प्रबुद्ध पाठक में कोई असर पैदा नहीं कर पाए हैं और यदि कर भी पाए हैं तो न कुछ के बराबर बरिह हमारे इस चित्रण से उसे ऊंचा हुई है क्योंकि कहानीकारों ने यह फॉर्मूला ही बना लिया है कि इतने प्रतिशत सक्स का चित्रण अधिक में अधिक कहानियाँ होना ही चाहिए। सक्स के कारण नारी पुरुष के बनते बिगड़ते रिश्ते, सैकड़ों जीवन के प्रति उनकी प्रतिक्रिया, उससे उत्पन्न जीवन गत दिलचस्पियाँ और ऊँच, जीवन में उसके कारण बनती बिगड़ती व्यक्ति दृष्टि और उस सदम में जुड़ने हुए सामाजिक सम्बन्धों का चित्रण तो किया जा सकता है लेकिन कामगाम्भीय नए विवृत धासना को नई कहानी का मुस्ता मानकर प्रस्तुत करना न तो मानवीय संवेदना और मानव मूल्यों की दृष्टि में समझने लायक बात है और न ही कहानी के शिल्पगत आयामों की दृष्टि से और खास तौर से तब तो और भी नहीं जब यह चित्रण भेना हुआ न हो भाषा शयबाध हो और संवेदना या कला गत कोई सम्भावना न दे पाता हो।

जिन कहानियों में सैकड़ों का अभिव्यक्ति मिली है, वे मित्र मित्र स्तर की कहानियाँ हैं और उनका हिसाब से पाठकों के ध्यान चलाने हैं। पाठ्यक्रम सबधी पुस्तकें लिखने वाले अध्यापकों को हेय दृष्टि से देखने वाले पेशेवर कहानीकारों ने यह भी किया है कि इस तरह की कहानियाँ उठाने मीठ के लिए लिखी हैं, एक ठोस सनही रुचि वाले पाठकों के लिए लिखी हैं जो उनसे ऐसी ही कहानियों की मांग करता है, जिसका परिष्कृत बोध इतना ही है, कि कहानियाँ का मनोरंजन के लिए, समय काटने के लिए तथा धासना के सम्ये उभार के लिए पढ़ा जाए। कुछ कहानीकार तो केवल सक्स सबधी कहानियाँ लिखने के लिए ही प्रतिधुन हैं। रोटी, कपड़े पत्राण और सम्मान की उनसे लिए कोई समस्या ही नहीं है यानी कहानियाँ में वे इन प्रश्नों को नहीं उठाते। सामाजिक दायित्व उनके लिए कोई धर्म नहीं रखना, यह भी सहज किया जा सकता था यदि उनकी सक्स पर कहानियाँ ही मट्ट-बपूण बन पड़ी होती।

सही ध्यान तो यह है कि नए कहानीकारों की एक बड़ी सान्ना उन प्रश्नों को ग्रहण मान रही है जो या तो उनके जीवन में हैं ही नहीं या फिर हैं तो बहुत कम इस तरह अनुभूति की ईमानदारी के नाम पर छाँड़ो हुई अनुभूति का चित्रण किया जा रहा है इसलिए कि कहानियों में अनिश्चित चित्रित सक्स उनके घटित नहीं होना। उन्होंने ऐसा भेना नहीं है, बूँत उन्हें जीविका धासना करनी है और बाजार में एमी कहानियों की मांग है इसलिए ऐसी कहानियाँ लिखते हैं। भाषा बात है कि ऐसी कहानियाँ का कलात्मक मूल्य न कुछ होगा और मानवीय मूल्य तो और भी कम। इसलिए कि वे इन कारणों से निश्चि ही नहीं बने हैं।

कमलेश्वर ने जनेद्र, यशपाल और अज्ञेय आदि की कहानियों पर यह आरोप लगाया था कि उनमें ऐसे आदमी का चित्रण हुआ है जिसने नारी को वासना पूर्ति का क्षेत्र समझा है और हर डाइडल रूम में उसे अपने लिए सजा कर लेना चाहता है। इस सत्य से इन्कार नहीं किया जा सकता। लेकिन सत्य यह भी है कि बड़ी सादाद में नए कहानीकारों ने भी इसी आदमी का चित्रण किया है। बल्कि यथागत और आन्तरिक सत्य के चित्रण के नाम पर इससे भी गहरे उतरे हैं। छुट छुट की आवाज के साथ जब तक क्लाउज के बदन दो बार बार न खुल जायें, साड़ी पिढलियों से ऊपर तक न पहुँच जाय हिप्स के जब और वक्ष के उभार बिम्बों में घोषकर प्रस्तुत न किए जायें, तब तक कहानी अधूरी समझी जाती है। यह चित्रण घटिया नहीं लेकिन जब एक जसा ही चित्रण सारे कहानीकारों ने यहाँ होने लग और वह भी बहुत अधिक मात्रा में और उससे ऊब होने लगे साथ ही कहानी अपनी नियति को लेकर बिखर जाय तब ? सही बात यह है कि यथागत के नाम पर उठोने सक्म विकृतियाँ चित्रण ज्यादा किया है और ये विकृतियाँ ऐसी नहीं हैं जसी कि होती हैं बल्कि ऐसी हैं जसी कि होती नहीं और होती भी है तो बहुत कम। यानी ये विकृतियाँ उनकी कल्पना की उपज हैं और सबसेके नाम पर उन्हें कुछ देना या इसलिए चित्रित की गई हैं। मानवीय मूल्यों की टूटने बनने की प्रक्रिया की अभिव्यक्ति में कहानी में सबसे चित्रण एक समझने लायक बात हो सकती है या इस तरह भी बात को समझा जा सकता है कि बनते और टूटते मूल्यों की सबसे चित्रण के माध्यम से हम कहानी में किसी स्तर पर अभिव्यक्ति देसकें। लेकिन सुखतीन कुत्तों पर कहानी में प्रस्तुतता जाहिर करना और उस चित्रण में रम जाना कहानी कला का कौन सा विकसित आयाम है और सबसे चित्रण की कौन सी नवीन दिशा है, इस बात को चितेरे नए कहानीकार ही बता सकते हैं।

व्यतीत कहानियों के समय की अपेक्षा नारी-मुख्य के परम्पर के व्यवहार आज वहीं अधिक सहज हैं, वही कि अब से ध्रुव पुरुष नारी और नारी-मुख्य का सहज होकर नहीं ले पात थे। हाट-वाट, बाग-बगीचे और सावजनिक स्थानों में पुरुष नारी को साथी या मित्र की हैसियत से नहीं देख पाता था, वह उसकी उपस्थिति में किसी स्तर पर असहज हो उठता था और वह उसे मात्र नारी ही समझता था, नारी यानी वासना क्षेत्र में उसे तृप्ति देने वाली महज एक अन्द, एक चीज। नारी का सौन्दर्य भी उसे आकर्षित करता था भाँसलता की बड़ी हुई उत्तेजना के रूप में, वह किसी न किसी रूप में वासना के गिद ही पक्कर बाटता रहता था। परिणाम यह होता था कि उनके सम्बन्धों में एक सिचाव, एक दुराव या अस्वामाबिक सी एक औपचारिकता आजाती थी, वे जो चाहते थे उस पर बहस करने और उसे प्रकट करने से बचते थे और

पूरे साथ में वही बात छूट जाती थी जिसे वे कहना चाहते थे, क्योंकि वे नारी-पुरुष इकाई के रूप में सहज नहीं थे। यह असहज होना उनमें अभिया और धीन वजनामा को जन्म देता था।

उनका (जनेन्द्र अनेय यशपाल इलाचन्द्र जोशी से पूर्व) दृष्टिकोण सैक्स को लेकर दमनकारी था, वे परस्पर इस विषय पर इससे हटकर सोचते थे और इसमें हटकर बात करते थे। उनकी दृष्टि में नारी-पुरुष के काम सम्बन्ध एक आवश्यक धुराई थे जिनका मानव मूल्यों से किसी भी स्तर पर समझौता नहीं हो सकता था। इसलिए सैक्स चित्रण को 'अश्लीलता' के स्तर का मानते थे। साहित्य में इसलिये भी (इससे बचने के लिए) नारी पुरुष के सम्बन्ध का आदर्शवादी कोण से देखा गया। पुरुष सक्षम सम्बन्धों को लेकर बहुत खुले मस्तिष्क वाला नहीं था। (एक हद तक वह ऐसा भ्रम भी नहीं है) उसकी दृष्टि नारी को लेकर सामन्तवादी थी, यौन पवित्रता उसके लिए सर्वाधिक विवक्षित जीवन मूल्य था। उसका मानवीय स्तर पर इस सदन में कोई 'एडजस्टमेंट' नहीं हो सकता था। विभाजन के समय लौटी हुई अपहृत नारियों को उनके सम्भाररक्षक पतिपों और परिवारों द्वारा न स्वीकार किया जाना हम सदन में देखी हुई अमानवीय घटना है। पत्नी और 'रोज' कहानियों की नायिकाओं में पाठक वही घर भारतीय संस्कृति को सुरक्षित अनुभव कर अपने परम्परागत सम्भार को सतोष तो द पाता था, लेकिन उनके जीवन में जब पकड़ती हुई छुटन और ऊँच को यह नहीं देख पा रहा था, या कमजबान उसे सही महत्व नहीं दे पा रहा था। यद्यपि हमका नारी-पुरुष के सैक्स जीवन से उतना सम्बन्ध भी नहीं था। लेकिन सम्बन्ध नहीं था, यह मैं नहीं कहता।

बढ़ती हुई परिस्थितियाँ जिला और विषय आर्थिक स्थितियाँ न नारी को खुले सामाजिक जीवन में भ्रम का अधिष्ठान अवसर दिया। इसने कारण नारी-पुरुष की परस्पर की दूरी और दूरी के कारण पलनी हुई हृद एक हृद तक दूरी है। नारी-पुरुष संक्रम जीवन को परस्पर मिल बैठकर बौद्धिक स्तर पर समझ पा रहे हैं वे सक्षम जीवन और उनके जीवन गत प्रभाव तथा परिवार नियोजन आदि जसी समस्याओं पर खुले मस्तिष्क न विचार करते हुए निर्भीक जटिल सत्कार से पीड़ित नहीं होते। आज नारी-पुरुष आचार्यों, भाषिणों या सावजनिक स्थानों में एक-दूसरे से मित्रों की हैसियत से मिल पा रहे हैं या कमजबान हम दिशा में वे प्रगतिशील हैं। नारी पुरुष के लिए अब पहने जैसी रूढ़िवादी नहीं है। हम नारी के प्रति पिछली कहानियाँ जैसी किशोर भावनाओं से आशान्वित नहीं हैं। अब हम नारी के बारे में आदर्शवादी होकर नहीं सोचते। हम ऐसे ही विचार करते हैं जैसे आदमी-आदमी के बारे

में सोचता है। अब दोनों के बीच अधिक सही यथाथ है एक दूसरे का समझने के लिए। स्थितियाँ बदल जाने के कारण स्त्री पुरुष का एक दूसरे को देख लेता, बेतकलुषो से बात कर लेना या उँगली हाथ का छू जाना अब उतनी ध्यान आकर्षित करने वाली बातें नहीं रह गई हैं।

दरअसल कहानियों में नारी-पुरुष की इन्हा सारी स्थितियों का चित्रण होना चाहिए और उनकी आन्तरिक स्थितियाँ का भी इतने ही दायित्व के साथ (मिश्र मिश्र बोला से) चित्रण होना जरूरी है। कहानियों में इस सबका चित्रण हो रहा है लेकिन बहुत कम। मनोविश्लेषण की दृष्टि से नारी-पुरुष की मन स्थितियों का विश्लेषण ही नई कहानी में अधिक दायित्व का साथ चित्रण दिया जा रहा है। नारी पुरुष के सबसे सम्बन्ध का नकार नहीं जा सकता, वे जीवन में हैं और एक अत्यन्त महत्वपूर्ण भूमिका का रूप में उनका स्थान है, वे स्त्री पुरुष के सामाजिक सम्बन्ध से लेकर व्यक्तिगत सम्बन्धों और चिन्तन पर दूर तक प्रभाव डालते हैं एक अर्थ में उन्हें जीवन गत स्त्री पुरुष के सम्बन्ध का आधार भी माना जा सकता है लेकिन वे सब विकृतियाँ ही तो नहीं हैं? और फिर उनका अभिधापरक चित्रण तो कहनी शिल्प के किन्हीं भी स्तर से मेल नहीं खाता। यह चित्रण अत्यन्त सांकेतिक ढंग से प्रस्तुत किया जाता चाहिए और धोरेपर परिस्थितियाँ में—अत्यन्त आवश्यक होने पर—और बार भी किया जा सकता है लेकिन लक्ष्य तो दूसरे ढंग को ही अधिक अपनाया है और वह भी विशेष परिस्थितियों के न हान पर।

जब यह तय है कि सकेम नारी पुरुष के जीवन में है और खूब है और उनके जीवन गत रिश्ता में बड़ी महत्वपूर्ण भी है, इसलिए वह कहानी में अभिव्यक्ति पा सकता है और उस अभिव्यक्ति मिलनी भी चाहिए। लेकिन नारी-पुरुष के रिश्ता को लेकर यही तो एक विषय नहीं है विषय और भी हैं फिर विषय अधिक महत्वपूर्ण भी नहीं हैं, महत्वपूर्ण है बयाकार की दृष्टि और विषय के प्रति उसका अपना दृष्टि में। कोई भी विषय अपना ही बयाकार के हाथ पड़कर एक छूट कहानी के रूप में प्रस्तुति पा सकता है और वही विषय समय बयाकार से हैसियत पाकर एक दुस्त कहानी बन सकता है। जो बयाकार जितने सानेनिव और प्रतीकात्मक ढंग से (और परिवर्तन के अनुकूल अभिधात्मक ढंग से भी) सेवक को लेकर कहानी लिखेगा वह कहानी उतनी ही सविधा होगी। सामाजिक दृष्टि से जो विषय गोपन भरे (मासतौर पर सैकम) और खुले तौर पर असामाजिक हैं वे नये कहानीकार के सम्मुख उतनी ही बड़ी अत्यन्त चिनीती भी पँवते हैं। उसकी सामर्थ्य का प्रति पँवी हुई इसी चिनीती को स्वीकार करना सतवीय प्रतिबद्धता भी है—क्याकि यह प्रति बद्धता उसकी अपनी रचना के प्रति है—और लेखक का रचनात्मक शक्ति भी।

कहानी में ऐसा भी हो सकता है कि हम सक्म (मोटे तौर पर जिस आय में लिया जाता है) का कही चित्रण ही न करें, लेकिन सब उसक होने की या उसके हो सकने की सम्भावना की ऊष्मा बनी रहे और इसी स्थिति में या इससे कोई दूसरा माइ नेबर अतः पानी हुई कहानी हमारे मम्मुख मानव के अनुमून और मानव मूल्या के कुछ नए पृष्ठ खोल जाय। राजद्र यादव की एक खुली हुई साँझ एक एमि ही नए अनुमून और नारी पुरुष के बदलते रिश्ते की कहानी है जिसमें सब की ऊष्मा (स्पून रूप में नहीं) और सम्भावना जय प्राप्तक (जोबिय उठान के कारण) की उत्तेजना कहानी की एक खास शक्ति दे जाती है। 'मिम पाल' में मोहन रावेश ने मक्म की सम्भावना चित्रित की है। कुल्लू और मनाली के बीच रायमन गाव में अनेनी मिम पाल के साथ रखीज ठहरता है। ठहरता वह बाद में ही पहले वह जोगिंदर नगर के लिए चला जाता है लेकिन रास्ते में ही कुछ सोच कर मोन प्राता है यहाँ से पाठक सम्भावित सक्म के घटित हान के लिए प्रतीक्षित है। यह सम्भावना गहरा अर्थ सब और लेन लगती है, जब मिम पाल रखीज से उसके मान की व्यवस्था के लिए पूछती है बरामद में या '। बरामद में सरी का मय निवाकर वह एक अस्पष्ट सा संकेत भी देती है। रात में वह करबट बदलती रहती है और रखीज में 'सहो तो नहीं गग रही' व्यास तो नहीं सी। और फिर बार बार 'अच्छा मो जाया कहती रहती है। यह सम्भावना यत्रणा का रूप भी न लेती है, जब वह सुराहा में चुल्लू भर कर पानी पीती है और सुबह उमका व्यवहार बिल्कुल बन्न जाता है। इन सारी स्थितियों से गुजरती हुई और अन्त पाती हुई कहानी पाठक की चेतना को झकझोर देती है। हमारी संवेदना को रुबोदनी हुई मानवीय स्तर पर कुछ गवान छोड़ जानी है। नेवक न संवेना और प्रतीक्षा के माध्यम से संवेन का नेबर संवेना मानवीय प्रश्न उठाए है। 'मिम पाल' संवेन की उतनी नहीं जितनी नवम-यत्रणा की कहानी है और मनो विश्लेषण स्थितियों में गुजरती हुई यह कहानी हमें संवेना कुछ मानविक प्रश्नों पर साधन के लिए विवश कर जाती है।

मनू नहारी की 'ऊँचा' कहानी में मक्म अपने स्पून रूप में घटित होता है लेकिन वह कहानी की नियति नहीं है बल्कि उसके प्रापार पर कुछ संवा उठाए गए हैं। मयनन पति-पत्नी के सम्बन्ध यदि शरीर दूसरे का दे दन पर हो दू मयने हैं तब वे मही मान में सम्बन्ध हैं ही नहीं, उनका प्रापार बच्चा है और शायद वे शारीरिक सम्बन्धों के प्रापार पर ही बन हैं, हमने इनर कुछ नहीं, तब व रिमी में भी हो सकते हैं—बनाए जा सकते हैं, फिर पति पत्नी का ही सम्बन्ध दोनों



हा। पति पत्नी व शारीरिक सम्बन्ध तो हाते ही हैं, लेकिन सारे सम्बन्ध यही नहीं है और उसके कारण भी नहीं, सन्तस के अनावा उनका आचार बहुत कुछ सामाजिक और मनोवैज्ञानिक हैं। लेखिका ने बौद्धिक पहल के साथ काफी साफ़ तौर पर यह बात रखी है कि प्रेम के क्षेत्र में शरीर का भूना और लेना बहुत महत्वपूर्ण नहीं है प्रेम उससे ऊँचा है वह शारीरिक सम्बन्ध मात्र नहीं है—वह यौन पवित्रता न होने पर भी बना रह सकता है फिर नारी का शरीर देना ही महत्वपूर्ण नहीं है महत्वपूर्ण वह सम्म और वह परिवेश जिनमें और जिसमें वह दिया गया है या उस सेना पडा है और हो सकता है कि उसके कारण सवथा मानवीय हा।

दाम्पत्य में राजकमल चौधरी न भी उन मन्त्रों को खास तौर से उभारा है, जिनमें शरीर को देना पडा है लेकिन यह शारीरिक अपवित्रता (यदि उस आप अपवित्रता कहना ही चाहते हैं तो) मानवीय मूल्यों का ही दृष्टि में रखकर माजिन की गई है। मांस का दरिया में कमलेश्वर न पिए पिट्टाए कर्म को लेकर मकम और उसके डिटेल्स लिए हैं। लेकिन चित्रण प्रक्रिया में लेखक के नटस्थ रहन के कारण कहानी हममें वष्या समस्या को बदल हुए कोण में डूनी है जिसमें ठास बौद्धिक कल्या की व्याप्ति है और है इस जीवन के प्रति सोचती हुई विवृप्ता।

निमल वर्मा की कहानियों में सकल चित्रण में ही रोमान नहीं दिया जाना बल्कि उन्हें परिवेश भी रोमांटिक दिया जाता है। अन्तर में निमल न मवसन पर एाम की खुली हुई और बन्नी हुई दृष्टि से लिया है।

श्रीकांत की कहानी शव यात्रा में सकल अपन स्वरूप में कही घटित नहीं हुआ है (स्थूल रूप में भी घटित होकर मकम हम अनुभूति के ऐम स्तरों पर छा सकता है जहाँ हम कुछ अमिनव या सब से लेजिन यह काफी कुछ बल्कि पूरा तरन लम्बक की सवेदन शीनता और शिल्प सामर्थ्य पर निमर करना है) फिर भी कहानी में सब वही उसकी उप्मा है और म रिशना का उसमें बदला हुआ भी पाते हैं। एक धानव पूरा परिवेश में सकल का न हान बानी होनी हुई धमिपक्त इस कहानी की गाम उपनधि है। नारी पुरुष के वन्तते हुए रिशना के लिहाज में रबीन्द्र वादिया की 'नौ साल छोटी पत्नी दुष्पनाथ मिह की रतजार' महद्र मल्ला की 'एक पति के मोटम व भीष्म माहुरी रमण वशी धाम प्रकाश निमन उषा प्रियम्बदा शिव प्रसा मिह अमरकान्त गानरंजन आदि की कुछ कहानियाँ दगी जा सकती हैं।

ऐसी कुछ ही कहानियाँ हैं जिनमें मकम को मूल्यों के लिए चित्रण मिला है नहीं तो उगता कहानियाँ मकम के व्योरे यौन विवृनिया और यौन सम्बन्धों को नियति मानकर ही लिगा गई हैं। यौन विवृनिया को चित्रित करना—यदि व हम उनमें उभारन की नियति में सम्बद्ध हैं तो सही हो सकता। अन्तराल।

## नई कहानी नाम की सार्थकता | सुरेन्द्र

कुछ मित्रों का कहना है कि 'नई कहानी' का नाम 'नई कविता' के बजन पर आया है, और इस बात को लेकर उन्हें खामा एतराज भी है। दरअसल यह हम की बात यह नहीं है कि 'नई कविता' के बजन पर यह नाम क्या दिया गया? हम की बात यह हो सकती है और यह है भी कि यह दिया हुआ नाम बनना ही था नहीं? यदि इस नाम को बजनसार मान लिया जाए तो नाम को लेकर चिन्ते वाली यहम यही समाप्त भी की जा सकती है। लेकिन इस तरह बहस का या समाप्त कर पाना उतना आसान नहीं। बहरहाल

पिछले दिना कहानी-हलकों में नाम को लेकर बड़ी दिलचस्पी और मनोरंजक चर्चाएं हुई हैं। हर तीसरा कथाकार (गो कि वह कथाकार है?) 'नई कहानी' नाम में प्रतिस्पर्धापूर्ण होकर एक नए आन्दोलन का पता बनना चाहता है (परिवार नियोजन के जमाने में पिता बनने की आकांक्षा आखिर निश्चय तो है ही चाह फिर वह किसी भी क्षेत्र में क्यों न हो?) कुछ कथाकारों और उनके पिछलगू दा एक विद्यार्थी आलोचका का 'नई कहानी' नाम से उतनी शिकायत नहीं है, जितनी हम जानें कि 'नई कहानी' के नामकरण से स्वर में उन्हें निमग्न नहीं किया गया और न ही हम अवसर पर हुए यन्त्र में उभरे आहूतियाँ डबवाई गईं। इसलिए वह प्रतिक्रियाएँ उभरे काँई भी और नाम देना पसंद करते हैं—मसलन आज की कहानी। उन का यह तर्क है और पुराने कथाकारों और कुछ शिकायत पसन्द समीक्षकों का भी यही तर्क है कि जो आज कहानी लिखी जा रही है वह बल का कहानी का सन्ध में पुरानी हो जायगी।

पुराने कथाकारों और इन कथाकारों के वकीलों को यह तर्क दिया जाना चाहिए कि 'नई कहानी' नाम आभासी या पुरानी कहानी का सन्ध में आश्रय मापन का सबर नहीं दिया गया है और न ही इस अर्थ में वह अपनी साधकता का दावा करता है। दरअसल यह अर्थ 'नई शब्द' को विशेषण मानकर उठ रहा हुआ है जबकि यह शब्द विशेषण नहीं विशेष्य है नाम के कारण साफ़तौर पर मना है और पुरानी कहानी में अपनी स्थिति का अलग अर्थ मिला करता है। ऐसा इसलिए जरूरी हो गया था कि यह कहानी अपने स्वयं के बन्धु और अग्रोप को लेकर अपना कहानी में अलग है और भाव तोर पर उभरे बड़ी हुई है। कि

किसी नाम के शब्द को लेकर आगे पीछे के सम्बन्ध के साथ उसके अर्थ पर विचार करना, एक दूसरे सदृश में किया जान वाला विचार है, क्योंकि नाम गत शब्द अपने अभिधेयाय को इष्ट नहीं मानता, वह जिस विचार का लेकर दिया गया है उसका स्वयं को प्रतीक भर मानता है। यदि अभिधेयाय उसके प्रतीकाय में महायक होता है तो अतिरिक्त प्रसन्नता की बात है।

नाम एक स्थिति का, एक व्यक्ति का एक युग का या कहे कि उन सम्मों का जिनके लिए वह दिया जाता है बोध भर कराता है और वह भी अपने अभिधेयाय में नहीं, दाता द्वारा चाहे हुए अर्थ में ही। चूँकि वह दिया जाता है, इसलिए उसकी कोई स्वतन्त्र अद्यवत्ता नहीं होती। यदि शब्दाय का लेकर ही विचार किया जाय तो छायावाद प्रगतिवाद आधुनिक काल आदि शब्द उन अर्थों में सामक नहीं होंगे जिन अर्थों के लिए वे दिये गये थे। साफ बात है कि अपने अभिधेयाय से हटकर नाम (कभी-कभी उसमें अभिधेयाय का भी सहयोग होता है—हो सकता है) स्थिति सूचक है व्यक्ति सूचक है या इष्ट अर्थ का सूचित करता है न इसमें कम और न इससे अधिक, बस इतना भर।

जो मित्र नई कहानी के शब्दाय के अर्थ से इसे आज की कहानी नाम देना चाहते हैं वे भी इस शब्दाय सकट से मुक्त नहीं हो पाएँगे, क्योंकि उनकी आज की कहानी बन वाली के लिए अतीत काल की कहानी हो जायगी, फिर मित्रों की आज की कहानी नाम का क्या हश होगा वे अपने आज की कितना फला पाएँगे, आखिर उसकी कोई सीमा होगी कि नहीं? और फिर यह क्या जरूरी है कि उनके फलाए गए आज की इयत्ता को 'काल के लोग उसी बिंदु तक मानें या उनका भर ही मानें? या फिर यह मित्र अपने पटन से 'आज की, काल का' परमा की या इसी क्रम में कहानी का नाम दिए जायें, लेकिन ये नाम भी उन्हीं के द्वारा शब्दाय के कारण उठाए गए प्रश्न से अनुत्तरित भी हो जायेंगे। कुछ मित्रों का आग्रह 'नयी कहानी' को समकालीन या 'सामयिक कहानी' मान देने का भी है, लेकिन शब्दाय जाने सकट के सामने उनकी यह बात भी अशक्त ही टहंगती है। साथ ही 'सामयिक' और 'समकालीन' शब्द उस अर्थ में बोधक भी नहीं हैं, जिस अर्थ का बोध नया शब्द कराता है।

पिछले दिना मैंने अनुक्रम की ओर से 'नयी कहानी', पर एक गोष्ठी आयोजित की थी, प्रस्तावित विषय पर बोलते हुए डॉ० नामवर सिंह ने कहा था कि 'नयी कहानी' नाम देने के लिए वे मुनहगार हैं लेकिन इस वाक्य में अनुत्पन्न होने जैसा कोई भाव नहीं था बल्कि यह तो ठीक उस तरह का रोमैटिक वाक्य था

जम काइ कहे कि वह बड़ा सक्ताचशील है और भीतर ही भीतर इस बात पर खुश भी हो कि आखिर वह सक्ताचशील तो है। जा भी हा, यदि नामवर यह नाम न भी दते तब भी कोई यही नाम दता, क्योंकि लाग नाम के लिए इसी पटन पर सांच ही नहीं रहे थे, ऐसा कोई नाम दिए जान की आवश्यकता भी अनुभव कर रहे थे इतिहास-काल की यह भाग थी, नाम इस जैसा नहीं, बल्कि यही दिया जाना था, क्योंकि नयी कविता के चलते कहानी में सृजन के बदले सदमों को देखते हुए इस नाम की सम्भावनाओं पर विश्वास किया जान सगा था। क्या यह आकस्मिक ही था कि 'नया' शब्द ने अपनी सबेरे क्षमता नयी कविता के छेन में प्रमाणित करदी थी और जब कहानी में उसका शिल्प, समार और कोण का लेकर होन वाले प्रासक ध्वसक बदलावों ने यह तय कर दिया कि नई कहानी का पुरानी कहानी से हर स्तर पर अलग करके ही सही तौर पर समझा जा सकता है, तब सजक समीपकों के सम्मुख इस कहानी के लिए पहला सवाल नाम की तलाश का मवाल था और इस निशा में नयी कविता के नाम पटन में नाम तलाश की मुखिल का आमान ही नहीं किया, बल्कि अपने पूर्वाद्ध पाशव का देकर सवाल को उसका सही उत्तर भी द दिया। अब तब कहानी की उपलब्धियां न यह साबित कर दिया था, कि उसका माय व्यतीत कहानी के तत्व बाधक पैमाने से अब नहीं लिया जा सकता उसे नाम और मान दोनों ही में नयी स्थिति मिलनी चाहिए। 'कहानी' शब्द से जिस सृजनात्मक गद्य बिधा का बाध होता था, वह किस्मागोई मनोरञ्जकता आलंकारिक यानी कृत्रिमता लिए हुए थी। कहानी शब्द अब क्या के नाम पर हाने वाली सम्पूर्ण उपरान्धि के उसके पाषण्ड के साथ सही सक्त बहने नहीं कर पा रहा था। व्यतीत और अब की कहानियां में भूयों और साधक स्थितियों को लेकर खुली खाई साफ तौर पर नजर आने लग गई थी। यह सही है कि इलाचन्द्र जोशी जनद्र यशपाल और अन्नैय की कहानियां दोनों के मध्य टूटने-टूटने को होते हुए सेतु की तरह एक आधार दे पाई थी लेकिन वह व्यतीत और नई कहानी के बीच की परिभा को किसी भी तरह पाठ न सकी। इस तरह नए पुराने मूल्यों और क्या-मानों को लेकर स्पष्ट ही निष्ठावक मधप सामने आ गया था। इस सधप ने इधर की कहानी को एमी स्थिति में ठेक दिया था, कि उसके लिए एक शृषक तत्र हाने की आवश्यकता का अनुभव हाने लगा था और उस शृषक तत्र के लिए एक शृषक नाम की जरूरत थी। 'नए' 'पुराने' मूल्यों के मधप में जिस स्वाभाविकता से 'नए' 'पुराने' शब्द का प्रयोग हुआ उमी स्वाभाविकता ने नया शब्द इधर की कहानी के साथ जुड़ गया और पाश्चात्यजनक रूप से गेगा गया कि यह नाम सही है कि इधर की कहानी उपरान्धियों

का सही अर्थ में मनेत वहन करता है कि इस नाम के अतिरिक्त उस काई और नाम लिया ही नहीं जा सकता कि इसका पर्याय भी नहीं खोजा जा सकता। एक स्थिति ऐसी होती है (यह स्थिति वही थी) जब किसी आदानन को आप नाम न भी दें, तब भी वह आपको एक ग्रास अर्थ का बोध कराना है और इस अर्थ के लिए विवश होकर आपको कोई एक ऐसा वाचक शब्द देना पड़ जाता है, जो शब्द नहीं होता महज नाम होता है और इधर की कहानी के साथ नया शब्द इसी प्रक्रिया से नाम में बदल गया या वह कि इधर की कहानी के साथ इसी हैमियन में जुड़ गया। इस नाम धरन धराने के सघष ने कुछ ऐसा माहौल पैदा किया कि प्राण तिन नए नामों की घोषणाएँ की जाने लगीं लेकिन जो भी नाम 'नई कहानी' के समानान्तर दिया गया वह कमजोर साबित हुआ और प्रकारांतर से उसने नई कहानी को सम्बल ही लिया। इस तरह नई कहानी की जड़ें अधिक गहरी और स्थिति अधिक भज्युत होती चली गईं।

कुछ विद्यार्थी आलोचक कविता के लिए नई कहानी को खतरा बताते हैं या उसका प्रचार करने में रुचि रखते हैं या ऐसा प्रचार करते हैं कि 'नई कविता बाल नई कहानी' से खतरा महसूस कर रहे हैं। ऐसे विद्यार्थी आलोचक अपनी माधुरी दृष्टि (?) को नोकदार समझने की गलत फहमी में वेदुनिपाद फनवे तक दे उठते हैं कि कविता का क्षेत्र लगभग समाप्त हो चुका है (प्राप्तिर यह लगभग भी क्या ?) कहानी की तिनरात बढ़ती हुई लोक प्रियता को देख कर नई कविता के अधिवाश कवि कहानी की तरफ घाए उठे। आज की कहानी को नई कविता की भाँति ही एक आदानन समझा और उसी की भाँति शब्दों का तोड़न मरोड़न मस्युत निष्ठ बनाने अथवा कृत्रिमता के परिवेश में प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया। कविता समझ के ममीहाई सहजा में गलत ध्यान कहना साहित्य के बाहर की ध्यान हो सकती है लेकिन साहित्यिक बिल्कुल नहीं। जिस अर्थ में विद्यार्थी आलोचक उसे बढ़ती हुई लोक प्रिय विधा मानते हैं उस अर्थ में वह लोक प्रिय विधा आज भी नहीं है क्योंकि कोई भी स्तरीय कलात्मक विधा तब तक लोक प्रिय नहीं होती जब तक कि वह एक निहायत घिसा पिटा मुन्हावरा न हो जाय और यह माना जा सकता है कि नई कहानी अभी वही घिसा पिटा मुन्हावरा नहीं है ? साहित्य में जिस तरह के आदानन हो रहे हैं, हैं 'नयी कविता' आन्दोलन के अर्थ में क्या ही आदानन है और 'नई कहानी' भी उस अर्थ में एक आदानन है। इस तथ्य में साक्षात् पर भी हम इन्कार नहीं कर सकते और इन्कार करने की कोई वजह भी नहीं है। नयी कविता का शब्दों को तोड़ने मरोड़ने, मस्युत निष्ठ बनाने अथवा

कृतिमत्ता के परिबन्ध में प्रस्तुत करने का प्रयत्न कहना नयी कविता को समझ पाने की समझदारी का खासा मनोरञ्जक उदाहरण है। नए कवि कहानी लेखन के प्रति इसलिए आकर्षित नहीं हुए कि 'नई कहानी नयी कविता' की अपेक्षा साकप्रिय विधा थी बल्कि कवियाँ कहानी क्षेत्र में आन के कारण ऐतिहासिक और प्रतिभा परक थे। यथायक अनक' ऐसे सन्तों जो 'कविता के इलावा किसी और माध्यम का माँग करते हैं नए कवि का नया कहानी' का क्षेत्र में लाए, कहानी लिखना नए कवि की बहुमुखी रचना शक्ति का ही परिचायक है किसी सतही कारण के सबब उसने कहानी क्षेत्र में प्रवेश नहीं किया।

एकाधिक विधा में लिखना प्रतिभा और आत्मामिव्यक्ति की तीव्र आन्तरिक विवशता है। यही वजह है कि प्रतिभावान साहित्यकार एकाधिक विधाओं में लिखत आए हैं। भारत दु प्रसाद, निराला अक्षय आदि इस सदम में जाने हुए नाम हैं। महत्वपूर्ण यह नहीं है कि आप किस विधा में लिखते हैं बल्कि महत्वपूर्ण यह है कि आप लिखते कसा हैं? जाहिर है कि यह कसा लिखना आपकी प्रतिभा पर निर्भर करता है।

एक नकदिन बुजुर्ग मित्र ने मुझ तक सत्ताह दी थी कि कोई ऐसा नारा या नाम उड़ाया, जिससे लोग का ध्यान आकर्षित हो, कुछ प्रयत्न में वह नारा या नाम इतिहास में अजायबा, यानी उसका माध्यम से मैं इतिहास पुरूप हो जाऊंगा। पिछले दिनों से लगातार यही हो रहा है खेम बन हुए हैं जब रचनाकार पहल कम में नहीं लिया जाता तो दूसरे खेमे में अटन का काशिश करता है, वहाँ भी जब बाटेदार तारों की हल मिलती है तो अपना अलग शिबिर बना रता है, हर चौराहे में जुड़ता चलता है। और हर गली के नुझड़ पर इन तथा कथित कथानारा के कार्यालय हैं। हर किसी का पाम अपना पास्टर है जिसके नीचे दो चार लोग इकट्ठे हैं। हर नाम के साथ दो चार युवक हा ही जाते हैं। वाराह कुमार जन ने सूर्योदयी कविता का घोषणा पत्र शुरू किया था तो दो चार युवक उनके साथ हो ही गए थे। ये अवसरवादी युवक (और बुजुर्गों में भी अवसरवातियों की कमी नहीं है) जब शिष्यागत सिंह चौहान की 'आलाचना' में लिखते हैं तो दूसरी भगिमा हानी है और बदरी विशाल जी की कल्पना में निम्नत हैं तो दूसरी ही अन्त में। यह सारा व्यापार दूर से दृग्गन पर बड़ा निलचम्प और मनोरञ्जक लगता है मजिन साहित्य के लिए एक बड़ा सनरा है।

ये नारे और नाम दो स्तरों पर गुरू होने हैं इतिहास जब अपने इतिहासके धन पर सामने नहीं आ पाता तब या फिर नाम उद्घालन का एक दूसरा स्तर है इतिहास पुरूप बना का माह तथा नेतृत्व हाथ से छीने जाने के मय में नए नाम रजाने करने

का बतव्य । जब तक लोगो का यह मुगलता दूर नहीं किया जाता (और चाप किम किस का मुगलता दूर कीजिएगा ?) कि नाम उछालने से व इतिहास पुरूप नह हो सकते, इसके लिए उन्हें शक्तिशाली सृजन करना पड़ेगा, तब-तब इस तरह के नाम उछाले जाते रहेंगे और यह चिन्ता जनक स्थिति होगी । नाम और नारे आज राज नीति से अधिक जुड़े हुए हैं । वहाँ कोई नेता या तो नया नारा लाता है या नए नारे की दजह से मता बन जाता है । इसे दिग्भ्रमना ही कहा जायगा कि राजनीति में असफल लोग साहित्य में इस 'फामूला' से सफल होना चाहते हैं ।

यदि इन नाम आन्दोलनों के पीछे प्रतिष्ठित होने की ध्यास और अनुशासन बनने का फलन और इतिहास पुरूप बनने का मोह न हो तो इनकी कुछ साधकता हो सकती है लेकिन ऐसा भवसर होता नहीं ।

पहले-पहल बाप को लेकर बदलाव चित्रकला और कविता में आता है यह बात ऐतिहासिक प्रक्रिया में भी सत्य है । नई कविता' इस बात का सबूत है और बाद में आया हुआ नई कहानी नाम इसके और भी प्रमाणित कर देता है । प्रयोगवादी कविता के नाम पटन पर प्रयोगवादी कहानी' भी सुनाई पड़ी थी । यह नाम कविता में नहीं चला तो कहानी में भी नहीं चला । यह शायद भावस्मिक नहीं है, कि इधर नई कविता' प्रतिष्ठित हुई, तो गद्य रूप 'नई कहानी' भी प्रतिष्ठित हुई । क्योंकि कविता में सामयिक समकालीन सचेतन अचेतन नाम नहीं आए तो कहानी में भी नहीं चले । लेकिन इसका यह अर्थ नहीं है कि जो नाम—आन्दोलन कविता में आए, व कहानी में आए ही और यह अर्थ भी नहीं कि जो भी नाम आन्दोलन कविता में आए वे प्रतिष्ठित ही हो जायेंगे ।

इधर कुछ उस्ताही युवकों के अन्धारे में 'अकविता' और 'अकहानी' जैसे नाम सुनाई पड़ रहे हैं । ये नाम पश्चिम की 'एटी पोइटी' और 'एटी स्टोरी' के अर्थ में प्रयोग किए जा रहे हैं, जबकि ये इन शब्दों के अविश्व अनुवाद नहीं हैं और इन शब्दों की प्रयोग भी विपरीत है—जैसी 'लघु मानव' की थी । इसलिए ये शब्द किसी आन्दोलन के नाम होकर चल पाएंगे ? अनुकरण करना जरूरी समझ कर यदि विरोधी कविता' और 'विरोधी कहानी' नाम दिए भी जाय, तो उनसे पीछे जो परिस्थिती परिवेश और बोध है, उसका हम अन्तर्गार करना होगा और हो सकता है कि हम अन्तर्गार-अन्तराल में हमारी विधाएँ दूसरे मोड़ लें ।

सही बात तो यह है कि फिलहाल 'नई कविता' और 'नई कहानी' में ऐसे कोई मूल्यगत और बाप मत दूर तक रेखांकित करने योग्य बर्णनाय नहीं पाए हैं जिन्हें अलगाने के लिए किसी नए नाम की आवश्यकता महसूस की जाय । हमें उनकी प्रतीक्षा ही सकती है बहरहाल ।

# माध्यम की खोज

नई कहानी • सवाल

मोहन राकेश

**तो** न चार महीन पहले मैंने एक जगह लिखा था कि ऐतिहासिक दृष्टि से नयी कहानी का आंदोलन नयी कविता का सहवर्ती न होकर उससे प्रायः का आंदोलन है। इस पर कुछ लोगों का सीज भरी टिप्पणियाँ पढ़ने की मिलीं। उन्हें गायब लगा कि इस तरह नयी कविता पर आश्रय करने का प्रयत्न किया गया है। जसो कि ऐसे अवसरों पर अक्सर होता है, टिप्पणीकारों ने अधिकतर व्यक्तिगत आलोचों का आश्रय लिया। 'व्यक्तिगत आलोचों से एक ऐतिहासिक स्थिति को बदला नहीं जा सकता, यह सोचने का उन्होंने कष्ट नहीं किया।

शब्द 'ऐतिहासिक' की आरंभिक अवधारणा का ध्यान ही नहीं गया। गया होता तो इस क्षण में वह अवास्तविकता नजर न आती। नयी कहानी के आंदोलन की 'गुरुप्रान' सन पचास के लगभग हुई—'नयी कहानी' यह नाम तो उस सन् पचपन छपन के बाद से दिया जाने लगा। जिन अनिवार्य परिस्थितियों ने इस आंदोलन को जन्म दिया उनका नयी कविता के आंदोलन के साथ कोई सम्बन्ध नहीं था। नयी कविता आंदोलन तब तक अपने अरम पर पहुँच कर एक निश्चित रूप और धर्म ग्रहण कर चुका था। जिस माध्यम के अंतर्गत नयी पीढ़ी की सचेतना 'नयी कहानी' के प्रयोगों की आरंभिकता हुई उसका प्रभाव तथा प्रतिक्रियाएँ नयी कविता पर अलग से नजर आने लगी थी। 'गमने' और मुक्तिवाचक जैसे कवियों ने इन प्रभावों के अंतर्गत नयी कविता को भी एक नयी दिशा दे दी थी। परन्तु इस पीढ़ी की सामूहिक चेतना अपने लिए अभिव्यक्ति का जो विस्तार चाहती थी उसका लिए कहानी का माध्यम अधिक अनुकूल पड़ता था। इसलिए छप्पन सत्तावन के बाद में बहुत-सी प्रतिष्ठित और उदीयमान नये कवि भी धीरे धीरे इस माध्यम की ओर आकर्षित हो आए, क्योंकि दृष्टि और गित्य का जो अनुपात नयी कविता के लिए रहित बन चुका था, उस तात्पर्य नयी भूमि से प्रयोग करने के लिए यह माध्यम उन्हें अधिक उपयुक्त जान पड़ा। इसका एक कारण गायब यह भी था कि नयी कविता का विशाग जहाँ एक सामूहिक गित्य 'नयी' का लेकर हुआ नयी कहानी में आरम्भ से ही लेगता न, वस्तु का अर्थशास्त्र के अनुसार अपनी अपनी गित्य 'नयी' का विकास किया। नयी कविता में कवि का अपना व्यक्तित्व जहाँ एक सामूहिक व्यक्तित्व में दूबसा जाता था वहाँ नयी कहानी में वही स्थिति कभी नहीं बढ़ा पाया। रह



कहानीकार आरम्भ से ही अपने असंग व्यक्तित्व को लेकर चला और किसी दूसरे या किन्हीं दूसरों के व्यक्तित्व में उसने अपने को खो जाने नहीं दिया। एक जगह रहकर और लगभग एक साथ लिखना शुरू करने पर भी अमरकांत और कमलेश्वर की गिल्फ शैली का अपना अपना व्यक्तित्व बना रहा— किसी एक का व्यक्तित्व दूसरे के व्यक्तित्व से प्रभावित होकर गीन नहीं हुआ। आन्दोलन के आरम्भिक दिनों में एक घर से एक कमलेश्वर और मार्कण्डेय के नाम साथ साथ लिये जाते थे। परन्तु दोनों की अपनी अपनी विशिष्टता इससे समाप्त नहीं हो गयी जिससे आज इन ईमठ में आकर वे दोनों एक ही सचेतना के दो अलग अलग छारा पर नजर आते हैं।

कुछ लोगों का यह तक कि आज की 'यावसायिक' परिस्थितियों ने ही नयी कहानी के आन्दोलन का बड़ावा दिया है और कहा है कि कहानी की उपादन शक्ति ही बहुत-से लोगों की कविता के क्षय से कहानी के क्षय में ल आयी है बहुत हास्यास्पद है। अनुकूल माध्यम का चुनाव यदि ऐसे ही कारणों पर आधारित हो तो लखन को छोड़कर व्यक्ति कोई और ही रास्ता अपनाना चाहिए क्योंकि कहानी के 'यावसायिक' पक्ष से कहीं अधिक व्यवसायिक पक्ष सरकारी तानदारी और कई दूसरे ऐसे कामों का है जो कि कुछ स्वनामधेय साहित्यकार वर्गों से करते चले आ रहे हैं। और व्यवसायिकता की बात करने वाले लोग प्रायः वही हैं जो स्वयं ऐसी ही दृष्टि से साहित्य रचना करते हैं और बीच में राज के हिसाब से कहानी उपमास मनो विज्ञान, कामसूत्र (जो जिसकी विधि और भाग ज्यादा हो) लिखत लिखात रहते हैं। नयी पीढ़ी के तो कविता भी कहानीकार की चाहने पर भी साल में चार छ से ज्यादा रचनाएँ पढ़ने को नहीं मिलती। पिछले दूरे साल में निम्नलिखित वर्गों की चार से ज्यादा कहानियाँ प्रकाशित नहीं हुई और राजेंद्र यादव जैसे लिखाकन तो सिर्फ एक ही कहानी लिखी है— 'टूटना'। उसके बाद, उसकी दूसरी कहानी की भव प्रतीक्षा है। 'नयी कविता से नयी कहानी के क्षेत्र में आये थीं। का त वर्गों में भी इस घर से म जो कहानियाँ लिखी हैं, उनकी संख्या मुश्किल से चार या पाँच होगी।

परन्तु किसी भी और साहित्य में नयी पीढ़ी के बुनिरादी समय का छोटी दृष्टि से देखने वाला भी कभी नहीं रहती। हमारे यहाँ यह घाटापन कुछ अधिक मात्रा में है, बस इतना ही फल है। हमारे देश में एक बहुत बड़ी जनसंख्या ऐसे लोगों की है जो अभी तक सामंतवादी गस्कारों से मुक्ति नहीं पा सके शहरों में एक बहुत बड़ी जनसंख्या है जिसे उन्नीसवीं शताब्दी के मध्यवर्ती सत्कार अभी नये साम्प्रदायिक पद्धत हैं। इन दोनों वर्गों में जिन साहित्यिक रचनाओं का मायसा प्राप्त रही है वे रचनाएँ स्वतः उन्नीसवीं सत्कारों का उपज हैं। किसी भी बदलते हुए समाज में दूरी के मूर्तों में आस्था रखने वाला वर्ग साहित्य और कला के क्षेत्र में होने वाले मूर्त्यात्मक परिवर्तनों

को न केवल भासका की दृष्टि से देखता है बल्कि जहाँ तक बन पड़े उनकी स्वीकृति के माग में बाधाएँ खड़ी करने का भी प्रयत्न करता है। इसका सबसे महज उपाय है, उस साहित्य और कला का पोषण करना जो कि उसका अपने मूल्यों की उपज हो। इसलिए आज यदि सामंतवादों और मध्यवर्तीय मस्कारों के साहित्य की ओर नये साहित्य में चिद्वनवासे लोगों का अधिवास कृतित्व इस घेरे में आ जाता है—एक खासा बड़ा वग उहीं सत्कारों के पाठकों का मिल जाता है, तो यह तय्यकथित 'लोक-प्रियता' उस साहित्य की खेपटना, समकालीनता या जीवनापगिता का प्रमाण नहीं। हीनतर स्तर पर आज भी हम अपने भास पास एक बहुत बड़ा वग बैताल पच्छसी के पाठकों का मिल जायेगा। वह वग भी मस्कारहीन नहीं एक विनोद मस्कार से परि-वासित है। जहाँ हम लेखक और पाठक के बीच क सम्बन्ध और आदान प्रदान की बात करते हैं तो उसके लिए दानों में एक से सत्कार का हाना तथा दोनों के जीवन में एक भी सहभागिता का होना आवश्यक है। ऐसा होने पर ही प्रायः इस तरह की बातें कही जाती हैं कि प्रमुख नयी रचना में कुछ खेपटा है, तो वह हमें क्यों नजर नहीं आती? हम अपने का काफी प्रबुद्ध पाठक समझते हैं। मुनिर्वसिटी के दिनों में हमारी गिनती बौटी के विद्याधियों में थी।

उत्तर इसका दिया जा चुका है। जहाँ समसत्कारिता और जीवन की सहभागिता नहीं है, वहाँ केवल विद्वद्विद्यानीय प्रतिभा और समझ भूक्त साहित्य के आस्वादन के लिए प्रयाप्त नहीं—विनोद रूप से उस सान्त्वित के आस्वादन के लिए जिनकी रचना परम्परा की तकीर से हटकर हुई है।

नये साहित्य की 'पठनीयता' और 'साकप्रियता' का लेकर परम्परागत सत्कारों के मन्त्रों, पाठकों और आलोककों द्वारा कई बार जा आनकाए प्रकट की जाती हैं उनका कारण इन वस्तुस्थिति का न पहचानना ही है। बाहरी तौर पर आधुनिक होते हुए भी (क्योंकि विदेश भ्रमण की ही कुछ लोग आधुनिकता का प्रमाण समझन लगे हैं और इसपर किसी-न किसी प्रसंग से पिछली पीढ़ी के अधिनाग लेखक-आलोचक झफरीका और पूरव-परिामी यूरोप से लेकर समरीका तक हाथ लगा आये हैं) एक अस्पष्ट अपने सत्कारों से एक सदी पुरानी बना रह सकता है। यही दिव्यत लक्ष्य की आनाधिका के इस वग के साथ है। इसलिए ये लोग नये साहित्य की आधुनिकता और नये भावबाध की खर्चा मात्र से मडा उठते हैं। अपने का और दूसरों को विवास नित्य दना चाहते हैं कि उनकी आधुनिकता की समझ भूक्त किसी भा तरह किसी ओर से कम नहीं—यदि कुछ लोग आधुनिकता के नाम पर ऐसा कुछ नित्य हैं जो कि उनके सत्कारों में मन नहीं आता, तो जरूर यह आधुनिकता मूनी और दिसारटी है। करना यह कंस सम्भव है कि साहित्य ही विनोद स्तर का और उनकी नयी

आधुनिक समझ में न आया? कुछ लोगो ने तो आधुनिकता के दावदार होने के लिए इधर अपने लेखन और चिन्तन का पूरा तरह रेनावेट किया है—मगर इस मजदूरी का क्या करें कि बोलन लिखत बनत फिर वही पुराना व्यक्तित्व बाग पपर क पीछे स झलक जाना है?

माध्यम के रूप में कहानी की ओर नयी पीढ़ी का विशेष झुकाव एक आंतरिक अनिवायता के कारण ही है। जो लोग कहानियों की बड़ी बधायी परिभाषा की एक रखनागैली के रूप में दण्डित हैं, उन्हें इस स्थिति की समझने में कठिनाई हो सकती है—क्योंकि उस अर्थ में नये लोग न इस माध्यम का नहीं चुना। जिस दृष्टि से उन्होंने इसे चुना है वह स्वतः ही उस तरह का परिभाषा के लिए म्याग नहीं रहता। उनके लिए कहानी घटना या चरित्र विधान की एक शिष्टि जली नहीं—उस तरह की कहानी की सम्भावनाएँ बहुत पहल समाप्त हो चुकी थी। पुराने चित्रों का दण्ड देना बर दण्ड देना की तरह आज भी कुछ लोग उस तरह के प्रयोग करते रहे यह बात दूसरी है। नये लोग न कहानी की एक तटस्थ और उदासीन स्थिति-प्रयत्न के रूप में भी नहीं लिया—उस दृष्टि से किये गये प्रयोगों की निरर्थकता भी बहुत पहल स्पष्ट हो चुकी थी। माध्यम के रूप में कहानी का अपना नाम कहानी का कोई परम्परागत रूप उनका लिए आकर्षण नहीं था। आकर्षण था वह सब जो कि इस माध्यम के अंतर्गत सम्भव नहीं हुआ था और वह सब जो कि किसी अर्थ में माध्यम के अंतर्गत उह सम्भव नहीं लगता था। यदि इस माध्यम में सबथा नयी सम्भावनाएँ इस पीढ़ी के लोगो ने न देखी जाती तो इस गार उनके आकृष्ट हो जाने का कोई कारण नहीं था क्योंकि माध्यम की दृष्टि में सब तक कहानी का स्थान कविता, नाटक और उपन्यास सबके बाद आता था। पुराने संस्कार के आलोचकों की दृष्टि से यह स्थिति आज भी बगैरी नहीं है। उनमें से कुछ एक तो यह बात ईमानदारी के साथ स्वीकार भी करते रहे हैं कि कहानी नाम की चीज को कभी उन्होंने सम्मीरता पूर्वक नहीं पढ़ा। हाँ इधर की चर्चा परिचर्चाओं के बाद नायद उन्हें लगने लगा है कि कहानी में भी ऐसा कुछ है और हो सकती है जिसे आलोचनात्मक दृष्टि से देखना परगना चाहिए। (पर तु देखने परखन की कोशिश का भी इससे ज्यादा नतीजा नहीं निकला कि नयी कहानी ने अंतर्गत उहोने पुरानी कहानी की सोज की ओर उस अर्थ में उसे 'कहानी' न पाकर निराग हुए।)

एक व्यापक माध्यम के रूप में कहानी की सम्भावनाओं को हिन्दी के कहानीकारों ने ही नहीं देखा—विश्व की कई भाषाओं में इस माध्यम को एक नयी प्रयोगात्मक दृष्टि से ग्रहण किया गया है किया जा रहा है। कहानी उस अर्थ में आज कहानी रहे

हो नहीं गयी जिस अथ भ पुरान सस्कार क लाग उस ग्रहण करत आण है । कहानी क प्रति दृष्टिकोण इस धोच इस तरह से बदला है कि हर नयी कहानी अपन म एक नया सीमा चि ह हो गवती है । जा सामा य घरातल उसे पुरानी कहानी स प्रलग करता है यह नयी नयी सम्भावनाओं की खोज का हो है । हिन्दी म गाज यदि इस म उपणात्मक कहानी का नयी कहानी का नाम दे दिया गया है तो व उस अथ में ही कि उनके प्रयाग तथा अवपन का अथ सबका अपना है और कि अथ प्रलग बहा गीतारा के विनिष्ट व्यक्तित्व और विनिष्ट अवपन क्षेत्र क रहत हुए भा म माध्यम म एक नयी साधारता आने का उनका प्रयत्न एका है । इसकी सम्भावना ओ को और और विस्तृत करत ज्ञान म उनका विश्वास एक सा है इसलिए नयी कहानी का एक परिभाषाया से हटी हुई, बल्कि उनकी असमयता का प्रमाणित करती हुई एक प्रयोग परम्परा है—इत प्रयाग को फिर से परिभाषा म कमन आ आग्रह आगोचना का पुराना सम्प्राप् ही है । परिभाषाए आज की जिन्दगी का नाम गी सम विव्रित करो वान साहित्य के सामने ही असमय पडती है ऐसा नहीं है हमने वे असमय पडती ही है । हा उनकी असमयता का एक ग्रहणम अथ आकर होन लगा है जरा हि हमारी चेतना किसी भी तरह क झूठ क साथ अपन को आधर रलने से हटार करती है । परिभाषाए उस व्यक्ति की सीमाओं को ही यपन करती है जोकि उन्हें बनाता, तरागता है क्योंकि वह व्यक्ति अपनी सूझ बूझ और आस्वात्म गतिन को ही बसोटी मानकर उस पर सब तरह क प्रयोगों को परसन लगता है । हर प्रयाग को अपनी एक मानसिकता रहती है और कई कई सूत्र स्तरा पर रहती है । यह गाच धने पर एक सो यात्रिक परीक्षा करने का आग्रह शायद नहीं रह जायेगा । मगर आदमी से रहा भी तो नहीं जाता—खासतौर म जरा कि यही मेहनत से उसने हया तयार किया हो । (खाली हया लिये फिरना किने अच्छा लगता है?) परिणाम हर साल नयी-नयी परिभाषाए । पिछले दम सान में दम तरह की परिभाषाए ता पहले डा नामवरसिंह ने ही की है । उम्मीद करनी चाहिय कि आनवाल दस साल मे कम मे कम इतनी ही परिभाषाए व और देंग । (जरूरत भी मगस कम की नहीं पडेगी क्योंकि दस सालों म कहानी का रूप आ जान आज से जितना बदलगा बिल्कुल मय सोचों की प्रयोगात्मकता उसकी सामर्थ्य और सम्भावनाओं को जाने क्या विस्तार देगी । सन चौहत्तर क आने आने तक तो गाग्र हम पिछनी परिभाषाए कूरिया गप्स में जाकर दूबनी पडेगी ।)

आलोचनादृष्टि के अनपठन के बावजू नयी रचनात्मक प्रतिभा उत्तरानर इस माध्यम की ओर लिखती आयी है—अपनी आंतरिक प्रेरणाओं क कारण । उहीं प्रेरेणाओं के कारण इस माध्यम की पहले की निश्चित और परम्परा से मानित सीमाओं को उसने तोड़ा है । कहानी की जिन भव में कविता से प्रलग किया जाता था

उस अथ म नय प्रयोगकारो ने उसे अलग रहने नहीं दिया— अपने का यात्मक सवेदों को अभि व्यक्त के लिए एक वहत्तर कनवस के रूप में भी इसे अपना लिया है। कई जगह ये सवेद काव्यात्मक रूपों में ही अभिव्यक्त हुए हैं, परंतु अपने सदैव के साथ। कई जगह वे समदर्शन में ही इस तरह धुल मिल गये हैं कि उनकी तीव्रता पवित्रता और उनकी परिस्थितियों में परिणत हो गई है। रेणुका कहानी तीसरी कम्म' सवेदों की इस परिणति का एक अच्छा उदाहरण है, एक और उदाहरण है अमरकांत की कहानी 'दोपहर का भोजन'। इन दोनों कहानियों की रचना उसी मनाभूमि से हुई है जिससे कोई भी कविता उपजती। परंतु कविता रूप में इन दोनों ही स्थितियों में शायद वचारिकता के स्पष्ट से न बचा जा सकता। सवेदों की कम्प्लेक्सिटी का जो सहजता कविता में प्राप्त होनी चाहिये वही इन कहानियों में सम्भवतः और भी कोमल रेणु से लायी जा सकी है। दोनों स्थितियों में कहानी का माध्यम के रूप में चुना जाना आवश्यक नहीं है और न ही इसलिए है कि उनके लक्ष्य कवि न होकर कहानीकार हैं। इनका सवेदों की इनकी सहज अभिव्यक्ति और किसी माध्यम से शायद हो ही न पाती। प्रयत्न किया जाता तो वचारिकता में बचा लने पर भी एक अधूरापन उत्पन्न बना रहना। माध्यम के रूप में कहानी के स्वीकार किए जाने का एक कारण अधिक सम्पूर्णता में सवेदों की अभिव्यक्ति चाहना भी है।

यह कहना गलत होगा कि कहानी ही एक माध्यम है जिसमें आज की जिंदगी की सुकुलता को सहजता से साय व्यक्त किया जा सकता है। हाँ इतना कहा जा सकता है कि जिंदगी की आंतरिक और बाह्य परिस्थितियों के चित्रण के लिए यह अधिक अनुकूल माध्यम है— अनुकूल आसान नहीं। क्योंकि यदि एक लक्षक अपने अंतर के अभिव्यक्ति के चित्रण को स्वीकार करके इस माध्यम में प्रयोग करता चाहता है तो कई बार एक ही प्रयोग में उसे दिन सप्ताह और महीने निकल जा सकते हैं। इस पर भी कई बार उसे अपने में हारना पड़ जाता क्योंकि सवेदों की उनकी समप्रता में अभिव्यक्ति करने और एक कलात्मक अभिव्यक्ति देने के लिए ठीक उपकरण ही कई बार नहीं मिल पाते। तब बार बार अपने अंदर की चुनौती को स्वीकार करने और बार-बार उस बिंदु पर प्रयोग करने का क्रम लगातार चलता रहता है। ऐसी स्थिति में कुछ कहानियाँ तो दिनों महिनों में पूरी हो जाती हैं पर कुछ ऐसी भी होती हैं जो पूरी हो ही नहीं पाती— कई बार प्रयोगों के बाद भी अथितिया या अनलिखी रह जाती हैं।

परंतु यह माध्यम के रूप में कहानी का बनावत नहीं है। मैंने पहले ही कहा है कि एक निश्चित और पारिभाषिक माध्यम के रूप में कहानी का रूप बदला

समाप्त हो चुका है। आलोचना पुस्तक में गिनायी जाने वाली पांच विधायां म कहानी नाम की जो एक विद्या थी, उसका पहचान व आधार पर आज की कहानी का समझना असम्भव है। नयी कहानी पुरानी कहानी का नया रूप नहीं क्यात्मक गद्य का एक नया क्षण है जिसमें युग की सभी वस्तु परस्पर और काव्यात्मक अनुभूतियों का लेकर रचना प्रयोग किय जा सकते हैं, किय जा रहे हैं। किसी शक्ति विशेष की तरफ निया उसमें आना नहीं है, इसलिए तुलनाया का सवाल भी पदा नहीं होता। माध्यम की उपयोगिता एक माध्यम के रूप में ही है—जहां तक कि किसी भी लक्ष्य के तीव्रतर सवर्गों का ठीक स वह अपने में नभेट सके, ठीक से उनका बहन कर सक। जहां सवर्ग ना ही नहीं, वहां किसी भी प्रय माध्यम की तरह वह बकार है। माध्यम का परिष्कार अपने में कुछ भी सार नहीं रखता। हमारे सार की व्यापकता हमारी आत्मा की चीज, वह चीज जिसे दबाय रखने का संस्कार मदियों स म दिया गया था यदि दस माध्यम से भा ठीक स ध्वनित नहीं हो पाती, तो आगनी पीली को इससे बिपके रहन का भी कोई आग्रह नहीं होगा। परंतु जिस व्यापक मय में आज इसे लिया जा रहा है, उसे देखन हुए और नयी पीढ़ी की प्रयोग शक्ति का ज्ञान हुए, लगना यही है कि आनंदाल साला में इसकी सम्भावनाएं सभी ओर विकसित होगी।

---

# आज की कहानी : परिभाषा के नये सूत्र

राजेन्द्र यादव

चूँकि हर युग की कहानी नई होती है इसलिए पिछले दशक की कहानी को कहानी मानना ग्राह्य जाकर अध्ययनाभ्यास में गिरा चलनफहमी पैदा कर सकता है। नई अगर कहानी को इस धारा को कोई न कोई नाम तो देना ही होगा, क्योंकि चाहे हम नई कहानी नाम की कोई चीज मानें या न मान यह स्वीकार करने के लिए तो विवश हैं ही कि इन दश वर्षों में कहानी का एक ऐसा व्यक्तित्व जरूर सबरा और गिरा हुआ है जो उसकी पिछली परम्परा से अन्ततः भिन्न है। वस्तु और रूप यानी सत्ता मिलाकर कहानी की परिकल्पना में मौलिक अंतर जरूर आया है—घोर या अंतर काफी दशक भी रहे ही होंगे, तभी तो मागी माहिरियत चेतना आज धीरे-धीरे कहानी से अलग कहानी पर केन्द्रित हो रही है। कहा जाता है कि 'नई कविता परम्परा का निरस्कार है और नई कहानी परम्परा का विस्तार। मुझ इस बात में भी विचार कम नहीं किया है। विस्तार प्रगति जरूर बताता है, लेकिन कहानी के इस नये रूप ने परम्परा को ज्यों का त्यों ग्रहण कर लिया है—ऐसा नहीं है हाँ कुछ सूत्र सामान्य होता है। सब पूछा जाय तो निरस्कार करने के लिए कविता के सामने एक गलत या सही परम्परा थी। उधर इस दशक की कहानी के सामने ऐसी कोई तारबालिक परम्परा नहीं दिखाई देती जिसका निरस्कार या विनाश किया जाता। अतः उस या तो नई परम्पराओं की नींव डालनी पड़ी या परम्परा और प्रभाव के लिए बहुत दूर देखना पड़ा।

सांस्कृतिक दृष्टि का स्पष्ट करना जरूरी है। सन् ५० से ६० के बीच विकसित हुई आज की कहानी को अगली पीढ़ी किस निगाह से देखेगी यह तो समय बताएगा लेकिन वर्तमान पीढ़ी यह मानने का बाध्य है कि विद्या की परम्परा का दृष्टि से सन् ४० से ५० का पिछला दशक आज की कहानी को कुछ नहीं दे पाया—उगाड़ा जा कुछ लिया वह सारा साहित्य का लिया। दोष कम दशक का नहीं है अन्तः विदेशी परिस्थितियों के अस्तित्व में अतृप्त परिवर्तन और ग्राह्य उद्बलन की गति इतनी तीव्र और सूझावनी थी कि गमना की बनावट का कोई एक रूप निश्चित नहीं हो पाया

था। तत्कालीन क्याकार इस चर्चाचौध में कही भी आल टिकाने में अपने का असमय पाता था। ३३ वर्षों तक चलता मुद्र, बंगालीस का बिप्लव, बंगाल का प्रवाल नाविक विद्रोह, स्वतंत्रता, देगे, शरणाथियों के काफ़िने, सरकारी भ्रष्टाचार और राजनीतिक पार्टियों की आपाधापी—सभी कुछ एक के बाद एक इस तरह आता चला गया कि व्यक्ति मन के घरातल पर उस सबका समाहार क्याकार के लिए असंभव हो गया। उसकी निगाह तभी स बदलती सतह पर ही टिकी रही और वह कहानी के नाम पर 'गद्दबिन्न' 'स्कैच' या 'रिपोर्ताज' स भाग नहीं बढ़ पाया। मूलतः वह युग नारो और भाषणा का था। परिणामतः साहित्य की हर विधा में भाषण, उल्लाह और भाग की लपटों के साथ साथ आधाधुंध शब्दों का साधा फूटता था। हर वस्तु को देखने का भाव व्यक्ति न होकर भीड़ का आगावाह यानी मरल—को बनाए रखने के लिए हर दूसरे वाक्य में नया सूरज निकाल दिया जाता था।

पुरानी नैतिक सामाजिक राजनीतिक या भौगोलिक सभी भूमियों में विस्थापित शरणाथियों के दल जब कहीं भी पाव टिकाने को दिगाहारा की तरह सटक और बीसला रह हो—सब अकेले व्यक्ति की कुठायी और दर्दों को गान या सुनने की कुरसत किस होती? ऐसे दिगाहारा विघटन और बिभ्रलन में व्यक्ति का जीवन और आस्था दता है केवल सामूहिक आगावाह

इस प्रकार इस दंग की कहानी (जिने हम आज की कहानी कहेंगे) ने इस समूहगत सामाजिकता का आगावरण में आखें खाली। चाहें तो इस ही पिछली पीढ़ी की विरासत मान सकते हैं लेकिन वस्तुतः यह सामाजिकता तो एक ऐसी चेतना थी जो साहित्य की सभी विधाओं को समान रूप से मिली थी। अभी तो इस चेतना का अपना रूप भी स्थिर होना था और यह गौरवपूर्ण काय आज की कहानी ने किया—अपनी आज की कहानी ने समूहगत सामाजिकता को व्यक्तिगत सामाजिकता के रूप में देखने वाले की आगावाह की। विराट युग बोध की व्यक्ति या व्यक्तियों का आपसी सम्बन्धों की चेतना यानी मन के अनेक स्तरों पर आकलन और प्रतिफलन नाटक का आज की कहानी ने ही सबसे पहले देखा।

सतहो दृष्टि से देखनेवालों ने अक्सर ही इस दंग की कुछ कहानियों पर जेनेद्र और अनेय की कुठायी पराजय और घुटन के पुनर्प्रस्तुतीकरण का आरोप लगाया है। हो सकता है हममें से कुछ ने जेनेद्र की स्थितियों और चरित्रों को दुहराया हो, लेकिन जेनेद्र गहराई से देखने पर साफ हो जाएगा कि जिस कुठायी पराजय और घुटन की स्वयंसिद्ध सत्य मानकर जेनेद्र और अनेय ने अपनी कहानियों का आगावाहना बनाया था, उसी सबकी आज के कहानीकार ने अधिक व्यापक परिप्रेक्ष्य में अधिक सतह और निर्व्यक्ति दृष्टि के साथ चित्रित किया है। आगावरमूत अन्तः



यह है कि विकृति पहली बार 'दृष्टि' में थी—इस बार दृष्टि स्वस्थ है—'दृश्य' चाहे विकृत हो। क्योंकि आज की कहानी में भावेवाला व्यक्ति निश्चित रूप से अधिक स्वस्थ सामाजिक चेतना की उपज है। और यही कहानी को उस परम्परा से अपने सम्बन्ध जोड़ने थे जिसके बीज उसे प्रेमचंद और यशपाल से मिले थे।

पिछली पीढ़ी के कुछ कहानीकारों ने एकाधिक बार झुंझलाकर कहा है—“आज की कहानी ने आखिर ऐसा क्या कर दिखाया है जो पहले नहीं था? ऐसे कथा प्रयोग तो प्रेमचंद यशपाल या समकालीन उद्भूत कथाकारों—मटो घन्टी, अश्व कृष्णचन्द्र इत्यादि—में कई मिल जाएंगे। बात आरोप के रूप में कही जाती है लेकिन अनजान ही यह भी सिद्ध करती है कि आज के कथाकार ने उन्हीं की टूटी फूटी विस्मृत और दूर पड़ी परम्परा को ही तो विकास देने की कोशिश की है। अगर प्रेमचंद या अन्य कहानीकारों में कहीं ऐसा कुछ मिलता है जो आज की कहानी के बहुत अधिक निकट है तो उसे अनुकरण ही क्यों माना जाए? क्यों न यह मान जाए कि आज की कहानी ने अपना प्रारम्भ वहीं से किया है। अपनी दृष्टि से उस सबको देखा है।

निस्संदेह उन यत्किंचित् समानताओं में भी दृष्टि का अंतर बहुत स्पष्ट है—और वही दृष्टि है जो पिछली सारी कहानी को आज की कहानी से अलग करती है। उस युग के कहानीकार के पास अपने कुतुबनुमा या प्रेरक-शक्ति के रूप में सिर्फ एक चीज थी और वह थी सहज मानवीय सबेन्नगीसत्ता। उसीसे प्रेरित कोई भी विचार सत्य या आइडिया उसके सामने कोंधता था और वह कुछ पात्रों कुछ स्थितियों कुछ घटनाओं के समान संयोजन से उसे घटित या उदघाटित कर देता था। अर्थात् कहानी की सवमाय परिभाषा के अनुसार किसी भी सूक्ष्म घटना या प्रभाव और विचार को लेकर कहानी नियत दी जाती थी और कहानी के इस केन्द्रीय तत्व का उभारकर पाठक पर एक सवदनात्मक प्रभाव डालना ही तत्कालीन कहानी का उद्देश्य था। चरित्र दण्डनायक कथोपकथन चरित्र चित्रण इत्यादि कहानी के सार तत्व उस केन्द्रीय आइडिया या सत्य की सिर्फ उदघाटित या घटित करने के लिए आलवन और उद्दीपन के रूप में ही निमित्त बनाकर लाए जाते थे। अतः उनका आधिकारिक या बहुत प्रामाणिक और अधिक आत्मीय हान की शैलिको विरोध चिन्ता नहीं होती थी। केन्द्रीय तत्व उस 'सत्य या आइडिया के आलवन उद्दीपन के लिए यह दण्ड विदग्ध भूत-वर्तमान किसी भी स्थान किसी भी वक्त को आमाना से अपनी विषय वस्तु या घटनास्थल के रूप में चुन सकता था। इस प्रकार पात्र दण्डनायक सम्बन्धी अनेक प्रकार की विविधता का आभाम कर—नाटकीय प्रारम्भ, क्लासिकल और अप्रत्याशित अंत द्वारा उस समय का कथाकार अपनी कहानी को काफी रोचक और मनोरञ्जक बना लेता था।

बहुत अस्वाभाविक नहीं है कि उस युग के कहानीकार और उस मानसिकता में विकसित पाठक को भाज की कहानी में वह सब नहीं मिलता। न उसे साम-रोज क्लाइमक्स मिलता है, न एक के बाद दूसरी घटनाओं में छलानों भरता वचनक। सब मिलाकर उसे भाज की कहानी विषय-वस्तु के लिहाज से उलझी, घस्पष्ट, अपूर्ण, लगती है और रूप के लिहाज से ढीली अनगढ़ और भोवो, और तब वह श्री चन्द्रगुप्त विद्यालंकार के शब्दों में शिकायत करता है कि “कहानी अभी उस ऊँचाई तक नहीं पहुँची, जिस पर चौथे दशक के उत्तरार्ध में पहुँच गई थी।”

उस ‘ऊँचाई’ पर पहुँची है या नहीं, यह कहना तो मुश्किल है लेकिन कहानी की धारणा में आधारभूत अंतर जरूर आया है। एक ओर तो भाज के कहानीकार का ‘सत्य’ या ‘आइडिया’ इतना कटा-छटा और स्वय-सम्पूर्ण नहीं है, दूसरे शेष सभी कुछ आइडिया को घटित करने के लिए निमित्त-भर हो—यह उसे स्वीकार्य नहीं है। कोई भी आइडिया विचार या सत्य—व्यक्ति या पात्र के जीवन की धारा में रहते हुए ही उसकी उपलब्धि बन—उसका प्रयत्न यह है। उसकी यथाय दृष्टि बताती है कि बिना देश-काल अर्थात् परिवेश के व्यक्ति की कल्पना अधूरी और आनुपणिक है। व्यक्ति के अंतर्बाह्य निर्माण में उसके सम्कार शिक्षा-दीक्षा, सामा-जिक स्थिति, सम्पद और पैसा—सभी का हाथ होता है। इस सबकी पृष्ठभूमि के साथ ही, अपनी सीमाओं के भीतर ही कोई व्यक्ति सत्य को उपलब्ध या उद-घाटित कर सकता है। बिना इस परिवेश को सगति को आत्मसात् किए, हर किसी ‘सत्य’ या आइडिया को घटित और उद्घाटित करना—उनका आरोप करना है—प्राप्त करना नहीं।

अतः भाज की कहानी अधिक यथाय दृष्टि, प्रामाणिकता और अधिक ईमानदारी से अपने आसपास के परिवर्तित परिवेश में ही किसी ऐसे सत्य को पाने का प्रयत्न करती है जो टूटा हुआ, कटा-छटा या आरोपित नहीं—बल्कि व्यापक सामाजिक सत्य का एक अंग है। मेरे कहने का कल्पि यह अर्थ न लिया जाए कि भाज की कहानी का कोई केन्द्रीय भाव या आइडिया और विचार नहीं होते—नहीं भाज की कहानी का ताना बाना भी आइडिया, विचार या केन्द्रीय भाव के आसपास या उसके लिए ही बुना जाता है—लेकिन कहानी उसे उसकी जन्म भूमि से काटकर अलग नहीं करती। वह तो सिर्फ उसकी स्थिति ज्यों की रवा बनाए रखते हुए सिर्फ उभ केन्द्रीय भाव या आइडिया का रेखांकित या फोकस कर देती है। यही नहीं, भाज की कहानी घटिरिक्त सावधानी बरतती है कि वहीं वह केन्द्रीय भाव या आइडिया अपनी शेष धारा से कट न जाए। इसके लिए उसे अधिक संवेदनशील दृष्टि और अधिक नाजुक गिल्प का सहारा लेना पड़ता है।

बात को स्पष्ट करने के लिए फिर मूल को 'व्यक्तिगत सामाजिकता' से पकड़ना होगा। आज का कहानीकार यह मानता है कि युग के सारे विराट् को, गतिशील मूल्यों के संस्कारों और संक्रमण को कहानी के माध्यम से हम व्यक्त या व्यक्ति समूह की चेतना धारा में कभी-कभी चेतना के अनेक स्तरों पर एक साथ पकड़ने की कोशिश करते हैं। काल के प्रवाह में, 'व्यक्ति' को सामाजिकता का बोध और स्थिति ही आज की कहानी की विषय-वस्तु है। कथाकार 'व्यक्ति' को उसकी समग्रता में देखने का आग्रह करता है। व्यक्ति को उसके सामाजिक परिवेश, मानसिक अंतर्द्वंद्व तथा व्यवहारिक जीवन के तत्त्वों तथा और आवश्यकताओं की एक सन्निवृत्त प्रक्रिया के रूप में पाना चाहता है। इसलिए कहानी का कोई भी तत्व निमित्त या आलंबन बनकर नहीं स्वयं आश्रय या विषय वस्तु बनकर आता है। परिणामतः इन दस वर्षों की कोई भी अच्छी कहानी उठा लीजिए— उसका प्रभाव या परिणति भट्ठे के साथ देखा या पाया हुआ सत्य नहीं होता। न वह हथोड़े की चोट की तरह सारे अस्तित्व को झनझनाती है न चुने तीर की तरह टोसती है। वह तो कुहासे या अगच्छध की तरह समस्त धनना पर छा जाती है—स्वयं उसका अंग बन जाती है। इस प्रकार अनजान ही आत्मा को संस्कार और दृष्टि देती है। यही यह कहना बहुत बड़ी गर्वोक्ति न होगी कि मानव आत्मा का गिल्पी आज की कहानी में ही पक्षी धार अपनी भूमिका का सही निर्वाह करने का प्रयत्न करता है।

कहानी की इस एकांकित और सन्निवृत्तता को देखकर ही नामवर सिंह ने मर्म पहन पावाज उठाई थी कि एक नास्त्रीय तत्त्वा के अनुसार कहानी को प्रलय अलग खंडों में दलना गलत है। कहानी अब अपनी पुरानी हठे ताड़ आई है और नई परिभाषा चाहती है।

व्यक्ति की समग्रता में देखने का आग्रह—या व्यक्तिगत सामाजिकता का बोध कथाकार के लिए दुहरा दायित्व होता है। सबसे पहली जिम्मेदारी तो यह कि व्यक्ति अपना 'व्यक्ति' न खो दे—उस अधिक से अधिक इमानदारी आत्मीयता और संवेदनशीलता के साथ चित्रित किया जाय—दूसरा यह कि इस आत्मीयता और संवेदनशीलता को अधिक से अधिक व्यापक, कविमय और काम्प्रेन्सिव बनाने के लिए व्यक्ति को उससे परिवेश से न तोड़ा जाय। व्यक्ति का उससे सामाजिक ऐतिहासिक पारिवारिक परिवेश से अलग न करने की यथायत्न दृष्टि अर्थात् समग्रता में देखने का आग्रह अभी सफल हो सकता है जब कथाकार व्यक्ति और परिवेश दोनों से तत्काल उभरा आत्म्य प्राप्त कर ले। गायद यही कारण है कि पहल के कथाकार

की तरह घात्र का क्याकार न तो हर किसी व्यक्ति को ले पाता है न हर किसी व्यक्ति में उसे रचना पड़ता है। स्वानुभूति का आत्मसादन ही है कि कृती का व्यक्ति और परिवेश इतने आनन्दरक्त-सम्बन्धित-और वैयक्तिक-व्यक्त-हैं कि अन्तर ही व्यक्ति के रूप में लेखक और परिवेश के रूप में उसके अपने आत्मसादन का अन्न होने लगता है। स्वानुभूति की सीमाएँ उसे व्यक्ति के रूप में 'मैं' से और परिवेश के रूप में 'तु' के 'अन्न ही बातावरण से बाधे रहती हैं। तब हम कहते हैं अन्तर्गत अन्न का दूसरा रहा है। लेकिन जब वह अपनी कहानी के विविध व्यक्तियों का 'मैं' को आत्मोदना और संवेदनाशीलता तथा विविध परिप्रेक्षियों को 'मेरा अपना बातावरण' जैसी महत्ता और यथातथ्यता देने देता है तो वह उसकी कला-दृष्टि की ईमानदारी और सफाई है। व्यक्ति और परिवेश की यह सन्तुष्ट विविधता पहली कहानी को पात्र-द्वन्द्व, कथानक-इत्यादि की विविधता से एकदम घटा है। मगर यह भी सही है कि स्वानुभूति के आग्रह या यथार्थ-दृष्टि से क्या घात्र का लेखक विविधता की दृष्टि से निघन हो है। हा अपनी समझता में घात्र की कहानी जितनी विविध है—उतनी 'अन्न ही पिउन किसी युग की रानी हो।

यह विविधता न ले पाने के कारण पर एक और कोण से विचार करें। विविध व्यक्तियों की 'मैं' की सम्बन्धित आत्मोदना और संवेदना तथा विविध परिप्रेक्षियों का मेरा अपना बातावरण जैसी दृष्टि और यथातथ्यता देने का आग्रह लेखक की सारी रचना-प्रक्रिया का बदन बना है। 'मैं' को पूरी तरह जानन और उससे आत्मसादन स्थापित करने के लिए माय ही उसका परिवेश की आत्मसादन करने के लिए—व्यक्ति और परिवेश के सम्बन्धों और सम्मनों को दूरी और 'हराई' तक जानन की जरूरत पहनी है। तब कहानी के बनवर में एक वैयक्तिक भाव को फावत करते समय उसके लिए यह छोटन बड़ा मुश्किल हो जाता है कि क्या रहे और क्या छोड़े ? सभी तरह का एक-दूसरे में गुंथे हैं एक-दूसरे को प्रभावित करते हैं। निश्चय ही यह घन-मजबूत उसके आत्म-संज्ञा-प्रभाव-भाव को छोटन के विवेक की कमी नहीं सन्निवृत्ता का आग्रह है। पिछली पीढ़ीमान या कहिए परम्पराबद्ध क्याकार की तरह अपनी निर्व्यक्तिक (व्योम्बन्धित) दृष्टि और प्रतिभा के तेज चाकू से बर्माई जमी तटस्थता के माय एक साफ-सुथरे बट-छटे आदर्शवादी कमी-तासाई (अन्तर्गत) कहानी काट निकालना आज के कहानीकार के लिए भी कठिन नहीं है। लेकिन क्या सचमुच कोई भी माय या भावना ऐसी अलग-थलग, स्वयं-सम्पूण और सीधी-सपाट होती है ? मुझे तो हर माय या भावना के मूल और रंग, व्यक्ति तथा परिवेश के भीतर बहुत दूरी और गहराई में समाए एक-दूसरे से बहुत अधिक गुंथ और उलझे हुए लगते हैं। और मेरे सामने तो इस बुनावट (टेम्पलर) की जटिलता का घटनाम तथा उसकी जगों का रंग।

क भाग्रह 'कथा छोड़ कथा न छोड़' का धम-सकट बन जाता है। शायद यही कारण है कि आज की कहानी अपने परम्परागत आकार से ही दुगुनी नहीं हो गई है वरन् व्यक्ति और परिवेश को दूरी और गहराई के अनेक कोणों और आयामों में देखने के कारण भी उपयोग के अधिक निकट पड़ती है। आज की अधिकांश कहानियाँ ऐसी हैं जिन्हें पुराना लेखक उपयोग के रूप में लिखना ज्यादा पसंद करता।

मगर मनजाने ही कहानी उपयोग की सीमाओं में अतिक्रमण भले ही करे, कहानी को उपयोग बनने की छूट न पुराना लेखक देगा—न नया लेखक चाहेगा। चाहे जितनी सश्लिष्ट और समग्र हो—उसे अपनी बात बहुत संक्षेप में और संकेत से कहनी है। खड में खड को देखने की मजबूरी ही है कि वह समाज से एक व्यक्ति को और जीवन से एक केन्द्रीय क्षण को काटकर उससे दूरी और गहराई एवमाप पाने की कोशिश करता है। यह व्यक्ति और क्षण, काल और परिवेश की सम्झाई और चोखाई का गवास बनकर धाते हैं। इस प्रकार युग की समग्रता को संकेत में पाने का प्रयत्न—अर्थात् व्यक्ति और परिवेश के बहुमुखी आपसी सम्बंध और दूरी-गहराई के व्यापक सदमों के सञ्चमण परिवर्तनों की नानास्तरीय सश्लिष्ट प्रक्रिया—और इस सब कुछ का संकेतोत्तम जीवन की प्रासंगिक—रिलेवण्ट—रूपकृतियों—इमजो द्वारा व्यक्त करने का कोशल आज के कहानीकार को कविता की ओर मोड़ता है। प्रतीक रूपक, विम्ब साक्षणिकता या संगीतात्मक ध्वनियों के सहारे वह प्रभाव को चेतना के अनेक स्तरों पर सम्प्रपित और सत्पशित करने का प्रयत्न करता है, क्योंकि आज का व्यक्ति-मन उतना सीधा और मण्ट रह भी नहीं गया है। नये-पुराने मूल्यों के संघर्ष और संक्रमणों ने उसे सकुल और जटिल बना दिया है।

“मतिगत सामाजिकता हो या निर्व्यक्तिक व्यक्तिकता—उपयोग की व्यापकता हो या कविता की अनेकार्थी सुकुमार मूल्यमता—कहानी ने जहाँ उन सबका निर्व्याज-भाव से समाहार किया है वहीं वह सफल है—और जहाँ धोपित और भारोपित है वहाँ असफल। प्रयोग—काल की सफलता और असफलताओं की छूट तो दनी ही होगी।

भावस्थायी आज के कथाकार के लिए यह है कि वह व्यक्ति और उसके परिवेश को सही सदमों में संतुलन देता चले। परिवेश को छोड़कर व्यक्ति पर अपने को बेद्रिस्त कर लेने में वह पुनः उहीं कथाकारों को दुहराएगा, जिन्हें कृत्तित और रुद्ध धोपित करता रहा है—और व्यक्ति को छोड़कर परिवेश का भाग्रह उसे उसी तरह भटका देगा जैसा आज के कुछ प्रतिभाशाली कथाकारों को उसने भटका दिया है। गहरी और आभोग कहानी का भाग्रह परिवेश और वातावरण के विभाजन के

सिवा क्या है ? बदलता हुआ परिवेश—तथा उसे बदलने के साथ-साथ स्वयं नित-नित नया होता व्यक्ति अपनी हार-जित, घुटन और मकासामों में क्या कुछ कम नाटकीय है ? विवाद और विमर्श इस थीम को लेकर होना चाहिए—व्यक्ति और परिवेश को अलग-अलग उठाकर नहीं । जहाँ तक कहानी इन दोनों के सश्लिष्ट सम्मिश्रण को स्वस्थ और सतुलित दृष्टि से पाठक के मन पर उतार सकती है, उसके सारे व्यक्तित्व एवं भाव-बोध को उदात्त सस्पेंस दे सकती है, वहाँ तक उसकी सफलता असंदिग्ध और सायक है ।

—राजेंद्र यादव

— —

# नयी कहानी कुछ आक्षेप.

## कुछ निराकरण

## कुछ समाधान

डा विजयेन्द्र स्नातक

साहित्य की प्रत्येक विधा में गान विधान की उन्नति या गुणीकृति धारा की प्राप्ति के साथ परिवर्तन आता है। हिन्दी कहानी में ही नहीं कविता नाटक उपन्यास एकांकी, निबंध और समीक्षा सभी क्षेत्रों में पिछले दशक में अतिरिक्त परिवर्तन हुए हैं। इन परिवर्तनों का हम सचचा अस्वरूप या असमीचीन ठहरा कर उपेक्षा नहीं कर सकते। हमने हिन्दी कहानी को प्रेमचंद और प्रसाद की गली में पड़ा था, उसके बाद जनेन्द्र और यशपाल की गली में भी हमने उस स्वीकार किया। प्रणय और इराचन्द्रगोपी के मनोविनियोग में जिन अर्थों या अनामयों की बात नहीं की। परिवर्तन तो इन तीनों स्थितियों में हुआ ही था।

यदि पिछले चालीस वर्ष के कहानी-साहित्य पर दृष्टिपात करें तो उसमें प्रत्येक दशक में बड़ा बहुत परिवर्तन अवश्य उपलब्ध होगा। हिन्दी कहानी प्रसाद और प्रेमचंद से कमन्तर और राजेन्द्र यादव तक अन्यान्य उच्चावच गिरावों में हाकर ही मर धरातल पर उतरी है। जो परिवर्तन नई कहानी में आया है वे स्वाभाविक हैं और साहित्यिक दृष्टि से उनमें अनालीनता की बात नठाना मैं सचचा अप्रासंगिक समझता हूँ। साहित्यिक अनालीनता से हमारा क्या अभिप्राय है? क्या यौन-सम्बन्धी वर्णनों की हम अदलील समझकर अनालीन मानने हैं यद्यपि सरसि के अभाव में नई कहानी का अनालीनता रहित समझ बैठे हैं। यदि ऐसा है तो यह हमारी दृष्टि का ही एकांगित्व है। ऐसा स्मृति में कहानी के बहिरंग तक ही गायन हमने अपने आक्षेपों को सीमित रखा है। यदि हम नई कहानी के अंतरंग में प्रवेश करें तो विचार और विनियोग का दृष्टि में निराग होना का कोई कारण नहीं मिलेगा।

आज की कहानी को जब हम नए विनियोग से समुक्त कर के देखते हैं तो उसमें परिवर्तन और विकास की सम्भावनाएँ भी स्पष्ट समित होनी लगती

है। कविनी की एक पुरानी परम्परा थी—पत्नी परम्परा जो नवीन चेतना से दूर जा पड़ी थी और जिससे चिपके रहने से कविनी केवल माह्व मात्र रह सकती थी, किसी भाव, वस्तु या सौन्दर्य बोध का उदबुद्ध करने में समर्थ नहीं रह गई थी। फलतः चेतना के विकास की कहानी में ध्वनित कराने के लिए आवश्यक था कि उसकी पुरानी मोहक परम्परा को समाप्त कर दिया जाय। द्रुत गति से दोड़ती और आगे बढ़ती दुनिया का कविनी में प्रतिबिम्बित करने के लिए पुराने उपकरणों से काम चलाना सम्भव नहीं रह गया था। नए पन के मोह से कहानी में नयापन नहीं आया है वरन् आवश्यकता और कलाकार की प्रेरणा ने उसे नूतन बनाया है।

आज यह धाराप है कि नई कहानी, नई कविता के पञ्चविज्ञान पर चलकर भावार्थक हाता जा रहें हैं उसमें कथा का गूँस हा गया है। यह ऐसी प्रवृत्ति है जो म प्रथित है कि साधारण पाठक का मन उसमें मनोरंजन होता है और न ज्ञानवृद्धि। आप इन धाराप का म समझा भिन्न नहीं मानना। कुछ कहानियाँ मरी दृष्टि में भी ऐसी आती रहती हैं जिन्हें पढ़कर खता है कि यहाँ कहानी का विकास इन्हीं सीमित क्षेत्र में हुआ तो नयापन छोड़कर कविता का स्थायी स्वर नहीं जुटा सकी। जीवन के विषय एक क्षण चित्र का चित्र या किसी विषय में स्थिति का चित्रण ही यहाँ कहानी का प्राण बलवर बन गया तो कहानी की मरणा का विषय में अभिन्न पाठक के मन में प्रतिक्रिया खड़ा हो सकता है। यह गीत है कि नई कविता में जीवन के क्षणों में से वृत्त विषय के नए सूत्र एकत्र किए हैं कि तु कहानी कविता नहीं है। कहानी का भावार्थक हाकर मन स्थिति का चित्रण तक मिमेट कर रह जाता, उसके प्रभाव और रूप को समाप्त करने वाला हाता। दिन व्यापक सम्भावनाओं की हम नई कहानी से आगा लगा रहें हैं उनमें हम एकाकी भावार्थकता से लाम का सम्भावना है। अतः इस समय में म गहन है कि कहानी की प्रगति एवं विचार-धारा पर बड़ी रूप सीमित नहीं होना चाहिए। कहा कहानी सशक्त सफल है जो कहानी की जीवन्त गति का अक्षुण्ण रचना हुआ उसका विकास करता है। कथा की सूत्रता की में बहुत बनी हानि या त्रुटि के रूप में नहीं देखा। आधुनिक कथा में भी वगन, मानावरण और परिवेश द्वारा कहानी फँस सकती है और अपनी मरणा के नातर किसी जीवन गति, भाव, विचार या सौन्दर्य बोध से पाठक को उत्प्रेरित कर सकती है। जैनधर्म तो नए कहानीकार नहीं हैं। तीस-चौथी वय से कविनी निग रहें हैं किन्तु उनकी बहुत सी कहानियों में कथा नाम मात्र का हा है फिर भी वह सफल कहानाकार हैं। कथा की बद्ध बिन्दु बनाकर अपना कथानक की गत्या प्रगत्या का पताकर कहानी का पञ्चविज्ञान करने की प्रतिवादा नया कविनी में स्वीकार की जाती है। किसी क्षणिक मन स्थिति से प्रेरित होकर



जब कहानी का गठन होगा, तब उसमें कथानक के लिए प्रवक्ता ही कम रह जाएगा। आप कहेंगे कि कथानक को घटाने या मिटाने से हम कहानी को ही कभी न मिटा दें। लेकिन इस आशंका से आज की नई कहानी परिचित है और मुझ विश्वास है निश्चय भविष्य में तो कहानी मिटनेवाली नहीं है। जिस भावबोध से नई कहानी पूर्ण होती है वह कहानी को जीवित रखने के लिए पर्याप्त है। कहानी की प्रयत्नता बसल मोहक कथानक के फनाव या स्थूल चरित्र चित्रण में नहीं है किसी विशिष्ट जीवन दशन या भावबोध को व्यक्त करने में है। यह दृष्टि नई कहानी में पुरानी या परम्परानुमोदित कहानी से अधिक व्यापक हुई है अतः नई कहानी की सम्भावनाएँ भी बड़ी हैं।

आज की कहानी में मनाविश्लेषण के आधिक्य को कुछ पुराने पाठक ऊपर से लादा हुआ ठग का भार समझते हैं। यदि हम हिंदी कहानी का इतिहास देखें तो बिना हाथा की कहानी में मनोवैज्ञानिक तत्वों का समावेश तो प्रेमचंद के युग से ही हो गया था। जैसे द्र. अनेम जोशी, मरुत आदि सभी लेखकों ने मनोविश्लेषण को अपनी कहानियों में स्थान दिया है। हाँ आज की कहानी लेखक मन के गहन गुहर में घुमकर अतन्स्पर्शी भावनाओं के उन्पाटन का प्रयास पढ़ने के लेखकों की अनेका अधिक गहराई के साथ करते हैं। मुझे इस मनो विश्लेषण से कोई घबराहट नहीं होती। ऐसा मनोविश्लेषण जो पात्र के चरित्र को उनके किरा काप को और कहानी के समग्र घटनाचक्र को विवृत करता है कहानी के लिए आवश्यक है। कुछ कहानियाँ केवल मनोविश्लेषण तक ही अपने को सीमित रखती हैं उनको पढ़कर न तो क्या का पता चलता है और न पात्र या घटना का क्रम यातूम होता है। निस्संदेह उनके विषय में गंभीरता से सज्जी है। गायब ऐसी कहानियों का प्रयोग सामान्य कहानी में भी न होना है और उनके लगभग तथा रचना प्रक्रिया को भी हम भी न रुक से देखते हैं। मैं यह तो नहीं मानता कि कहानी में मनोविश्लेषण को स्थान नहीं होना चाहिए किन्तु पाठक का पूरा मन भ्रम करने वाला निरर्थक मनोविश्लेषण कहानी बला को दूषित अवश्य बना देता है। सफल कहानीकार का उस साधक और सोईय स्थान देना चाहिए। यदि कोई कहानी में की गहराई में पठ कर भी कथानक को विस्मृत नहीं करती तो उस स्वाकार बरी में आपकी सकोच क्यों होता है? यदि कहानी को वृत्त मनोरंजन का स्थूल माधन मान लिया जाय तब तो मनोविश्लेषण का भार नहीं पड़ा सकेगा। आज की कहानी की सज्ज बड़ी सामर्थ्य यह है, उगन सामाजिक तथा व्यक्ति चेतना के बिना घरातला का अवगाहन किया है इन के निरो ही मनोविश्लेषण पद्धति और सकेतो तथा प्रतीको की प्रयोगनी विशिष्ट चेतना का परिणाम है। जिस मनोविश्लेषण को व्यथ का भार समझा जाता है वही इन कहानियों का मरुड है। आज की कहानी में सामाजिक परिवर्तन के विविध स्तरों और जाति के बिना न घनो की अभिव्यक्ति देने का सज्ज माध्यम बन रहा है।

आज के कहानी लेखक सदमों का खोज में व्यस्त है और कहानी के माध्यम से यह खोज जारी है। जहाँ कहानी अपने भीतर व्यक्तिगत सामाजिकता के बोध को समाहित कर प्रागे बढ़ रही है उस मन की अतल गहराइयों में घुमना ही होगा।

नई कहानों पर आजसेम प्रधान हान का आरोप भी लगाया जाता है। इस सम्बंध में समाधान करने में पढ़ने यह कहना चाहूँगा कि कुछ कहानी प्रधान पत्रिकाओं का उद्देश्य हो रखे बुक स्टान की वित्री है। उनका लेखक भी उसी कोटि के हान है। नई कहानों की भावभूमिया इतनी विविध और व्यापक हैं कि उनमें यदि यौन सम्बंधों का वर्णन मिल जाएता चौंकना नहीं चाहिए। बात दरअसल यह है कि हिन्दी में आजकल कहानी की तीन चार दर्जन पत्रिकाएँ निकलती हैं। इन सभी पत्रिकाओं को आप नई कहानों समझने लगे तो यह बड़ी भ्रम होगी। कुछ ऐसे लेखक हैं जो यौन सम्बंधों पर आधारित उत्तेजनापूर्ण कहानी लिखकर माघारण पाठक का मनोरंजन करने हैं या मनोविकार की सामग्री जुटाते हैं। मैं उन्हें नई कहानी का दावेदार नहीं मानता।

हिन्दी कहानी का इतिहास न दुहराने हुए मैं आज के कहानी लेखकों का इस प्रसंग में नामोन्मूलन करना चाहता हूँ। यदि हम नई कहानी को समझना चाहें तो सिन्हा के नए-पुराने लेखकों की सुविधा के लिए तीन वर्गों में विभक्त कर सकते हैं। पहला वर्ग उन लेखकों का है जो पुराने लेखकों के रूप में समादृत हैं किन्तु आज भी कहानी लिख रहे हैं। सब श्री जनार्दन कुमार, भगवतीचरण वर्मा, भगवती प्रसाद वाजपेयी, चन्द्रगुप्त विद्यालंकार उपेन्द्रनाथ अश्व, भमृत्तलाल नागर, यशपाल, मनोहर उपादेवी मित्रा, विष्णु प्रभाकर पृथ्वीसेखर इस वर्ग के अंतर्गत आते हैं। इस वर्ग के लेखक कहानी के बलुगिल के पारखी कलाकार के रूप में स्थापित रहे हैं। धरम, भमृत्तलाल नागर, यशपाल और मनोहर का तो नई कहानी के परिप्रेक्ष्य में भी दया जा सकता है। दूसरा वर्ग उन लेखकों का है जो आज की नई कहानी के समय प्रतिनिधि लेखक हैं उनमें से कुछ विख्यात लेखकों के नाम इस प्रकार हैं—गव श्री मोहन रावें कमलेश्वर राजेंद्र यादव, सर्वेश्वरपाल, भाकण्डेय भमृत्तलाल, भमरकांत, मनु महारी, रमण वर्मा, निमल वर्मा, मोहन साहनी, श्रीकांत, शिवप्रसाद सिंह आदि। इस दूसरे वर्ग के लेखकों की सूची बहुत लम्बी है। तृतीय वर्ग दो दर्जन सक्त्र लेखक इस वर्ग में हैं जिन्होंने नई कहानी को सवारा-सजाया है। इन लेखकों ने कहानी का नई संवेदना सांकेतिकता सम्प्रेषणीयता प्रतीकारमकता और बोधिकता प्रगट की है।

तीसरा वर्ग उन कहानी लेखकों का है जो कहानी की पुरानी परम्परा से भी परिचित रहे हैं और नई कहानी को भी उन्होंने पकट लिया है। नई कहानी के साथ

उनका गहरा सम्बन्ध है। किन्तु अपनी सवदना और साकेतिकता में नए पन के आग्रह की दुर्गई नहीं देते। अवधी भक्तिप्रसाद गुप्त, द्विजेन्द्रनाथ मिश्र निगुण लक्ष्मीनारायण लाल आनंद प्रकाश जैन, श्यामू सयासी, रेणु मादि इस वर्ग के समर्थक लेखक हैं। इन तीनों वर्गों का विभाजन मैं नहीं कहानी के वस्तु-शिल्प का समझन के लिए किया है। इन तीनों वर्गों में अनेक लेखक ऐसे हैं, जिन्होंने कहानी के विकास क्रम की भलीभांति देखा है और अभिलपित परिवर्तनों का अपनी रचनाओं में स्थान देकर सज्जन का स्वीकार किया है भले इस वर्गीकरण को केवल विकास क्रम समझने की एक प्रक्रिया ही समझना चाहिए।

मैं कहानी की भावभूमियों का सचेत में ऊपर कर चुका हूँ। मुझे लगता है कि आज की कहानी कुछ समय रूप में पनप रही है कि इसमें साहित्य की कई रूपविधाएँ समाविष्ट होती जा रही हैं। रेखाचित्र, मस्मरण चर्चा, नीति-रिपा-सति व्यंग्य-चित्र आदि अनेक विधाएँ हम आज की कहानी में प्रत्यक्ष रूप में मिलती हैं। बुद्धिप्रधान फलनाप्रधान और भावनाप्रधान सभी रूपा में इसका विकास हो रहा है। मैं समझता हूँ जगत् यापक धित्व आज की कहानी का है वैसे पढ़ने वाली भी और जगत् तत्त्वप्रतिभा आज की कहानी में है वैसे भी पढ़ने वाली नहीं है। यजनां प्रतिष्ठित धर्मिता जगत् वाता मृत्-पठार व्यंग्य जगत् भारत की कहानी में प्रस्फुटित हुआ है पढ़ने की ही गवां था। आज की कहानी में गांव की नृपण-वामल सवदना भी प्रतीत होती है और नगर-महानगर की घुमन तटप भी। महानगर का मध्य वर्गीय जगत् जिस परिपूर्णता के साथ आज की कहानी में प्रयोजित हुआ है चित्रण नहीं हो पाया था। कहानी केवल ही मुख्य या बंसी में प्रतीत हो रहा है अनेक भावभूमियों और आयामों में फल गइ है। मैं नई कहानी पढ़ता हूँ और वह सब पढ़ता हूँ। मात्र मंथन में मेरा माध्यम न होने से मुझे कहानी में अनेक तटप उपनयन प्राप्त है। मेरी प्रतिक्रिया आपने सवदा निम्न है। मैं नई कहानी में अनेक सम्भावनाएँ देखता हूँ मुझे लगता है कि यदि वस्तु-शिल्प का साथ बढ़ता हो मंथन का स्थान जगत् ही का नीति-चित्र ही की प्रसाधता धार्मिक गान विद्या सिद्ध होगी। मैं यह जान और समझ पाटन वाली कहानी में डमरु अनेक सम्भावनाओं को देकर स्वयं एवं सतुलित परम्परा ग्रहण की है। एक सवदा यह है कि आज की कहानी मौलिक है। या किसी घायल या अनुकूलि गांव है। मेरा उत्तर यह है कि अनुकूलि का प्रान्त ही नहीं उठता। गिला-जगत् और वस्तु-वर्णना में ही आज की सभी भाषाओं में प्रायः एक ही कहानीया निष्ठा जा रही है किन्तु यह प्रचानुकरण नहीं है। यह परम्परात्याग तथा नृपक मूर्खता के ग्रहण के कारण हुआ है। आज की कहानी भाषाओं में एक-सी है। यह भ्रम है कि नई कहानी किसी घायल भाषा की अनुकूलि या नृपल है। मैं अनुरोप दे कि नई कहानी का अनुकूलन अपनी उर्ध्व गति को स्थान में रख कर करना चाहिए किसी भी पूर्वग्रह का ध्यान मन में स्थान नहीं देना चाहिए।

# नयी कहानों की उपलब्धियाः : बारह कहानिया

धनञ्जय वर्मा

हिंदी नवलेखन, विशेषकर कहानी, के ॥ दश में पीढ़ियों का मध्य अधिकांशतः पश्चिमी ही रहा है। मूल्य दृष्टि, प्रतिमान और भावबोध के घरातल पर वह उठ ही नहीं पाया या इस घरातल पर उस दखन की फिक्र लोगों को कम ही रही। नयी या पुरानी पीढ़ी, केवल आयु और कालक्रम के अनुसार विभाजित नहीं होती। जीवन की गति और इतिहास की प्रक्रिया को भी वे व्यक्त करती है। इनका मध्यम मूल्य दृष्टि, प्रतिमान और भावबोध के परिवर्तन के कारण होता है। न किन्तु भ्रम उस समय होता है जब या तो यह मान लिया जाता है कि काल का क्रम रुक गया है और मानवी निर्मात और प्रकृति में कोई मौलिक परिवर्तन नहीं आया है। भ्रम परम्परा और पुरातन ही श्रेष्ठ है या जब नये और पुराने में एक नरतय के सम्बन्ध का ध्यान में न रखकर केवल उनके विरोध की ही समस्या का मूल सिद्धांत लिया जाता है। अन्तु प्रत्येक नया परिस्थिति में सामाजिक सद्म और सम्बन्ध परिवर्तित होत है और नय जीवन मूल्यों की चेतना आगत होती है। एसी नयी परिस्थिति में रचना के संस्कार और प्रेरणा भी बदलत है। यदि जीवन की प्रक्रिया अधिक गंभीरमय हुई (या कि है) तो वही वही पूरा स्वरूप बना जाता है तो यह परिवर्तन जतना जातिरागी होता है कि नया विकास न होकर एक स्वतंत्र उन्मादना अधिक लाता है। यन् नयी उद्भावना नयी पीढ़ी या नया, केवल समय अवधि (टाइम ड्यूरेण) के घरातल पर न पुरानी पीढ़ी में पचक नहीं होती वरन् जीवन दृष्टि और वधारिक-स्तर रचना की प्रत प्रणय और शली में भी दृश्य होती है। यह तो सम्भव है कि समय अवधि की दृष्टि में पुरानी पीढ़ी 'वर्तमान रहे लेकिन निश्चय ही वह नय जीवन और नयी मानवीय वास्तविकता से बट जाती है-अपनी निर्मित दृष्टि, स्तर प्रेरणा, अनुभूति और प्रक्रिया करने के निश्चित संस्कार और स्वभाव के कारण वह नयी जीवन धारा से संगति नहीं बंठा पाती। यह किमी एक पीढ़ी का नहीं, हम सबकी विषयता है। जीवन की धारा होती ही इतनी निम्न और समवती है कि व्यक्तिगतता की नये नये से बटी उपलब्धि और मूल्य का भी छाटकर आगे बढ़ जाना है। य। कोई भी समझ और पवित्र काम नहीं दती क्योंकि प्रत्येक समझारी गति और

जागरूकता से भाग बढ़कर मानसिक बनावट अनुभूति और संवेदना के धरातल जीवन की पद्धति और दृष्टि का हाता है और नयी पीढ़ी पुरानी से इही धर्मों में पृथक् होता है। नयी कहानी में यह मानसिक संघटन भाव-बोध, संस्कार, परिस्थितियाँ, जीवन की पद्धति और प्रतिक्रिया करने का स्वभाव और दृष्टि परिवर्तित है और जहाँ से जिसमें यह परिवर्तन हुआ और हा रहा है वही से नयी पीढ़ी का प्रारम्भ है। यहाँ न तो उम्र का कोई बंधन है, न काल का। और निश्चय ही एक नयी पीढ़ी का (म फिर कहता हूँ पीढ़ी से मतलब व्यक्ति या व्यक्ति-समूह से नहीं है, मूल्य दृष्टि प्रतिमान और भाव-बोध से है) अस्तित्व है चाहे इस कोई स्वीकार करे या न करे। यहाँ नया सापेक्षक शब्द और विभाजन-मात्र ही नहीं है वह एक मूल्य और चेतना भी है। यदि वह सापेक्ष है तो भी काल सापेक्ष नहीं दृष्टि सापेक्ष है। दिवकाल की सीमा के निकट पर ही उसकी परीक्षा नहीं होगी, एकाग्र निर्वाह और दृष्टि ही उसके निर्णायक बिंदु होगा। संवेदना के धरातल और भाव-बोध से ही उनकी पहचान होगी जिसे हम नयी कहानी कहते हैं, वह परिवर्तित सद्भावों में नया भाव-बोध की ही कहानी है। ये परिवर्तित सद्भाव क्या हैं? प्राथमिक युग में समाज की बदलती हुई स्थितियाँ में जीवन का व्यावहारिक पक्ष ही नहीं, अस्तित्व की मूलभूत समस्याएँ भी परिवर्तित हैं। परिस्थितियाँ और पृथक्-पृथक् अनुभव-क्षणों के ऐसे अनुक्रम-जीवन में अनिश्चय और अनास्था का योग, व्यक्तिगत प्रतिक्रियाओं का रूप बदल रहा है। अतः परिवर्तित और परिवर्तनशील यथासौ सत्ता-वस्तु-के विविध रूप उद्घाटित हुए हैं और व्यक्ति (रचनाकार) से उसमें नये सम्बन्ध उस वस्तु से संरचनात्मक विभिन्न भय-राग ही नये सद्भाव हैं। नये नये, बाह्य और अंत दोनों क्षेत्रों में समान रूप से सज्जित हैं। जीवनगत मूल्यों और नैतिक धारणाओं में जो मन्त्रमग्न आया है युद्ध की विभीषिका एवं आग का से राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय क्षत्र में जो अस्थिरता आई है भारतीय स्वतंत्रता के पश्चात् एक नये अनिश्चित और व्यापक उद्वेलनमय समाज का जन्म हुआ है, जो हर दिन अपना रूप-स्वरूप बदल रहा है, प्राचीन और नूतनी निष्क्रिय सांस्कृतिक परम्पराओं को लिये क्षिप्त और प्रवचनामय संस्कार और परिवर्तित मूल्यों का यह युग एक पृष्ठभूमि है जिसमें व्यक्तिगत और विघटन, विगृह्यता और टूटन महसूस करता है। हर संघटन टूटता सा संघटन-ग्रस्त है या वह नये परिवर्तन के अनुकूल नवीनीकरण की प्रक्रिया-पीढ़ी भेज रहा है। व्यक्ति के अस्तित्व काय का स्वरूप और उसकी संवेदना की प्रकृति भी बदल गई है। पापद अंतर्विरोध और जटिलता ही आज के युग की वास्तविकताएँ हैं। युग-जीवन की इसी जटिलता और अंतर्विरोध में व्यक्तिगत की जटिलता और अंतर्विरोध उपजे हैं और हमारे सम्बन्ध व्यक्तिगत और सामाजिक सम्बन्धों में एक अंतर्विरोधी, गुप्तमय अंतर्द्वंद्व समा गया है इससे वस्तु और यथासौ का रूप भी नहीं रह गया है—वह निरन्तर बदलता चल रहा है और हमारी

सृजनारम्भ शक्तियों को चुनौती दे रहा है। आज प्रत्येक व्यक्ति, घटना या परिस्थिति का स्वायत्त एवं स्वयमिद्व कोई महत्व और अर्थ नहीं है, वह एक व्यापक सद्भम और परिवेश का मात्र प्रतीक या प्रतिनिधि है। इसलिये हर जागृत रचनाकार को अपने वातावरण की सम्पृक्त-चेतना की अनिवार्य आवश्यकता है और जब तक रचना के व्यक्ति घटना और परिस्थिति को पूरे सामाजिक और व्यापक सद्भम सायकता नहीं, तब तक उसे नयी कहानी को वस्तु बनने का अधिकार नहीं, क्योंकि नयी कहानी का भाव-बोध भी बदल गया है। वह आज की परिस्थितियों में (से) उदभूत मानवीय वास्तविकता को समग्र चेतना और भाव-बोध की कहानी है। यह चेतना और भाव-बोध सामयिक जीवन और अस्तित्व के आंतरिक प्रश्नों से समुक्त, एक व्यापक संवेदनशीलता को उपज है। वे निश्चित नहीं गतिमान धार पाये हैं और जीवन के भोग और अनुभव के घरातल पर ही उन्हें पाया जा सकता है। युग के जटिल प्रश्न और उसकी समग्र व्यापक जटिलता को इसी घरातल पर समझा जा सकता है। अतः रचनाकार की अंतिम संवदना और अनुभूति ही उसका भाव-बोध की परिचायक है।

नयी कहानी एक ऐतिहासिक सद्भम की उपज है—नरतय के घरातल पर और परम्परा से पृथक् एग्रेष निर्वोह और दृष्टि के अंतर के कारण। उसने युग के अनुभूत वास्तव के सारे अंतर्विरोध संवचना और संसर्गिता की भोगा और अभिव्यक्त किया है। वह एक साथ ही मूल्य-भंग और मूल्य निर्माण की कहानी है—तथा उसकी सांस्कृतिक परम्परा में जिन उपलब्ध सत्तों और तथ्यों की स्वयमिद्व मानकर विवरण और वर्णन से सजा दिया गया था या जिन्हें कटे-छटे विचार-विन्यास और निष्कर्षवाद का जामा पहनाया गया था उन्हें (उपलब्ध सत्ता और तथ्यों की) नयी कहानी ने अधिक गहराई में जाकर, अधिक व्यापकता और विस्तार में स्वयं और तटस्थ दृष्टि से देखा और उनकी प्रक्रिया दी है—ताकि उन प्रक्रिया में होते हुए पाठक भी उन तक अनुभव और अनुभूति के घरातल पर पहुँच सकें। व्यनीत सामाजिक जागरूकता जहाँ एक विचार-पद्धति या प्रणाली एवं 'कडीगाड मस्तिष्क' का परिणाम थी वहाँ अब वह एक व्यक्ति की सम्पृक्त-चेतना और निरंतर भोगन हुए सेल्फ का परिणाम और प्रक्रिया है, इसलिये जहाँ पहले वह आरोपित 'नगती थी वहाँ अब वह हमारी चेतना, संवेदनशीलता और अनुभूति का अविनाश्य अंग है।

महिन नयी कहानी में रचार्थमय मूल्यों का जितना और जमा विकास हुआ, उसके समानांतर आस्वाद का घरातल और मूल्योन्नत का विवेक जागृत नहीं हो पाया, इसीलिये नयी कहानी के अस्तित्व पर गवा करने वाले पुरानी पीढ़ी के ही नहीं नयी पीढ़ी में भी मितन है। उन पर की गई चर्चाओं की आधारता

के कारण यत्नियत या वर्गीय विद्वान्ता के बुरासे में एक पुरी की पूरी उपलब्धि के बारे में भ्रम फैला हुआ है। इस अग्रजकता और पक्षधरता का भी एक कारण है। दर-असल पिछले दशक में (ही) नयी कहानी में इतनी विविध और विभिन्न तथा विराधी दिशाओं का एक साथ सम्मिश्रण किया है कि एक-दो-एक नयी कहानी की सम्पूर्ण अविवृत धारणा नहीं बन पायी। नये या पुरानी अच्छा या बुरी घूम फिर कर चचाएँ वहीं केन्द्रित रही आई और न चाहत हुये भी खान खींचने लगे बग बनत गए। इससे छुट्टी मिली तो आलोचना की नई भाषा पचाव करने के लिये चर्चा सकेत-प्रतीक विम्वर-गिरप में भीमिक्त हो गई और कहानी सबधी मूल्यांकन की कौन कहे आस्वाद का भी कोई घरातल निश्चित नहीं हो पाया- क्योंकि कहानी के अलावा ये हो नहीं जाय कि कविता की यात बरत करते कहाना में लगे गये थे। रचनात्मक घरातल पर एक जीवित और जीवत विधा के रूप में कहानी के मूल्यांकन में इसीलिये आज भी अ-प्रवस्था है। कुछ इस स्थिति के कारण और कुछ अपने ही स्टैंड के का अस्टीफाई करने में लिये नये बन्धन की तरह नये कहानीकारों ने आलोचना के आपाप धर्म के रूप में स्वीकार किया (रचनावा के द्वारा प्रस्तुत प्रतिमाओं और दृष्टिगत उसकी रचनाओं के सद्भ में तो मन्त्रपूर्ण हो सकता है लेकिन समग्र मूल्यांकन और समीक्षा के घरातल बह नहीं हो पाता) इसी का परिणाम है कि एक प्रवृत्ति और धारा दूसरी के प्रति सशयालु है और यही स्पष्ट नहीं हो पा रहा है कि नयी कहानी का प्रतिनिधित्व क्या है? मैं फिर कहता नयी कहानी कोई प्रवृत्ति विशेष और धारा विशेष नहीं है वह आज की परिस्थितियाँ में (तो) उन्मूलित मानवीय वास्तविकता की समग्र सवदना सचेतना और भाव बाध की कल्पना है यहाँ जिन प्रवृत्तियों कहानियाँ और तत्वों का उल्लेख किया जायगा वह नयी कहानियों पर मात्र एक विहगम दृष्टि एक मिहावरोधन है अतः इसका जो भी सीमा है वह मरी अपनी सीमा है नयी कहानी की नहीं। इस सीमा के बाहर भी नयी कहानी का अस्तित्व है इसका इकार नहीं किया जा सकता लेकिन उमम कुछ है जिसमें अभी पूरा और मायक जाना है।

## (१) परम्परा और फला सचेतना प्रतीक्षा

राजेश माधव

अपने आसपास पुरानी परम्परा में पृथक् रंगन या उसका विकास करने की एक साधारण और जागरूक चेतना राजेश माधव में है। पिछली परम्परा की व्यापक गामाणित्र जागरूकता ने जहाँ माधव की रचना को एक प्रगतिशील स्वभाव प्रदान किया है वहाँ उगरे आधुनिक भाव बीज और ज्ञान की परिष्कृत और सूक्ष्म सज्जता भी माधव में समुक्त की हैं। वे गामाणित्र ज्ञान और समन्वय का एक

एक ही स्ति में उठाने की बजाय उसकी समग्रता और व्यापकता में उठाने के आनी २  
 और सपर्यो का चेतना के अधिक से अधिक स्तर और आयाम में दर्शन के । माय ही  
 एक व्यक्ति की ट जेड़ी या उसका मानसिक इर्दालन और अंतर्विगंध भी वहां उतन  
 झूल घरातन पर और विभक्त इकाई के रूप में नहीं आता । उमक बहुत बारीक  
 जे, व्यापक परिग्रह में अनप्रेरित और अंतर्प्रयित होत हैं इसलिए उमकी  
 कहानियों का निवाह बहुत सूक्ष्म और प्रभाव बनावट की ही तरह जटिल होता  
 । य अनेय और जनद्र में अधिक सामाजिक यथायक संगत है लेकिन यशपात  
 नकाय के नेमका में अधिक गहनतम अभिप्राय के भी । यही तरह अपन सम  
 आनीना में जहां वाय्यात्मक रूप और विषय सम्बन्धी एक-रमता में के अद्विज  
 बंधिष, जीवत और सामाजिक दायित्व-बोध पूरा हैं, वही चकहरी घुनावट वाली  
 स्थो-मुक्त कहानिया के विषय और पात्रा की तरह और परिवेश की आंतरिक चुना  
 नेका में बतगन की विवशता भी वहां नहीं है । दरअसल के न दोना ही रचना  
 मचेतनाका के बोध रूप में ही की तरह है और यही पूरकपरम्परा का विकास और उसकी  
 निरंतरता का साधक करना है । तेन-विनीत जहां लक्ष्मी बंद है पाम फेन  
 राति के माय ही 'प्रतीक्षा 'टुटना गुणव' और एक कनी हुई कहानी को रखकर  
 भवा जाय ता यह बात स्पष्ट हो जायगी । यधर उनरी कहानिया एन मन स्थिति  
 में लेकर अधिक कनी है और 'प्रतीक्षा एक विरोध मन स्थिति की कहानी है ।  
 उमका र पात्र सुंदरी जिन्हा जीता हुआ अपन अवसर का प्रतीक्षा में है तबिन  
 मम सबकी पानना आगवा, तनाव और अव्ययन की पीडा पीता ही भोग रही है ।  
 तना के प्रति उमका आनयन, प्रेम और उमक विविध स्तर उमके अंतर्विगंध और  
 प्रत्यक्ष के का नी बतान है । एक आर उमके समनयित प्रवृत्ति है दूसरी आर न  
 मरना काव जमाना है और तीसरी और तन्ति का एक तन्मय सुख साधना की  
 एक अनुमति न जानी है । एक और उमका प्रतीत उम कुतरता है दूसरी और कामा  
 का आगवा उम गान जानी है । एक स्थायी पाप-बोध और स्वमाधिरता की अनुमति  
 उम माय माय है । कभी यह नाना में तादात्म्य स्थिति जाती है और कभी उमके  
 प्रतीत्य में और कभी अपन हा अनेपन की पीडा भागना हूट फेटती है । तेनिन  
 पीता की यह ट्रेजना मनावि-नयन के प्रयाग वाली कम-स्ति की कहानी में  
 प्राग बरकर प्राधुनिक स्थिति के मिश्रबुधन और नतिव मूयो के गोज की कहानी  
 है । यह कवम तिहरी प्रतीक्षा की कहानी नहीं है बल्कि पुना मागे मोरन टही  
 भागन में निवचनर एक एक बिंदु पर गढे योगा की कहानी है ज्ञा आनान ही  
 हिमा नग नतिव घरातन की गोज में घातुन है । कहानी के तीना पात्रा में न  
 तिनी भी नो पात्रा के सम्बन्ध नतिव ननी है और उर तेकर बाद 'मिन्ट' या



‘गिन’ की अनुमति उनमें नहीं है बल्कि ऊपर से नज़र पर तोना ही निहायत व्यक्तिगत स्वाध्याय से अपने अपने अवसर की प्रतीक्षा में है। मूल्य के विषय में या मोरल डिस्मोरल’ से आये मूल्यहीन या अमोराल धरातल पर लड़े घनावन हैं। यह नतिक सत्रमण से उत्पन्न एक वृक्षमण में एक नतिक धरातल की प्रतीक्षा की कहानी है और क्या यह दुहरी जिन्गी जीने की यातना, यह नतिक सत्रमण से उत्पन्न एक वृक्षमण केवल किसी एक पात्र का है ? क्या वह उस समाज की वातावरण का भी नहीं है जिसमें ये पात्र रह रहे हैं ? गीता क्या केवल एक व्यक्ति मात्र है ? यात्र की आन्त है कि वह किसी एक सामाजिक या मानसिक स्थिति को लेकर उसका सारा फावस एक पात्र पर (म) कर देते हैं और उसे ही ‘यूना’ मानकर बाकी सारी पक्ष उभारते हुए उस ही इतनी सम्पूर्णता और समग्रता में चित्रित करते हैं कि लगता है यहाँ ‘वक्ति ही प्रधान है, वह व्यक्ति जिस परिवार और वातावरण से संयुक्त है उसका बहुत अप्रत्यक्ष सूत्र ही बच रहता है। इस दृष्टि से शिल्प के प्रति उनकी अतिरिक्त जागरूकता जहाँ उनकी कहानियों को एक ऊँचा कलात्मक स्तर देती है वही यथाथ की पक्ष उनमें मूल्य के प्रति एक सात्विक द्राह का महत्त्व भी जगाती है।

## (२) युग और व्यक्ति की सापेक्षिक अभिव्यक्ति मूल्य के मासिक मोहन रावेस

उनमें विपरीत रावेस में अपने समय में आत्मा को ठीक से परिचित कर पान के लिए निरन्तर एक पुनर्गठन का प्रक्रिया भिन्नता है। परिवर्तन का चलवती आकाशा, वर्तमान में जीन का स्थान और साहित्य (की वम) और समाज की (अधिक) जीणशोण मर्यादाओं की तोड़ने की उनमें उन्मुक्ति की ध्याम उनमें पहले सप्रह से ही भिन्नता जगती है और परिस्थितियाँ व अनुसार तेज़ी के साथ नया रूप लेते जीवन की घड़वना का मुठने की तड़प और वह मानवीय संवेदना जिसमें लेखन हर घटना और पात्र के साथ एक आत्मोपमा स्थापित करने-प्रमश विकसित होती गई है। जीवन का अधिक समीपी अद्भुत उनमें माध्यम में किसी अतर्विहित परोक्ष यथाथ का संवेत महज़ अनुभूति के साथ कई स्तरों पर स्थितिगत और गतिशील व्यक्तित्व और सामाजिक यथाथ की खोज उसके सत्त्वों का उद्घाटन और अन्त में पूरे युग की कथा-व्यथा अभिव्यक्त करने का प्रयत्न उनकी कहानियाँ का भूत-स्थर है। उनमें युग का सामाजिक यथाथ और वस्तु-मत्त के सत्त्व में जीवन की बहुत तन्मा प्रतिप्रिया बसने हुए विन्वागों की गति देती चेतना धार एक सत्रमणशील दृष्टि भिन्नता है। विभिन्न मूल्यों की एक सन्नान्ति में भी, विषय और ध्येय की गति और टूटने-टूटने विन्वागों की कगारों पर भी एक आन्तरिक मानवीय

मास्था और निष्ठा और दृष्टि का सनेन भी उनकी कहानियों में मिलता है। इसका कारण यह है कि उनका धरातल नितान्त वैयक्तिक नहीं, सामाजिक है, इसका वैयक्तिक लगने वाला स्वर भी मूलतः सामाजिक ही है जिसे कहानी की साकेतिकता उभारती है। बात यह है कि अपने ही पात्रों के बीच कहानीकार एक ऐसा माध्यम ढूँढ लेता है जो कहानी की सारी अंतर्धाना सम्पन्न करा देता है, जहाँ पाठक दसक से आगे बढ़कर स्वयं भाक्ता बन जाता है और कहानी उमकी अपनी मरणा का अङ्ग बन जाती है। यह पात्र या माध्यम ही वह सकेत होता है, जो कहानी को सीमित मर्यादों से उठाकर व्यापक धरातल दे देता है। बिना किसी साहित्य शास्त्रीय "माध्या" के सांकेतिकता का यही विस्तार है और लगता है कि पात्रों और स्थितियों के प्रति एक अजब सी तटस्थता वह भरत रहा है। प्रकृत यथायथ प्रस्तुत करने वाले ललका के माध्यम पर ऐसा ही होता है। वे वस्तु स्थिति और समस्या को उनके सही रूप में बिना उनकी तात्कालिकता और तीव्रता नष्ट किए प्रस्तुत करते हैं।

मलबे का मालिक" में ललक अपने पहलवान या बुढ़े गनी-किसके साथ है? या दोनों में से वह किसकी कहानी है? यह उन दोनों की कहानी होने हुए भी बेचन उहाँ की नहीं विभाजन की विभीषिका से बचे हुए उन मलबे की है जो हमारे सामने आज भी उभावा ल्यों पड़ा है और उसकी चौपट की सदी लकड़ी के रंग भर रहे हैं। रात का आभासी के माध्यम मिली हुई कई तरह की हल्की हल्की आवाजें उसकी मिट्टी में से निकल रही हैं-हल्की लेकिन उतनी ही सजीव। उसमें मलबे का भी अपना एक स्वतंत्र व्यक्तित्व उभरता है और हमारी बेचन उस जड़ से सम्पृक्त होती हुई समस्त उम अतीत में घूमती हुई बार बार वहीं लौट जाती हैं। उसकी अवील में भावनाओं को आदालत करने और सहज मानवीय सबकों को भकभोरने की शक्ति है। रावेन की अथ कहानियों की ही तरह उसका रचाव सांकेतिक और (निर्वाह में) सघन है उसका बेचनवाग में काफ़ी व्यापक और वस्तु के धरातल पर कोई सगमा पता या नपटा र ने जीवन अथवा तटनर कई कई सम्बन्धों और हालतों का प्रकाश है। मूल्य भग और निमायन के बीच की यह कहानी है जहाँ "कई इमारतों तो फिर से खड़ी हो गई हैं मगर जगह जगह मलबे के ढेर अब भी मौजूद हैं जो नई इमारतों के बीच अजीब हो जातावरण प्रस्तुत करते हैं-जिनमें एक बेंचुआ (?) तरसराता है, अपने लिए भूखल द्रव्यता हुआ जरा सा छिर उठता है मगर दो एक बार छिर पटक कर और निरर्थक होकर दूसरी ओर मुँह जाता है। इन सबको स्पष्ट करने की जरूरत नहीं है यह मलबा ही टूटत और टूटे मूल्या की सारी कहानी सुना देता है। अपने पन्नावान की ही तरह हमारा एक वर्ग आज भी इन टूटे मूल्या के मलबे पर उन ही अपनी जागीर समझता हुआ

विनिष्पन्न प्रदान करने वाली रेषाएँ अभी पूरी तरह उमर भी नहीं पाई हैं—किसा की एक, तो किसी की दा या तीन, वस इनकी ही रचनाएँ बन पड़ी हैं, यानी ऐसी कि जिन्हें 'रचना' कहा जा सके । उदाहरण के लिए प्रबोध कुमार की 'गाँव', द्वयनाथ सिंह की 'रक्तपात', रवीन्द्र कालिया की 'नौ साल छाटी पत्नी', प्रयाग शुक्ल की 'भापा', विजय चौहान की 'रक्ति', और काशीनाथ सिंह की 'सुख' । सवेदना और शिल्प की दृष्टि से श्रीकान्त वर्मा के कहानी-संग्रह 'झाड़ी' की कहानियाँ भी इसी काटि में आती हैं । और यह उल्लेखनीय है, कि वय में पूर्ववर्ती पीढ़ी में सब बढ़ होते हुए श्रीकान्त वर्मा ने इसी पीढ़ी के साथ यानी '५६-६०' से ही कहानी लेखन प्रारम्भ किया । निश्चय ही उल्लेख भाग से इन कहानियाँ की विशेषताएँ स्पष्ट नहीं होंगी, किन्तु सरहद की ये चीज़ियाँ हिन्दी कहानी के मानचित्र का कुछ तो आभास दे ही देती हैं । हिन्दी कहानी में वस्तुतः यह एक नई परम्परा है, और ग्याम के लिए इस पर स्वतन्त्र विचार घे गित है । प्रमगात् निर्क इतना, कि यह भा एक मुद्रात है—समायनापूर्ण मुद्रमा ।



# नई कहानी की बात और वक्तव्य

कमलेश्वर

'नई कहानी' पर इधर बहुत बहस हुई है—कुत्र गम्भीर स्तर पर और कुछ स्या हा हीन स्तर पर। बहरहाल नई कहानी हिन्दी में है, और अब इस बिन्दु से पाछ नहीं लौटा जा सकता। ता, जो है उसका जायजा लेना भी आवश्यक है।

'नई कहानी' पर विचार विमर्श करने हुए एक बार यह सुनाई पड़ा कि क्या 'नई कहानी' वह है जो नई उरु के लोग लिख रहे हैं? या वह है जो मात्र भौगोलिक परिवर्तन में नई है?

कुछ लोग जो सतह से देखने में भ्रान्ति हैं उन्हें सिर्फ यह लगना है कि कहानियाँ गहरा कम्ब और गहरी में बस गई हैं और परिवर्तन की नवीनता का ही नयापन बहकृत बनाया जा रहा है। वास्तविकता ही नहीं है। नई कहानी न भौगोलिक परिवर्तन का ही नहीं साक्षात्, उसकी आन्तरिक दृष्टि में महत्वपूर्ण परिवर्तन हुआ है।

जिस समय यह परिवर्तन हुआ, उससे पहले जब और उसका समाज में सम्मेलन में सिर्फ एक पीढ़ी ही नहीं बल्कि रही थी, मात्र उम्र के तफाज्ज ही नहीं थे बल्कि बच्चे सम्पूर्ण चेतना का सम्मेलन काल था। ऐसा नहीं था कि पिताला पुत्र पढ़ रहे थे और पुत्रलोक नये हा गये थे। हमारा इतिहास उन परिवर्तन का प्रारम्भ है जो सामाजिक-आर्थिक और मानसिक धरातल पर पढ़ रहे दरार के कारण हा रहे थे। यह दरार उस मिश्र-कुल समाज को प्रभावित कर रहा था, जिसमें दा ही नहीं जान और बार-बार पीढ़ियाँ एक साथ रह रही थी और अब भी रह रही हैं। जिस अमीर-राजों और साधन सम्पन्न लोगों की मजाना न उन दरार का प्राण्य सुनिपात्रा के कारण महसूस नहीं किया के आज भी नये मूल्यों के सम्मर्भ में उगीं पुराना चाना को लेकर चल रहे हैं, जिसमें औरत-रू जिस है जिन्हीं महज ऐम्बानी है और के आज भी समाज के अतिशय सख्तों के उन ही विरोधी या उनसे उतार हो बनग-बनग हैं जिनमें कि उनका पुराने थे। यह समुदाय सीमित है, पर उसकी चाना निरन्तर ही बही है जो उनका पिताप्राणी का रही है।

इसी के साथ सम्मेलन के नौजवाना का भा एक बहस बड़ा तदका ऐसा है जो भावन-विचारन और जिन्दगी के न के मूल्यों का अन्तर वैचारिक और व्यावहारिक

स्तर पर उतना ही पुरानपनी है जितने कि उनके जीवित अग्रज हैं। कहने का मतलब यह है कि नये विचारों का बहाने करने वाले सिर्फ नई उम्र के लोग ही नहीं हैं उनमें अधिक वय के लोग भी हैं और उनका विरोध करने वाले सिर्फ पिछड़ी पीढ़ी के लोग ही नहीं नई पीढ़ी के लोग भी हैं। यह टकराव उम्र में बँटा हुई पीढ़ियों का नहीं, वैचारिक धरातल पर दो तरह से भोचने वाली पीढ़ियों का है।

नई पीढ़ी के बयाकार नए नागरिक के रूप में प्रवर्ण किया था। इस पीढ़ी के सभी बयाकार मध्यमार्ग से आए थे ऐसे घरों में, जिनके ढाँचे चरमरा कर टूट रहे थे पर जो अपनी पुराने गरिमा में फिर आ भूषण हुये थे वह मध्यमगर्भ अपनी विशिष्टता में आज भी हिंदू बना हुआ है, पर घरों से निकल कर मान वाली पीढ़ी हिंदू नहीं थी। कमकाण्डा से मुक्त, धर्म से निरपेक्ष यह पीढ़ी नये मानवाच्य सन्तुलन की खोज में थी। इस खोज में औद्योगिक विकास और गाँवों की खिलगति न बहुत सहारा दिया। इस विदगी ने चाहे उस नया सन्तुलन न दिया हो पर पुराने में टूटने का बाध्य अवश्य किया। और यह बाध्यता ही नये की पहली चुनौती बनी। यदि जीवन की यह बाध्यता न होती, तो गाँव नये न इतना बचाव भी न होता। वह नया पैगमन के रूप में नहीं, एक अनिवार्य सत्य के रूप में आया था।

नई पीढ़ी के इच्छा न इस सत्य को स्वीकार किया हर स्तर पर। मानसिक बोद्धि, भाषणात्मक—सभी स्तरों पर। भौगतिक रूप में गाँव, शहर, कस्बे के स्तर पर। यह आकस्मिक ही नहीं था कि अग्रजसमूह जगहों में स्थित कहानीकार न नये की इस गाँव की अपनी अपनी तरह स्वीकार किया और इसीलिए इधर के कहानी में अपनी निविष्टता भी आई। यह विविधता भी नई कहानी की एक शक्ति है। कभी-कभी यह निविष्टता उन लोगों के लिए कठिनाई उपस्थित करती है जो आज की कहानी में एक बंधा-बंधाया ढाँचा देखना चाहते हैं। सामाजिक स्तर पर जो ढाँचा टूट गया है वह उस काल में खुद कैसे बचा रहे सक्ता है जिनका सारा ही जीवन है। मानसिक या बोद्धिक भाव विकास नहीं।

मृत्यु शक्ति की नियति है, विचारों की नहीं। विचारों की यह सम्पत्ति परम्परा से ही मिलती है, और उनमें जीत हुए निरंतर विवर्तन और नया हात रहने की अनिवार्यता अपने परिवर्तन में ज्ञान बाध व्यक्ति की सत्य है।

कहानी लिखना व्यवसाय नहीं—विवाह है। अथवा अकेला हाता तो उसे किताब विवास या आस्था की जरूरत नहीं पड़ती। पर वह अकेला नहीं है अस्तित्व में सबूत का एक चतुर्क या दूबानेदार बनकर भी आता जा सकता है (जो किसी भी

रूप में हीन नष्ट है) पर मैं भयक इसलिए हूँ कि उसे भयन व साध-माय ठल भी माना है। यह सकट मर निर सम्पूर्ण प्राप्ति नहीं है—इस सकट के पीछे छिप तत्त्व और रहस्य भी चेतना का प्राप्य है, इसलिए भयन में जीन की कोई वाध्यता नहीं होती, पाश्च देखकर, वर्तमान का बहन कर आगे देखना सहज प्रक्रिया बन जाती है।

बलाया व विकास का आधार ही सामाजिक साम्यवियन अस्तित्व है। यदि यह भी तब उनसे निरपन्न होगा, तो बचत अतविरोध में जो सत्ता ही सम्भव हाता। जो निरपन्न है व उन अतविरोध में मुन की तरह जो भी रह हैं और अपन सनीध उठाये हुए क्रिस्तान का भार उभूव है। यहाँ रहत हुए मीन का छलना ही मरा काम है और इन काम में सारी दुनिया मरा हाथ डेग रही है—आर्थिक, सामाजिक, वैज्ञानिक, धार्मिक प्राप्ति स्तर पर। जो मर निर किमी भी रूप में मीन पदा करता है वह तत्त्व प्रमिथ है इसलिए मरी उससे महमति नष्ट है और उसका प्रतिपादन करने रहना मरा धर्म है।

कहानी लिखना मयन व लिए माना नष्ट है। मानना मयन है ये कारण जो मयन को कहानी लिखने व निर मजबूर करने हैं और यह मजबूरता भी हाती है, जब मयन का अपना मकट दूसरा व सबट से सम्बन्ध हाकर मसह्य हा जाता है या उसका अपना ककगा दूसरा की मयनता में मिन कर मराम हो जाता है।

कहानी मयन को मीनों से जोड़ता है, या यह क् कि मीन से सम्बन्ध होन का सात्कारिक म्यति हा कहाना की गुन्मात है। यह गुन्मात बार बार हुई है और महान कहानाकारा द्वारा हर बार बह बाप हान की म्यति तर पहुँची है।

कहाना की मयन व पोषणापर लिखन बासे मार उन पर म पूठा लगाम बाध झूठी मयनता व दरवाजा पर बँडे हुए धुर्तिर और उनक पगवर 'बसमशा' मयन हा हा सफ है—मसक नहीं। उनक मृत्यु का मयन, जीवन का मयन हाता है। राव की मापता मयारपन्या साधक करने हैं, मयन नष्ट। मयन का जावा इतिहास माप है। इसक समाम अतद्ध मयन का सानी है—मयति और उसका सामाजिकता—मयन का। जहाँ सामाजिकता की कूरता मयति व मयन का दशावा है, या जहाँ मयति के मय की कूरता सामाजिकता व मयन का नाराती है, मयन का मयन। मयनी नयी कहाना नष्ट हा सकती—महा मयन मयन हा हा मयन है। ऐसा मयन, जो किनी मयन का कूरता का मयन मयन करने वाला मयन हाता हो।

मयी मयनी मयन की कहानी नहीं है, मयन की हा मयनी है। और मयन मयन मयन है—मयन का मयन बाध। और इस मयन को मयन मयन मयन

वह विराट मध्य और निम्न मध्य वर्ग है, जो अपनी जीवना शक्ति से आज के दुर्दत्त पकट को जान अनजान भल रहा है। उसका वैदेशीय पान है (अपन विविध रूपों और परिवेशों में) जीवन को बहन करने वाला व्यक्ति। नयी कहानी न इसलिए उस 'ताने उपजीवी' को पनाह नहीं दी, जो एकाएक बड़ा महत्वपूर्ण हाकर प्रेमवाद और प्रसाद के बाद यगपाल की समकालीन कहानी में सहसा घुस आया था। जिसने अपन भूटे अभिजात्य को अस्त्र बनाकर उस विराट वर्ग की नैतिकता और माननीयता का और भी जर्जर किया था—उसके साथ बनाकार किया था। जिसने आर्थिक रूप से विपन्न परिस्थितियों में जकड़, रुकिया में कैसे उस विराट मानव समुदाय के लिए एक व्यक्ति-वादी नैतिक सक्त् सझा कर लिया था जिसने हर औरत को अपन लिए निजन स्थाना था शङ्क गल्लियों में अवलोकन सझा कर सेना बाड़ा था हर पुरुष को हीन-लघु बना देना चाहा था उसे उसके सार्थक परिवेश के प्रति शकालु और सशयप्रस्त करने प्रवेला कर देने की काशिश की थी और क्षणवादी दशन की पीडावादी व्याख्या से हर क्रूरता अनैतिकता और अमानुषिकता के प्रति उसे चीनराग कर देना चाहा था।

नयी कहानी न इस अघड का पहचाना था। तभी उसने जीवन को विभिन्न स्तरों पर बहन करने बाध, उससे सम्पूर्ण वैदेशीय पात्रों की सलास की थी—यथाथ की गलाग की थी जिसकी सांगी हैं वे कहानियाँ जो इस दौर में लिखी गयी—पराया सुख, गदल, धरती अन्न भी घूम रही है जानवर और जानवर, जहाँ लक्ष्मी कब है, आपहर का भोजन, रीफ की गवत, गुलकी बन्नी, गुतरमुर्ग, बन्दू, हसा जाई अरसा, नहा चौट्ट वासी पचायत, पलाकुली, भैंस का कटया, तीसरी कसम, लान की एक रात रहा यही सच है, गुलाब के फूल और काटे, हिरन की आँखें, सिरका बन गया, कस्तूरी मृग, समय, जमीन आममान रक्तपात, फेंस के इपर और उपर, एक पति के नाटक आदि। कहानियाँ और भी हैं और यह भी सही है कि उपरोक्त कहानियाँ के अन्वय न सभी कहानियाँ 'नयी' नहा लिखी है पर यही आज की कहानी की एक सगवा धारा है और कहानियों की इसी धारा से मैं अपने को जुड़ा हुआ पाता हूँ।

इन विद्वत् दस पन्द्रह वर्षों में कुछ 'गजेटेड आनोवर्स' के कारनामों के कारण पणाल प्रगतिशीलता, जनवादी दृष्टिकोण आदि शब्दों से सेतका को परहेज हो गया गाना ही नहा उन गानों से उन्हें डर भा लगने लगा—मेरे लिए वे शब्दों के कारण नग हैं—य मरे गोता है।

हाँ, एक अन्तर्द्वन्द्व हमें मन में रहा है क्योंकि कोई भी विचार अन्तिम नहीं है, और अन्तिम परिवर्तन में, जहाँ मूया का गकट हा, आस्था को फिर-फिर

टोलन की आवश्यकता हा, निराशा से ऊपर ऊपर धरने की स्थिति हो, वहाँ एक भयक का काम बन जाऊँ हो जाता है। इस सक्रांति का धीरे से देखकर, अनुभव व स्तर पर जाकर सवहनसमक स्वर में कुछ कहना ही अपना दायित्व लगता है—और कहानियाँ की 'धोम' का चुनन की यही भयक की दृष्टि भी है। इसलिए जीवन व प्रति प्रतिबद्ध होना भयक का अनिवार्यता है। इस दृश्य—हारन और अनुमाने मनुष्य की गरिमा में मेरा विश्वास है। मुझमें इतना भूला दर्प और दुस्मादस नहीं कि अपनी समस्त पाती का होन, कभीन, अश्लील, विगलित और दृश्य भादि मानकर चल सकूँ। मुझे मुझे हुए मस्तका से सहानुभूति है, हारे हुए पादाभा में स्नेह है—क्याकि मेरी दृष्टि में उनका भुका हुआ मस्तक शर्म का विषय नहीं है, 'शर्म' और क्रोध का विषय है व दुर्दांत कारण, जिन्होंने उनके अस्तित्व के लिए हर तरह के सफट लठे कर दिये हैं।

जिनकी जीत होती रहनी, वे क्रूर हात जायेंगे। इसीलिए मुझे तो लगता है कि मैं हुमेगा 'हारे हुए' व बीच रहने के लिए प्रतिबद्ध हूँ, और यह सब तक रहेगा जब तक सब जीत नहीं जायेंगे और मैं बिल्कुल भयल नहीं रह जाऊँगा। तब मुझे न धारणा की जरूरत होगी, न विश्वास की और न लिखने की।

इसीलिए, कहानी विचार और भावना—दोनों को बहान करन वाली रिया है। विचार व भावना में भावना भावुकता में बल सजती है और भावना व भावना में विचार पु सतवहीन हो सजता है। तब सचेतना की दृष्टि है, जो गहरे यथाय तक उनरने में भग्न दता है। इसलिए बौद्धिकता का मैं कहानी का समय मानता हूँ जो उसे अश्रुगिलित 'गोक प्रस्तावा और 'अपेरे की बौद्धा' से भलग करती है। भगन यथाय का बहान करने हुए, निरंतर भग्नते परिवर्तन की देखने हुए लिखने का प्रयास ही मेरा प्रयास है।

यह प्रयास कभी भुभ या अन्य क्षेत्रों की इतना न बाधता, यदि यह 'नये' से प्रेरित न होना। भाव प्रमाणोंको रूप में लिखन की पहली दार्त ही यह न्यायन या प्राधुनिकता का बोध है। पर प्राधुनिकता मर लिए यही है जो अपने ऐतिहासिक क्रम और सामाजिक गन्दों में प्रस्तुति हुई है—जो प्रमाण का ना ग्रहण करती है, पर भगन प्राधुनिक और बाध प्राधुनिक में निरालत जातीय और राष्ट्रीय है।

पश्चिम का कुच्छ, कुच्छा, भवेनापन, पराजय और हताशा विन्ता का विषय हो सजती हैं, बर्षे नहीं, क्योंकि हताशी कुच्छ, भवेनापन और अस्तित्व का सफट उममे निरालत भिन्न है—यह दृश्य परिवार में उन्मूल है, वह दायिक सम्प्रदाय व दवार में



अनुस्यूत है—हम अपने सलीब स्वयं डोनेवाला की स्थिति में नहीं, हमारा स्थिति दूसरा द्वारा गाड़े गये सलीब पर जबदस्ती लटका दिये गये लोगा की है ।

कहानी हम दूसरों से भयाक्रान्त नहीं करती, उनमें हम संवेदना और सहबोध के स्तर पर सम्बद्ध करती है । नयी कहानी ने बड़ी सूक्ष्मता और कलात्मकता से इस सम्बन्ध-सूत्र का पुनः स्थापित किया है—और कुहासे में लिपटी या धुंध में डूबी वस्तु-स्थिति को बौद्धिक प्रौढता से साकार किया है ।

अमूर्त की अभिव्यक्ति एक खोज है, पर गलत सन्दर्भों में वही पलायन भी है । अमूर्तता सूक्ष्मता की पर्याय भी नहीं है, बल्कि वह बौद्धिकता की विरोधी भी है । अमूर्त की अभिव्यक्ति दना कला का दायित्व हा सकता है, पर अमूर्तता का प्रथम देना पलायन के अलावा कुछ और नहीं है । पिकासो या अन्य निराकारवादी चित्रकारों ने अमूर्त की अभिव्यक्ति दी है, अपनी अभिव्यक्ति को अमूर्त नहीं बनाया है । वर्ण्यवस्तु को विराटता और सूक्ष्मता की सघन संकोचित प्रस्तुति यथायथा धुंधला नहीं प्रखर करती है ।

नयी कहानी इस दिशा में भी प्रयत्नशील रहती है और उसने जीवन की भविलम्बता की अभिव्यक्ति को भी ( मात्र जटिलता या कठिनता को नहीं ) अपने प्रयोगों में शामिल किया है । असफल प्रयोग दुर्लभ और जटिल भी दिखायी दिये हैं, पर सफल प्रयोग स्पष्ट जीवन-संरचना के रूप में आज भी धड़क रहे हैं ।

कला के स्तर पर कहानी बहुत ही कठिन विधा है । हर कहानी एक चुनौती बनकर सामने आती है और उसने सब सूत्रों का समालोचन में नसें फटने लगती हैं—यह कठिन परीक्षा का समय होता है । भागता रहता हूँ यह भागना तब तक चलना रहता है, जब तक अनुभव अनुभूति में आत्मसात नहीं हो जाता ।

अमूर्तता, लामो हुई सांकेतिकता और 'अस्तित्व' का जीवन से ऊपर मानने का पश्चिमी दर्शन, दिमागी भय और बन्हावासी-इन तत्वा को लेकर भी कहानियाँ लिखी जा रही हैं तथा जो नितान्त अन्तर्मुखी होत ज्ञान की नियति से भावद्ध हैं, वे कहानी की मूल जातीय धारा से इसलिए कटी हुई हैं, कि उन में जीवन के अपने सस्कारों की गंध नहीं है । पराई समस्याओं और पराई मानसिकता का मात्र दिमागी आवेग से प्रेरित कुछ भावकों ने इस तरह के भयान को एक 'स्टेटस सिम्बल' बनाने की कोशिश की महा की, बल्कि अपनी मानसिकता तथा अत्युन्मीलमयता के दायर भी बना लिये और उनमें अपने को कैद कर लिया । इस का परिणाम वे कहानियाँ हैं जो आज की व्यावसायिक पत्रिकाओं की मांग को पूरा करने के लिये लिखी जा रही हैं—किन्ती एक चमत्कृत कर देने वाला पाठ्य के सहारे वे कहानियाँ किन्ती 'मूढ़' या

स्थिति के निष्प्रात्मक प्रस्तुतीकरण तक हो जा पाती हैं, क्योंकि उनमें उद्दाम जीवन व किमी पद का अनुभूत यथाय नहीं होता ।

भाज की कहानी ने जब अपने परिपाटीमूढ़ फार्म को ताड़ा, तो कुछ प्रयत्ना में धराजकना भा जाना स्वाभाविक था । यह सिर्फ हिंदी में नहीं बल्कि देशी विदेशी भाषाओं की नयी कहानी में भी हुआ है । समसामयिक विदेशी कहानी-साहित्य की जीवन्त और स्वस्थ धारा से परिचय न होने के कारण हमारे यहाँ भी वहाँ की विगलित और पराजित पीढ़ी की भाषा में भाषाज मिलाई गई और अस्तित्व के संकट को बतलाने में बैठकर 'भेला' और प्रस्तुत किया गया जिसमें भाज की कहानी को लेकर 'भात पारणा' फैली ।

पर 'अस्तित्व' को, जीवन की एक स्थिति के रूप में मानते हुए और यथायुग वाप की सहेजने हुए कहानी की मूल धारा ने जीवनपरकता का नहीं छोड़ा । भाज की नई दुनिया की सचेतना कहानियों के मध्यम से सबसे सशक्त रूप में प्रकट हो रही है । प्रत्यक्ष देश में कुछ ऐसा है जो तबो से भर रहा है और कुछ ऐसा है जो उभर रहा है । इस तीव्र संक्रमण में सही मूल्य का पतनना और उनको अपनी बला का भग बनाना सहज नहीं है । मूल्य और आधुनिक सचनता का नाम पर हमारा यहाँ भी बहुत कुछ ऐसा विश्वास गया है जिसका कोई सम्बन्ध समकालीन जीवन या जातीय जीवन से नहीं है । और न वह व्यक्ति का वास्तविक मनाजीवन का ही प्रतिफल है । विदेश में कुछ बोहेमियन किस्म का सचका की जमान मौजूद है, जो अपनी कुठामा की गिरावट है और अपने विह्वल मनोभाव का बड़े ही चुस्त वाक्या और चौकाने वाली भाषा में पत्र कर रही है—ऐसी भाषा और ऐसे वाक्या में जिन्हें दुबारा पढ़ने पर कोई संशय नहीं रह जाता ।

इन दार्शनिक या अपार पवित्र के तात्कालिक सेवन ने सभी का चौकाना भी और उत्तेजित भी किया । अतः "चौकाना" 'बाध' नहीं होता और उत्तेजना 'गति' नहीं होती ।

चौकान और उत्तेजित करने की उसी क्रिया में हमारे कुछ सेगकों ने भी ह्रास देना और ऐसी मनागामा या स्थितियाँ की जगहियाँ लियी, जो परिग्रह मान चौकाना की ठण्ठी निष्प्रात्मक रचनाओं में हैं । जो निमाणी बहानों को व्यक्ति का नाप स्वीकार कर जीवन में संवेक्षण, कुच्छ, पराक्रम, धनसाँ जुड़े न जाने की पीड़ा को साजसी घुम रही है—यह साज व्यक्ति का सदमहीन मानकर बनती है, जिसे भागे का पीछे कुछ नहीं है, जो अपने एक 'निर्गुण अममृतन दाग' में पूर्ण है ।

विदेशों में भी इस विह्वल दर्शन को साहित्यिक स्तर पर अन्वेषण किया गया

है। इसका प्रमाण वे रचनाएँ हैं, जो वहाँ की प्रभावशाली साहित्यिक पत्रिकाओं में आ रही हैं, मकिन जो हम तक नहीं पहुँचनी।

नयी कहानी के बारे में कुछ चिन्तायें सुनाई पड़ती हैं। पहली बात जटिलता की उठाई जाती है। सखिलप्ट जीवन के कथा सूत्रों या अनुभूतियों की अभिव्यक्ति का प्रयास आज की कहानी में किया गया। हर अनुभूति की, यदि हम ऊपरी स्तर में जरा हटकर बातें करें तो, अपनी लम्बाई चौड़ाई और एक अ यक्त आकार होना है। वह जीवन होना है, उसमें सामो की अनुगूँज भी होती है और इंसानी भावना भी। अनुभूति का उसको इस समग्रता में नयी कहानी ने हो प्रस्तुत किया है, नहीं तो अधिकतर कहानियाँ इकट्ठी अनुभूति का ही जोकर चलती थी, इसलिये उनमें सपाट सीधापन था। आज की कहानी में उसी तरह का सीधापन नहीं, और न पहले की तरह व सपाट है। अनुभूतियाँ को उनकी समग्रता में पकड़ने के कारण नयी कहानी में मासलता आई है, और वस्तु तथा शैली के नये प्रयोगों ने अभिव्यक्ति के ढंग का बदला है, इससे प्रयोगिता का परिवर्तित सीधा रास्ता कुछ खोया-खाया सा नजर आ सकता है, पर लिखित और अ कित कला नये रास्ते की तलाश में अनुभवा के नवीन धरातलों को छूने के प्रयास में, जब-जब भ्रुकलाती है, तब-तब कुछ आकार अनपहचाने से लगते हैं नयी इमारत की नींव पड़ने के बाद पहले-पहल जो आकार सामने आता है वह देवता में अजीब उलझा-उलझा सा लगता है बाद में उसका सौन्दर्य स्पष्ट होता है और जल्लराना के मुताबिक वह इमारत ज्यादा उपादेय मानित होती है।

कला के क्षेत्र में यह सृजन लगभग ऐसी ही प्रक्रिया से गुजरता है और रचनाकार के मानस के धुँधधुँध विचार किम्ब सावक सन्दर्भों में अ कित हान लगते हैं—अपने आकारों के साथ। ऐसे प्रयोगों की प्रक्रिया में कुछ अस्पष्टता कभी कभी रह जाती है, पर सफल प्रयोग जटिलता के गिकार नहीं होते—आज की कहानी के किती भी सफल या सावक प्रयोग के प्रति जटिलता का आरोप नहीं लगाया जा सकता उन्हें, उनमें एक गुलभाव नजर आता है—जटिल और सखिलप्ट जीवन के सूत्र का। इधर की कहानी में अपने को उन अस्पष्ट गुंजलवा से निकालता है, जो मान अभिव्यक्ति या कुण्डलाओं को जन्म देती थी। नयी कहानी का यह एक सक्त पक्ष है कि उसने उनमें जीवन को सम्प्रेषित करने हुए भी, अपनी आंतरिक गठन को बहुत सुवभाकर रखा है और इमोलिए उसका कथ्य और भी अधिक गतिमय रूप में अभिव्यक्त हुआ है। मकिन 'सीधापन और 'सुवभा' दो अलग बातें हैं।

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से सभी क्षेत्रों में एक नवीन उन्मेष की सम्भावनाएँ दिखाई देने लगी थी। हर क्षेत्र में इस उन्मेष के लक्षण भी

आई न्ये धीर व्यापक स्तर पर उसकी प्रतिक्रियायें भी हुई । जन मानस की दकी 'शक्ति' झुकाने लगी और सस्टूति, धर्म, सामाजिक मूल्य और साहित्य — सभी में नया कर सकने का इच्छा तीव्र हाती गई । साहित्य में यहाँ 'नया भावबोध' का प्रारंभ स्वाकारा गया और आधुनिकता को एक आवश्यक लगाना माना गया ।

साहित्य में आधुनिकता की मांग एक मजबूती मांग थी लेकिन यह आधुनिकता क्या ? क्या यह समकालीनता ही थी ? क्या कि कुछ स्तर पर समकालीनता को आधुनिकता माना गया है । लेकिन समकालीन जीवन मूल्य या विचार आधुनिक हो, वह आवश्यक नहीं है । 'आधुनिकता' एक सम्मेलन मूल्य नहीं है । यह परम्परा का नाम नहीं आया जा सकता है । यह एक ऐसा मूल्य है, जो जीवन को सामकियाँ में नष्ट से जाहता है ।

आधुनिकता एक ऐसी मानसिक शक्ति है, जो अपने परिवर्ण और माद का मन्तर समझाया से उत्पन्न होती है और समकालीन जीवन को मन्तर है । सुन्द-सुन्द मानव मूल्य में सन्धानों और मानवजान हात हुए भी आधुनिकता का स्वरूप अपनी जातीय विवेचनाया से अपने नहीं होगा । जातीय मन्तरों के होते हुए भी हम इसी उद्देश्य है कि वह विजातीय गुणा का अपने में समाविष्ट करने की शक्ति रखती है । लेकिन आधुनिकता की इस उद्देश्य का दुरुपयोग या गलत बोध भी हो सकता है ।

स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद कहानी के क्षेत्र में एक उन्मेष दिखाई पड़ा था साम- गीर से सन ५० के आसपास । यह उन्मेष एक अनिवार्य स्थिति थी । पर इस उन्मेष माप ही आधुनिकता का रूप में व्यक्त होती दिखाई दो — जगत परम्परी के रूप में और दूसरे माप का रूप में । जगतपरम्परी ने आधुनिकता का नाम पर निरवकाश जातीय मन्तरों का आदर और इस मार्गक मूल्य का समाज के मन्त्र से कटकर नकारत व्यक्तित्व 'अप' दिये और अपने लिए 'स्वातन्त्र्य' की मांग की — अर्थात् दूसरी ओर कुछ साहित्यकारों ने आधुनिकता का समाज के नये मन्त्रों में आजा और अन्तर्गत रूप से जीवन का प्रति आस्था की मांग की । नये कहानी की सामरिक शक्ति मही आस्था है — जीवन के प्रति और जीवन का सभी मन्त्रों का प्रति ।

कहानी विभागी समस्याया का समा करत आगेति सामाजिकता की ओर का, अन्ति सामाजिक और समाज से सम्बन्धित स्थिति का समाज बनाना का आरम्भ है । यह आशा कहानी से समाज बोध की ओर नहीं, बल्कि समाज बोध से कहानी की ओर है ।

'नई कहानी' शुरू से समाजपरत, समाजयमा और प्रगतिशील मूल्यों का प्रति-

समर्पित रही है । वह किसी गोष्ठी या भव पर एक प्रस्ताव के रूप में : हाकर सृजन के स्तर पर नहीं उठती है, उसका अपना स्वाभाविक विकास जिसके बीज प्रेमचंद और प्रसाद में थे । यह आकस्मिक नहीं था कि नयी कहानी के साथ ही प्रेमचंद, प्रसाद, यंगपात आदि की कहानियाँ के प्रति दुःखी बदला था । 'साप', 'जयन्ते', 'पठार का घोरज', 'होलीवुड की बत्तलें', 'एक 'एक गो' आदि ने 'पूम की रात', 'कपन' शतरंज के खिलाड़ी आदि कहानि आग्रह (एम्फसिस) प्रियम्वद गया था । यह आग्रह अपनी पूरी गरिमा के साथ कहानी के उदय के समय ही बदला था । और यह बदलता आग्रह मात्रसवांगी हासिक दृष्टि और युग की सन्नति की ही देने थी । हमारे समय की यथाथ म और संवेदना की हा देने थी, जिसने एक पूरी पीढ़ी को आध्यात्मिक, नैतिक भौतिक स्तर पर आक्रांत किया था ।

हैं नयी कहानी ने अपने जातीय, राष्ट्रीय सदमों से अपने को अधिक था अपने समाज के मानविक आर्थिक और नैतिक रूप से प्रताड़ित, दलित और दूटे हुए पात्रों को ही सहानुभूति और संवेदना दी थी । लोक जीवन से सीधा स जाड़ा था । नई कहानी के लेखकों ने उस 'यथाथ संकट' का भेला था, उसे प्राप्त किया था जो युद्ध और विभाजन के बाद एकलौट था पड़ा था, और जिसे बहु-व स्तर पर वह विविधता नई कविता वहन नहा कर पा रही थी, जो बना क्षणजीवी और लघुमानववादी होती आ रही थी ।

'नई कहानी' ने अपनी स्वरा में कुछ गहन रास्त भी अपनाए, कुछ कु और शृंगलका को भी गायद पनाह दी । वह सब इसलिए कि उसका भा-तब नहीं था और वह समय भी ऐसा नहीं था जब प्रणिगामी लेखकों का ही अपनी प्रवृत्तियों का स्पष्ट मुखरित कर पाया हो । वे प्रणिगामी संस्कृति भी एक आ-अन्तर्द्व के गिहार थे, और उनका अन्तर्द्व स्पष्ट होने के लिए कुछ और-संगता था । जैसे-जैसे उनका हृदय खुलता गया और उनकी आस्थाएं प्रकट-गयीं वे अपने भाव लघुकाहनों' के पादोलन में प्रविष्ट होते गये और अपने 'बीचन' को ही अपनी सार्थकता समझ बैठे ।

और ऐसे समय जब कि 'नई कहानी' अपने जीवन-साथीय भू-या को परि-रूप से घोषित कर, अपने किन्ति मटकाव में निरंतर प्रगल्भ पर समस्त प्र-गीत और यथार्थपरक भू-या का लेकर चल रही है—आ गिवदानमिह परिहान की तरह आगे हैं और एकाग्र सम्बन्धी मो-ध बाद चीन उठे हैं । नई बार साम्य-इस प्रगाद में रागनियाँ हुई हैं और अब-अब यह रागनियाँ हुई हैं, तब-तब चीत्कार करने, डरावने प्रेतस्वर मुगारि हुए हैं, और उन्होंने उन रागियों को बुन-

हा दम बना चाहा है।

श्री गिवदानसिंह चौहान आज यशपान, अमृतलान नागर भगवतीचरण वमा, क, विष्णु प्रमाकर, इन्दनवन्दर, राजेन्द्रसिंह वेदी आदि को मायत्रा देने की सहिष्णुता का है, जब उनकी परवर्तों ( नये कहानीकारों की ) पीढ़ी और पाठक मनुष्य श्री गान से पहले समादर सहित उनका कृति का जायत प्राप्ति मान चुका है। और प्रमाण में श्री चौहान वरमान तथा भविष्य की ओर पीछे किये हुए कुछ ऐसी बातों में श्रीपत्य के साथ खड़े हैं कि मेरे मातृक को माना मेरे महर्मा व अस्तिमाना

जिस समाजपरक यथार्थवादी धारा के लिए श्री चौहान अपने विद्वत् आवेग मानुन लिख पड़ रहे हैं—माहिम मे वह कहीं और कौनसी धारा है ? वह कौन सी धारा है, जो मान समर्थ कृतिधाराओं व साथ वैचारिक और मन्त्र के स्तर पर न मूल्या व प्रति समर्पित है ? आज कहानी की वह कौनसी उपलब्धि है जो मृगम, रणु, भौम साहनी, राजेन्द्र मानव मारण्डेय, अमरलान, कमल जीनी, राजा सोबनी, हरिणकर परमाण, मन्त्र भण्डारी, सम्मी नारायण सान, गिवप्रमाण, राजा प्रियवदा, दीपक मन्त्रिणी, गरु जाधी, राजेन्द्र भवर्मा, गणि विवारी, मन्त्रका श्रीवास्तव, रमेश वती गानी, धनदयाम सेठी, धरद जागी, बीरेन्द्र म— गाना आदि व कृति से अधिक प्रगतिशील और मानवतावादी मूल्या का सहज र सामने आई है ? या भविष्य की वह कौनसा धारा है जो प्रयाग युक्त विजय दिन, धमनासमण युक्त, मधुकर गगार, धरद देवदा प्रवाणकुमार महन्द्र मन्त्रा लार्थसिंह, रवीन्द्र कानिया, मानरजन, गगाप्रमाद किमन, परेण दशनगुप्त, से० रा० श्री गिरिधर किंगोर एस० सान, सुनील कुमार अवध नारायणसिंह, मधुकरसिंह लकाउ, कानीनार्थसिंह, प्रेम कपूर ममता अवधान, मेहकमिता परवज, भोम गारी, मण्ड, महन्द्र, नरप्रनाथ आदि व आतिरिक्त उन्हें अधिक सम्मानना पूर्ण आई रही है।

यह पूरी-की-पूरी पीढ़ी, मात्र कुछ वर्षों व अंतराल से मान व बावजूत उही तिरि और बाह्य यथार्थवादी मूल्या को लेकर नये साथ और नई विगाभा का साज धम्य है।

मन्त्री मानसिक बनासट म जा कदासार कतावादिया और दम्भ्यमानिया व धि निरुध मे व जरा ज्याग आगमानी व, और आतिर दम्भ्य के दम्भ्य करन मानसिक निसमा की कहानियां निरन की ओर ही ज्याग दम्भ्य मे। आगम की ७५ गाना हागे हो जाता है, ता कुछ कुछ जितम्मा-गा दन जाता है और धनजान ७५ कता व निर का प्रतिमान करने जाता है। उमका जीवन्त समय समान्त हा ७५

है। उसे प्रस्तुत करने वाला घेसक साहित्यिक सन्धासी के दर्जे तक उठ जाता है। सन्धास, चाहे वह जीवन में हो या साहित्य में—एक तरह का प्रबुद्ध पलायन ही

व्यथ और कला ज्ञाना ही स्तरा पर नई कहानी न अपने को जीवनप विचारधारा से जाहकर विवमित्र किया है। यहाँ एक भ्रम हो सकता है, 'विक्रम १८८८' शकुर। 'यत्तिपरक धारा क सन्ध म यही शब्द 'अलगाव' म बदल जाता यानी नई कहानी न उस यत्तिमूलक धारा से अपने को तोड़ा या भलग किया। अलगाव का देखना और समझना बहुत आवश्यक है।

'यत्तिपरक कला की माँग थी कि 'यत्ति का उसके आन्तरिक परिवेश में आए। और उभी क भातहत कहानीकार गृह्यतम रहस्या की खोज कर चमत्कारी मतीज निकालने लगा विशिष्ट की खोज की गई और उसी का प्रवपण। व्य का समाज सरिता क प्रवाह से निकालकर खुदबीन के नीचे, एक काँच की सतह रखकर ये बिस्सपणु किये गए। हमारे उन कहानीकारा न 'यत्ति' के रेशे रेशे उ कर रख दिए यह पोस्टमाटम होता रहा और 'यत्ति क जहर की 'रिपोर्ट' प्रकाि होनी रही उन धक्को ने उस जहर की कोई पहचान नहीं बता पाई जिससे मान की मानसिक दुनियाँ दूषित हा रही थी और वह कुण्डा, पराजय, अवेलापन, स अनिन कुण्डा आदि से प्रमित्र हो, तर-तरह की मोना का शिकार हो रहा था।

विगीप की पहचान एक बात है और विप खाने की मजबूरी क कारण। पहचान बिलकुल दूसरी बात है। नई कहानी ने अपने दृष्टिकोण बदलकर, कारण तरफ दल किया। इसीलिए नई कहानी वहाँ से शुरू होनी है (एक नये दृष्टिकोण माय) जहाँ पहल की कहानियाँ समाप्त होनी थी।

'नई कहानी' क सम्बन्ध म एक भ्रम बहुत ज्यादा है—सोच समझते हैं यह भी 'नई कविता' की तरह का काई आन्दोलन है। नई कविता और कहानी' क भाव जगत म भौतिक अन्तर है। नई कविता की अनास्था, पराजय अवेलापन, कुण्डा आदि उही अय सदमों म नई कहानी की मानसिकता का म ग न ॥ जिन अयों में वे नई कविता में हैं। नई कविता के व्यति का अयनापन और कहानी क पात्र का अवेलापन एक-सा नहीं है उनको कुण्डा और अनास्था भी प्रव है। चिन्हात नई कविता की मानसिक बुनावट उन व्यक्तित्वादी कहानीकारों के जग निवट है जा अपने अन्त मधर्ष से जूझते हुए प्रबुद्ध पलायन कर गए—'नई कहानी फिर उस बड़े ह्ये व्यति को सचेत रूप से, मूल जीवन की धारा से जोड़ा और विस्व मामाजिक परिवर्ण म उसका चित्रण शुरू किया। अजेय की 'रोज' कान्ती की नायिका जहाँ बेठी हुई थी, वहाँ उठकर, अमरवात की 'दापहर का भोजन' की नायिका

राम गुरु किया और अपने वैयक्तिक दुख का दुख न मानकर समय का दुख का भना  
 राम भगवतिरु किया और भव वह सब लागे व भाव रात का भाजन जुगन की  
 उलाह में धवला बड़ी है। अनेक की नायिका अपने दुख में झकली थी, पर भगवत्काल  
 की नायिका अपने दुख में झबनेवा होत हुए भी, सबव दुख से जुड़ी है। नई कहानी में  
 यह प्रमाण मचेत प्रमाण के फलस्वरूप है—मृत प्रेरणा जनिता भावस्मिता व कारण  
 नहीं। यह मचेत प्रमाण ही मुक्ति है, और उस मुक्ति न हो उसे नया बनाया है।

नई कहानी व उन्मेष व दा मूल कारण था। स्वतन्त्रता प्राप्ति व भाव-भाव  
 कहानी की मून धारा नारे लगा-लगाकर और मुरझ उगा उगाकर एक चुका था। (यह  
 समय उस काल में जरूरी भी था) और कहानी की व्यक्तिवादों धारा समय का  
 समस्याओं की जवाबदेही से कतराकर 'नीलम दग की कथा' का साज में लगा हुई थी  
 और उसका एकगिना न पाठक को उठा दिया था।

दूसरी और कविता व क्षेत्र में छायावादी की बामनी भावधारा और इतिमता  
 में उलट कर जो नई-कविता नय मान-मूल्या का शहर फिर से जीवन की ओर उन्मुख  
 हुई थी (जिसका मूल स्थान विद्या का सचनना थी) और जिसका प्रतिनिधित्व राम  
 गैर बहादुर सिंह मुक्तिबाण, नरेन्द्र शर्मा गिरिजाकुमार यापुर नागाडुन, बदार,  
 नरेन मेहता आदि कवि कर रहे थे वह प्रयोगवादी की व्यक्तिमूलक चेतना के सैलाब  
 में एकएक बिबर गई थी और उसका मून स्वयं जीवन में विमुख हो भूतचेतना  
 की घट गृहमा में गू जाती सामनी भावार्थ का हा गया था।

नई कविता का मूल स्वर विघटन की पीड़ा, पलायन, व्यक्ति का दुख, ललवाणी  
 ज्ञान और पुनः से भर था—जो इन्सान का लघु और कीड़े मकोड़ा में भी हृदय  
 मानकर अपने में नृप्ति पा रहा था, जो मनुष्य को उसका इतिहास से सम्पृक्त कर  
 लन में विवास नहीं लगा था, बल्कि उसे एक निराल धमम्पुवन इवाई व रूप में  
 प्रस्तुत कर रहा था। वह समय की धारा का नवाहन नाम 'नयी व द्वीप' व रूप में  
 अपनी एकाधिक मता की घोषणा कर रहा था और निरुद्ध व्यक्ति की पीड़ा की  
 अपनी दृष्टि और अपनी ईमानदारी में प्रतिबिम्बित कर रहा था। नई कविता की यह  
 दृष्टि ही दूधित और नीमिन थी, जो गणित हान जीवन की परमराज, गर्भ गुहार,  
 भाव विस्फोट, बह्मशाही और धर्मो ह न जाने के दुख का ही देन रही थी। कुछ वर्षों  
 तरह, जैसे किसी दुपटना में धर्म साधन ज्यों, धर्म नई समा अपनी निम्नह  
 मता के धर्ममा में विजन और विगिनित होत है।

नई कहानी उस बह्मशाही की कहानी नहीं था। इसीलिए उस भावधारा में  
 उसे सम्पृक्त कहा गया जा सगा। नयी कहानी की दृष्टि अपने मूल्या का गार्भ



कता, बनते सम्बन्ध व सन्तुलन और इतिहास से सम्पृक्त यक्ति की इच्छा प्राप्ति, सुख-दुःख प्राप्ति निराशा और सपना की तरफ था। इसका प्रमाण वे कहानियाँ हैं जो नई कहानी के पहले उभेप के साथ सन ५० के आस-पास सामने आई — 'वीक वी दावत', मल्ल का मालिक, जहाँ लक्ष्मी बंद है, इसा जाई भवेला, तीसरी कमल, फाल सुन्दरी, बन्ना, दोपहर का भाजन, कमनागा की हार, चौदहकोमी पचायत गदन, परिन्द, धरती अब भी घूम रही है आदि। इनके अलावा भी पचासों कहानियाँ हैं, जो इस बात की पुष्टि करती हैं।

नई कहानी में कथानक के हास और अमूर्त चित्रण को लेकर उसके सश्लिष्ट होने जाने की बात उठाई जाती रही है। कुछ ऐसी कहानियाँ और विचार इसपर आये हैं, जो इस बात का भ्रम पैदा करते हैं कि नई कविता और नई कहानी का भावबोध एक ही है। कहानी और कविता के भावबोध में मौलिक अंतर है और उनके स्वर भी पृथक् हैं। नई कविता की कुण्ठा, अन्वेषण, टूटन और पराजय नई कहानी की मानसिकता का अंग नहीं है। इनमें कुछ कहानियाँ में कविता जैसे धुंधले प्रतीक, कुण्ठित विम्ब और निरर्थक रूपक आये हैं। यह ठीक होता है जब कथाकार के पास कथ्य का रूप में या तो कुछ नहीं होता या इतना भीना होता है कि कहानी की मासलता को भेन नहीं पाता—और तब ऐसी कहानियाँ चिपचिपी रोमांसवादिता की बौद्धिकता का आभा पहनाकर पढ़ाई जाती हैं। उत्कट यथार्थ का भेन न सकन का कारण ही यह पताचन है। इसीलिए यह जीवन में भी पताचन है—जिन्दगी से भागन हुए उसका यथार्थ नहीं देखा जा सकता, और न उसकी साथ-जोड़ हाँका जा सकती है।

नई कविता की मानसिकता में प्रेरित कथ्यहीन कहानियाँ 'उक्तिवैविध्य' या वाग्वैदग्ध्य की अन्धा मिसान हो सकती हैं, पर साहित्य के इस लक्षण को हम सदियों पहले नकार चुके हैं।

कवितानुमा कहानियाँ पश्चिमी साहित्य की कुण्ठा अन्वेषण, परम्पराहीनता, हार और अनास्था को हाँ भरकर चर रही हैं, जो हमारी जातीय संवेष्टा का स्वर नहीं है, चाहे कुछ कथा समाज उनमें जातीय गुणों की धीज के लिए बितने हाँ चमत्कारी प्रयत्न कथा न करें। दशा का समाज में मरने हुए और दशा ला-मारर मरते हुए व्यक्ति की मृत्यु में अन्तर है। दाना की मृत्यु अन्तर है। रोगनी का लिए घोघने हुए व्यक्ति और रोगनी को सहन न कर सकन का कारण घोघने वाले व्यक्ति को घोष में अन्तर है। और इस अन्तर का देग सकन की दृष्टि ही आज की कहानी की दृष्टि है।

# आज की हिन्दी-कहानी प्रगति और प्रयोग

डॉ. इन्द्रनाथ मदान

आज की कहानों के मूल्यांकन की समस्या साहित्य की अन्य विधाओं से भिन्न है। जिसके लिए एक विशिष्ट मापदंड तथा मानक की जरूरत है। क्या साहित्य का मूल्यांकन या उसकी प्रवृत्ति का निर्धारण वस्तु की दृष्टि से किया जाये, या शिल्प का मापदंड पर, प्रगति की दृष्टि से परामर्श है या प्रयोग का मापदंड पर समीचीन है ? इस मूल समस्या का मैंने उत्तर ध्यायावादी काव्य की प्रवृत्तियों के मूल्यांकन के सम्बन्ध में उठा कर एक तीसरे मानक की धार सज्जत किया था, जो साहित्य की विधा विशेष का प्रेरित करने वाली उस अतना प्रयत्न जीवन-दृष्टि को मूल्यांकन का मापदंड बनाना है जो वस्तु एक शिल्प प्रगति एवं प्रयोग दोनों का सम्पादित करने की क्षमता से सम्पन्न है जो इन दोनों के मूल में प्रत्येक एक अलग-अलग रूप में प्रेरक प्रेरित है। यदि अनुमानित साहित्य का मूल में उस प्रेरक जीवन-दृष्टि को मापदंड बना कर उसे छोड़ा जाये तो उसका वस्तु-वस्तु तथा शिल्प-वस्तु जो एक-दूसरे में संश्लिष्ट हो कर उभरते हैं अलग-अलग हो सकते हैं। इस जीवन-दृष्टि के दो मुख्य तथा चार गौण स्तर हैं जो प्राधुनिक हिन्दी-साहित्य और समस्त अन्य भारतीय भाषाओं के साहित्य की विभिन्न प्रवृत्तियों का प्रेरणार्थक दृष्टि-दृष्टिगत होते हैं। एक जीवन-दृष्टि का सम्बन्ध व्यक्ति-विशेष, व्यक्ति-समूह, व्यक्ति-समाज, व्यक्ति-हित व्यक्ति-विकास से है और दूसरी का सम्बन्ध समाज-विस्तार, समाज-संस्था, सामूहिक विकास, समाज-संगठन, सामाजिक विकास से है। एक जीवन और जगत का विस्तार एवं मूल्यांकन व्यक्ति-विशेष से प्रेरित मापदंडों एवं अनुमानों के मापदंड पर चलती है और सामाजिक विकास तथा उसकी धारणाओं का व्यक्ति-हित, व्यक्ति-समाज, व्यक्ति-विकास का उद्देश्य से आकांक्षित है और दूसरी समाज-विस्तार, समाज-संगठन का वैश्विक रूप व्यक्ति-विकास व्यक्ति-हित व्यक्ति-समाज के नियमित करने के पक्ष में है। आज राजनीति, समाज तथा साहित्य अलग-अलग क्षेत्रों में इन दो जीवन-दृष्टियों के धार विरोध की स्थिति पायी जाती है। इसलिए इन परस्पर विरोधी जीवन-दृष्टियों में सह-संश्लिष्टता का विकास का सम्बन्ध दो-दो है। इन दो जीवन-दृष्टियों का दो-दो विरोध रूप है। समाज-विकास का एक सामान्य एवं आदर्श-मान्य रूप है जिसकी उपरान्त प्रेम का उपरान्त तथा कहानी-परम्परा में विशेष-विकास काव्य में आलोचना की पुनः



पद्धति में होती है। इसमें सृजनात्मक साहित्य के वस्तु एवं शिल्प का रूपामित और आलोचना के मानों को निर्धारित किया है। इस सामान्य समष्टि चिन्तन का विशिष्ट, वैज्ञानिक एवं यथार्थवादी रूप मार्क्सवादी जीवन-दृष्टि में लक्षित होता है जो प्रगतिवादों काव्य, उपन्यास, कहानी तथा मार्क्सवादों आलोचना के मूल में है। इसी प्रकार व्यक्ति चिन्तन, आदि से प्रेरित जीवन दृष्टि का एक सामान्य एवं प्रादशवादी रूप है जो छायावादी कविता, व्यक्तिवादी उपन्यास-कहानी तथा सीधे-बादी आलोचना पद्धति में मिलता है। इससे छायावादी कविता, व्यक्तिवादी कथा साहित्य का वस्तु एवं शिल्प तथा सीधे-बादी आलोचना के मान प्रभावित हैं। इस सामान्य व्यक्ति चिन्तन से प्रेरित जीवन-दृष्टि जब विगिष्ट यथार्थवादी एवं अतिशय यथार्थवादी रूप में उसी भाँति परिणत होकर मनावैज्ञानिक सिद्धांतों में पुष्ट होना लगती है जिस भाँति सामान्य समष्टि चिन्तन से प्रेरित जीवन-दृष्टि मार्क्सवादी सिद्धांतों से प्रभावित एवं पुष्ट होकर विगिष्ट एवं वैज्ञानिक रूप धारण करती है, तो यह प्रयोग वादी कविता, मनोवैज्ञानिक उपन्यास कहानी के वस्तु-रूप एवं शिल्प-रूप का प्रेरणा एवं आकार देता है और मनावैज्ञानिक समीक्षा के मान-ढाँचा को निश्चित करती है। इस प्रकार प्राधुनिक हिन्दी-साहित्य की विभिन्न विधाओं की प्रवृत्तियाँ और समीक्षा की विविध पद्धतियों के मूल में इन चार जीवन-दृष्टियों का प्रेरक शक्तियाँ के रूप में आँका जा सकता है और इसमें साम्य संयोगवश न हो कर कारणवश है। आकस्मिक न हो कर युग-ान्तना के विविध स्तरों तथा क्षण-के निजी संस्कारों का परिणाम है। इन दृष्टियों का स्वरूप इतना गतिशील भी नहीं है जितना सुविधा की दृष्टि से तथा स्पष्ट करने में उद्देश्य से उद्घाटित किया गया है। एक ही कृति तथा एक ही साहित्यकार की विभिन्न कृतियों के मूल में उसकी जीवन-दृष्टि अन्तर्विरोध से भी प्रसृत एवं आक्रांत हो सकती है। इसलिए कृति विरोध तथा साहित्यकार विरोध का प्रेरित करने वाली मूलचेतना में अन्तर्विरोध से अवगत हो कर ही उसका मूल्य-आकलन अधिक सगत, स्पष्ट एवं स्थायी हो सकता है। इसके लिए पाठक एवं आलोचक की दृष्टि को स्वयं पूर्वाग्रहों से मुक्त होना पड़ता है जिसका आलोचना के क्षेत्र में प्रायः अभाव पाया जाता है और इस अभाव के कारण कहानी-कला तथा अन्य साहित्य विधाओं की प्रवृत्तियाँ एवं कृतियाँ का मूल्य-आकलन एकाग्र रह जाता है।

आज की हिन्दी-कहानी को जीवन की जटिलता एवं मनुष्यता का सामना करना पड़ा है जैसे अस्मिता देने के लिए भाव-बोध के नये स्तरों, सौन्दर्य बोध के नये स्तरों, यथार्थ के नये धारणाओं की उद्भावना करनी पड़ी है। इन नये स्तरों की खोज ने आज की कहानी का नयी कहानियों का सारा देने पर

भी विवश कर दिया है। क्या आज की कहानी पुरानी समय का प्रेमचन्द परम्परा की कहानी है। इनकी मित्त एव स्वतन्त्र है जिनकी नयी कविता द्विगो-कालीन काव्य तथा छायावाद से कट कर स्वतन्त्र अस्तित्व रखनी है? इस समस्या का आलोचकों तथा कहानीकारों ने विभिन्न स्तर पर उठाया है और इसका समाधान अलग दृष्टियाँ स दिया है। इन परस्पर विरोधी मता व मूल में इनकी वही परस्पर विरोधी दृष्टियाँ हैं। इस समस्या पर वाद विवाद उषा आज की कहानी से सम्बद्ध अथ विषया पर विचार विनिमय प्रायः पत्र पत्रिकाओं में उपलब्ध है। इन पत्रिकाओं में कहानी, नई कहानियाँ, लहर, विनायक, कथा, कृति व नाम विविध रूप में लिये जा सकते हैं। इनके अनिर्विक्त कहानीकारों ने स्वयं अपने सपना की भूमिकाओं में निजी दृष्टिकोण का स्पष्ट करने के प्रयास में आज की कहानी के वस्तु-मान तथा शिल्प-मान पर आलोचक डाला है। आज की कहानी के भूमिकाओं के लिए परिमार्गों तथा साहित्यिक मोड़ों का आयोजन भी हुआ है जिनमें कहानीकारों तथा इनके आलोचकों ने इसका अस्तित्व एव महत्व को स्वीकार किया है। इस प्रकार उपनिषद् उमिता की उठाने में इन आलोचकों का योगदान की धार भी महत्त्व करना आवश्यक है। डॉ० नामवर सिंह ने हिन्दी में सबसे पहले आज की कहानी का नया कहानी की मना देने का साहस किया है। एक क्षेप में इन्होंने इस उपनिषद् उमिता की सार्वभौमता का निरूपण करते हुए उसके शरीर (गिल्प) की अपेक्षा उसकी आत्मा (वस्तु) पर धन दिया है। इस धारणा में आलोचकों की निजी दृष्टि का आभास मिलता है जो समष्टि चिन्तन से प्रभावित है। नामवर सिंह भीम साहनी की चीफ की शक्ति कमरेदार की 'राजा निरवधिया' या देहाती जीवन के नये कथाकारों में ही 'वास्तविकता' की 'उपनिषद्' पाते हैं और जिसका अभाव अनेक की कहानियाँ में इन्हें महसूस है। इनकी दृष्टि में गिल्पवादी प्रवृत्ति में कहानी अपने अस्तित्व की सुरक्षा नहीं रख सकती। इनके मतानुसार गिल्पवादी अथवा गिल्प को महत्व देने वाले आलोचकों ने कहानी की जीवन-वाक्य का अपहरण किया है जिसका इन्हें वास्तविक खेप है। इस प्रकार वस्तु एव गिल्प को महत्व देने का विवाद का मूल में लेमकों की निजी जीवन-दृष्टि है। कहानी की वस्तु पर धन देने का उपाय पर समष्टि-चिन्तन तथा गित-गत का अर्थ प्रभाव है और उसमें गिल्प का महत्व देने वालों की जीवन-दृष्टि का मूल में व्यक्ति-चिन्तन तथा सौन्दर्य तत्व का प्रेरण है। इन परस्पर-विरोधी जीवन दृष्टियों का परिणाम स्वरूप एक वस्तु का दो प्रकारों गिल्प की अर्थ मायना देने के लिए काव्य है। इस सम्बन्ध में डॉ० नामवर सिंह का मतव्य है—'नये आद-सत्य का अविध्यक्ति का निरन्तर निर-का मारा मनाया जाता है जिसमें मित्त कहानी में अभी केनय वातावरण अभी

एक यक्ति का भाव रेखाचित्र, कभी व्यंग्य द्वारा यस्त एक चित्रार दिया जाता है और उसे कहानी का नाम दिया जाता है, इस पर डा० नामवर ने विक्षेप आपत्ति की है इसका कारण यह है कि प्रेमचन्द न भी शिल्प को नया रूप दिया था, बेलोड न भी कथानक सम्बन्धी परम्परा का तोड़ कर कहानी का दामन नहीं छोड़ा था। अतः शिल्प का स्वाधीन वही है जो हमका दास है। वह गिल्पगत नवीनता की सीमा को निश्चित करने तथा वाचने के लिए गति का उन्माहरण देत है। कहानी में कहानीपन उसी तरह आवश्यक है जिस तरह गीत में गानात्मकता आवश्यक होगी है। श्रीकांत वमा इस कहानीपन को सम्बन्ध के रूप में व्यक्तित्व रूप लिखते हैं—'कविता में जो लय है, कहानी में वह सम्बन्ध है। आज की कहानी के सम्बन्ध में इस प्रकार गिल्पगत समस्या को उठाया गया है। इसका एक कारण यह है कि कहानी के क्षेत्र में 'प्रयोगवादियों' ने जीवन की जटिल भावभूमियाँ तथा सकुल परिस्थितियों को अभिव्यक्ति देने के लिए इसके गिल्प का निवारण का प्रयास किया है। इनकी व्यक्ति-वित्तन से प्रेरित जीवन दृष्टि डा० नामवर को इंगलिश प्रमाण है कि वह स्वयं प्रचुरन के समान मछली की समाजवादी भाव में अनिश्चित मछली को देखने के पक्ष में नहीं हैं। इनके शिल्प-सम्बन्धी विरोध का मूल कारण गिल्पवादियों का कथ्य है जो व्यक्ति-मरत्य में प्रेरित है। कमलद्वार की 'राजा निरवमिया' में वह गिल्पगत नवीनता इसलिए नहीं प्रकट होती कि इस कहानी में आक-कथा का समावेश है और अज्ञेय आदि के गिल्प प्रयोग इंगलिश नहीं माने कि उनकी कहानियाँ की वस्तु इनकी जीवन-दृष्टि का अनुकूल नहीं देती। वह इस तब के कहानीकारों पर यह आरोप लगाते हैं कि वे इस भ्रम में जीवन की व्ययता का व्यापक रूप में चित्रित कर रहे हैं। मनुष्य के आधार पर निरवमिया का प्रसार कर रहे हैं। इनकी दृष्टि में कहानी का मार्गवता दिना का, अनदेखी स्थिति का इंगित करने में सक्ति होगी है। प्रत्यक्ष की रोज' इसलिए प्रमथन कहानी सिद्ध की जा सकती है कि इसमें किसी गिल्प की ओर इशारा नहीं है। इसमें नारी के रिक्त एक नीरस जीवन की दुस्ती रण पर हाथ तो अवश्य रमा गया है और दुस्ती रण पर हाथ रखना वह का उद्देश्य भी है, परन्तु यह रण मर्यादा को न होकर व्यक्ति की है जो प्र की जीवन दृष्टि का अनुकूल है और डा० नामवर के दृष्टिकोण के विपरीत है इंगी आधार पर इन्होंने माहता रावण का भावार्थ वक्ष का कहानीकार घोषित किया है और इनकी कहानियाँ को घण्टार में जुगनुषों की पकड़ का प्रमाण बना है। रावण का जिन कहानियाँ में व्यक्ति-वित्तन का पुत्र प्रमथ व्यक्ति-

का रस है उसका मन्त्र डॉ० नामवर की दृष्टि में नाण्य है परन्तु इनकी कुछ कानियों का कथ्य सामाजिक चेतना से अनुप्राणित हान व कारण घाताक की विशिष्ट दृष्टि के अनुरूप हो सकता है और इसमें वह यायावर की सतही संवेदना व स्थान पर कहानीकार की गहरी संवेदना का पा सकते हैं और कहानीकार को दर्शक का सना न देकर व्यष्टाका की पंक्ति में बड़ा हान की अनुमति दे सका है। इस प्रकार घालोचन का मूल्यांकन उसरी मूलमूल जीवन दृष्टि से प्रभावित हो कर एकांगी बन जाना है। इसी कारण डॉ० नामवर साहित्य में वैयक्तिक तथा पारिवारिक चेतना का अभिव्यक्ति का ठहराव की स्थिति घापित करने हैं जो इनकी दृष्टि में युग सत्य नहीं है। युग सत्य का स्वभाव गायामक एवं प्रगति वाला होता है और डाक्टर साहब न इसका गति का चाल तथा प्रगति की दिशा का भी निर्दिष्ट कर रहा है। जीवन में शक्ति और मोर्च्य का आधार इस नया शक्ति व जीवन में दिवाई पर और नयी गति की सम्पदाओं की धार आगच्छ कहानीकारों का स्थान जाए।<sup>१</sup> इनका विशिष्ट जीवन-दृष्टि मध्यवर्ग व निर्धन जीवन में सार्थकता नहीं खोज पाती। इस जीवन का सकारण एक भा ऐसी कहानी नहीं है जिसमें जीवन का स्वस्थ मोर्च्य और मानव का गति मिलती हो। इनका निष्कारण जीवन निर्धन है और प्रमाण सार्थक है। यह मत गनुस्मिति का नाम है या डॉ० नामवर निह की मार्भशाने जाइन-दृष्टि का परिणाम है—इसका निरवयव करना कठिन नहीं है। अपने मनवाच के मरीन हो कर वह नागरिक जीवन में इन चरमों का अभिव्यक्ति की भी निरुत्पन्न उगा करने पर बाधित हो जान है जो धमृतराय तथा अन्य कहानीकारों की दृष्टि में अभिव्यक्ति पा सक हैं और जो इनकी जाइन-दृष्टि का चरित भी करन है। अतः इनका कहानी-कला सम्बन्धी मूल्यांकन की निम्न उपनिर्याएँ एवं सामाने हैं। इन्होंने कहानी व मूल्यांकन का एक गभीर स्तर पर अव्यय स्थापित किया है जिसमें उगा कहानी-साहित्य को महत्व भी मिला है। इसका परिणाम यह भी निकला है कि कहानी-सम्बन्धी समाना पुरान आधार का घाता नये घातन पर होने लगी है, बवल गिन्याउ दृष्टि में न होकर वस्तुगत दृष्टिकान ने भी हान लगा है, कहानी-चरित विरगु के गाम्नाय गोत्रे में भावद न हो कर गनिन्य रूप में होने लगी है परन्तु कहानी को समग्र रूप में उगा करन तथा गनिन्य रूप में घातने में ना घाताक का साम्यताएँ परान तथा प्रवण रूप में बाधक एवं साधक लगी रह्यो है। एक ओर तो कहानी को गनिन्य रूप में



१० नामवर भाज की कहानी को नयी की सजा उसके नये चित्त के माया-  
र स्त है, इसमें नये विषय-विधान एवं नये प्रतीक-विधान की दृष्टि से देते  
हैं, परंतु इसके साथ ही मनेत क स्वस्व एवं उद्देश्य का भी इन शब्दों में  
स्पष्ट एवं निश्चित कर देते हैं ताकि कहानीकार इसके अस्वस्थ रूप के  
योग से स्वयं को बचा सकें और जिससे राजेन्द्र यादव नहीं बच सके  
हैं—सरत किस मार? यह केवल कटाक्ष है या इसमें किसी सत्य की घोर  
वस्तु है ? भाल अपने आप मुन्दर है या अपने से पर किसी घोर वस्तु को  
बेतात्नी है ? इनकी दृष्टि में उपश्रनाथ भद्रक, राजेन्द्र यादव, मोहन रावरा की  
कहानी कला में नाटकीय मोड है, चौकान की लत है, रोशनी का अभाव है  
जिसके फलस्वरूप भद्रक स्वयं राह देव नहीं पाते और राह का कांसना प्रारम्भ  
कर देते हैं । इसलिए भद्रक की सचेतात्मक अथवा प्रतीकात्मक कहानियाँ  
राजवंशी की नाति उनके कठोर हाथ का स्पर्श कर कुम्हला जाती हैं । इनके  
कुम्हलाने का कारण स्पष्ट है । भद्रक, राजेन्द्र यादव तथा राजेश की कुछ  
कहानियों में व्यक्ति-चित्रण अथवा व्यक्ति-मय की प्रेरक दृष्टि है जो डॉ०  
नामवर के गले से नहीं उतर पाता । इनके लिए सत्य तो ममष्टि चिन्मय के साँच  
में ढला होता है और यदि कहानी में मनेत एवं प्रतीक इस सत्य को उद्घाटित  
करने में असफल है तो वह अमान्य तथा अग्राह्य है ।

मोहन रावरा ने भी भाज की कहानी का नया सजा देना उचित  
ममभा है । इनकी दृष्टि में इसका निजी अस्तित्व एवं अस्तित्व है ।  
वह व्याख्यात्मक दृष्टिकोण में इसकी परिभाषा को बाँधने का प्रयास कर  
हुए लिखते हैं—'नयी कहानी गाँव की कहानी है, नयी कहानी नय गिल  
की कहानी है, नयी कहानी महज मानवियता की कहानी है, नयी कहानी  
उपान पात्रों के किशोर की कहानी है, नयी कहानी सामाजिक मध्यमों की  
कहानी है, नयी कहानी मायालय घोर परिचित जीवन की कहानी है, नयी  
कहानी अपरिचित जीवन की कहानी है, नयी कहानी स्वच्छ पारम्परिक भाषा :  
लिपी जान जानों कहानी है और नया कहानी बल-बुद्धि भाषा में लिखी जा-  
वानी कहानी है । नयी कहानी सभी तरह का कहानी है और न जाने किस तरह  
की कहानी है । ' , इस तरह की बिबुधान भाषोचना तथा बिबुधान कहानी व  
बिबु दन के लिए यही इसके चार कोणा की ओर मनेत है और कहानी की बात  
का इनमें से किसी भी बाण से उछाया जा सकता है—गिन्य, भाषा, मपार्थ व



अभिव्यक्ति और साविकता । इनमें गिल्स, आया एव साकेतिकता का सम्बन्ध इसके अभिव्यक्ति पक्ष से है और 'यथाथ की अभिव्यक्ति' का अनुभूति-पक्ष से । रावण और वाणा की सम्भावना को स्वीकार कर किसी एक को उपलब्धि मानकर कहानी की सफनता का आंकन क पत्रम नहीं है । इन सभी उपलब्धियों में जब सगति बैठ जाते हैं तब कहानी का आंतरिक भवित्ति का निर्माण होता है । वह नयी कहानी में इस आंतरिक भवित्ति को भावस्मक मान कर इसे परम्परा से कटा हुआ भी नही स्वीकार करते । प्रेमचंद को कहानियाँ में भी साविकता का विकास भिन्न स्तर पर हुआ है । 'कफन' तथा 'गतराज क खिलाड़ी' में चरित्रों का स्वरूप मारविड ( morbid ) है, परन्तु इनके संवेत मारविड नहीं हैं । इसलिए आज की कहानी पुरानी कहानी का विकसित रूप है, परन्तु साथ ही इसका निजी व्यक्तित्व भी है जिसके आधार पर वह नयी है । रावण नयी कहानी की उपलब्धियों का इसकी नयी साकेतिकता में पाते हैं और यह साविकता प्रेमचंद, जैन द तथा अन्य का साविकता से भिन्न है । जेनेन्द्र तथा धनैय की कहानी में सबसे प्रभूत हैं जो काल्पनिक विषय पर आधारित हैं और ये कहानी की प्रपञ्चा कविता के अधिक निकट एव अनुरूप है । माहन रावण नयी कहानी के अस्तित्व एव यन्त्रिक को मायता देते हुए कहते हैं कि यह नयी कविता के समान भारतीय जीवन तथा पाठक में अपनी सम्बन्ध तोड़ नहीं देती है । इसकी दिशा व्यक्ति की आंतरिक गुणधर्मों की दिशा न हो कर एक सामाजिक दिशा है जो आगे की सम्भावनाओं को प्रकट करती है । हम मायता के आधार पर रावण की 'मिस पाल 'अपरिवृत' आदि कहानियाँ का नयी कहानी की काटि में अपना कठिन हाँ जायगा । इनकी अधिकांश कहानियाँ के मूल में सामाजिक चेतना तथा कुछ के मूल में वैयक्तिक चेतना की प्रेरणा है और इनका यथा स्थान विवेचन किया जायगा । जब वह नये सदमों तथा बलते हुए मूर्खों की बात करत है तब वह नया कहानी का सामाजिक निष्ठा में बोध कर अपनी एकानि दृष्टि का परिचय देते हैं और अपनी कुछ कहानियाँ का भी इस काटि से बहिष्कार कर देते हैं । व्यक्ति की गुणधर्मों का कहानी की वस्तु बन सकती है, इसकी आर भी संवेत किया जा सकता है, इसे भी नये मन्त्र में देखा जा सकता है । परन्तु इसमें रमण करना एक बात है, इसका चित्रण करना दूसरी बात है और इन दोनों में भारी अंतर पाया जाता है । रावण स्वयं अस्वस्थ जीवन चित्रण द्वारा स्वस्थ संवेत देने के पक्ष में है । वह नया कहानी के लिए वस्तु की अस्वस्थता को तब निषिद्ध नहीं मानते जब उसका संवेत से प्रमत्तोप का भावना

जागता है। इन प्रकार वह 'यक्ति' को 'कुण्ड' को कहानों को उचित वस्तु न मान कर निजा सांसारिक द्वन्द्व की स्थिति का परिचय देत है। एक ओर वह स्वीकार करते हैं कि हर रोज के जीवन में सब कुछ अनेक मंदमौ में सामन आता है। इस विविधता को पकड़ना और इसे कहानों की मान्यता की प्रवृत्ति में व्यक्त करना इनकी कहानी रचना का उद्देश्य एवं गन्तव्य है। इन विविध रंगों में व्यक्ति को कुण्ड का भी एक रंग हो सकता है और समभव है यह काला हो और चाँसे रंग से लेखक का चिह्न भी हो। इनकी अपनी अभिव्यक्ति डा० नामवर की तरह लाल रंग में न हो कर गुलाबी रंग में जान पड़ती है। इसीलिए डा० नामवर का चक्रेय की कहानियाँ में वे मरत नहीं मितते जा लाल रंग में रये हुए हैं। समभवत इस बात को दृष्टि में रख कर रावय ने यह लिखा है—'प्रभावप्रस्त जीवन की विडम्बना बवल खाती पेट और ठिठुरते हुए' और क माध्यम से ही व्यक्त नहीं होती निश्वास केवल उठी हुई बाहों के सहारे ही व्यक्त नहीं होता। इसके साथ यदि यह जोड़ दिया जाय कि रंग बवल लाल ही नहीं गुलाबी एवं काला भी हो सकता है तो चक्रेय की कहानों रचना का स्वप्न अधिकांश रूप से स्पष्ट किया जा सकता है। वह बाँध रंग से इसलिए चिढ़ते हैं कि इस रंग में इनकी 'मिन पाल' रंगों हुई है और वह कहानी भी है। इस प्रकार मैं अपनी कानी बटी का तिरस्कार कर उसे अपनी ममता में वक्षित कर रही है। यह भी समभव हो सकता है कि कहानीकार व्यक्ति विन्म से प्रभावित अपनी जीवन-दृष्टि से सघर्ष कर रहा हो या कभी कभी इनकी कहानी क मूल में उपलब्ध है। इनके परिणामस्वरूप वह शिल्प की प्रपञ्चा वस्तु की अधिक महत्व देने के पक्ष में जान पड़न हैं—नय शिल्प का विकास बवल प्रयाग की चेतना से नहीं नये मैट्र क मायत पुरान की प्रमथता व कारण होता है। इनकी कहानी-रचना का शिल्प पक्ष प्रयोग-शुद्धि पर साधित न हो कर नये स्वस्थ मनेन रन की ध्यातुलता से रूपायित है। इसलिए इनकी कहानी में कहानीपन सुरगित है, जिन कारण वह अपनी कहानी-रचना का सम्बन्ध परम्परा तथा भारतीय जीवन से जोड़न हैं। धात्र की कहानी का मोहन रावय का योदान सूजन तथा भावावस्था का दृष्टियों से गिण्ट महत्व रखना है। वह कहानी व छाटे और भाषाएँ केवाम के माध्यम से बहा और प्रसाधारण संकेत रना चाहत है जिन वह भाषा सयत का सगा भी देते हैं। वह भाषावृद्ध का उन दृष्टि को 'स्वस्व' एवं 'अधिकारी' नहीं मानत जा धात्र की कहानी का सम्बन्ध एवं विषय तरह क शिल्प या वस्तु क

साय जोड़ कर उसका मूल्यांकन करती है। इसके लिए अभिव्यक्ति में जिस स्वाभाविकता की आवश्यकता है वह जीवन की सहज अनुभूतियाँ से जन्म लेती है और स्वतः ही रचना का सहज एव सचेत बना देती है।<sup>१</sup> इस प्रकार रावश नयी कहानी के स्वरूप का स्पष्ट कर उसके स्वतंत्र अस्तित्व को स्थापित करते हैं। यह कहानी नयी दृष्टि का परिणाम है, इसके प्रभाव का स्वरूप भी नया है और इसका क्षेत्र भी अधिक विस्तृत है, परन्तु इसमें ठहरे हुए यथार्थ के वैयक्तिक एवं पारिवारिक रूप की अभिव्यक्ति निपिद्ध है और सामाजिक पार्श्व के मापक भाग का विवरण अशोध्य है। इसलिए यह स्वयं ता प्रेम तिकोन के आधार पर, जिसमें ठहरे हुए यथार्थ का वैयक्तिक स्वर ही ध्वनित होता है, कहानी रचना नहा करते परन्तु मनु अदारी की 'यही सब है' कहानी से इतना प्रभावित हो उठते हैं कि वह इसमें व्यक्ति यथार्थ को स्थितिशील रूप में न पा कर गतिशील रूप में प्राक्कन लगते हैं और अमृतराय की प्रेम तिकोन पर आधारित कहानी 'समय' में अव्यक्त एव गूढ़ सकेत को भी साज निकालते हैं। रावश को प्रश्रय की 'रोज' में सकेत अस्वस्थ और अमृतराय की 'समय' में स्वस्थ लगता है जबकि इन दोनों कहानियाँ में नारी का समय निगल गया है। 'राज' में नारी की व्यथा रावश की व्यथा बनने में असफल और 'समय' में गीता की व्यथा सहज ही इनकी 'याया बन जाती है।' इन दोनों नारियाँ क मोन में एक उदासी हैं जो समान रूप से हृदय का झकझोर डालती हैं। इस असमान मूल्यांकन का कारण आलोचक का ठहरे हुए यथार्थ के वैयक्तिक रूप का विरोध है और 'बलत हुए यथार्थ' के सामाजिक रूप के प्रति मोह है। इस मोह का यह स्वयं भा कभी कभी अपनी कहानियाँ में परित्याग करने के लिए विवश हो जाते हैं। इसी कारण इनका 'यक्ति चिंतन' यथार्थ व्यक्ति मध्य से प्रभावित दृष्टिकोण 'यही सब है' और 'समय' में भी स्वस्थ एवं साधक सचेता की उपलब्धि पा जाता है।

भाजकी हिंदी-कहानी की नयी की सज्ञा देने वालों में नामवर सिंह तथा मोहन रावश के अतिरिक्त राजेन्द्र यादव, रमण कपूर, आदि ने भी अपने-अपने दृष्टिकोण से इस नयेपन का निरूपण कर इसे 'नया' के विवरण से मण्डित किया है। राजेन्द्र यादव के अनुसार भाज की कहानी का एक ऐसा व्यक्तित्व अवश्य संचार और निवारण है जो इसकी 'परम्परा से एक दम भिन्न है' और इसका साय ही इसमें परम्परा के कुछ

वा की सामान्यता भी है।<sup>१</sup> इस तरह याज को कहानी नहीं है और पुरानी भी है, स्मरा से जिन भी है और परम्परा का विकास भी है। इस प्रकार वह इसके स्वरूप में सुलभाने की अपेक्षा उलभ कर हाँ रख देते हैं। इन्होंने कहानी सम्बन्धी अपने टिकाण को 'जहाँ लक्ष्मी केँद है' नामक कहानी-संग्रह की भूमिका में निरूपित करने का प्रयास किया है जिसे वह अक्षर हीरार्थ का नाम देने हैं। इसमें एक और वह 'पूजा सोवती' की कहानी बादला के घेरे का महत्व देने हैं जिसमें व्यक्ति विस्तार का है, और दूसरा और अमरवात की कहानी 'जिन्गी और जाक' को महत्व देने में शीव करने हैं जो 'प्रगतिशील' जीवन दृष्टि से अनुप्राणित है। इससे वह अपने दृष्टि का प्रगतिशील मित्र करना चाहते हैं। मानव-जीवन को जीना है और इसका लिए समाज में स्वयं सम्बन्धों की स्थापना अवश्य करनी है। इन सम्बन्धों का स्थापित करने के लिए धन, समाज, नैतिकता की रूढ़ि को नष्ट भी करना होगा। इन सम्बन्धों सम्बन्धों के मूल में समाज की आर्थिक व्यवस्था है। इस प्रकार की सामान्यता में याज्ञ के 'प्रगतिशील' दृष्टिकोण का परिवर्तन मिलता है। प्रेम की समस्या का समाधान भी वह इसी दृष्टि से प्रस्तुत करने हैं। तिकोन की स्थिति पति, पत्नी तथा प्रेमी में उपलब्ध होती है, वह इन तीन व्यक्तियों को दाँव में परिणत कर, तिकोन का तोड़ कर दोहरे दुकान बना डालते हैं। इस प्रकार वह सामान्य सामान्यता का विरोध करने में अपने व्यक्ति-विस्तार का परिवर्तन अवश्य देते हैं जो एक सीमा तक प्रगतिशील दृष्टि है, परन्तु जब वह प्रगतिशीलता की इन सीमा से बाधे बनने की बात करने हैं तो इनकी सामान्यताएँ हृदयगत न होकर बुद्धिगत हान का प्रभाव देती हैं। कहानी कला सम्बन्धी इन वैज्ञानिक निरूपण तथा जनेन्द्र प्रेयस आदि की कहानियाँ व मूल्यवान् में समष्टि विस्तार से प्रभावित इनकी 'प्रगतिशील' जीवन दृष्टि लगी हुई है, परन्तु इनकी अपनी कहानी कला के मूल में व्यक्ति-विस्तार का गहरा रंग है। इसे भगवत् ने जब ताल रंग का पुट दिया है तो वह कच्चा बन कर ही रह जाता है। राजेंद्र याज्ञ निजी आन्तरिक विरोध का कारण नहीं और पुरानी, प्रगति और प्रयाग, वस्तु और गिन को समस्याओं में उतार जात है और उल्लंघन की वह स्थिति इसकी कहानियाँ में ना उतारता हुआ है। एक और वह जनेन्द्र प्रेयस आदि का कहानी कला के अस्तित्व का 'आरा' के रूप में अन्वेषण करने हैं और दूसरी बार यह भी मान भन है कि याज्ञ भी १९ मारे साहित्य में कट कर इन कहानीकार का भगवत् दुनिया है विनय रत्न भन कवि, कलाकार आनाचक उपा सम्पादक है जहाँ "भावे वन" में काम करने वाली वाली कुर्मी का आस्पाद' वः

जिनकी ध्वज पुरानी पीढ़ी के कथाकारों में गणना होन लगी है, और नया पीढ़ी के कहानीकारों में हार्दिक परसाई, मधुकर गंगाधर, नित्यानन्द तिवारी, श्रीकान्त वर्मा राजकमल चौधरी, शिवप्रसाद सिंह, कमलेश्वर मार्कण्डेय आदि के नाम लिये जाते हैं और इनके अतिरिक्त आलाचका में शिवदान सिंह चौहान डा० दवीगकर धवस्यो डा० देवराज, डा० प्रकाशचंद्र गुप्त आदि ने आज की कहानी की संभावनाओं तथा सोभावना का अपनी अपनी दृष्टि से विवरण करते हुए इसे नयी कहानी की सज्ञा देने में सकोच किया है। इसका एक कारण यह हो सकता है कि काव्य के क्षेत्र में आज की कविता का नामकरण 'नयी' के रूप में पहले ही चुका था और आज की कहानी का स्वरूप नयी कविता के समान नहीं है। इसलिए इनकी दृष्टि में आज की कहानी को नया कहानी का नाम देना अनुचित एवं असंगत जान पड़ता है। इसका दूसरा कारण यह है कि प्रायः सभी कहानीकारों एवं आलोचकों ने आज की कहानी में वस्तुगत एवं गित्यगत नवीनता का परस्पर विरोधी दृष्टियों से आका है। इससे आलाचना के क्षेत्र में संकुलता की स्थिति उत्पन्न हो गयी है। किसी विपरीत जीवन-दृष्टि से असहमत होना एक बात है, परंतु उसमें प्रेरित तथा अनुप्राणित कहानी का पूर्वाग्रह से प्रस्ता हो कर ध्वजमूल्यन करना दूसरी बात है। इस ध्वजमूल्यन का कारण आलाचक की निजी अभिरुचि की साम्राज्य भी हो सकती है। इन कहानीकारों तथा आलोचकों में जिनमें कहानी बलक के पाठक तथा कहानी-प्रतिक्रिया के सम्पादक भी शामिल हैं, एक ही कहानी के सम्बन्ध में परस्पर विरोधी मत प्रकट करते हैं और इन मतों के मूल में जीवन-बाध एवं सौंदर्य-बाध के परस्पर विरोधी धरातल हैं। आज की कहानी का मूल्यार्जन इन धरातलों पर हुआ है। इस सम्बन्ध में वस्तु एवं गित्य ग्राम-जन्मा एवं नगर कक्षा आदि के प्रश्नों को उठाया गया है, सकोच एवं प्रतीक्षा के स्वस्थ एवं अस्वस्थ हान की समस्या को प्रस्तुत किया है, परंतु उस मूल जीवन-दृष्टि का उपशान्त की गयी है जो वस्तु में ध्वज, शिल्प की गठन, संकेत प्रतीक के स्वरूप, प्रभाव-क्षण की अभिव्यक्ति आदि को रूपामित करती है।

इस पुराना नाम नयी कहानी के बाद विवाद में शिवदानसिंह चौहान न नयी का न बलक और विरोध किया है बल्कि उन आलाचकों को भी कोसा है जो नयी के स्वतंत्र अस्तित्व को स्थापित करने के प्रयास में सफल हैं। इनका दावा है कि नामवर सिंह जब नयी कहानी का फलसफा गठन के लिए ध्वजधर कामू, सार्न और सायद आलाचका के दरवाजा पर सजदे कर खड़े थे जिसमें परिणाम-स्वरूप कहानी का मूल्यार्जन कथानक, चरित्र चित्रण व आचार पर करने की अपेक्षा सद्विष्ट रूप में करने में

एक म ये उस समय स्वयं वह नयी कहानी का अध्ययन कर रहे थे। गिवदानसिंह को जिस कहानी का संप्रेष्य भाव प्रभाववादी स्वप्न, कथन-वैचित्र्य वस्तु के वजन मायाम क कारण प्रभूतपूर्व लगा, वह कहानी इनकी दृष्टि में 'सिन्धु का मयास, पाताल का प्रताप, बौद्धिक उत्तमन धनवा पिछड़े संस्कार का उदाहरण थी।' 'भालो-चक सकोववध इन कहानिया के नाम नहीं गिनवात है। वह उन कहानियों को भयक-परी' 'बघकानो' 'घोर घोर वस्तु समझत है। इनमें वह कहानीयन का प्रभाव पान है। इसलिए इन कहानियों क मूल्यमंकन के लिए किसी सौंदर्यगाम्भ का गदनेका आवश्यकता नहीं समझते। नयी चेतना का अभिव्यक्ति देने वाली अधिक गठी तथा कलात्मक कहाना को 'नयी' कहना अनुचित है इस प्रकार इनकी दृष्टि में कथन वैचित्र्य, अभिव्यक्ति की सर्वोत्तमता और सिल्पगत समस्कार अपने आप में विशेष मूल्य नहीं रखत। गिवदानसिंह स्वयं का प्रतिमा का कायल समझत हैं और इन्हें प्रतिमा उन कहानियों में दिखाई देती है जिनकी वस्तु समष्टि चितन से प्रभावित होती है। इसलिए भयक को 'भाग और मुत्तान' इनकी दृष्टि में स्वस्थ सक्षत नहीं द सकी हैं। इसका कारण यह है बड़ी जात के लड़क और छोटी जात का लड़का में इतक करवाना समाजवादी मान्यता न हा कर सुधारवादी मान्यता है। बोहान की दृष्टि में यह युग-सत्य न हा कर मात्र तथ्य है और युग-म य इसमें निहित है कि जाति भेद ही अनुचित है। जब तक भयक साक्षात् को लड़की का भगी क लड़क से कहानी में इतक नहीं करवात, तब तक सिवगानीय मय की अभिव्यक्ति कहानी में नहीं हा मवती। 'इस तरह की कहानियों को पढ़ कर इनके हृदय की घुटन बढ़ती है, घुमडन घनीभूत होती है। बोहान अपनी विविष्ट दृष्टि क कारण केवल दो मायामा—सम्बाई तथा चोडाई—का मान्यता द पाते हैं और इनके प्रतिरिक्त किसी म य मायाम का स्वीकार करना इनके मतानुसार 'मायामाबाजी' है। इन प्रकार नयी कहानी सम्बन्धी गिवदान सिंह का विरोध इनकी जीवन दृष्टि से बेधा हुआ है, परन्तु नामवर सिंह की सामाजिक चेतना सम्बाई-चोडाई के प्रतिरिक्त मय मायामा का भी मोक्ष निकालती है और इन मायामों को 'नयी कहानी' की विविष्टता के रूप में धाकती है। इस सम्बन्ध में इनका मततथ्य है कि नयी कहानी में वास्तविकता के अधिक-से अधिक स्तर का उजागर गया है, कथानक के पुराने दोष का तोड़ा गया है जिसमें प्राच्यरिक मयति की मरता बाह्य मयति हा रहता है। इसमें कथानक का मयलन उच्च मयन एवं समबद्ध होता है जिसे सिवगान सिंह बोहान ने मायामा में हा समझ पाहते हैं—सम्बाई और चोडाई। जहां तक वास्तविकता के स्तर का प्रदन है इन प्रगतिगत मातोचका की दृष्टि में निमय मन्तर नहीं पाया

जाता, परन्तु जहाँ कहानीके शास्त्रीय तत्वाका प्रश्न है नामवरसिंह इनकी उद्भा करनक प में है। इसलिए वह भाजकी कहानाम गद्यके विविध रूपाका समन्वय रखत है। इतन उप-वास, नाटक, रेखाचित्र, डायरी, सेस्मररा आदिकी गैतिगोका पारस्परिक विनिमय हुमा है। यह इत करार हुमा है कि बल्की जटिलता नदेव गित्तकी विस्मिता को जम देती रही है। इसके उदाहरण भाजका मनेक कहानियामे उपलब्ध हैं। यदि कुछ कहानी में नये मानव' की ओर चेत करत है ता कहानी की नयी के विगेषण से बचित करना नामवर सिंह का अनुचित जान पडता है। इनकी पुक्ति यह है कि प्रातिवादिता ने स्वयं 'नये मानव, नये पु तथा नये साहित्य' का नारा लगाया पा। इनका नया मानव' समाजवादा चेतना क साच में दता हुपा होता है। इस नये मानव' क स्वरूप में सम्बन्ध में नी नारी अन्तर पाया जाता है। एक प्रातिवादी क लिये नये मानव का एक साचा है, पन्त क लिये दूसरा, मजबू क लिये तासरा और सनय है मरक क लिय चौथा साचा नी हा सकता है। इन नये मानव की कल्पना भाज क साहित्यकारा तथा किन्तुका न मन्त्री तथा पुग का चेतना क अनुत्प का है और इसके विविध स्तर है। जावन-हिट में समानता हात हु ना स्तर को विभिन्नता की सम्भावना हो सकता है। यह चिति गिवदानसिंह चोहान तथा नामवर सिंह क कहानी क गित्त सम्बन्धी मर भेद में उपलब्ध हाती है। डा० लक्ष्मीनारायण ताल नी गिवदान सिंह की नाति भाज का हिन्दा-कहानी का नयी कहानी क स्वतन्त्र अस्तित्व क रूप में स्वीकारन क पय में नहा है। वह भाज की कहानी का नयी कहानी से उवा भाति दूर रसना चाहत है जिन भाति कविता का नयी कविता से। नयी कविता परम्परा से कटा हुमा आन्दोलन है। इनक मतानुसार भाज कहानी में प्रेमवद जत कया गिनिया का स्वल्प स्वर, स्वल्प सत्कार और स्वल्प मन है। यह विद्युद भारतीय है जिनका पन्ता ऐतिहासिक दाव है। इस प्रकार भाज की कहानी-परम्परा पुष्ट है, नयी रुझिया की रुझि है।<sup>१</sup> डा० ताल यह मानने से सक्ताव नहा करत कि इसका रूप मरदय बदल गया है। इसन जावन क अस्तित्व पार्श्व का उभारा एवं विनित किया जा रहा है और इस चित्रण में कहानाकार की दृष्टि नी नवान है। वह इतक पञ्ज-पाछ में इतन रत का आत्मादन नहा कर पाते जितना इतन सामान्य जीवन की सवदना का स्पष्ट करने का प्रयास कर पात है। इसलिए इनकी निमत बर्मा की कहानिया में एक ही लडका की उलझ-उलझ कर विन्धान सजा-सजा कर विनित करने का प्रवृत्ति में एकरसता का आभास मिलता है, परन्तु अमरकान्त की कहानिया

में इन्हें गिन्यगत महजना एा मरनठा को उपलब्धि तथा गिन्य चमत्कार को नकारन की प्रवृत्ति दृष्टिगत होती है। इस प्रकार वह परम्परा के आधार पर भाज की कहानी में गिन्यात नवीनता के विरायी हैं और इसे 'नयी कहानी' से दूर रखने के पक्ष में हैं। श्रीकांत वर्मा भाज की कहानी के स्वभाव को बदला हुआ पाते हैं परन्तु इसके चरित्र का नहीं। वह नयी कहानी में घास्था ता रखते हैं परन्तु 'नयी कहानी' जटिल सामाजिक यथाय से मुंह चुराती है। इसलिए उस नयी की मजा से अभिहित करना असंगत जान पड़ता है। इनके मतानुसार राज-न्द्र यादव की कहानी शिल्प में ही नयी है इसकी वस्तु पुरानी है, इसमें नये यथार्थ का ची-हन की दृष्टि 'नयी' है।<sup>१</sup> वह भाज के कहानीकार के माहुर का 'विविध भारती' के सगाठ के रूप में घ किन करत हैं जिसमें शास्त्रीय सगाठ के स्थायी मूल्य का समाव है। भाज की कहानी में पत्रा का साज ता प्रत्यक्ष देखने का मिलती है, परन्तु चरित्रों की खोज का अभी इसमें सम्भाव है। इसी तरह इसमें पटना की साज उपलब्ध है, परन्तु सम्बन्ध की खोज का सम्भाव संतकता है। वह प्रबोध कुमार की सी-नी 'पेरे' तथा 'मैत्री' में कुछ घटना हुआ नहीं पाते। इन कहानियों को वह 'नयी कहानी' ता न कहें परन्तु उन्हें इसमें निकट आने की अनुमति दें। जब तक कहानी में 'स्वभाव' की प्रेरणा 'चरित्र, नहीं संतता, 'वाच' के स्थान पर 'चरित्र' की नहीं खोज जाता और 'पटना की घटना सम्बन्ध' की नहीं उभारा जाता तब तक भाज की कहानी को 'नयी कहानी' के मन्दिर में प्रविष्ट होने की मांगा नहीं मिल सकती। इस प्रकार श्रीकांत वर्मा, जिनकी नयी कविता के स्वतन्त्र प्रस्तित्व तथा निजी व्यक्तित्व में पूरा घास्था है, भाज की कहानी में प्रयत्न-लय की उत्पत्ति एवं निष्पत्ति द्वारा इसे ही नयी धनाम के पक्ष में हैं। वह भाज की कहानी में शिल्प की नवीनता का ता स्वीकार करते हैं परन्तु इन्हें वस्तु की नवीनता का सम्भाव संतकता तथा संतकता है। इनकी धारणा है कि प्रेमचन्द की जनरल की परम्परा सज्जीवन की ओर बढ़ रहा है और कहानी को यात्रा का 'सतह से सतहोपन, के रूप में प्रोका जा सज्जा है। परन्तु भाज के पुन का मत है इसका जटिल हाथा जा रहा है कि हर व्यक्ति मानसिक राग से घन्य है। इस चिन्तन तथा मूल्यांकन का आधार श्रीकांत वर्मा की व्यक्ति मूलक जीवन-दृष्टि है जो मानव का विविष्ट रूप में प्रथम मनुष्य की व्यक्ति के रूप में साजने तथा ध्वस्त करन के लिये निरधारित करता है। मार्क्स-इय को भाज की कहानी में वस्तु एवं शिल्प दाना का नवीनता दृष्टिगत हुआ है, परन्तु कहानी में इन्हें कहानीकार की दृष्टि में घापुनिकता

१ भाज की हिन्नी कहानी (कहानी, जुलाई, १९५८)

२ नय यथार्थ का उद्घाटन (कहानी नवम्बर १९६०)



का प्रभाव खटकता है। इस दृष्टि के आधार पर ही वस्तुतः हुए मनुष्य तथा उसके परिवेश को देखा, समझा तथा भाँका जा सकता है। गाँव की कहानी अधिक सूक्ष्म पाठक और अधिक जागरूक पाठक को मालूम तो प्रशंस्य करती है, परन्तु इसे 'नई कहानी' की सना देन से मार्कण्डेय कराना है। इसे नयी कहलाने का तब अधिकार होगा जब इसमें कहानीकार की दृष्टि नवीन होगी वह इस नवीन दृष्टि को यादग्राही नहीं करे। इसका सम्बन्ध व्यक्ति चिन्तन से है या समाज चिन्तन से—इस सम्बन्ध में मार्कण्डेय मोन धारण कर सत है। जिसका कारण यह हो सकता है कि इनका निजी दृष्टिकोण अभी पूरी तरह विकसित नहीं पाया है।

गाँव की हिन्दी कहानी को समस्या को डा० शिवप्रसाद सिंह ने जातीय साहित्य के आधार पर उठाया है और इसे ग्राम कथा से सम्बद्ध किया है। वह ग्राम कथा में जनता के दुःख सपथ, इच्छा प्राकाशना का प्रकट करने का प्रयास और नगर-कथा में जातीय साहित्य का प्रभाव पाते हैं। इसमें नगर का जीवन नहीं कर कहानीकार का अपना जीवन होता है।<sup>१</sup> प्राफिना, कालिदा, और विश्वविद्यालय की लड़कियाँ के पाछे में रहने में नगर का जीवन नहीं होता है यह उसका समस्या नहीं है। परन्तु प्रश्न ग्राम कथा बनाम नगर-कथा का इतना नहीं है जितना चित्रित करने की दृष्टि और समता का है। शिवप्रसाद सिंह को जीवन दृष्टि के मूल में समाज चिन्तन है वह मार्क्सवादी विचारधारा से प्रभावित है। इसके आधार पर इन्होंने प्रेम चन्द तथा उत्तर प्रेमचन्द कहानी-साहित्य का मूल्यांकन भी किया है। वह प्रेमचन्द की देन को इन शब्दों में स्वीकारत है कि उन्होंने सुधारवादी दृष्टि और समाजवादी चेतना के दल पर हिन्दी-कहानी का जीवन के निकट ला दिया था।<sup>२</sup> और जेम्स प्रेमचन्द प्रेरक की कहानी-कला को इसलिए नकारत है कि इसमें व्यक्तिवाद के घुलित रूप की प्रधानता है जिसने हमें मन और सज्जित व्यक्तित्व को विमर्श की प्रेरणा दी है।<sup>३</sup> उसमें रोमांटिक लण्ड विश्वास का उभारा एवं उठाया गया है। वह योगास का कहानी शला में भी मात्र रुझाए एवं दृष्टांत पर ध्यान की बातें ही सुन पाते हैं और इसमें जनता के जीवन का प्रभाव इन्हें खटकता है। इनके मतानुसार 'जातीय' कहानी में दाय को समझत हुए समाज और जीवन में स्वस्थ विकास की लक्ष्यता की प्रेरणा होती है, बाहर भीतर के प्रभावों का विवेक्षण होता है। वह नागरिक जीवन को न कर कहानी लिखने के नितास्त विरोधी नहीं हैं इस जीवन की भी सभावनाओं का स्वीकार करने हैं, इस जीवन के सामक्षपक्ष पर हरिणकर परमाई तथा समुत्तम के व्यंग्य का दाँ भी सत है। कृष्णा साहनी तथा निमल वर्मा की नगर कहानियाँ में

कामलता एवं मुन्दरता के आधार पर इन्हें जातीय साहित्य का उपलब्धि के रूप में भी मान्य है, परन्तु माहन रावेच का 'मिम पात' पर हँसना इन्हें छुणित लगता है। इसलिए वह सलक का चेतक की माला अपने की तब तक अनुमति देने के पक्ष में नहीं है जब तक उसका पास चेतक का करुणा में भरा हुआ हृदय न हो। इस कहानी के मूल में यशजि चिन्तन का पुट है जो 'गिव प्रसाद सिंह की जीवन-दृष्टि से मेल नहीं खाता। इसलिए वह मोहन रावेच की कहानी में जीवन को जातीय जीवन से कटा हुआ पात है और तारकान को सड़का, होटला और काफी कप्याला में न बंधा हुआ पात है। इतने में समुष्ट न हो कर वह यह सत प्रकट करने से भी सचाच नहीं करने कि नगरक कथा-कार सबको को कदा पतंग समझते हैं और उसे बूटन का ताक में रहने हैं। वह उन नगर-बाधा में 'जातीय साहित्य' की उपलब्धि का स्वीकार करते हैं किनमें समष्टि चिन्तन का रंग है, सामाजिक चेतना की हो ध्वनि है प्रगतिशीलता का स्वर है। चित्रप्रसाद सिंह ग्राम-कथा तथा भावलिक कथा में अन्तर का स्पष्ट करने हुए भाव निक कहानी के मूलपात का ध्येय स्वयं बना गइते हैं जब १९५१ के 'प्रतीक' में क में इसका प्रथम प्रकाशन हुआ था।<sup>१</sup> ग्राम-कथा में भावलिक उत्त तथा स्थानीय रंग साधन बन कर आते हैं, जब कि भावलिक कहानी में ये साम्य-रूप में होते हैं। इनके मतानुसार ग्राम-कथा में जीवन की प्रपन्नता रहती है, भावलिकता का चादर में दुबलता को विधान का प्रमाण भी होता है। प्रमृतराय ने प्रचारित नागरिक जीवन का अपनी कहानी-कला का आधार बनाया है। इन्हें सामाजिक दायित्व के निम्नान में भी प्रगतिवादी की गण नहीं आती। वह ग्राम कथा में अधिक-से अधिक नान्देनबिया की प्रवृत्ति का पाते हैं और नये रंग-बाध तथा नयी भावलिकता के नाम पर वास्तविक जीवन की गहरा एवं दृढ़ तकनीकी कमी का जीवन का प्रयास पात है। इनका सबसे रंगु, धानी माकडम, माकारनाथ तथा चित्रप्रसाद सिंह का ग्रामीण जीवन पर आधारित कहानियों की ओर है। इसलिए प्रथम ग्राम-कथा बनाम नगर-कथा का न हो कर सामाजिक दायित्व का है, साहित्य की साहस्यता का है, नैतिक दृष्टि का है जो समष्टि-चिन्तन से प्रभावित हो। प्रमृतराय को निजी जीवन-दृष्टि में नीम (हत्या) तथा नीम गहराती मस्कारों का पुट है और मार्क्सवादी चिन्तन का प्रभाव भी लक्षित है। ग्राम की ग्राम-कथा न गाँव के उत्पन्न जीवन को उभारने तथा चरित्र को उपादन का काम किया है किन्तु मूलपात में नन्द की 'पूम की रात' 'कस्त' धादि में हो चुका या और ग्राम की नगरस्था ने पतलित जीवन का विविध करने तथा चरित्र

१ ग्राम की हिन्दी कहानी (कहानी मार्च १९५६) पृ ७२

२ ग्राम की हिन्दी-कहानी (कहानी मार्च, १९५६)

की सूक्ष्म मन स्थितियों को विश्लेषित करने का बीड़ा उठाया है जिसका सूत्रपात प्रेमेय की कहानी कला में उपलब्ध है। इन कहानियों का वस्तु पक्ष तथा शिल्प-पक्ष में नवीनता का पुट है और दृष्टि की विभिन्नता है।

प्राज की कहानी के मूल्यांकन की मूल समस्या पुरानी बनाम नयी, ग्राम बनाम नगर, प्रगति बनाम प्रयाग, सदाश बनाम सवेत, भावभूमि बनाम आयाम आदि की इनकी नही, जितनी जीवन-दृष्टि के स्वरूप की है। हिन्दी-कहानी की परम्परा को प्रेमचन्द से आरम्भ करना सुविधाजनक है। इसके विकास प्रयत्न ह्रास व मूल में चेतना के चार विविध स्तर, जीवन दृष्टियों के चार विभिन्न धरातल प्रयत्न चार परस्पर विरोधी प्रवृत्तियाँ हैं जिनसे अवगत हो कर इसका मूल्यांकन अधिक युक्तियुक्त एवं आलोचना संगत जान पड़ता है। इसके पक्ष इस कारण की प्रारंभिक सकेत भी किया जा चुका है कि इन विविध स्तरों, धरातलों एवं जीवन दृष्टियों में उपन्यास एवं कविता की प्रवृत्तियों तथा आलोचना की पद्धतियों को भी समान समान रूप में प्रभावित तथा प्रेरित किया है। कहानी के क्षेत्र में भी इन चार प्रवृत्तियों का उपलब्ध होना मूल्यांकन व इस मानदण्ड का पुष्ट करता है। प्रेमचन्द परम्परा के कहानी साहित्य के वस्तु एवं शिल्प का रूपायित करने वाली, प्रगति एवं प्रयोग का निष्पादन करने वाली, सामाजिक प्रवृत्ति है जिसे विशिष्ट ग्रन्थ आवश्यक है इसके आधार पर प्रेमचन्द परम्परा की कहानी का उद्देश्य भी स्पष्ट हो जाता है। इन सामाजिक प्रवृत्ति के मूल में समष्टि चिन्तन का सामान्य रूप है, समाज मंगल की समान भावना है सुधारवाद की सामान्य दृष्टि है आदर्शवाद का गहरा पुट है, मानव का जातिगत स्वरूप है। इस परम्परा में प्रेमचन्द मुद्गल, विश्वम्भरनाथ जोषि, चण्डीप्रसाद हृदय, ज्वालादत्त शर्मा, वृंदावनलाल वर्मा, राय कृष्णदास आदि की कहानियाँ आती हैं। इनकी कहानियों में व्यक्ति-जीवन का स्वरूप सहज एवं सरल है, सत्य का रूप प्राज के सत्य के समान जटिल नहीं है। इसका कारण यह है कि इस युग में मनुष्य का रूप सामान्य या अभी विशिष्ट नहीं हो पाया था। मनुष्य जब विविष्टता की ओर उन्मुख होने लगता है तो इनके सम्बन्धों का स्वरूप जटिल से जटिलतर होता जाता है। इन जटिल परिस्थिति का कहानीकार को सामना करना पड़ता है या इससे पलायन और या इसमें संगति बिठान के लिए इस पर आवरण डालना पड़ता है। जयगुरु प्रसाद की परम्परा के कहानीकारों ने इस व्यक्ति का, मोक्ष के या इससे पलायन करने का प्रयास किया है। कहानी की इस प्रवृत्ति का 'व्यक्तिवाद' सना देना व्यक्तिवाद को विविष्ट ग्रन्थ प्रदान करता है। इस प्रवृत्ति में

यक्ति हित की सामान्य भावना, यत्ति चिन्तन का सामान्य रूप, भावदर्शवाद का पुट तथा मानव का वैयक्तिक स्वरूप आदि उपलब्ध होते हैं। सामाजिक प्रवृत्ति की कहानी कला में व्यक्ति के हित या समाज मंगल की दृष्टि से प्रेरणा एवं विनित किया जाता है, और व्यक्तिवाद प्रवृत्ति के कहानी साहित्य में सामाजिक भावताओं एवं धारणाओं का व्यक्ति-विकास एवं व्यक्ति हित की कनोटी पर परखा जाता है। एक में दूसरे का सम्भाव नहीं होता है। प्रश्न यह है कि किसे केन्द्र में और किसे परिधि में रखना अपेक्षित है? प्रसाद अगवनीप्रसाद वाजपेयी अगवतीवरण वर्मा चन्द्रशुक्ला विद्यालंकार, पहाड़ी, बचन शर्मा उषा, उप दत्ताय सरक आदि की कही निया में व्यक्तिवादी प्रवृत्ति प्रेमचन्द-परम्परा की सामाजिक एवं सुधारवादी प्रवृत्ति से मोहभंग का सूचक है। इनकी कहानियाँ कला के वस्तुपक्ष एवं चिन्तन-पक्ष का व्यक्ति-सत्य की दृष्टि प्रभावित करती हैं और इसमें मनुष्य का वैयक्तिक रूप चित्रित है। इसमें साध-साध एवं मन-तर 'सामाजिक' एवं 'व्यक्तिवादी' प्रवृत्तियाँ व विविध रूप कहानी-कला का प्रभावित करने लगती हैं—सामाजिक प्रवृत्ति विविध हो कर समाज का प्रभाव प्रगतिवादी प्रवृत्ति में परिवर्तित हो जाती है और व्यक्तिवादी प्रवृत्ति विविध रूप धारण कर मनोवैज्ञानिक प्रभाव मनोविश्लेषणवाद प्रवृत्ति बन जाती है। एक में मानववादी चिन्तन का और दूसरी में मनोविश्लेषण व सिद्धांत का प्रभाव है। जैसे १ मन-साध की कहानी-कला के वस्तुपक्ष तथा चिन्तन-पक्ष का रूपान्तरित करने वाला जीवन-दृष्टि व्यक्ति चिन्तन के विविध रूप से प्रेरित है और व्यक्ति सत्य के समक्ष की उद्घाटित करती है जो कभी-कभी नदी का धारा से बह कर जलम डीप बन जाता है। इनकी कहानी-कला में सकल और प्रतीक का धारण जो इसका चिन्तन की निरूपण है। प्रथम के सन्नेत एवं प्रतीक इतने काल्पनिक प्रयुक्त होने हैं कि इनकी कहानी मानव पराजय पर निर्मित न हो कर वायव्य होने का सामान्य भी बन लगती है। इसलिए मोहन रायदा सामाजिक चेतना से प्रेरित हो कर जन-द तथा जन-य का कहानी कला का काल्पनिक विम्वर पर आधारित मान कर भारतीय जीवन से सम्बन्ध नही समझते हैं और चिरप्रसाद सिंह समष्टि चिन्तन के प्रतीक हो कर इनकी कहानियों का भारतीय विम्वर, विजातीय होने की सजा देने हैं। प्रत्यक्ष की कहानी 'राज' का चिन्तन विभिन्न दृष्टियों से हुआ है जिसके परिणाम स्वरूप इसमें यथार्थ का सत्य भारतीय है, प्रयुक्त है, परम्परा से कटा हुआ है, यथार्थ से निर्दिष्ट है, उद एवं हास्यमय है परन्तु इसमें बावजूद 'राज' की कहानी का मानव-भाव में प्रयुक्त है। इसी प्रकार समष्टि चिन्तन से प्रभावित कहानी का स्वरूप यथार्थ मान्य पर

की सूक्ष्म मन स्थितियों को विश्लेषित करने का बीड़ा उठाया है जिसका सूत्रपात अज्ञेय की कहानी कला में उपलब्ध है। इन कहानियों का वस्तु-पत्र तथा शिल्प-पत्र में नवीनता का पुट है और दृष्टि की विभिन्नता है।

आज की कहानी का मूल्यांकन की मूल समस्या पुरानी बनाम नयी, ग्राम बनाम नगर, प्रगति बनाम प्रयाग, सदाश बनाम सदाश, भावभूमि बनाम भावभूमि आदि की इतनी नहीं, जितनी जीवन-दृष्टि का स्वरूप की है। हिन्दी-कहानी की परम्परा को प्रेमचन्द से आरम्भ करना सुविधाजनक है। इसके विकास भयाना ह्रास का मूल में चेतना के चार विविध स्तर, जीवन दृष्टियों का चार विभिन्न धरातल भयाना चार परस्पर विरोधी प्रवृत्तियाँ हैं जिनसे भगवत हो कर इसका मूल्यांकन अधिक मुक्तियुक्त एवं आलोचना सगत जान पड़ता है। इसका पहला इस कारण की प्रार सकेत भी किया जा चुका है कि इन विविध स्तरों, धरातलों एवं जीवन-दृष्टियों में उपवास एवं कविता की प्रवृत्तियाँ तथा आलोचना की पद्धतियों को भी लगभग समान रूप में प्रभावित तथा प्रेरित किया है। कहानी का क्षेत्र में भी इन चार प्रवृत्तियों का उपलब्ध होना मूल्यांकन में इस मानदण्ड का पुष्ट करता है। प्रेमचन्द परम्परा का कहानी-साहित्य का वस्तु एवं शिल्प का रूपायित करने वाली, प्रगति एवं प्रयोग का निर्यापित करने वाला, सामाजिक प्रवृत्ति है जिसे विंगिट प्रथम आवश्यक है इसके आधार पर प्रेमचन्द परम्परा की कहानों का उद्देश्य भी स्पष्ट हो जाता है। इन सामाजिक प्रवृत्ति का मूल में समष्टि चिन्तन का सामान्य रूप है, समाज माल का समान भावना है, सुधारवाद की सामान्य दृष्टि है आदर्शवाद का महत्त्व पुट है, मानव का जातिगत स्वरूप है। इस परम्परा में प्रेमचन्द सुदर्शन, सिद्धम्भरनाथ कीशिक, चण्डीप्रसाद हृदय, ज्योत्सनादत्त वर्मा, कृष्णलाल वर्मा, राय कृष्णदास आदि की कहानियाँ आती हैं। इनकी कहानियों में व्यक्ति-जीवन का स्वरूप सहज एवं सरल है, सत्य का रूप आज के सत्य का समान जटिल नहीं है। इसका कारण यह है कि इस युग में मनुष्य का रूप सामान्य था, अभी विंगिट नहीं हो पाया था। मनुष्य जब विंगिटता की ओर उन्मुख होने लगता है तो इसके सम्बन्धों का स्वरूप जटिल हो जाता है। इस जटिल परिस्थिति का कहानीकार को सामना करना पड़ता है या इससे पलायन और या इसमें सगति विधान के लिए इस पर आवरण डालना पड़ता है। जयन्तर प्रसाद की परम्परा में कहानीकारों ने इस व्यक्ति का, भोजने या इससे पलायन करने का प्रयास किया है। कहानी की इस प्रवृत्ति का 'व्यक्तिवाद' सना देना व्यक्तिवाद को विंगिट प्रथम प्रदान करता है। इस प्रवृत्ति में

यक्ति हित की सामान्य भावना, व्यक्ति चिन्तन का सामान्य रूप, आदर्शवाद का पुट तथा मानव का वैयक्तिक स्वरूप आदि उपलब्ध होते हैं। सामाजिक प्रवृत्ति की कहानी कला में व्यक्ति के हित का समाज मण्डल की दृष्टि से मँवा एवं विविध किया जाता है और व्यक्तिगत प्रवृत्ति के कहानी माहित्य में सामाजिक मान्यताओं एवं धारणाओं को व्यक्ति विकास एवं व्यक्ति हित की कनौड़ी पर परखा जाता है। एक में दूसरे का सम्भाव नहीं होता है। प्रश्न यह है कि किने कदम और किसे परिवर्तन में रखना सर्वांगीर है ? प्रश्नात्, भगवद्गीतावाद याज्ञवल्क्य भगवद्गीतापरण कर्मा चन्द्रशेखर विद्यालक्षार, पहाड़ी, बेचन शर्मा उष, उपद्रवाय शरक आदि को कहा किया है 'व्यक्तिशास्त्र' प्रवृत्ति प्रेमचन्द-परम्परा की सामाजिक एवं न्यायशास्त्र प्रवृत्ति में माहृभग का सूचक है। इनकी कहानी कला के वस्तुपक्ष एवं चिन्तन-पक्ष की व्यक्ति-सत्य की दृष्टि प्रभावित करती है और इनमें मनुष्य का वैयक्तिक रूप विविध है। इसके साथ-साथ एवं अनन्तर 'सामाजिक एवं 'व्यक्तिशास्त्र' प्रवृत्तियों के विविध रूप कहानी कला का प्रभावित करने लगते हैं—सामाजिक प्रवृत्ति विविध हो कर समाज यादा समय या प्रयत्नशास्त्र प्रवृत्ति में परिवर्तित हो जाती है और व्यक्तिशास्त्र प्रवृत्ति विविध रूप धारण कर मानवज्ञानिक समय या मानवविषयशास्त्र प्रवृत्ति बन जाता है। एक में मानवशास्त्र चिन्तन का और दूसरे में मानवविषयशास्त्र का निष्ठा का प्रभाव है। जैन-द, जैन-धर्म की कहानी-कला के वस्तुपक्ष तथा चिन्तन-पक्ष का स्थापित करने वाला जीवन-दृष्टि व्यक्ति चिन्तन के विविध रूप से प्रेरित है और व्यक्ति मानव के रूप में जो उद्घाटित करती है जो कला-कला नदी का धारा से बह कर समय रूप बन जाता है। इनकी कहानी-कला में मनुष्य और प्रतीक का आग्रह जो इसके चिन्तन-पक्ष की निष्ठा होता है। समय के सबसे एवं प्रतीक इतने काल्पनिक समूह होने हैं कि इनका कहानी मानव परावर्त पर निर्मित न हो कर वायवीय होने का सम्भाव भी बन लगती है। इसलिए मोहन राधा सामाजिक चेतना से प्रेरित हो, कर जैन-द तथा समय का कहानी कला का काल्पनिक चिन्तन पर आधारित मान कर भारतीय जीवन से सम्बद्ध नहीं समझते हैं और निरप्रसाद सिंह समष्टि चिन्तन के धारण हो कर इनकी कहानियों का भारतीय विरुद्ध, विवादीय होने का सारा देखे हैं। समय की कहानी 'राज' का मुन्हाकन विभिन्न दृष्टियाँ से हुआ है जिसमें परिणाम स्वरूप इनमें यज्ञ का सत्य भारतीय है, प्रकृत है, परम्परा में कटा हुआ है, यथार्थ से विच्छिन्न है, जड़ एवं हास्योक्त है परन्तु इसके बावजूद 'राज' की कहानी का मुन्हा न हुआ भी प्रकृत है। इस प्रकार समष्टि चिन्तन से प्रभावित कहानी का स्वरूप

यह,

भीष्म साहनी, भैरवप्रसाद शुप्त, नागाजुन, अमृतराय, दयानन्द मनन्त, अमरकांत आदि की रचनाएँ म दृष्टिगत होता है ।

आज की हिंदी कहानी में समष्टि चिन्तन एवं व्यक्ति चिन्तन का रूप इतना स्पष्ट एवं स्थूल नहीं है जितना इस के पहलू की कहानी में उपलब्ध होता है । इन दो बड़े पैदा की चार शाखाएँ इतनी उपशाखाएँ में विकास पा कर एक-दूसरे में उलझ चुकी हैं कि कभी कभी किसी उपशाखा का उसकी शाखा से सम्बद्ध करना कठिन हो जाता है । इसी प्रकार किसी कहानी विशेष में अक्षक की मूल चेतना को पकड़ना भी दुष्कर हो जाता है । आज की हिंदी कहानियों की उपलब्धि को इसकी विविधता में माँका गया है, और हमकी अनेकरूपता, अनेकरूपता तथा अनेकरूपता को स्वीकार किया गया है, कभी वस्तु के आधार पर और कभी शिल्प के आधार पर कभी प्रगति के आधार पर और कभी प्रयोग के आधार पर, परंतु इससे मूल में दोनों पक्षों का उत्पातित करने वाली उस विशिष्ट जीवन दृष्टि को पकड़ने तथा आधार बनाने का इतना प्रयास नहीं हुआ है जितना यह अपेक्षित है । आज की हिंदी कहानी की उपलब्धि एवं सार्थकता इसकी वस्तुगत तथा शिल्पगत विविधता के कारण हिन्दी उपवास की अपेक्षा कम महत्वपूर्ण नहीं बड़ी जा सकती । आज के कहानीकारों की सूची इतनी विस्तृत है और इनकी कहानियाँ की संख्या इतनी बड़ी है कि इन सबका मूल्यांकन एक निबन्ध की सीमित परिधि में समेटना संभव नहीं है । इसलिए कुछ अक्षकों की उन कहानियों की आरंभ मान सकते हैं कि जो आज की वस्तुस्थिति का इनका मूल स्तर पर अभिव्यक्ति देने का प्रयास कर रहे हैं । इन कहानीकारों का, मूल्यांकन की सुविधा के लिए दो ध्येयों में विभक्त करना असंभव न होगा । आज के कुछ कहानीकार व्यक्ति चिन्तन, व्यक्ति सत्य की जीवन-दृष्टि से जीवन की असंगतियों तथा अदृष्टताओं का चित्रण कर रहे हैं । यह कहानी की एक दिशा है । इसकी दूसरी दिशा कहानी की उस धारा से सम्बद्ध है जिसमें कहानीकार समष्टि चिन्तन, समष्टि सत्य अथवा सामाजिक चेतना से अनुप्राणित हो कर सामाजिक विषमताओं को उद्घाटित कर रहे हैं । इस व्यक्तिचिन्तन तथा समष्टि चिन्तन में भी विविध स्तर हैं, व्यक्ति यथार्थ तथा समष्टि-यथार्थ में भी विभिन्न धरातल हैं, व्यक्ति हित तथा समष्टि भूतल के भी अनेक स्तर हैं । अस्पताल की कहानियाँ में समष्टि-सत्य की जीवन-दृष्टि अमरकांत की कृतियाँ के मूल में समष्टि सत्य की अनुभूति एवं अभिव्यक्ति से भिन्न है । इसी प्रकार अक्षक की कहानी-कला के मूल में जो व्यक्तिमूलक जीवन-दृष्टि है यह अन्नू भट्टारी, उषा प्रियंवदा, कृष्णा सोबती, प्रयाग गुप्त, रमण बारी, जितेन्द्र प्रसाद कुमार आदि के कहानी साहित्य को प्रेरित करने वाली

व्यक्तिमूलक जीवन दृष्टि स निम्न है। निम्न वर्ग की कहानी-कला का यदि मूखन विद्वत्पण किया जाय तो उसमें भी जीवन-दृष्टि अन्ततः व्यक्तिमूलक रूप में ही उभर कर आती है। इनके सम्बन्ध में प्रायः यह मत प्रकट किया जाता है कि इनकी कहानी कला सामाजिक चेतना में अनुप्राणित है और इनकी विवेचना त्रिविध विधान में लक्षित है। इस भ्रांति का परिहार इनकी कहानियाँ व आधार पर ही हो सकता है जिनका विद्वत्पण यथा स्थान किया गया है। इस प्रकार माहन राजा की कुछ कहानियाँ व मूल में जीवन-दृष्टि व्यक्ति चिन्तन में अनुप्राणित है और इनकी अधिकांश कहानी माहित्य सामाजिक चेतना से प्रेरित है। राजेश मादन की कहानी-कला के सम्बन्ध में प्रायः यह धारणा रूढ़ हो चुकी है कि इनकी रचनाएँ सामाजिक चेतना में अनुप्राणित हैं, परन्तु इनकी कहानियाँ का विद्वत्पण इस धारणा की पुष्टि नहीं करता। इनकी कहानियाँ व मूल में चेतना का स्वरूप अन्ततः व्यक्तिमूलक है, चाहे यह समष्टिमूलक होने का सामान्य अवश्य दता है। प्रायः कहा नीकारा के सम्बन्ध में भी इस प्रकार की भ्रांतियाँ उत्पन्न होनी हैं जिनका परिहार इनकी कला में मूल चेतना परकटन से ही हो सकता है। इस चेतना का पकड़न तथा समझन के प्रयास में मुझसे भूत हो जाना मानवीय एवं स्वाभाविक है और मूल करना मेरा परिहार भी है परन्तु जा नहीं है उस प्रारम्भिक करना या मिट्ट करना मेरा अपराध होता। मैं यह भूत की है या अपराध किया है या दानों—इसका निश्चय इन कहानीकारों का इतिहास के इस विद्वत्पण तथा इनमें व्यक्त चेतनों के मूल्यांकन के आधार पर हो सकता है। यदि किसी क्षण के सम्बन्ध में एक धारणा रूढ़ हो जाती है अथवा किसी भ्रांति का व्यापक रूप में संचार हो जाता है तो उसका परिहार एवं निराकरण करना दुष्कर हो जाता है। इसका एक उदाहरण दिया जा सकता है। अरु का उदाहरण जहाँ के मूल में प्रायः सामाजिक चेतना का प्रकाश गया है और इनकी पुष्टि स्वयं अनेक द्वारा भी होती रही है, परन्तु इनके कहानी माहित्य को प्रेरणा देने वाली तथा इसमें विहित मानवीय सम्बन्धों का निरूपित करने वाली जीवन-दृष्टि का स्वरूप अन्ततः व्यक्तिमूलक है और इसका परिचय इनकी मूल चेतना से अवगत होने पर ही मिल सकता है। इनो तरह और अनेक के सम्बन्ध में भी कुछ धारणाएँ रूढ़ हो चुकी हैं जिनका निराकरण करना जान पड़ता है। राजेश मादन माहन राजा, प्रादि की कहानी-कला व वास्तविक स्वरूप एवं नैरेय में अवगत होने के लिए उन चेतना में अवगत होना आवश्यक है जो इनके संचार का प्रयत्न देता है, वस्तुस्थिति का चित्रित करती है, वस्तु का पकड़ करती है वस्तु का गति का रूप देती है, सम्बन्धों का निरूपण करती है। इनके सम्बन्ध में यह धारणा रूढ़ हो चुकी है कि इनकी कहानियाँ सामाजिक चेतना से अनुप्राणित हैं, परन्तु राजेश



को 'अपरिचित' 'मिस पाल, सुहागिनें' आदि के मूल में चेतना का स्वरूप यत्ति मूलक ही कहा जा सकता है। इसी भाँति राजेंद्र यादव की 'एक कमजोर लम्क' 'जहाँ लक्ष्मी बँद है,' 'अभिमन्यु की आत्महत्या' छोट छोट ताजमहल के समष्टि मूलक प्रतीका के आवरण में इनकी यत्तिमूलक चेतना छिपी हुई है जो बाहर भाव बिना रह भी नहीं सकती। इसलिए यादव की सामाजिक चेतना का स्वरूप हृदयगत न हो कर बुद्धिगत है। बुद्धि का अकुशल जब कभी सिध्ति हा जाता है तो इनकी यत्तिमूलक चेतना जीवन और जात का भ्रंजन लगती है। प्राज्ञ की कहानी के मूल में चेतना के जादो रूप उपलब्ध है—वैयक्तिक एवं सामाजिक—इह व्यत्तिमूलक एवं समष्टि मूलक कहना अधिक सगत होगा। एक यत्ति का कन्द्र में रह कर, इसे आधार बना कर सामाजिक भाव्यताया, धारणाया आदि का मूल्यांकन करती है और उन हानियाँ विरोध करती है जो व्यक्ति-विकास का अवरोध करती हैं, और दूसरी समष्टि विकास का दृष्टि से वैयक्तिक मूल्या एवं भाव्यताया का विरोध करती है जो इन विकास में बाधक बनती है। प्राज्ञ की हिन्दी-कहानी में इन दो परस्पर विरोधी जीवन-दृष्टियों का उल्लेख हा चुका है।

अमरकान्त, अमृतदास आभयकाश आवास्तव दयानन्द अनन्त नीलम साहनी गुरुङ गगापर, माहन राकेग, मानवन्ध रेणु, शिरप्रसाद सिंह आदि की कहानियाँ सामाजिक चेतना का प्रत्यक्ष एवं पराक्ष एवं अस्पष्ट रूप में विविध स्तरों पर तथा वैभिन्न सधता द्वारा उभारा गया है। एक कहानीकार की सभी रचनायाँ में इसका अभिव्यक्ति उपलब्ध नहीं होती। इसलिए इनकी उन कहानियाँ का जायत्तिमूलक चेतना से अनुप्राणित हैं, इनकी कहानी कला के अन्वय के रूप में अङ्गीत ही उचित है। इनका अधिकांश कहानियाँ का प्रेरित एवं स्थापित करने वाला जीवन-दृष्टि समष्टि मूलक है। इनका स्वरूप कभी सामान्य है तो कभी विशिष्ट इसकी प्रवृत्ति आभी 'सामाजिक' है तो कभी समाजवाद। अमरकान्त ने अपनी कहानियाँ में प्रायः इस सामाजिक विषयता का और बार बार सन्त किया है जो मानव जीवन के विकास में बाधक हैं। इनके सन्त में शक्ति है जो भ्रमभार डालती है और विप्लव में ध्वज है जो काटना है। इनकी कहानियाँ की वस्तु का आधार मानव जीवन तथा ठोस स्पर्श है। इस सपाथ का चित्रण यशपाल की तरह गंजा ना नहीं है जिससे प्रचार का गंध निकलता है। इनकी कहानियाँ में बड़े बाल की प्रथा छोट-छोट बाल हैं जो ढाँढा मचल करत हैं। 'दापहर का भाजन', 'जिन्दगी और जोक' बल' पत और गैरपता, छिप्टा कलहल, 'गल का जजीर, नोकर, आदि कहानियाँ में जो जिन्दगी और जान नामक कहाना-मण्डल में सन्तित है इनकी कहाना-कला का हृदय मन्त्रा रूप में उभर है। इस समष्टिमूलक जीवन-दृष्टि से प्रेरित म्यान

का 'तलवार' कहानी भी है जिसमें प्रातिवादा चेतना को मूल धर्मव्यक्ति मिली है और मन्त्र ह इनके इन कहानी-मण्डल में उसे स्थान नहीं दिया गया । 'इनके समष्टिमूलक चिन्तन में धारे धारे इतना निवार प्राप्त गया है कि वह धर्म-चिन्तन का धार उन्मुख होना लगा है । यह समष्टि चिन्तन से माहुरता से स्थिति का परिणाम भा हो सका है भयवा सामूहिक रचना की माना धनुर्मुक्ति का प्रतिफल भी । परन्तु धर्मो दम मन्त्रधर्म में काइ निर्दिष्ट मत प्रकट नहीं किया जा सकता । इस व्यक्तिमूलक चेतना का ध्यानमात्र दृष्टा के लिए, 'सा' तलवार की ओर प्राप्ता प्राप्ति नवीनतम इतिहास में होने लगा है । तलवार का नीचन में एक विपन्न जीवन का कदम चित्र है । निन्दितकरा मौ धर्मन तीन पुत्रों धीरे धीरे का दापहर का नीचन करतात समय उस विपन्नता विपन्नता की धार मकत कर जाता है जो सामाजिक विषयना का परिणाम है । यह मकत कहानी पर धारमणि होने का धामन नहा देता, परन्तु कहानी व नीचर में मकत रूप में उभरता है । 'पति का पालवो मार कर धीरे धीरे नीचन करना बूझा गया क जुआनी करने व समाप्त है,— इस तरह व चित्रा दृष्ट तथा ध्येय बाणों में माध्यम से धमारा की स्थिति को गहराया गया है । जिन्हा धीरे जाक में एक निवर्तने के पायम से जो नाक नहा मांगना कहना कहनाधार न समाज में धार विषमता का धमारा स्थिति को निर्दिष्ट किया है । गोपाल रज्जू धीरे रज्जू नगड इसक जीवन विकास व तीन चरण है जो प्रतीक रूप में प्रकट है । इनक जीवन सार का इन 'जा' में व्यक्त किया गया है—'वह मरना नहा चाहता था 'कतिर जाक की तरह जिन्हा में विमर्श रहा । धर्मन लगता है जिन्हा स्वयं जाक सरावा समते निमटा की धीरे धीरे-धीरे उभर रक्त की प्रतिम बूँद पी गयी । 'इन प्रकार व्यक्तित्वा दृष्टि से वह मर चुका है, परन्तु समष्टिगत दृष्टि से वह समाज में धार ना जावित है । कहानी के धर्मन में दिना उत्तर स्थि इस धर्मन का उदया है—'नाक वह था या जिन्हा ? वह जिन्हा का मून पून रखा था या जिन्हा उभरा ? इस प्रकार जिन्हा धीरे जाक व मकतों द्वारा उस ध्येय परिवर्तन का इतिहास दिया गया है जो इस कदम स्थिति व मून में है । मरू धर्मन डिप्टी कनवरी, 'इस 'वने, धीरे धीरे मकत' 'नीकर' प्राप्ति कहानियाँ से निवर्तना है । पहली कहानी में एक निम्न मध्यमार्थी परिवार की विपन्नता तथा मरूताका ता का मजान उस ध्येयमानक चित्रण है । इस परिवार व मन्त्र धर्मन उद्विग्न व मुन्दस मने रक्त है जो धीरे-धीरे हो जात है । धमारा में मुक्ति पान की महत्वाकांक्षा किम

१ स्थान का 'तलवार' (कहानी) जनवरी १९२७)  
 २ जिन्हा धीरे जाक पू० १९१

प्रकार त्याग की प्रेरणा देती है और वह त्याग किस प्रकार विफलता में परिणत हो जाता है—इसके चित्रण में सामाजिक विषमता गहरे रंग में उभरती है। यही रंग 'वृक्ष, पैसे और मूंगफली' तथा 'नौकर' में उघड़ता है। इस गहरे रंग का उधाड़ने के लिए अमरकांत ने व्यंग्य का आश्रय लिया है, परन्तु यह इनकी बाद की कहानियों में फीका ही नहीं पड़ता, रंग भी जाना है। 'लाट' <sup>१</sup> का प्रेरणा देने वाली चेतना का स्वरूप व्यक्तिमूलक है। इसमें एक युवक दारोगा अपने प्रतिष्ठा की लड़की पर मुग्ध हो जाता है। और वह लड़की अपने महपाठी के प्रेम-पाश में पक्ष से ही बंध चुकी है जिसका युवक दारोगा को ज्ञान नहीं है। कहानी का संकेत दारोगा के शरित्त के सत्कार एवं परिष्कार में लक्षित होगा है। नारी का खिलौना मान समझने वाला इस व्यक्ति को नयी दृष्टि प्रदान कर लेखक ने उसकी नारी सम्बन्धी मायता का रूपांतरित कर दिया है। इस कहानी में अमरकान्त की सामाजिक चेतना वैयक्तिक चेतना में परिणत होने का आभास देती है। इसी चेतना की अभिव्यक्ति 'देश देश के लोग' <sup>२</sup> में दृष्टिगत होती है। इसमें जीवन धारा से कट हुए एक स्नायु का व्यंग्यमय रखा चित्र है जो उदासीनता रिक्तता एवं नूयता की गहरी अनुभूति को पा कर एक उधेड़ चुन में रसा हो जाता है। कहानी से व्यंग्य उभरत उभरते रह जाता है। यह कहानी सामाजिक चेतना से इनकी प्रेरित नहीं है जितनी वैयक्तिक कुण्ठाओं के चित्रण के उद्देश्य में अनुप्राणित है। इसका मन्तव्य इन कुण्ठाओं के चित्रण में उलभ जाता है। इसी भाँति 'लड़की और आर्मी' <sup>३</sup> में 'मसूर खट्टे हैं' की स्थिति का विश्वविद्यालय-परिचय में चित्रण वैयक्तिक स्तर पर किया गया है। इन कहानियों में उनकी शक्ति नहीं है जितनी लेखक की उन रचनाओं में जिनमें मूल में सामाजिक चेतना और सामाजिक विषमता की अभिव्यक्ति है। अमरकांत का पकड़ वैयक्तिक विडम्बनाओं पर इनकी दृढ़ नहीं जितनी सामाजिक विषमताओं पर है। इसलिए इनकी कहानी रसा का वास्तविक स्वरूप 'बापहर का भोजन' 'डिप्टी क्लकटरी' 'जिन्दगी और जाक' आदि कहानियों में उपलब्ध है और वैयक्तिक चेतना से अनुप्राणित इनकी कहानियों को एक नये प्रयोग के रूप में ही मानना अभी सतत जान पड़ता है। इनकी कहानी रसा के भावी विराम मयवा दिना के सम्बन्ध में कोई निश्चित मत देना अभी अनुचित होगा।

मोहन रायस की कहानी रसा का वास्तविक स्वरूप भी अधिकांशतः सामाजिक चेतना से अनुप्राणित है और अतः व्यक्तिमूलक चेतना से। इनकी कहानी की

१ नई कहानियाँ (नवम्बर १९६०)

२ नई कहानियाँ (जनवरी, १९६२)

३ नई कहानियाँ (नवम्बर १९६२)

मुख्य धारा में 'नये सदमों' की खोज सामाजिक चेतना से संचालित है और इसमें मानवित्वता का विकास प्रायः समष्टि-सत्य एवं व्यापक परिवर्तन के धरातल पर हुआ है। इनकी दृष्टि में वही कहानी नयी कहानियों का अधिकार रखती है जिसकी दिया व्यक्ति की मान्यताओं का दिया न हो कर सामाजिक दिया है और सामाजिक दिया माने का समाजवादी का व्यक्त करना हो। वह जीवन के वस्तु-क्षेत्र को, मनुष्य की मूल प्रकृति को शाश्वत एवं स्थायी मान कर जीवन के बदलने हुए सदमों में मनुष्य का चित्रित करने में अपने कहानियों के उद्देश्य का प्राप्ति है। प्रायः के जीवन की घुटन और घुमडन से जूझ कर उन गतिधाराओं को धारित करना वह कहानियों के लक्ष्य समझते हैं। इसलिये वह इन कला की गमा की तब तक हर रंग में जलाये रखने के पक्ष में जान पड़ते हैं जब तक कि सहर नहीं होती। इसमें यह सफाई को स्वस्थता तथा परिवर्तन को व्यापकता सिद्ध होती है। वह व्यक्ति सत्य का स्थितिहीन और समष्टि-सत्य को गतिहीन मान कर व्यक्ति-सत्य को व्यक्त करने का कहानियों को अपनी जगह पर ठहरा हुआ समझते हैं, जबकि जीवन अपनी जगह पर कभी ठहर नहीं सकता। उचित मान याधार स्वभाव के कारण ठहरने वाले कहानियों का मत नहीं है परन्तु 'मिस पात्र' 'परिवर्तित' तथा 'मुहागिने' आदि कहानियों में चलन चलन चक कर किन्हीं विधायक भावों से हैं। इनके तीन कहानियों-समूह में तक प्रकाशित हो चुके हैं—नये वादल (१९५७) जानवर और जानवर (१९५८), एक और जिन्दगी (१९६१)। इनमें प्रथम कहानियों को दिया सामाजिक है, परन्तु कुछ कहानियों के मूल में व्यक्ति चिन्तन का स्वर भी ध्वनित है। इनका कहानियों की वस्तु में मानवस्वभाव है परन्तु इनके गिनने में एक ही धारा है। राधा ने प्रेम त्रिकोण पर आधारित कहानियों का तो प्रभाव तथा चित्रावलि देखी है। मलबका मालिक, 'मन्दा', 'फग हुआ जूना', 'परमात्मा का हुता', 'हक हुता', 'बम स्टैंड की एक रात', 'मवाला', 'बलभक्त पात्र' आदि में सामाजिक चेतना और परिवर्तित, सामाजिक, 'माझा', 'मुहागिने' 'मिस पात्र', 'एक और जिन्दगी' आदि में व्यक्तिमूलक चेतना कहानियों का अनुप्राणित करता है। इस प्रकार वह अपनी जीवन दृष्टि का परावर बनाने में सामाजिक कठघरे में धावक करने में सफल नहीं हो पाये हैं। मरवा वह अपनी किमा निश्चित परिणाम पर नहीं पहुँच सका है किमा निश्चित सत्य न बाह्य नहीं बन रहा है। एक याधार का एक वय पर निरन्तर बनने में इतना माया नहीं मिलता जितना उसे एक के बदलने में मिलता है। इसलिये इनका कहानियों के लक्ष्य में समाज का उपनिधि होती है। इनमें वस्तु का विविधता तथा गिनने का सहजता एवं स्वाभाविकता है जो कला-बन इतना सहज एक विवरणों तक हो जानी है कि वह जाना-गता का रूप भी धारण कर पाता है। इनका परिणाम

कहानियाँ में वातावरण की सृष्टि कभी कभी 'मैनरिज्म' बन जाती है। इस उद्देश्य की पूर्ति प्रायः जोर-जन्तुभा के माध्यम से की गयी है। 'मलबे का मालिक' में कौमा और कुत्ता, 'अपरिचित' में उड़ता हुआ कोड़ा जो झुलस कर बत्ती में बिपक जाता है, 'मादा' में मादा सुगर और उसके बच्चे, जानवर और जलवर' में कुत्ता बिल्ली आदि नायक एवं मूढम सन्नेत देन में सहायक होते हैं। इन सन्त का प्रतिरिक्त अर्थ सन्तता की भी कहानी की 'बनतर' में भूँषा गया है जो कभी सामाजिक विषमता और कभी व्यक्तिगत कुण्ठा को इंगित करने हैं। 'मलबे का मालिक' में गिरे हुए मकान का मलबा भारत-पाकिस्तान के विभाजन के परिणाम तथा उजड़े हुए जीवन का प्रतीक है। कहानी का सारांश इसके अन्त में उभरता है जब भटका हुआ एक कौमा मलबे में पड़ लकड़ी के चौखट पर बैठ कर उसका देश को इतर उतर छिनारने लगता है और एक कुत्ता उसे वहाँ से उड़ाने के लिए भौकने लगता है। अपनी अपनी दृष्टि से इन गाना का मलबे पर अधिकार है। इस प्रकार यह मन्त उस सामाजिक परिवेश को इंगित करता है जो देश के विभाजन के परिणाम है। परमात्मा का कुत्ता' में पाकिस्तान में विस्थापित एक हिमांश भौक-भौक कर अफगान का अपने प्रति अन्धकार का व्यवहार करने के लिए दायित्व कर रहा है। जब तक वह चुप साधे रहा और सिष्टाचार में काम करता रहा, तब तक उसका कुछ न बन सका। अब 'बह्याई का हजार बरकत' मान कर वह अपने उद्देश्य में सफल हो जाता है। इस प्रकार भगवान के कुत्ते न गतिहान स्थिति को भौक-भौक कर गतिहीन बना दिया। कहानी के अन्त में दपनर के जड़ अफगान मनीनी जीवन का मन्त इस स्थिति को गहराता है और वातावरण का सृष्टि करता है जो रावण की कहानी कला का गिल्पात रुद्धि बन चुकी है। 'मवाला' में उस लड़के के जीवन का एक मन्त विरहित है जो चोराई के मदान में नगे पौर नगे मिर घुटना तक लम्बी मैला बनीज पहने तकरीह वाला के मामान की मवालागिरी करता है और जिस पर चोरा करने का नूठा आरोप लगाया जाता है। यह कहानी के नपुंसक आश्रम एवं क्रोध का सागर की लहरों का पन्थर मार कर हाव्यक कर सकता है। इस प्रकार एक दायित्व के सामाजिक अन्धकार के प्रति क्रोध की व्यक्तिगत स्तर पर प्रति व्यक्ति एक सिखण्डों के क्रोध का रूप हो धारण कर सकता है जिसे लहर पत्थर के प्रतीक द्वारा उभारा गया है। 'जानवर और जानवर' में मिशन कम्पाउण्ड की पृष्ठभूमि में एक पाठोपे चरित्र द्वारा इस सन्तका उभारा गया है कि पादरीका विगिष्ट कुत्तेमा और पाल के माधारेण कुत्ते में भारा अन्तर है, जानवर और जानवर' में यह अन्तर स्थापित रहा है, बड़ा जानवर छोटा जानवर को मार सकता है, बड़ी मन्त्री छात्र मन्त्री को ना मन्त्री है, इन जानवरों के माध्यम में जीवन का विषमता का गहराया गया है। इसकी गतिविधि गिरने की घटिया के मामान डिग हांग बजती बत्ता आ रही है। 'हक

हलात' में नारी के प्रति सामाजिक अत्याय का भार स्मृत किया गया है। एक अन्वहार बचने वाला अपन धन को तब तक हलात का पैसा मानता है जब उसकी क्रीन पत्नी घर से भाग कर घर को लौट आती है। इस सामाजिक विषमता का स्थिति का 'बस स्टैंड की एक रात' में एक परिस्थिति के चित्रण द्वारा गहराया गया है। इनका माध्यम सरली की रात में घबकत कायता की प्रतीति है जिस पर दम के मनजर का अधिकार है जिससे कुली आदि बचि किये जाते हैं। जीवन का उष्णता सम्पन्न के लिए और सीतता विषम के लिए समाज में सुरक्षित हाथी है। इस प्रकार माह्न रातों में सबसे एक प्रतीका का अर्थ मकर सामाजिक विषमता का चित्रण किया है इस चेतना को गहराया है। इसके तीसरे सग्रह का कहानिया में सक्त अधिक मूहम एक तीर्थ है। यह इनका कहाना कला के गिल्पगत विवास का सातक है। इनका कुछ कहानिया में वैयक्तिक दुष्ठाया जटिलताया आत्मी को भी उभारा गया है। इस सम्बन्ध में कहानीकार का कथन है कि स्वल्प वस्तु के माध्यम से भी स्वल्प सक्त दिया जा सकता है। मकर को स्वल्पता तथा अन्वयता कहानी-कार की जीवन दृष्टि का परिणाम है। इन कहानिया में रातों का दृष्टि व्यक्तित्व से प्रेरित है। 'अपरिचित' में जीवन का विदग्धता इसमें लानत होती है कि जो नारी परिचित है वह वस्तुतः अपरिचित है और जो अपरिचित है वह वास्तव में परिचित बन कर आती है, जो निकट है वह वस्तुतः दूर है और जो दूर है वही निकट होने का आभास देती है। इस स्थिति को मकर ने कुशलता एवं मूर्धन्यता से चित्रित किया है। एक महिला को उदात्त चहरी, गहरा घाल, सरल स्वभाव, उत्सल प्रवृत्ति, बाल-मुस्कान, एकाग्रप्रियता, मितभाषिता, सद्गुणोत्तमता, रसताडा के एक डिब्बे में एक मात्री के मन पर गहरी छाप मार कर रहे हैं। इस मात्री का पती का स्वभाव इस अपरिचित महिला के व्यक्तित्व के विरोध विपरीत है। इस महिला का पति जिस उमरे निरक्षर भजा है अपना पत्नी से उलट स्वभाव का व्यक्तित्व है। इस विषय का उदाहरण के लिए कथाकार ने मूहम तृत्तिक मूर्धन्यता में काम लिया है। गाढ़ा जीवन यात्रा का प्रतीक बन कर आता है, दिव्य का बत्ती घाम-घाम उड़ा हुआ कोड़ा जो मुनस कर उसका भाव चिरक जाता है इन दृष्टियों के जीवन का भार मकर करता है। कथम एक कथन का दृष्टि से यह कहानी सक्त का उन कहानिया में से है जिनमें मूल में चेतना सामाजिक का अर्थ का व्यक्तिक स्तर पर है। इस अर्थों में 'सामाजिक' का भार उठा जा सकता है जिनमें एक कुच्छिन्न तरलता को मनादगा का मजाब चित्रण है जिसे मिडिन पाम जिय बार माल बात चुन है और जिनका अर्थ तक मियाह नहीं हो सक्ता है। इनका कारण यह है कि उन गाँव में अपना मुपरा रन कर सोचना पड़ता है और यह उनका दुष्ठा का गहराया है। एक दिन वह पर

के दमघाट बानाकरण से बाहर निकलती है। वह अपना शृंगार कर, गध में सोने की जजोर पहन कर अपनी सहेला क विवाह में सम्मिलित होती है और लौटते समय एक मन्दिर में स्नान करने के लिए जब वहाँ खड़ा हो जाती है तो उसकी भाँवेँ एक नवयुवक की भाँसा से टकरा जाती है। सहसा भीड़ में किसी का हाथ जब उसके कंधे का स्पर्श करता है तो उसका शरीर पुलकित हो उठता है। इस सुखद स्पर्श की मधुर स्मृति को सुरभिस्त रखने के लिए जब वहाँ से चल देती है, तब उसे पता लगता है— 'उस स्पर्श का आभास तो वहाँ था, पर सोने की जजोर गध में नहीं थी।' इस प्रकार एक कुण्ठित युवती के धार्मिक उत्साह की अनुभूति को वैयक्तिक स्तर पर विद्रित कर उसे माहमग की अनुभूति में परिणत किया गया है। इसी काटि में 'भारती' कहानी भी रची जा सकती है, जिसमें माँ की ममता को दो पुत्रों के बीच डालता दिखाया गया है। इसे गहराने के लिए भारती सुधर और उसके बच्चों का सक्त व रूप में प्रयोग किया गया है। इसी धरातल पर 'भारती सामान' कहानी की रचना हुई है। इसमें एक ऐसे सम्भ्रांत परिवार के प्रवक्ता का चित्र एक एलबम के द्वारा प्रकट है जिसका मारा मामान नीलाम हो चुका है। इस एलबम का प्रतिम पन्ना अभी खाली है और इसका भारती सामान मिसेज नडारी है जिसे नीलाम किया जा सकता या किया जा चुका है। उनका पति उ नति के लिए अपनी पत्नी को घर के सामान के रूप में भाँवता है। मिस्टर नडारा का खाने की टेबल पर मक्खी से परेशान होना और मिसेज नडारी का बालों में उलझ हुए तिनक का भसल कर फक देना नूतन सक्त है जो एक विषम परिस्थिति को उभारते हैं। एक अतिथि का उनके घर में आना मिस्टर नडारी के लिए मक्खी निगलने के समान है और मिसेज नडारी के जीवन में उस तिनके की भाँति है जो उनके जीवन में घटका रहता है और जिसे वह भसल कर फँकने में धम मय है। इस वैयक्तिक स्तर पर सुहागिनी में दो विवाहित नारियाँ व चरित्र का तुलना द्वारा एक की कुण्ठा का व्यक्त किया गया है। हेड मिस्ट्रेस मनोरमा के जीवन का रिक्तता इसमें प्रकट है। उनका मतानहीन होना उनका जीवन में कटि की तरह चुभता रहता है। एक सुहागिन सम्पन्न है और दूसरी विपन्न। सम्पन्न सुहागिन का जीवन की विद्यमता का कहानी व अन्त में खान की फॉर्म व चुभने द्वारा व्यक्त किया गया है। इस कहानी—समग्र में 'एक और जिन्दगी' कहानी गिल्ब के बिनारा का तांड कर जिन्दगी की नदी में बहने लगती है। इसका सचन उस व्यक्तिक जीवन में लीत होता है जिसे जीवन दो बार धाँवा द चुका है। अपनी पहली पत्नी से तलाक़ के बाद दूसरी को वह मानसिक राग से ग्रस्त पाता है। जीवन की प्रथम माहात्म्य उसे रंग में जलन व सिर प्रेरणा देती है। कहानी का वास्तविक सन्त इसका अन्त में उभरता है जब एक नूतना रात में इस व्यक्तिक का अपना जीवन मापी एक कुत्ते में मिलता है जो

अनजान ही इसके पीछे-पाछे चलता रहता है और इस मान में अधिक बफादारी का सबूत होता है। वह किसी क कथन का सार्वक बनाता है—मैंने जैसे-जैसे इन्सान का पहचाना है वैसे-वैसे कुत्ते में मरना स्नह बटून गहरा जाता गया है। इस कहानी में मोहनग की स्थिति का व्यक्तिगत स्तर पर ही चित्रित किया गया है। इस प्रकार मोहन रावेश की कहानियाँ की दा स्पष्ट दिगाएँ हैं—एक सामाजिक और दूसरी वैयक्तिक चेतना में प्रेरित है, एक समन्वितमूलक तथा दूसरा व्यक्तिमूलक चिन्तन में अनुप्राणित है। सामाजिक दिगा की छातक परमात्मा का कृत्ता है जिसमें सामाजिक चेतना का गहरा रंग है और वैयक्तिक चेतना की सूचक 'मिस पाल' है जिसमें नारा क रिक्त जीवन का चित्रण है, मून हृदय का मूने उपकरणों से मरन का प्रयास है। इनका मध्यम नवत प्रन्त में उभरता है जब वह किन बुलाये अपने प्रतिनिधि को बस के मूँड़ तक पहुँचाने जाती है और उसके दाना हाथों में बिन्दुत व दो खाली डिब्बे उसका मून जीवन के प्रतीक बन कर दिखन लगत है। इसके प्रतिरिक्त यह प्रतीक सिकंदर के उन हाथों का स्मरण कराने में भी सफल होता है जिसमें इन डिब्बों का पकड़न की शक्ति नहीं थी। मिसपाल के कुण्ठित जीवन का चित्रण वैयक्तिक स्तर पर हुआ है जो मोहन रावेश की कहानी बताता है। इसका मुम है।

प्राज की हिन्दी कहानी में 'सामाजिक दिगा तथा चेतना' बाबू बलराम में भी व्यक्त। साहनी निबन्धनाद मिह रामकुमार, कमलेश्वर, माण्डव्य राजेश्वर यादव निर्मल वर्मा रणु, प्रामप्रकाश धीवास्तव, दयानन्द प्रमन्त आदि की गणना की जाता है परन्तु इनकी कहानियाँ के मूल में चेतना के मूख्य विस्तारण से इन मूल की मदेव पुष्टि नहीं होती। इसके प्रतिरिक्त ये कहानीकारों के नाम भी लिये जाते हैं जिनकी कला का बलु-पत्र तथा चित्-पत्र सामाजिक चेतना से अनुप्राणित माना जाता है, परन्तु इनके सम्बन्ध में किसी निदिष्ट परिणाम पर पहुँचने के लिए एक विस्तृत विवेचना की आवश्यकता है। इनमें मधुकर गंगाधर मधुकराय, विजय चौहान, रामेश्वर मटियाणी, हरिश्चन्द्र परमाई हृदनाथ नागाडुन के नाम गिनवाये जाते हैं। इनकी कहानी-कला के वास्तविक स्वरूप के स्पष्टीकरण तथा उद्देश्य के निष्कर्ष के लिए भी एक विस्तृत विवेचना की आवश्यकता है जो एक निबन्ध की सामित परिधि में सम्भव नहीं। मधुकराय तथा नागाडुन आदि कहानीकारों की कृतियों में सामाजिक पत्र निदिष्ट है, परन्तु अन्य कहानीकारों की रचनाओं में चेतना का स्वरूप इन निदिष्ट रूप में नहीं उभरता चितना माना जाता है। प्राम मादना का लम्ब कहानी में सार्वभौम माना और उसके माध्यम से जीवन के बहिरंगों पर बहुरंगी चित्र प्रस्तुत करता है। इनकी कहानियाँ में प्रेम-बन्धन-परम्परा की ध्वनि है वह मध्यम का इतना महारा नहीं मन्त जितना विवरण का, परन्तु बाबू बेरा नामक कहानी इस लम्ब का प्रभाव है। यह चित्रण के प्रमत्त उदाहरण होने के



कारण लक्षणा एवं व्यञ्जना की आराधना से दूर रहते हैं, इनकी 'वीफ की दावा' में भी मौलिक उद्भावना का आभाव है और इसमें प्रेमवाद की 'बूढ़ी काकी' की ध्वनि का सुना जा सकता है। इनकी जीवन दृष्टि का परिचय इनके सटीक व्यंग्य में उपलब्ध है जिसके द्वारा यह मध्यवर्गीय जीवन मूल्यों पर प्रहार करते हैं। इनके व्यंग्य की रखाए कहीं-कहीं इनकी स्थूल हो जाती है कि चिन जड़ होने लगता है। 'पहला पाठ' में एक धार्मिक समाजों के सिद्धांत एवं व्यवहार में विरोध की स्थिति को उभारा गया है वह जातिभेद को मिटाने के लिए जातिभेद की पुष्टि करता है। 'समाधि भाई रामभिहू' में धार्मिक अधिपत्य पर बड़ा व्यंग्य है। इनका चेतना के मूल में समष्टि प्रगल्भ की भावना है जो इन्हें सामंती तथा मध्यवर्गीय सभ्यता का व्यगात्मक आलोचना द्वारा समाज का एक नया बीज में डालने के लिए प्रेरित करता है। इसलिए भीष्म मास्ती में समूह के प्रति जागरूकता, दृष्टि में प्रगतिशीलता, निरंतर प्रति उदासीनता और वस्तु के प्रति आग्रह है। इनकी कहानी कला का मूल मध्यम बोद्धेयता में सुवर्णित होता है परंतु दयानंद धनन्त की 'गुडिया गल न गल' नामक कहानी में इस बोद्धेयता का कलात्मक अभिव्यक्ति मिली है। इसमें दो वर्गों के चल के माध्यम से समाजवादी चेतना का सशक्त निष्पन्न मयतात्मक एवं प्रतीकात्मक शैली में हुमा है। रामू एक गरीब बाप का और वसन्त एक समीर बाप का बेटा है। वसन्त का यह जन्म मित्र परिवार है कि यह गुल्ली-टंडे के चल में रामू का दबावर रखे और उसे मारपाट नी सके। इनके पितामहों में क्षोभक एवं दायित्व का सम्बन्ध था और है। इस प्रकार यकीन गत सम्बन्ध के स्तर पर कहानीकार ने उस व्यापक परिवार की घोर संकेत किया है जिसमें दायित्व की फटेहाली, विवशता, सिमकिया, नपुंसक बड़े बग़ाहर है पर भी राग है तथा जेब में धन का अभाव है। इस परिवार के कर्त्तव्य का दायित्व समाज की बीकाईर में परिणत कर घसक न सामाजिक विषमता का विषय समाजवादी चेतना से अनुप्राणित होकर किया है।

डॉ० धीवप्रसाद सिंह की सामाजिक चेतना उपनिषद् जीवन के चित्रण का प्रेरणा रही है जिसके फलस्वरूप इन्होंने आधुनिक एवं ग्राम-व्याप के द्वारा जातीय जीवन के प्रश्न को उठाया है और इसका उत्तर अपनी कहानी सम्बन्धी आलोचना तथा कहानियाँ में दिया है। वह मनुष्य की महानता में अपने अडिग विश्वास का पदार्पण करते हुए लिखत है— मनुष्य और उसका अविदगी के प्रति मुक्त माह है जो अपने अस्तित्व को उभारने के लिए विविध क्षेत्रों में विराधी शक्तियाँ से जुक्त रहा है, प्रथम शिक्षा, उपाय, विवशता प्रचारण प्रवृत्ति क्षोभण, राजनीतिक प्रणाली और युद्ध स्थानाध्यता के नाच पिछा हुआ भा जा अपने सामाजिक और व्यक्तिगत हक के

लिख लड़ता है हँसता है, राता है, बार बार गिर कर नी जो अपने लक्ष्य से मुँह नहीं मोड़ता वह मनुष्य तमाम सारारिक कमजोरिया और मानसिक दुबलता का वाक्पूव महान है।<sup>१</sup> इस मनुष्य को कहानीकार न गाँव में ही खोजा और पाया है नगर में "सक सम्मान की तूती का मौन करना चाहता है और इस पर प्रमृतराय ने प्रापति की नगर-कथा की तूती का मौन करना चाहता है और इस पर प्रमृतराय ने प्रापति की है—'ययाय का गहरी पकड़ की कमी गेवई सदा की कुलभट्टी से भी पूरी नहीं हागी और न कितने ही यत्न से माया हुआ लाकल कलर का बिगुल स्वयं एक साध्य बन सकता है।<sup>२</sup> इसमें रणु की प्रावलिक कहानी के स्वल्प एवं उद्देश्य की ओर सक्ता प्रत्यक्ष और ग्राम कथा के प्रा-दालन को धार परो है। प्रमृतराय गाँव तथा नगर दोनों का जीवन को बिचिन करने के लिए सामाजिक उद्देश्य तथा गायित्व को प्रावश्यक मानते हैं, वस्तु की प्रपक्षा दृष्टि में विश्वास रखते हैं। डॉ० सिरप्रसाद सिंह दाता पर प्रमुक्त लगा दत्त हैं। इन्हें नाव भूमि तथा दृष्टि दाता की उपस्थिति ग्राम-जानन में ही होती है। इनक 'संपरा' में उपाति जावन का बिगुल है जो ग्राम-कथा की विधापता है।<sup>३</sup> उन उपाति जीवन का बिगुल मार्कण्डेय हयनाथ, गेवर जाती, रणु, प्राप्ति प्रनक कहानीकार ने बिचित्र दृष्टियाँ से लिया है। इनकी रचनाप्रा की उपलब्धियाँ तथा मामा का मूल्य बन करने के लिए इनक मूल में उस चनना प्रपक्षा जावन-दृष्टि का स्वरूप में प्रनगत हाना प्रगति है जो इनकी कहानियाँ के वस्तुप्रा एवं चित्प्रा का स्थापित करती है। इस उपाति जावन की गहनता का किम प्रायाम के साथ प्रिति किया गया है इसे जानन तथा पहचाने के लिए प्रमृतराय न सामाजिक दृष्टि पर दत्त लिया है। इनका यह भी एक कारण हो सकता है कि दहात में प्रभी मानन का स्वल्प प्रितिष्ट न हो कर सामाजिक है, गाँव में प्रभी व्यक्ति चनना की प्रपक्षा सामाजिक चतना का प्रथिव महत्व है, परन्तु व्यक्ति-चित्तन में प्रेरित एवं कहानीकार इन उपाति जीवन का सामारिक रंग में नों रंग सकता है और प्राणी ने यह किया ना है। इसलिये प्रमृतराय का प्रा कर सक्ता की दृष्टि पर दृष्टी है जो वस्तु एवं चित्प्रा का प्राकार दती है प्रमृतराय एवं प्रभिव्यक्ति का सम्बन्धण करता है। प्रिप्रगात सिंह व प्रिप्रगात महाप्राय' में एक उपाति चरित्र व प्रति प्रगक की प्रगात प्राप्ता तथा गहरा महानुत्पति एवं द्विज का भा मानवीय रूप देने में सफल होती है। इस प्रसार संपरा से उपाति जावन का बिगुल उपलब्ध है। एक संपरे में मानवापता को उनाले के लिए उसक बिगुल को उगात रूप में प्रविष्ट किया गया है। इनक माय ही पार क प्रन में प्राति रहती है—दय प्रभिविज्ञान का नी कहना न गहराया गया है। 'कम

१ कमनागा की द्वार चित्प्रा दृष्टि  
२ गता मिट्टा निवेदन, पृ ८

नागा की हार' उस नदी की हार है जो अपने कोन से दहा का घातित्व करता रह है, परन्तु इसका वाङ्मयीय रोचकता के लिए बांध को ठीक किया जा रहा है, ग्रामीण समाज का कमनाया से कम बठार नहीं है जिसमें निर 'नया दृष्टि' धारित है। नदी की उतावत तरंगों के समान समाज के बठार नियमा का निमित्त बनना होगा ताकि हममें शक्ति के नाश तथा जानने के विनाश का सम्भारना हो सके। इस प्रकार भले क देहाती जीवन में नयी चेतना के सार के पास जान पड़ते हैं जिसमें इनका रामाटिक दृष्टि का आभास मिलता है। इस रामाटिक दृष्टि में व्यक्ति-स्वातन्त्र्य और समष्टिमूलक सामंजस्य एवं सहस्रपक्ष न हो कर सम्मिश्रण है। इस कारण कथाकार ग्राम जीवन के मर्म को स्पष्ट करने का प्रयत्न उसका वास्तविक रूप में उलझ जाते हैं और उनका वास्तविक रूप का प्रत्यक्ष चित्रण के लिए उपमाया की पुस्तकवादी जवाने लगते हैं। इन उपमाया की निधि एवं रीति में भी भले क रामाटिक बाध का परिवर्तन मिलता है। शिवप्रसाद सिंह ने अपनी तथा मार्क्सवाद की ग्राम-नया में बुद्धिवादी का स्वीकार करने में सकार नहीं किया है, परन्तु इन बुद्धिवादी के मूल में अपनी रामाटिक दृष्टि का वह उदाहरण कर गये हैं जो इसका वास्तविक कारण है और जिसे प्रमृतराय ने 'नॉस्टैलिजिया' की संज्ञा दी है। 'इस घर की याद' में भी रामाटिक भावना रहती है। शिवप्रसाद सिंह ने कहानी सङ्ग्रही अपने दृष्टिकोण का स्पष्टीकरण एक कहानी के माध्यम से भी किया है जिसमें प्रेमचन्द की 'दूरी वाली प्रसाद' की 'मधुमा', 'मनेश की रोज', जैनन्द की 'जाह्नवी' और यशपाल की 'तुमने क्या कहा कि मैं सुन्दर हूँ?' की कहानियाँ से नारी पात्रों का धार इनके प्रति अपने दृष्टिकोण का निरूपण किया है। इसमें प्रसाद का मधुमा' शोषित मानव का प्रतीक बन कर आता है जिसके प्रति इन नारियाँ का प्रतिक्रियाया में इनके स्वतन्त्रता का दृष्टिकोण उभरता है। इस 'कहानियाँ की कहानी' में कथाकार अपनी दृष्टि का 'प्रगतिवादी' सिद्ध करने का प्रयास करते हैं। मनेश की रोज, जैनन्द की जाह्नवी, यशपाल की माया आदि के व्यक्त का व्यक्तमूलक निराधारण एवं पराधीन किया गया है जिससे इतना स्पष्ट हो जाता है कि कहानीकार इनसे सहमत नहीं है। 'दूरी' काको परम्परा की प्रतीक है 'जाह्नवी' काल्पनिक एवं स्वच्छन्द रोमांस का, 'राज कुँठा की', 'माया' उपमायितावाद तथा नग्नवाद की और 'मधुमा' निरीह एवं शोषित मानव की, इस पंक्ति में भले क यदि 'कर्मनागा की हार' की विधवा फूलमतिवादी का बिठला देते और उसका कोल से प्रवेश पुत्र को बंध बना देते तो चित्र प्रचुर न रहे जाता और 'जीवन की गहनता' अपने पूरे आयाम के साथ चित्रित हो जाती, ग्राम नया अपने जातीय एवं भारतीय रूप में उभर कर आती और राजेन्द्र यादव के कबाडखाने का सारा शिल्पगत विविध मास विकने से रह जाता और उनकी दुकान बंद हो जाती। इस प्रकार ग्राम-

कथा की नयी दुकान की खोलन का उद्देश्य भी स्पष्ट हो जाता। इस प्रकार ग्राम कथा को आधार बना कर नवतता का नवतता के लिए प्रस्तुत करने की प्रवृत्ति मात्र की कहानी के मूल्यांकन में बाधक ही बन सकती है। वस्तुतः शिवप्रसाद सिंह को कहानी कला की उपलब्धि उपशित जीवन को चित्रित करना है जिसका मूलपात प्रेमचन्द ने किया था। वह जन-प्रमोद की व्यक्तिवादी जीवन-दृष्टि के धार विराधी है, यथोपाय के प्रचारात्मक हस्तिकाल के पक्ष में मानता जान पड़ता और प्रत्येक क रोमांटिक खण्ड चित्रा में भी मनुष्य नज़ा है। इसलिए अपने लिए वह एक नये पक्ष को प्रयास करना चाहते हैं जो परम्परा से सम्बद्ध हो, जातीय एवं भारतीय हो, जिस पर चल कर वह अपने गाँव में पहुँच जायें, जहाँ मुसलमान दृष्टि की प्रेरणा नव रामांटिक धर्म से वह इस गाँव का चित्रण करें और उन दुली पात्रों का अपनी सहानु-भूति में नहला दें जिनका गाँव में वह पहुँच उत्पन्न करने रहे हैं। इस यत्न में प्रत्येक कहानीकार ने अपनी अपनी आदृष्टियाँ दी हैं जिनमें मार्क्सवादी आकारनाथ, हयनाथ सोहर जागी, रंगु और कमधरवर की भी गणना हो सकती है जिसके लिए ग्राम की जगह कस्बे में भी है। इन आदृष्टियों को रत समय जिन मन्त्रों का उच्चारण हुआ है वे केवल श्रमवेद के न हो कर अन्य वेदों के भी हैं, परन्तु इनकी ध्वनि समवेत गायन की है। रंगु की ठुमरी में मृग का स्वर है जो आनन्दितता से प्रेरित है, सोहर के 'कोसी का घटवार' में पनबनी का पहाड़ी सगरा है जो वातावरण की सृष्टि करता है। कमधरवर के कस्बे का घावमी 'देश की माँ' तथा 'राजा निर बसिया' उपशित पात्र हैं जिनके माध्यम से कस्बे के जीवन का चित्रित किया गया है। इस प्रकार ग्राम कथा तथा कस्बे की कहानी में 'तपु मानव' को सहानुभूति एवं अभिप्राय मिली है। माकण्ड्य का हस्त भी इसी ध्वनि का तपु मानव है। 'पुलक क बाबा,' 'लंगड़े बाबा,' 'सलमा,' 'बायक तिवारा,' छोटे महाराज,' 'गुमराई,' 'मिरबनिया,' 'कूलमनिया,' 'बकस,' 'गन्ध' आदि पात्रों में जानियत निधायन है मानवाय कोमलता एवं कठोरता है, महजता एवं सरलता है, बौद्धिक उन्नति का प्रभाव है। इन चरित्रों में धात्ता का स्वर है, जीन को सामना है तथैव के प्रति आग्रह है जिनका प्रभाव नगर तथा में इन कहानीकारों को लगता है। कमलिण कमधरवर तथा निरबनिया की भूमिका में मानवीय मूल्या के सरोवर, जीवन शक्ति के मन्त्रेण मायाजिक गिथान के नय माँच में डालने का मन्त्र रत है। इनके लिए ग्राम का कहानी का मापन मनोरञ्जन न होकर मनुष्य का जीवन प्रवृत्ति को उद्घाटन तथा स्पर्श करने को ध्येय है। इस आधार पर यह ग्राम का कहानी का नया का मा बना प्रभाव रत है। इसमें एक और कलात्मक अभिप्राय, गिन कोन और नाया

का ध्येयना शक्ति में विकास हुआ है और दूसरी ओर नयी भाव-भूमिका का सृजन भी हुआ है।<sup>१</sup> 'नयी कहानी सामान्य की समर्थक है और भाव ही विगिष्ट की पापन। गैली शिल्प सामान्य की विगिष्ट बनाता है और वस्तु कथ्य विगिष्ट की सामान्यता में परिणत करता है। इन दोनों के मूल में कहानीकार की सामाजिक चेतना वस्तु शिल्प दोनों को रूपायित करती है।

इस सामाजिक चेतना प्रथम 'ध्यायक परिवर्तन' एवं समष्टि चिन्तन की जीवन-दृष्टि पर प्रभुत्वशाय ने भी विशेष बल दिया है। कथ्य गीत का हाँ या नार का या किसी ध्याय परिवर्तन का, उसे जिस प्रकार की चेतना क साँच में कहानी का सक्षिप्त रूप दिया गया है वह उस कहानी का सार्थक एवं निरर्थक बनाने की क्षमता से युक्त है। प्रभुत्वशाय की कहानी 'समय' की सीमा प्रेम तिथी पर आधारित है जिसका सम्बन्ध नगर के परिवर्तन से है। इसमें एक व्यक्ति अपने बचपन का चहेती को उसका विवाहित जीवन के परिवर्तन में जा कर जब देखता है तो वह उसे इतना बदला हुआ तथा समय से निगला हुआ पाता है कि वह हनाही हो कर लौट आता है। इन दोनों के बीच में अपनी बहुतोंहट एवं छटाटाहट है कि वह उस सामाजिक परिवर्तन की ओर स्पष्ट संकेत किये बिना नहीं रहता जिस ने इनकी यथा की गहराया है। इस प्रकार मनुष्य का दुःख दद ग्रामीण जीवन में सीमित हो कर नहीं रह जाता और न ही वह नागरिक जीवन में अनुचित हो कर बढ़ हो जाता है। इसकी माप्ति चारों ओर है, घास-घास तथा दूरक जीवन में भी है। प्रभुत्वशाय सामाजिक जीवन-दृष्टि तथा कहानी की साहेदयता का इतना महत्व दत्त है कि कभी कभी इनकी कहानी विवरणात्मक रेखाचित्रा एवं मस्मरणा की भी अपनी परिधि में समेटने का दम भरने लगती है। इस सामाजिक चेतना के भी विविध स्तर एवं रूप हैं। रमेश बशी जैसे कहानीकार जिनकी मूल चेतना व्यक्ति चिन्तन से प्रभावित है 'कुछ माँ कुछ बच्चे' सामाजिक चेतना से अनुप्राणित है। इसमें तीन परिवार के चाय पीने बैठने आदि के चित्रण से उनकी वर्गगत विशेषताओं का उभारा गया है। उच्च, मध्य तथा निम्न वर्ग की तीन माताओं के साथ उनके तीन बच्चे एक काफ़ी हाउस में एकत्रित हो जाते हैं। बशी ने इनकी प्रतिक्रियाओं के सूक्ष्म निरोक्षण द्वारा अपनी वर्ग-दृष्टि का परिचय दिया है इनके तीनों बच्चे में भेद भाव का अभाव है और बच बशी और ग्लास की चाय का स्वाद भी एक समान है, परन्तु इन तीन माताओं में इतना वर्गगत भेद भाव पाया जाता है कि इन बच्चे का आपस में खेलना भी वे सहन नहीं कर सकना। अन्त में फुटपाथ पर बैठी कुनिया के इन बच्चे के साथ खेलने, अपने पिन्स जुता धने में व्यग का चरम विकास उपलब्ध है। इस संकेत के द्वारा समाजगत तथा जिसगत विप



को व्यञ्जना शक्ति में विकास हुआ है और दूसरी ओर नया भाव प्रेमिया का सृजन भी हुआ है। 'नयी कहानी सामाज्य की समर्थक है और साथ ही विशिष्ट की वापस। ऐसी शिल्प सामाज्य को विशिष्ट बनाता है और वस्तु वध्य विशिष्टता को सामाज्यता में परिणत करता है। इन दोनों के मूल में कहानीकार का सामाजिक चेतना वस्तु जितने दोनों को रूपान्तरित करती है।

इस सामाजिक चेतना अपना 'यापक परिवर्तन' एवं समष्टि चिन्तन का जीवन-दृष्टि पर प्रभुत्व ने भी विचार बन गया है। कथ्य गाँव का ही या नगर का या किसी अन्य परिवर्तन का, उसे निम्न प्रकार की चेतना के साथ ही कहानी का शिल्पित रूप दिया गया है वह उस कहानी का साथक एवं निरर्थक बनाने की क्षमता से युक्त है। प्रभुत्व का भी कहानी 'समय' की सीमा प्रेम तिथि पर आधारित है जिसका सम्बन्ध नगर के परिवर्तन से है। इसमें एक व्यक्ति अपने व्यवहार की वृद्धि को उसका विवाहित जीवन के परिवर्तन में जा कर जब देखता है तो वह उसे इतना बदला हुआ तथा समय से निगला हुआ पाता है कि वह हतास हो कर सोट जाता है। इन दोनों के बीच में इतनी अनुस्यूत एवं अस्पष्ट है कि वह उन सामाजिक परिवर्तन की ओर स्पष्ट सबूत किये बिना नहीं रहती जिसे ने इनकी व्याख्या की गहराया है। इस प्रकार मनुष्य का दुःख दद प्रामोक्ष्य जीवन में सीमित हो कर नहीं रह जाता और न ही वह नागरिक जीवन में समुचित हो कर दद हो जाता है। इसकी व्याप्ति चारों ओर है, भास-पास तथा दूर के जीवन में भी है। प्रभुत्व का सामाजिक जीवन दृष्टि तथा कहानी की साक्ष्यता का इतना महत्व देने हैं कि कभी कभी इनकी कहानी विचित्रात्मक रेखाचित्रा एवं सस्मरणों का भी अपनी परिधि में समेटने का दम भरने लगता है। इन सामाजिक चेतना के भी विविध स्तर एवं रूप हैं। रमेश बशी जैसे कहानीकार जिनकी मूल चेतना व्यक्ति चिन्तन से प्रभावित है 'बुद्ध भाँ बुद्ध बच्चा' सामाजिक चेतना से अनुप्राणित है। इसमें तीन परिवार के साथ पीढ़े बैठने आदि के चित्रण से उनकी वर्णगत विशेषताओं को उभारा गया है। उच्च, मध्य तथा निम्न वर्ग की तीन माताओं के साथ उनके तीन बच्चे एक बाफ़ी-हाउस में एकत्रित हो जाते हैं। बशी ने इनकी प्रतिक्रियाओं के सूक्ष्म निरीक्षण द्वारा अपनी दृष्टि का परिचय दिया है इनके तीनों बच्चा में भेद भाव का अभाव है और कप बशी और ग्लान को साथ का स्वाद भी एक समान है, परन्तु इन तीन माताओं में इतना वर्णगत भेद भाव पाया जाता है कि इन बच्चा का धारण में खनना भी वे सहन नहीं कर सका। अन्त में फुटपाथ पर बठी कुनिया के इन बच्चा के साथ खेलने, अपने पिछले बुला सने में व्यंग का चरम विकास उपलब्ध है। इस सर्वत के द्वारा समाजगत तथा जिसगत विष





हेनरी, मांम बेयर, मोपगार् तथा अन्य कहानीकारों के लाली गिलाव प्रभाव का स्वीकार करते हुए अपनी प्रयोगात्मक प्रवृत्ति का परिचय देते हैं। वह अपनी रोमानो कहानियाँ म पकर आज का मनावनात्मक कहानियाँ तक म एव विशास के गून का स्रोत निश्चितने हैं। इस विकास को कहानी के वस्तुपक्ष तथा निम्नपक्ष दोनों में उदाहरण दे कर स्पष्ट करते हैं। वह अपनी कहानी बना का रोमानों से यथार्थ की ओर व्यक्ति से समाज की ओर, स्थूल से सूक्ष्म की ओर, अभिधा से व्यञ्जना की ओर निवृत्ति पाते हैं। इनकी धारणा है— येरी कहानियाँ सदय समाजगत रहती हैं। (१९३६ में १९३८ तक) समाज की कुरातिपों, कुण्ठाएँ आदिमानन मरी कहानियाँ म प्रतिबिम्बित होने रहे, व्यक्ति के मन में भी यदि मैंने नौका तो उसे समाज के परिपार्श्व में रक्त कर ही।<sup>१</sup> इस धारणा की पुष्टि में वह 'यकुर', 'पिजरा', 'नामूर', 'बटान' आदि कहानियाँ क उदाहरण देते हैं। वह अपनी कहानी कला का 'प्रगतिशासता' की सहुर से भी प्रभावित मानते हैं जो उस समय साहोर में बुद्धि जादिया के लिए फगन बन चुकी थी। इस स्पष्टीकरण के उपरान्त 'पलग' में मकलिया अपनी अधुनावन कहानियाँ म सवेता का समझते हुए वह लिखते हैं—इसका (बेबमी) सामाजिक यथार्थ नहीं है। इसमें व्यक्ति-सत्य है और इसकी ओर से झालें नहीं मूँदो जा सकती।<sup>२</sup> अदक ने कना भा इन 'व्यक्ति-मत्य' से अपनी झालें नहा मूँदा है। इन कहाना के लिखन में वह 'व्यर्थ' ही सकाव और बारह बरस प्रतापा करते रहे हैं। इनकी कहानी-कता दोनों के मूल में चेतना का स्वरूप प्रायः 'व्यक्ति विगन' एव व्यक्ति सत्य से प्रेरित रहा है जिसके आधा पर मलक ने अपने पात्रों के माध्यम से सामाजिक कुरीतियों की मालोचना की है और सामाजिक मान्यताओं का झाला है। कथा माहित्य के क्षेत्र में अदक ने प्र मचद के मुपारवाद से माह भग की स्थिति का परम्परा में प्राप्त किया है। इसक कथा साहित्य का उद्देश्य व्यक्ति हित का मावना तथा व्यक्ति सत्य का धारणा से प्रेरित है। इनकी कहानियाँ में सवत एवं प्रतीक प्रायः वैयक्तिक कुण्ठाओं को प्रति-पक्षित करते हैं। अदक ने यह स्वीकार किया है कि परिवार तथा वातावरण की कुण्ठाओं तथा अस गतियों ने उन्हें कहानीकार बनाया है और वे 'व्यक्ति के दद का स्रोत खोजते-साजते समाज के दद का माभाम' पा मते हैं। इस प्रकार सामाजिक यवस्था के चक्रव्यूह में फँस कर इन्सान मर कर ही निकल पाना है। अदक का इन्मान मानव न हो कर व्यक्ति है जिसके दुख दद को पहचान कर वह सामाजिक मा यताओं की वैयक्तिक कसौटी पर परखने लगते हैं। इनके अधुनावन कहानी संग्रह में वैयक्तिक चेतना का स्वर अभिव्यक्ति रूप में ध्वनित हाता है और सवेतात्मक एव प्रतीकात्मक शिल्प का

१ मर कहानी सखन के वतीस वर्ष पृ० ४४

२ पलग ये कहानियाँ पृ० १७८

प्राथम्य होता है। इस संग्रह की प्रकाश कहानियों की वस्तु सेवम से सम्बन्ध है जिसकी 'हजार,' 'मकुर,' 'उबाल,' 'बट्टान' आदि में नी सुनी जा सकता है। इन सामाजिक यथार्थ की प्रपञ्चा वैयक्तिक यथार्थ का उद्घाटन है और इन नी समस्त पाठक के लिए उपादेय समझने हैं। 'ठहरे,' 'बबरी,' 'भाँसा और मुस्कान' 'पलंग' आदि कहानियाँ में व्यक्ति के मनाविज्ञान का प्रतीकात्मक गैला में चित्रित करने का प्रयास है। इनके मकुर और प्रतीक प्रातिवादों आलाचका की दृष्टि में स्पष्ट एवं उन्मत्त हुए हैं और मनाविषयवादी विवेकका व लिए स्पष्ट एवं उन्मत्त हुए हैं। शब्द की धारणा है कि 'पलंग' में गिल्ब का निष्कार है और 'नाग और मुस्कान' में वस्तु की मूर्धमता है। इस प्रकार वह वस्तु को गिल्ब और गिल्ब को वस्तु समझने की भूल कर गये हैं। 'पलंग' के मूल में मनाविषयवादी के अनुसार मातृ रति की धारणा है। इसलिए इनमें वस्तु-मय का महत्व है जिसे पलंग के माध्यम में व्यक्त किया है। 'नाग और मुस्कान' में मनेत्र स्वयं एवं अनुलिता है और इस सवतात्मकता के कारण इसका महत्व इस गिल्ब में लभित होता है। इस प्रकार के मायेद के हाने हुए भी शब्द की कहानी कला मूलतः गव्य प्रपञ्चा वैयक्तिक चेतना प्रववा व्यक्ति मूरक जीवन-दृष्टि से ही अनुप्राणित है। इससे प्रचार पर ही इनके कहानी माहित्य का मूल्याकन भगत् एवं प्रपञ्चित है।

आज के कहानीकारों में राजेन्द्र यादव तथा निमज वर्मा की कहानी कला के स्वरूप एवं उद्देश्य के सम्बन्ध में यह धारणा प्रायः मृदु हो चुकी है कि इनके मूल में सामाजिक चेतना प्रववा समाज-मूरक जीवन-दृष्टि है। इस धारणा का पुष्ट करने में राजेन्द्र यादव का निजी योगदान भी है। इनकी कहानियाँ का यदि मूर्धम विवेकपूर्ण किया जाय और बात परता का उपाड कर यदि इनकी कहानी-कला की आत्मा में जोका जाय तो इस धारणा में सत्य का उपरजि नहा जाती। इनका कहानीकारों का दृष्टिवा के मूल में चेतना का स्वरूप प्रववा व्यक्ति मूलक है। इनके व्यक्ति चिन्तन में उन दृष्टिवा एवं मायतावा का विरोध है जो व्यक्ति विकास एवं व्यक्तिहित में बाधक बनती है। इनमें व्यक्ति गत्य के निष्पण में सामाजिक चेतना प्रववा व्यक्ति का उपास भी नहा है और राजेन्द्र यादव ने तो व्यक्ति चिन्तन में प्रभावित उन कहानीकारों की बड़ी आलाचना का है जो 'व्यक्तिस्वातन्त्र्य' और 'मानवत्व' के माध्यम में बौद्धिक प्रपञ्चकाराण्ड को धारा का पुष्ट करने हैं और जो हिन्सा में 'मानवत्व' के नाम से परिचित हैं। 'यादव के व्यक्ति चिन्तन में और इन मानवत्व के कहानीकारों के व्यक्ति-स्वातन्त्र्य के

स्वरूप में प्रकट पाया जाता है, मनोवैज्ञानिक व्यापारों के व्यक्ति चिन्तन का रंग गहरा तथा रूप विनिष्ट है और इसकी भाषा इतनी प्रसिद्ध हो जाती है कि वह सभी को भी सिंगुलर एंड सिमल कर पाठमूलक हो जाते हैं। राजद्र यादव की व्यक्तिमूलक चेतना आत्मवेदित न हो कर सामाजिक दायित्व की ओर उन्मुख है जिसे वह बोद्धिस्तर पर ही प्रहण कर सक है और इस धरातल पर इसका निरूपण भी करने है। इनकी कहानी-कला का प्रेरित करने वाली जीवन दृष्टि मूलतः एवं प्रकृत व्यक्तिमूलक है और इनकी सामाजिक चेतना हृदयगत न हो कर बुद्धिगत है। इस प्रान्तरिक विरोध का कारण इनकी कहानियों में वस्तु एवं चित्त का सद्व्यपण नहीं हो पाया है। प्रतीक इनके प्रतीक एवं संस्था का स्वरूप अनुभूत न हो कर बोद्धि है। लक्ष्मी का कथन होना, अभिमन्यु की आत्महत्या का प्रयास, छोटे छोटे राजमहल आदि प्रतीकों का प्रयोग सामाजिक चेतना को उभारने के उद्देश्य से किया गया है, परन्तु ये प्रतीक कहानियों पर आरोपित होने का आभास इसलिए देते हैं कि इन कहानियों का वस्तु व्यक्तिमूलक दृष्टि से अनुप्राणित है जिस पर सामाजिक धारणा का आवरण डाल कर कहानियों को सामाजिक दिशा में प्रसारित किया गया है। राजद्र यादव की कहानी-कला का विश्लेषण इस अंतर्निहित की स्थिति को स्पष्ट कर देता है 'जहाँ लक्ष्मी कैद है' में शैलक ने प्रतीक का आश्रय लेकर एक पन ब पुजारा तथा महा कल्लू के घर में लक्ष्मी नाम की लड़की की कैद की स्थिति का चित्रण किया है। इस कैद तथा धुन के कारण वह मानसिक रोग से ग्रस्त है। राज का राधास जिसने लक्ष्मी को कैद कर रखा है धनपति के रूप में अवतरित है। गाँव की कुष्ठ को व्यक्तिगत स्तर पर उभार कर कहानी को क्लेश भावुकता से आकांत किया गया है। इस कहानी का मूल स्वर कुष्ठ, दमघोट, एवं बद जीवन की अभिव्यक्ति में ध्वनित होता है, परन्तु प्रतीक सामाजिक धारणा एवं उद्देश्य से प्रेरित हैं। इनमें सगति के भ्रान्त का कारण यह है कि कहानी की वस्तु व्यक्तिमूलक जीवन-दृष्टि से अनुप्राणित है और इस पर आरोपित प्रतीक के मूल में समष्टि चिन्तन है। 'अभिमन्यु की आत्महत्या' में भी प्रतीक पद्धति का आश्रय लेकर एक व्यक्ति को वर्षगांठ पर आत्महत्या के उसके प्रसफल सफल को चित्रित किया गया है। इस स्थिति को गहराने के लिए कलास-सुभद्रा के प्रसंग को जोड़ा गया है। इस कहानी के कथ्य के मूल में व्यक्ति-चिन्तन की जीवन दृष्टि है जो पति-पत्नी के सम्बन्ध को व्यक्तिगत स्तर पर उठा कर उसे सामाजिक दिशा में जान स रोकती है। अभिमन्यु चक्रव्यूह से जीवित निकल तो आता है, परन्तु उसके इस प्रकार निकलने में स्वाभाविकता की अपेक्षा विवशता का स्वर ध्वनित होता है जो द्वन्द्व की स्थिति का चोतक है। 'एक कमजोर लड़की की कहानी' में शैलक सूत्रधार के रूप में उस कमजोर लड़की का एकाकी अभिनीत करते हैं। जिसका प्रेम एक व्यक्ति से रहा

है और जिसका विवाह दूसरे व्यक्ति में हो जाता है। प्रमोद क कपन में सामान्य नातु कता का चित्रण है—'यह याद रखना कि तुम्हारी धातमा चिरकुमारी है और इसका किमी क साथ विवाह नहीं हो सकता। सखिता का धपन पति से इस स्वीकृति में एक नया स्वर ध्वनित होता है—जब लडकी अपने घर से जाती है तो अपने सारे सम्पर्कों और सम्बन्धों को वहीं छोड़ जाती है।' इस कहानी में प्रेम-त्रिकाणु क चित्रण एवं निरूपण में व्यक्ति-चित्रण की दृष्टि है। 'घुस पल, दूट डेन' में भी एक भारतीय लडकी के दमित जीवन का चित्रण है जो तीन पुरुषों के निरन्तर सम्पर्क में आ कर भी अपने रिक्त जीवन को भरन से वंचित रह जाती है। भीनल धव इतनी धमाबूझ हो चुकी है कि उसके लिए एक नये मिरे से जीना मान एक विडम्बना है। उसका नीरस एवं कष्टपूर्ण जीवन उसकी निजी कुण्ठाया, धर्मिया तथा सामाजिक परिस्थितियाँ का परिणाम है। इसी स्तर पर यान्त्रिक की कहानी 'छोटे छोटे ताजमहल' की रचना हुई है जिसमें कथानक इतना सक्षिप्त एवं गौरव है कि उसे कुछ मादर में ही धाबद्ध किया गया है—'वह बाँध न मीरा न उठायी, न सुव उसन' इस पुटन के कारण शर्मा का परिवर्ण स्वाधीन रूप में ले गया। यह सब कुछ ताजमहल की छाया में हुआ और इसमें एक दूसरा ताजमहल बना जिस पर मुस्कराहट की मकैनी थी। इस कहानी में विवाह न कर मजान की बात का वैयक्तिक स्तर पर चित्रित किया गया है और इस पर नामवर सिंह न धारकता भा की है। राजे द यान्त्रिक का यह वैयक्तिकता का स्वर इनकी अन्य कहानियों में 'बौद्धिक प्रगतिशीलता' के वाक्य के नाचे दवा रहा है, परन्तु इन कहानियों में यह उक्त रूप में ध्वनित हुआ है। यह स्वर इनकी कहानी-कता का मूल स्वर है, यह वैयक्तिक चेतना इनकी रचनाया की प्रेरित करने वाली मूल चेतना है, यह व्यक्ति-चित्रण इनके छोटे-छोटे ताजमहलों के निर्माण करने का मूल प्रेरणक है। इन नामवर सिंह प्राणहीन गड की सजा से अभिहित करें मयवा इस पर भोगशाल का धाराप लगान की कृपा करें, परन्तु इसके मूल में व्यक्ति-ताम की जीवन दृष्टि की उपाय करना यादर का कहानी कता के मूल स्वम्भ तथा उद्देश्य की धाबहे मना करना होगा। इस प्रकार यान्त्रिक की कहानियाँ में बार-बार एक कमजोर लडकी का चित्रण उपलब्ध होता है। कहा वह किसी की मद में है, कहो वह समुदाय में आ कर अपने पक्ष में सम्बन्ध का धुनने का प्रयास करता है, कहो पत्नी बन कर मजान के लिए जान में मजबूत जाती है, कहो दमित जीवन बिता कर इतनी दूरा हो जाती है कि विवाह के मुग से वंचित रह जाता है, कहो ताजमहल की छाया में बैठ कर भी अपनी यात नहीं कह पाती। यह कमजोर लडकी क्वाकि धमो तक धरना पूरी बात नहीं कह मरी है, इसलिए उसे विभिन्न परिस्थितियों में चित्रित किया जा रहा है और उनकी पुनर्प्राप्ति यान्त्रिक की कहानियाँ न हो रही है। यह इनकी धनुष्यता का अभिन्न



जो अब रहा रहा। कुछ भी बाद नहीं आता बिदम्बना है।' माया का मम' म  
 बैठाटल का सुमेर है जिसके लिए हम का नाम बत कर लता माथुर हा जाता है।  
 इनकी माया म भागी प्रत्तर को पाने का काम रोमान को धक्ति क द्वारा हुआ है।  
 'तीसरा गवाह' में रहनगो साहब सस्वर म मा कर भपन प्रतीन जीवन के एक पृष्ठ को  
 खाल कर एक रोमांटिक अनुभूति को गाना नुनाने लगत हैं। इनम हम का नाम नीरजा  
 नया प्रवेश है, परन्तु अनुभूति पुरानी है। प्रतीन की मधुर स्मृति सुमेर की जगह  
 रहनगो साहब को कबोटी है। 'मधेरे म' 'बैठाटल' का सुमेर रागप्रस्त हो कर  
 गिमरा पहुँच जाता है और उसका रोमान बना के साथ चलता है। इस रोमान क  
 माय मौ-बाबा क रोमान को जाड़ा गया है जो मधेरे म पनपा है। पिता और पुत्र  
 दोनों के जीवन म एकाकीपन का अनुभूति का गहराया गया है। इस कहानी म भी  
 रोमान की विफलता का स्वर ध्वनित हुना है। पिक्वर पास्टफाई' भी रोमांटिक अनु  
 भूति पर आधारित है, परन्तु इसम एक विश्वविद्यालय का है। इसम रोमान का स्वर  
 पिल्ला की कोटि का है। विश्वविद्यालय क जीवन म युवका की दृष्टि म युवतिया का  
 महत्व मिथ्या का है या पूर्ण का फट का है। इसका परिणति प्रेम क नाजू का  
 पिक्वर पास्टफाई भेजने म होती है। 'परिदे' में रहनाकार विफल प्रेम का अनुभूति  
 पर विजय पाने क लिए साकुल है जिसका समाप्त डाक्टर क दृष्टिकोण म उपलब्ध  
 होता है। डाक्टर छिद्रता नापकता का ध्यक्ति की जिम समझता है जिसम वह अन्त  
 विपदा रहता है। मिस ललित, जो स्वम रोमांटिक अनुभूति क विभिन्न रंग का देव  
 चुका है, इस दृष्टि से इतना प्रभावित हो जाती है कि वह मिस जूनी के प्रेम-पत्र का  
 तोड़ा कर स्वय स्वरम एवं अनुचित अनुभव करन लगता है। इस कहानी म सुमेर म  
 डाक्टर क इस स्वस्थ दृष्टिकोण का आत्मसात कर लिया है इस प्रकार निमल यमा की  
 कहानिया क विवरण म यह स्पष्ट हो जाता है कि इनकी कहानी बना क मूल म  
 जीवन दृष्टि का स्वरूप व्यक्तिक चेतना मे स्थापित है जिसने इनका कहानी क वस्तु  
 पत्र का निर्धारित किया है तथा गिप का निष्ठा एवं मूल रूप दिया है। इनका  
 कहानिया म प्राय कथ्य-कथन का मधुर मिलन पाया जाता है और इनम इनकी कहानी  
 कता की विविधता का साँका जा सकता है। सबत एक प्रतीक-व्यक्ति के प्रयोग मे  
 इनकी कहानी को मूल रूप प्राप्त हुआ है और इनन तरन गतावरण का दृष्टि भी  
 हुई है।

मात्र की कहानी को इस शिष्टा मे उपा प्रियम्बरा, इच्छा साबता तथा मन्त्र



गया' आदि कहानियाँ घाती हैं जिनके मूल में चेतना का स्वरूप व्यक्तिगत है जोवन के मान मूल्य व्यक्ति-मूल्य एवं व्यक्ति-वित्तन से प्रभावित हैं और अभिव्यक्ति का स्तर व्यक्ति-व्ययार्थ पर आधारित है। कल्पना सावरी की कहानीकला भी सामान्य, सचेष्ट, एवं कष्टसाध्य न हो कर सहज एवं स्वाभाविक है।

इस दिशा में प्रवृत्ति के कहानीकारों में रामकुमार, रमेश बारी, जिनन्द, प्रबोध कुमार, प्रयाग गुप्त आदि न इनकी वस्तु का मूल्य बताया है, नित्य को नितारा एवं उलझाया है जिससे इनकी प्रयोगशील दृष्टि का परिवर्तन मिलता है। रमेश बारी ने धाज का कहानी का नयी बनाने के लिए धनक प्रयोग किये हैं जो पाश्चात्य विद्य कला की प्रभाववादों, प्रतीकवादों प्रवृत्तियों से प्रभावित है। रामकुमार का कहानी-कला में विचित्रता व प्रभाव को स्वीकार्य तथा नकारा गया है। रमेश बारी की कहानी कला का प्रेरित एवं प्रभावित करने वाली व्यक्ति-वित्तन की दृष्टि का स्वरूप स्पष्ट है। इनके नित्य-मध्य में मकता एवं प्रतीकों का प्रयोग सज्जत तथा साधारण है। इस क्षेत्र में रमेश बारी की विशिष्ट रचना है जिसके फलस्वरूप धाज की कहानी के लिए 'नयी' होने का स्वतन्त्र पैदा हो गया है और इसका 'स्वभाव' के साथ इसके 'चरित्र' बदलने की स्थिति भी उत्पन्न होने लगी है। और यह धाजान्त वर्ग की 'धातमा' को समुपलब्ध करने की क्षमता से सम्बन्धित है। धाजान्त न किम यवार्थ के परावर्तन का बात की है उसे धाजान्त-मूल्य व स्तर पर धाजान्त की प्रवृत्ति रमेश बारी प्रबोध कुमार, प्रयाग गुप्त तथा धाज कहानीकारों की रचनाओं में दृष्टिगत होती है। इनकी कहानी व्यक्तिके वस्तुन दूर सम्बन्धों को चित्रित करने में कम मुँह छुपती है, परन्तु इन सम्बन्धों की व्याख्या करने का स्वतन्त्र धाजान्त की कहानी न मोल से लिया है। रमेश बारी ने कहानी-सम्बन्धी अपनी भाषणों में उल्लेख 'धातम-व्ययन' में किया है।<sup>१</sup> इनका मतलब है कि मरी कहानियाँ में धाज प्रभाव का चित्रण हुआ है। इन प्रकार बहुधा धाज विद्या का मकता तथा प्रतीकों के माध्यम से चित्रित करने का प्रयास करते हैं। यह धाज की धाज में नहीं रहने, चरित्र व विषय की धाज में मतान है। वह घटनाहीन जीवन में घटना का काल्पनिक विधान नहीं रहने 'चरित्रहीन' जीवन में स्थूल चरित्र की सृष्टि नहीं करने, परन्तु धनुमति व उन धाजों का धाज-व्यक्ति देन हैं जो जीवन में चमक कर धाजान्त धाज रचना हैं। इन धाज विद्या का धाज कन 'गदरो' 'कमल का फूल', 'जितला कपल', 'धायतन पर तितल नामा'।

१ सहर धाजान्त, १९९१, पृ २१३, २१४

२ नई कहानियाँ मन्मथ, १९९१

३ कहानी जून १९५२

४ कल्पना जनवरी, १९९१

५ धाजान्त - मार्च, १९९१



‘एक प्रकथा’<sup>१</sup>, ‘एक पीधे की जीवनी’ आदि इनकी अनेक कहानियाँ उपर्युक्त हैं। ‘सदरो’ में रामानुज की यश में परिणति, ‘कमल का फूल’ में सामाजिक विषमता पर प्रहार, तिलिची के पक्ष में मोह भग की स्मृति का चित्रण, ‘वायलन पर तिलक का मोड़’ में क्षण चित्र का अंकन, ‘एक प्रकथा में एक पलायनजीवी व्यक्ति की खण्ड अनुभूति का काव्यात्मक चित्रण ‘एक पीधे की जीवनी’ में एक मधुर क्षण की अनुभूति की अभिव्यक्ति, पमस की कैद में कुनकुना पानी<sup>२</sup> में क्षण प्रभाव की वाणी मिली है। इन कहानियों में सुखेता तथा प्रतीका का जमघट है जो कभी गुम्फिन और कभी धारापित हाने का आभास देते हैं। इस प्रकार दिलीप की दृष्टि से रमेश वर्मा ने नये निहितार्थों की खोज की है। और लिखित इसलिए कि वह नयी कहानी को कविता के निकट लाना चाहते हैं और चित्रकला की ओर से बिल्लाने के पक्ष में हैं। वह स्वीकार करते हैं कि इन्होंने अपनी कहानियों में चित्रकला तथा साहित्यिकता का धाभ्रय लिया है और मूल रंगों के शीघ्र स्पर्श से प्रभाव उत्पन्न करने का प्रयास किया है। इन ‘प्रभाववादी’ तथा ‘क्षणवादी’ कहानियों में चेतना का स्तर वैयक्तिक है जीवन-दृष्टि व्यक्तिमूलक है। इस प्रकार वैयक्तिक अनुभूति के क्षण सामाजिक परिवेश में कभी बट कर और कभी सम्मिश्र हो कर जीवन का मूल्यांकन करते हैं। कहानी के शास्त्रीय तत्त्वा की दृष्टि से शिवदान सिंह चौहान इनकी रचनाओं को कहानियों की सत्ता देना कभी स्वीकार नहीं करेंगे और संभव है इनकी ‘कुछ माँएँ’ कुछ वक्च को कहानी का बचकाना प्रयोग मानने के लिए तैयार भी हो जायें। इन कहानियों में अनुभूति के खण्डों के साथ ही क्षणों की अभिव्यक्ति अवश्य मिलती है। इनका कहाना कला में नवीनता के प्रति आग्रह है, जिसका उपलब्धि वस्तु एक दिलीप दानो क्षेत्र में दृष्टिगत होती है। इनके मतानुसार अनुभूति को उसकी अभिव्यक्ति से अलग किया नहीं जा सकता। इस प्रकार इनकी कहानी-कला पर अभिव्यक्तावाद की गहरी छाप है जिसके मूल में वैयक्तिक चेतना की प्रेरणा है। इसी भाँति रामकुमार की कहानी कला का धरातल भी वैयक्तिक है जिस पर उन्होंने प्रेम, विवाह तथा प्रेम समस्याओं का चित्रण एक निरूपण-व्यक्ति-सत्य तथा व्यक्ति-हित की दृष्टि से किया है। ‘डेक ३’, प्रस्तुति ह<sup>३</sup> आदि कहानियों में प्रेम तथा विवाह पर प्रश्न बिन्दु लगा कर इनका मूल्यांकन वैयक्तिक मान्यताओं के आधार पर किया है। ‘डेक’ निखिल और ब्रुसियेन के मिलन एवं विच्छेद की कहानी है जिसमें एक भारतीय युवक तथा पेरिस की एक युवती में स्नेह, युवती के माह भग की

१ लहर नवम्बर १९६१

२ नानोदय सितम्बर, १९६०

३ कहानी १९५७

४ कहानी १९५९

गहरी अनुनूति युवक का धराता है। भावना में वन पड़ने पर युवती में अनुनूति भावना तथा उमका दृढ-मकल्य आदि क चिन्तन में मन की पुकार का ही विशाह का स्थाया मूल्य धापित किया है और इसमें व्यक्ति चिन्तन का स्वर गुञ्जित होता है। 'प्रदत्त बिह' में गति और भावना का, मालती व विगाद के बाद एकान्त में मिलन होता है जब यति क जीवन में विरलता की स्थिति में चुका है। इनमें पारस्परिक प्रेम की परतें धार-धारे उभरती हैं। युवक सामाजिक बन्धन तथा पाप-गुण्य का धार गायी से मुक्त है और युवता की दृष्टि भी व्यक्तिगत बन्धन से प्रभावित है। 'मृत' में प्रदत्त का महत्व इसमें प्रदत्त बिह वन रहने में ही लीति होता है। रामकुमार ने भाव का कहनाकारा का भाति नकला तथा प्रतीक्षा का यथास्थान तथा मयामनव प्रयोग किया है परन्तु रम्य बनी की तरह मन्त्र भाति का साध्य क रूप में स्वाकार नहीं लिया। जिन द का कहना 'पू से' में भाति निरपरा दृष्टि से एक नारी के जीवन में माहमग की स्थिति का वैयक्तिक स्तर पर उभाय गया है। इसका उद्देश्य रोमांटिक प्रेम की परिणति पूँसा में दिखलाना है। इस प्रकार रानास तथा वास्तविकता में पाट कितना चौड़ा होता है इसकी धार कहानी का मन्त्र है। कहानी के अन्त में पत्नी प्रपन पति व पूँसे का कर उमे पहचानन का चन्ग करता है—यथा उमका पति वही व्यक्ति है जो रोमांटिक प्रेम का प्रताप वन कर उसके जीवन में एक बार धाया था ? इस तरह प्रेम तथा विशाह के मन्त्र का मूल्यान व्यक्तिसूत्रक दृष्टि से किया गया है। इन कहानी में पूँसा द्वारा उस साधक परिणत का धार मन्त्र किया गया है, जिसमें य परिणाम है।

इन कहानियाँ तथा कहानाकारा के प्रतिरित्त प्राम्दनाग धीवास्तव, काति चौपरी, मयपाल माना बारद मन्त्रता, समन जागी मन्त्र महता, निपुण पर्मवार नारता, प्रबाप कुमार, मधुरक गगाधर, मुगाय म, रघुवीर महाय राजकमल चौपरी राजन्र कुमार, विजय चौहान, "मन्त्र मटियाना धाराय वमा, हरिप्रकर परनाई भाति क रचनामा का विवचन इन निबन्ध में मन्त्र नहीं ही मन्त्र है जिसमें बिना भाव का कहानी का यह मूल्यान मधुर रह गया है। इसे पूरा करने व लिख एक विलुप्त विवचन की प्रपना है। भाव की कहानी को सम्मन्त्र बनाने में इन कहाना कर क यादान का उपाय नहीं की जा सकती। इसमें पहल इन माहिजक विद्या का इसकी लपुता के कारण प्राय उभाय जाती रही है, परन्तु भाव हर लपुता महता व रूप में भाँकी जा रही है। यह लपुता मानव का ही चौपा म यह कन्त्य प्रपना उदुरपुता का ही, पदा न मन्त्र बबुन का ही, काश में यह मकला या जाक का ही अनुनूतिमा में यह धार का ही, रगा न यह काम रग की ही, पौधगिक पाया न मन्त्र

मन्यरा की हो, पशुप्रा मे यह गधे की हो, रसो मे यह बुद्धि रस की हो, मानवीय सम्बन्ध मे यह घृणा की हो—आज जीवन की जटिलता के परिवेश मे उपक्षित का महत्व है और साहित्यकार स्वयं को सकुलता की स्थिति मे जकड़ा हुआ पाता है। इसलिए कहानी के सम्बन्ध मे भी नया संवेदना, माकतिकाता, सम्प्रेषणीयता, जटिलता, बोद्धिकता, प्रतीकात्मकता आदि की समस्याओं को उठाया जा रहा है। इन समस्याओं को उठाने मे साहित्यकार का 'भटकाव तथा ठहराव' भी हो सकता है और इसमे उसकी विवशता को भी धाँका जा सकता है। यह भटकाव व्यक्तित्व की दृष्टि या व्यक्तिगत चेतना का परिणाम है अथवा जीवन की जटिलता या व्यक्ति की सकुलता का—इस सम्बन्ध मे किसी निश्चित मत या मन्तव्य को घोषित करना एक और धिवेदानसिंह चौहान, नामवर सिंह तथा दूसरी ओर अनेक, रमेश शर्मा की अधिक शोभा देते हैं जो समष्टि सत्य तथा व्यष्टि सत्य का अन्तिम सत्य के रूप मे उपलब्ध कर चुके हैं और जिनकी जीवन दृष्टियाँ खुद हो चुकी हैं। आज की कहानी का स्वरूप उस बाद्य यन्त्र या भारकेस्ट्रा के समान है जिसमे सप्त तथा विषम सब तरह के स्वर समाहित हैं, परन्तु इसमे दो परस्पर विरोधी मुख्य स्वर हैं—एक सारंगी का जो मूक है तथा व्यक्ति चिन्तन से अनुप्राणित है और दूसरा मृदंग का जो सशक्त है और समष्टि चिन्तन से प्रेरित है। मोहन राकेश जैसे कहानीकार केवल सारंगी बजाना जानते हैं और भूल से कभी-कभी मृदंग पर भी हाथ मार देते हैं, राजेन्द्र यादव बजाते सारंगी हैं और बात मृदंग बजाने की करते हैं, अमरकान्त की ध्रेणी के कपाकार मृदंग को ही ध्वनित करते हैं तथा मृदंग के प्रतिरिक्त अन्य भारतीय तथा पाश्चात्य बाद्य यन्त्र हैं जिनके विशिष्ट स्वर हैं। ग्राम कपाकारों को गिटार से चिढ़ है और वे जातीय ढोल का पीटने के पक्ष मे हैं। इन बाद्य यन्त्रों को दो मुख्य ध्रेणियों मे विभक्त किया जा सकता है—एक सारंगी, वायलिन, सितार आदि तार के बाद्य यन्त्रों से सम्बद्ध है और दूसरी मृदंग, तबला ढोल आदि से। इनके सह अस्तित्व मे आज बाद्ययुद्ध के सम्पूर्ण संगीत को धाँका जा सकता है। अन्तिम ध्वनि किस ध्रेणी के बाद्य-यन्त्र से निकलगी यह कहना कठिन है। आज इनके स्वरों मे वैषम्य की स्थिति है, पारस्परिक विरोध की परिस्थिति है जिसे स्वीकार करना वस्तुस्थिति को स्वी करता है। आज यह स्थिति जीवन तथा उसकी कहानी दोनों मे उपलब्ध है।

## कहानी से अकहानी, फिर कहानी

ममयनाथ गुप्त

इस समय हिंदी में कहानियाँ पर जितनी घानोचनाएँ हो रही हैं, उनकी किसी और विषय या विधा पर नहीं हो रही हैं। यह युग कहानियाँ और हलके-फुलके गीता का युग है, क्योंकि यका माँदा घादमी जब काम से लौट कर आता है तब कुछ मनोरंजन चाहता है। फिर भी कहानी पर जितनी घालाचनाएँ घाये दिन प्रकाशित हो रही हैं, उन पर वही कहावत चरितार्थ होता है कि 'बारह हाथ की कढ़वी तेरह हाथ का बिया'। अभी तक किसी विश्वविद्यालय ने इस पर ग़ौर नहीं किया है, और प्राक्के इच्छा नहीं बिये हैं, पर यह निर्विवाद है कि जितनी कहानियाँ लिखी जा रही हैं उनसे अधिक कहानियाँ पर घालाचना लिखी जा रही है।

इतिवृत्त न इस प्रकार की समीक्षा के विषय में कुछ मजेदार बातें लिखी हैं जा या है—विद्वत्ता के, चाहे जितने भी विद्वान् रूप में हों, कुछ अधिकार होने हैं। हम मान घत हैं कि हम जानते हैं कि कैसे इनका इन्वन्तल किया जाय और कैसे इनका घवहू सना की जाय। समीक्षा सम्बन्धी प्र या घोर घत्ता में यह स्थिति उत्पन्न हो सकती है कि लोग कलाकृतियों के अध्ययन की जगह कलाकृतियों की घालाचना पढ़ने की घन्वस्थ मनावृत्ति के गिकार हो जायें, और ऐसा होन दखा भी गया है। समीक्षा का उद्देश्य रचि की गिति या परिष्कृत करना है न कि बने-बनाये मतों की जन्म दना। पर तम्य रचि का भ्रष्ट नहीं कर सकता, अधिक में अधिक यह किमा तक रचि को, जैसे इतिहास, पुष्पनत्व या जीवनी की रचि का इस घ्राति में सतुष्ट कर सकता है कि यह दूसरे की मन्द कर रहा है। घसती भ्रष्ट करने वाघ लाग वे हैं जो बने-बनाये मत या कन्वन्सा पन करने रहते हैं। इस सम्बन्ध में मन्त्र की बात यह है कि महाकवि गेड और कालरिज भी निर्णय नहीं हैं। क्योंकि कालरिज का हेमघट क्या है, क्या इसे जहाँ तक तम्य प्राप्त य, एक ईमानदार साज कहा जा सकता है या यह महान् घाना-घक कालरिज का ही एक घाकर्षक पात्रक में पन करता है ?

किमी भी विषय पर घालाचना का उद्देश्य मत का या रचि का परिष्करण होना चाहिए, जिससे कृति पर नये काण्ड में राननी पड़े, ठाकि पाठक का उत्तक घ उर पैठ प्राप्त हो। पर किसी भी हानन में ककड़ा में बिया बड़ा नहीं हो सकता, कम में कम प्रवृत्ति में ऐसा न होता है और न समब है। इस प्रकार, कहानियाँ से

यह स्वाभाविक है कि नदी को तरह साहित्य कभी एक ही जलराशि को धे कर अपना कारावार नहीं चला सकता। समय समय पर उसमें नयी नदिया का घा कर मिल जाना, उपान माना और नये टापुआ का उदय होना, उसकी गति रखा का परिवर्तन होना स्वाभाविक है, और इसी व साथ नयी आलाचना का उदय होना भी स्वाभाविक है। फिर भी नयी आलाचना कभी नये साहित्य का स्थान नहीं ले सकती। आलोचना एक प्रकार का व्याकरण है और मातृभाषा मड़ी ऐसा हो सकता है कि व्याकरण का पठन पाठन और रचना इनका घटिक हो जाय कि साहित्य उसकी बाढ़ में डूब जाय।

फिर, यदि आलोचना किसी मसरफ की हाती, यानी उसमें कोई नया सिद्धांत या नया दृष्टिकोण सामने आता, तो उससे कुछ लाभ हो सकता था, पर यहाँ तो बस यही चल रहा है—'मरे हमदम मरे वास्त', ऊँटा की गाढ़ा में गढ़ा का वह पंचम स्वर में आलाप कि गढ़ा ऊँट के रूप की प्रशंसा करता है और ऊँट गढ़ा के बूँट को सराहते हैं। मैं नाम मन से बचना चाहता हूँ पर आज यह हालत है कि बहुत नये लोगो ने अपने नाम जितनी बार छोपे क हरफो में दूसरा की कलम से और अपनी कलम में रख हागे, उतनी बार प्रेमचन्द ने सारे जीवन-काल में नहीं देखा होगा। अभी अभी किमी ने, शायद डा० प्रभाकर भावने ने लिखा था कि भगवती चरण वर्मा पर हिंदी में कोई पुस्तक नहीं है जब कि वह हिंदी के एक श्रेष्ठ उपन्यासकार और 'चित्रलेखा' के संलक्षक हैं, जिसकी लगभग एक लाख प्रतियाँ बिक चुकी हैं।

इस प्रकार परस्पर प्रशंसा की यह चक्की बहुत महीन पीस-कात रही है और उसमें लाभार्थ भी अच्छे हो रहे हैं। सब कुछ ठीक है। खोरबाजारी में बहुत से लोग लाजा का बारा-बारा कर रहे हैं, उसमें कोई बड़ी बात नहीं है, पर परसानी तो इस बात से है कि सामयिक रूप से ही सही, बहुत से लोग पय भ्रष्ट हो रहे हैं और छोटे सिक्के को सही मान कर चल रहे हैं अवश्य, जैसा कि अब्राहम लिंकन ने कहा था—यह संभव है कि कुछ यक्षिमा को हमेशा के लिए धोखे में रखा जाय, यह भी संभव है कि कुछ समय के लिए सारे लाजा को धोखे में रखा जाय, पर यह संभव नहीं है कि सारे लाजा को सारा समय धोखे में रखा जाय। पर्दाफाश तो होगा ही और सत्य की किरण छिटकगी ही पर जब तक यह धीगामस्ती चल रही है तब तक गन्धर्वोप तो रहेगा ही, तब तक बहुत से मुसाफिर गलत रास्ते पर चले जायेंगे।

जैसा मैं बार बार कह चुका हूँ, कालिदास का वह कथन ही सत्य है कि सारी पुराना बातें अच्छी नहीं हैं, और न सारी नयी बातें ही अच्छी हैं। नया तो प्रायः

है, उन काई रोक नहीं सकता, पर नया बाकई नया है, यह भी जाँच सना पड़गा।  
 वही ऐसा तो नहीं कि नये व नाम पर जा कुछ चात्र है उसको प्राद मे नार लायी हुई  
 घोर हार लायी हुई विचारधारणा को बूढ़ा बर्याएँ जाम्बिक सर्बरी की द्वालेत  
 धूर्णलता को तरह भागे मान को काधित कर रही हैं। जहाँ तक नये साहित्य न  
 नापा रेली, यही तक कि कपास्तु घोर कथ्य नवयो नय प्रयाग हा रह है, छूए है,  
 वे तो बरबर हात रहे हैं—बल्कि प्रत्येक रचियता अपने पुनवर्तियों से इसी बदीलत  
 मत्ता होता है, पर जब नये व बदर स प्रति पुरातन रेतान बाँता है, तब ततय  
 वेदा होता है।

आधारभूत रूप से, अवश्य यह प्रति सरलीकरण है। कला के सम्बन्ध में दो  
 मतवाद रह हैं। एक का कहना रहा है—कला कना क लिए है। दूसरा कहता है—  
 कला जीवन क लिए है। इन दोनों क बाक हवाप प्रकार का विचिचियाँ पन सत्ता  
 है घोर मबडो डेड इ ट का मजिजें तयार हा सक्ती है। यह भी सहा है कि जिन  
 उपमाप्रा का कारें इजनी पिन-पिट मयो कि उन प्रपणीयता का दम नहीं रहा  
 उन्हें बाल की लाडी में डुबा कर नयो उपमाएँ लोको जायेंगी नापा व तरकय में  
 नयेनय तीर—कुछ समुत् से कुछ गूँ घोर कुछ जहर से कुछ छुर—नर जायगे, रेली  
 भा ऐनी नया हागा कि माडूम तो हा कि कुछ पड़ रह है। जहाँ तक इन प्रयाग घोर  
 प्रयाग का सम्बन्ध है, वे मर्यादा मानिनानाय हैं घोर उनकी जितना भी प्रप्रा का  
 जाय बड़ साडी है। पर इन सम्बन्ध में यह दावा करना या यह पारया उपन  
 परन की चटा करना कि ऐसा कवन हिंसा न ही हा रहा है, कहा नहीं हुमा। यह  
 कवन महमयता घोर सततागत होनताबाज का परिवायक है।

पूरातीय साहित्य में यह सब उमागा बूढ़ पक्ष हो चुका है घोर वहाँ जीवन  
 ऐसा व्यक्ति घोर प्रसूत जकी प्रतिभा का जन्म हा चुका है घोर उनके कारण जा  
 उक्तान भापा या, उक्ता लामा भी हो चुका है। यह काई भा नहीं कहता कि मान  
 का मर्य यह है कि उक्ता मरर जा चुका है। जब नया मन मान में मया नहीं पाजी  
 घोर छिनारे क पायता का ठाह कर दावा पाग पर नय ग्राह्य करता है तब वह  
 अपने पीछे जा पानी मिटा जाड जाता है, उमक सम्बन्ध में यह ता नहीं बड़ सकत  
 कि वह कुछ नहीं है। वह ता है घोर उनका महत्व घोर काद न जान, छिनारे पर  
 रून याता विमान जानता है, जानता है तभी वह हर मान क्य का मार मान पर ना  
 दुसरा मान की सात मन्दा जान कर कन मान नया क छिनार ही पया रहता है।

बर्जोनिया युक्त घोर जाँच न नापा घोर पना सम्बन्धी जो प्रयोग किय, वे  
 बूढ़ ही सचक घोर निरक्षर से। कहा गया कि मटर कुछ नहीं है, बरिज का म कन

एक ऐसा भद्दा कार्य है, जैसे किसी बहुत सुरुचिपूर्ण दिनर क दौरान, जो मोमबत्तियाँ को रोशनी में चालू हो, कोई भुना चना निकाल कर खान लगे। कपाकार द्वारा दी गयी टिप्पणी भी जहालत मानी गयी, यद्यपि बालजक, तात्स्ताय, मापासां प्रादि पुरान युग लोग इसके बहुत आदी थे। चेतना प्रवाह का सिद्धांत अपनाया गया। कहा गया कि एक मनुष्य बिल्कुल सरल रेखा में नहीं सोचता, बीच में कितनी ही भँवरें और विपयांतर होते रहते हैं। कई जगह पुराना विचार रक्त प्रवाह में 'कोमस्ट्रोल' की तरह प्रवाह का रोकता है और गाँठें पड़ जाती हैं।

इसमें कोई सदेह नहीं कि जॉयस प्रादि ने जो प्रयोग किये, वे बहुत कुछ सार्थक रहे, पर इस सम्बन्ध में यह भी देखने की बात है कि अपने अपने युग में सभी महान् मूलक भाषा और शैली में नवयुग के प्रवृत्त हुए हैं। कई बार तो मूलक को भाषा का कुर्मा खाद कर जब पानी पीना पड़ता है। शेक्सपियर ने अपने युग में बहुत सी नयी बातें बलाया। अब तो खोज यह बता रही है कि जायस और बुफ के पहलू डारोपी रिचडसन ने दोनों के लिए रास्ता खोल दिया था पर डारोपी रिचडसन ऊँची कलाकार नहीं थी। जैसे ईसा के लिए जान दि बैप्टिस्ट ने रास्ता तैयार किया था, उसी तरह से डारोपी ने रास्ता तैयार किया। रास्ता तो तैयार करना ही पड़ता है, बिना रास्ता तयार किये नये किस्म की गाड़ी उस पर नहीं चल सकती। बलगडी की कच्ची सड़क पर लारियाँ और बसें नहीं चल सकता। किसी भी परिवहन विधेयज्ञ से पूछिए तो वह भाग निर्माण के इस दृष्टवाद के सम्बन्ध में अपने जान या अनजान में बतायगा। प्रगत वस्तु एक तरफ और शैली तथा भाषा दूसरी तरफ एक दूसरे में उसी प्रकार बँधी हुई हैं, जिस प्रकार व्यक्ति और उसकी परछाई। दोनों केवल हो सकते हैं जब व्यक्ति न रहे बल्कि प्रेत हो जाय।

भाषा और शैली का प्रगत वस्तु से अलग नहीं किया जा सकता क्योंकि दोनों एक दूसरे की पूरक हैं। प्रयोग केवल भाषा और शैली सम्बन्धी नहीं होते बल्कि प्रयोग सभी क्षेत्रों में चालू रहते हैं पर कुछ ऐसा हुआ कि मोटे तौर पर यूरोपीय साहित्य में १६१५ से १८४५ तक जो प्रयोग हुए वे भाषा और शैली सम्बन्धी ही हुए, यानी उसके अलावा जो प्रयोग हुए उन पर लोगों का ध्यान उतना नहीं गया। यह पता लगाया गया है कि चेतना प्रवाह या 'सेंसिबिलिटी' नाम उप-यास का प्रारम्भ फ्रांस में हुआ है जिसका पहला ऐसा उप-यास १८८७ में प्रकाशित हुआ। डारोपी रिचडसन इसके बाद आयी। उसका उप-यास 'प्लायेटेड रूपस' यानी 'नोकदार छतें' १९१५ में प्रकाशित हुआ। यह एक माला की प्रथम पुस्तक थी जो 'मिरियम माला' कहलायी। मिरियम एक यात्री है, जिसकी चेतना में सारा उप-यास घटित होता है। 'प्लिसिस १९२८ में प्रकाशित हुआ।

इन प्रयोगों में प्र प्रेजी साहित्य को लाभ पहुँचा, फिर भी, जैसा सभी मानते हैं, जॉयस और बुल्फ का विषय अनुसरण नहीं हुआ, यानी जो अनुसरण हुआ वह सफ़्त नहीं हो सका। साथ-साथ नयी आलाचना या मायी था, पर उसके बावजूद जॉयस और बुल्फ की बग़ावती नहीं चली पर जैसा मैं बता चुका हूँ, यह कहता ग़लत होगा कि उनका घमर रहा पढ़ा। घमर पढ़ा, और भारत की अन्य भाषाओं तथा हिन्दी नवमयन पर सब चल कर लाभ एक दग़क से इनका घमर दिखाई पड़ रहा है। उब फिर बहुत-बुद्ध पुराने दरें पर लोट गया, यद्यपि प्रतिस्पर्धा की घोर प्रकृति, प्रति उपन्यास की तलवार उसक मिर पर लटकी रही। लोक अनुकरणकारियों से घोर सपन व्याकरण और अपनी ग़ाली में लिखने वाला है, जिसकी रचनाओं की बहुत कुछ हालत ऐसी हो गयी थी कि वे खुद ही लिखें और कुछ ही समझें—जैसे मायुनिक और यदि लोको विज्ञान का विशाल किया जाय तो सब पड़े निव मुसहृन्त लाग मुस काम यह डोग मारने लगे कि हम तो कहाना और उपन्यास पढ़ने ही नहीं हम तो इतिहास और जीवनी पढ़ने हैं।

विचार और माहिंयार अपने को चाहे जितना महत्त्व दें पर एक वह ना व्यक्ति है, जिसका नाम है पाठक। पाठक को साथ घ जा कर सबकु कुछ भी कर सकता है उसक चम्प में बाइ बापक नहीं हो सकता। पर यदि सबकु न पाठक का मक़दार में छोड़ दिया तो वह देगा कि समन में उनसे अपने को ही मक़दार में छोड़ा है पाठक तो मुझा जमान पर पड़ने गया है और वहाँ से हूटन हुए क़त्तार या मुसहृता हुआ या गालियाँ दता हुआ—जैसे नी उसकी प्रवृत्ति हो, दम रूदा है। पाठक का मून जाना साहित्यकार के लिए क़नी लान्गवाय नहीं हो सकता। पाठक हाथ छोड़गा तो प्रकाशक हाथ छोड़ेगा, क्योंकि प्रकाशक कोई प्रयोग करने के लिए बावला नहीं होता, उसे तो प्रयोग वही तक प्रिय और उगादय मान हैं जहाँ तक उसने मुनाफ़े की रकम में चार चँ लगे। अतः, बुद्धिमान प्रकाशक एक हद तक पाठा ना उठा सकता है बसते कि बा का पाठा मू दर मू लोट पाये। इसलिए इन मानस नहीं कि मुसहृन्त पाठकों ने प्रयोगशील, बल्कि कहना चाहिए महपादा नव-मन को प्रोत्साहन नहीं दिया और प्रिय, इतिहास और प्रागिन्यों में धीरे वधान लगे।

कनी तर क़त्ता के क्षेत्र में क़वित मायुनिकता माना जान लिदेयनन क़त्ता जानू है, पर उरनाम-क़हाना में उपन्यास घ ट हा गया यह कोई आरम्भ की बात नहीं है, उपन्यास और कहाना विनयता में क़हीं अधिक रोचकता की है इसलिए उसमें



एक ऐसा भद्दा कार्य है, जैसे किसी बहुत सुरुचिपूर्ण दिनर के दौरान, जो मोमवत्तियों की रोशनी में चालू हो, कोई भुना चना नियाल कर खाने लगे। कयाकार द्वारा दी गयी टिप्पणी भी जहालत मानी गयी, यद्यपि वालजक, तात्स्ताय, मापासां आदि पुरान युग लोग इससे बहुत आदी थे। चेतना प्रवाह का मिद्धात अपनाया गया। कह गया कि एक मनुष्य विल्कुल सरल रेखा में नहीं सोचता, बीच में कितनी ही भँवरें और विषयांतर होते रहते हैं। कई जगह पुराना विचार रक्त प्रवाह में 'कांस्ट्रोल' की तरह प्रवाह को रोकता है और गाँठें पड़ जाता है।

इसमें कोई संदेह नहीं कि जायस आदि ने जो प्रयोग किये, वे बहुत कुछ साधक रहे, पर इस सम्बन्ध में यह भी देखने की बात है कि अपने अपने युग में सभी महान् मल्लक भाषा और शैली में नवयुग के प्रवृत्त हुए हैं। कई बार तो मेल्लक का भाषा का कुर्मा खाद कर तब पानी पीना पड़ता है। शेक्सपियर ने अपने युग में बहुत सी नयी बातें बलाया। अब तो खोज यह बता रही है कि जायस और बुफ के पहले डारोपी रिचर्डसन ने दोनों के लिए रास्ता खाल दिया था पर डारोपी रिचर्डसन ऊँची कलाकार नहीं थी। जैसे ईसा के लिए जान दि बैप्टिस्ट ने रास्ता तयार किया था, उसी तरह से डारोपी ने रास्ता तैयार किया। रास्ता तो तैयार करना ही पड़ता है, बिना रास्ता तयार किये नये किस्म की गाड़ी उस पर नहीं चल सकती। बैलगाड़ी की कच्ची सड़क पर सारियाँ और बसें नहीं चल सकती। किसी भी परिवहन विगेषन से पूछिए तो वह मांग निर्माण के इस इडवाद के सम्बन्ध में अपने जान या मनजान में बतायगा। प्रसगत वस्तु एक तरफ और शैली तथा भाषा दूसरी तरफ एक दूसरे से उसी प्रकार बँधी हुई हैं, जिस प्रकार व्यक्ति और उसकी परछाई। दोनों केवल हो सकते हैं जब व्यक्ति न रहे बल्कि प्रेत हो जाय।

भाषा और शैली को अतर्गत वस्तु से अलग नहीं किया जा सकता क्योंकि दोनों एक दूसरे की पूरक हैं। प्रयोग केवल भाषा और शैली सम्बन्धा नहीं होते बल्कि प्रयोग सभी क्षेत्रों में चालू रहते हैं, पर कुछ ऐसा हुआ कि मोटे तौर पर यूरोपीय साहित्य में १६१५ त १८४५ तक जो प्रयोग हुए वे भाषा और शैली सबधी ही हुए, यानी उसके अलावा जो प्रयोग हुए उन पर लोगों का ध्यान उतना नहीं गया। यह पता लगाया गया है कि चेतना प्रवाह या 'सेंसिबिलिटी' वाले उपन्यास का प्रारम्भ फ्रांस में दूजारदाँ से हुआ, जिसका पहला ऐसा उपन्यास १८८७ में प्रकाशित हुआ। डारोपी रिचर्डसन इसके बाद आयी। उसका उपन्यास 'प्यायेन्टेड रूफम' यानी 'नोकदार छतें' १८१५ में प्रकाशित हुआ। यह एक माला की प्रथम पुस्तक थी जो 'मिरियम माला' कहलायी। मिरियम एक यात्री है जिसकी चेतना में सारा उपन्यास घटित होता है। 'यूलिसिस' १८२८ में प्रकाशित हुआ।

इन प्रयोगों में अश्वेजी साहित्य को लाभ पहुँचा, फिर भी, जैसा सभी मानते हैं, जायस और बुल्फ का विंग्र प्रभुत्व नहीं हुआ, याना जो प्रभुत्व हुआ वह मफल नहीं हो सका। साथ-साथ नये धालोबन भी धायाँ मो, पर उसका बावजूद जायस और बुल्फ की बग़ावत नहीं होती, पर जसा मैं बता चुका हूँ, यह कहना गलत होगा कि उनका घसर रहा पडा। घसर पडा, और भारत की घाय भावालो तथा हिंदी नवमूल्य पर घब घब कर लगभग एक दशक से इनका घसर दिखाई पड रहा है। उस घसर पर हम बाद की धामेंगे पर जो कुछ भा हो जॉयस प्रादि के बाद उपन्यास फिर बहुत-कुछ पुराने करें पर लौट गया, यद्यपि प्रतिक्रानी और प्रकृति, प्रति उपन्यास की तत्तवार उसक निर पर लटकी रही। ताक प्रभुत्वकारियों से और अपने वाकरण और अपने सेली न लिखने वाला से, जिनकी रचनाओं की बहुत कुछ हालत ऐसी हो गयी थी कि वे खुद ही तिलें और खुद ही समझें—जैसे प्राधुनिक कला में है, इतने जब गये कि उन्होंने उपन्यास और कहानी पढ़ना ही छोड दिया और यन्त्रि लोकी विद्याना का विश्वास बिना जाय तो मत्र पड़े निर मुमस्तुत लाग मुम घाय यह लोग भारने गये कि हम तो कहानी और उपन्यास पढ़ते ही नहीं, हम तो इतिहास और जीवनी पढ़ते हैं।

विनाकार और साहित्यकार अपने को बाहे जिनका महत्व है, पर एक वह भी व्यक्ति है, बिना नाम है पाठक। पाठक को नाम से जा कर घनक कुछ भी कर सकता है, उसक राज्य में कोई बाधक नहीं हो सकता। पर यदि घनक न पाठक का मन्थार न छोड दिया तो वह देखगा कि घनक में उसने अपने को ही मन्थार न छोडा है, पाठक तो सूखी जमीन पर पडुल गया है और वहाँ से हूटने हुए जलाकार या पुष्टराता हुआ या गालिपी रता हुआ—जमी भी उसकी प्रवृत्ति हो, देख रहा है। पाठक को मूल जाना साहित्यकार के लिए सभी सामान्यक नहीं हो सकता। पाठक का छोड़ेगा ता प्रकाशक हाथ छोड़ना, क्योंकि प्रकाशक कोई प्रयाग करने के लिए जाता नहीं होता उसे ता प्रयाग वहाँ तक प्रिय और उगादय लगन है उहाँ तक मने मुनाके की रकम न बार बार लगे। घनक, बुद्धिमान प्रकाशक एक हद तक ता भी उठा सकता है यद्यपि कि बाद की पाठ मूद दर मूद लोच लाय। इसलिए हम लक्ष्य नहीं कि मुमस्तुत पाठक न प्रयोगशील, बल्कि कहना बाहिर घट्टाघो नव-यन को प्रोत्साहन नहीं दिया और 'प्रियर', इतिहास और जीवनीयों न घोर परान ने।

घभी तब कला के क्षेत्र में कपित प्राधुनिकता घानी नान छिन्न-दन्त' कला ला है, पर उपन्यास-कहानी न उसका घब हो गया, यह कोई बाधक की बात नहीं, उपन्यास और कहानी बिनाकार से वहाँ अधिक रोचकता की है इसलिए उसमें मनक

भरे प्रयोगों का पहला आकृतकार्य हो जाना विल्कुल वैसा ही है जैसा होना चाहिए था। इस क्षेत्र में उपभोक्ता उतने दिनों तक स्वप्न के राशन पर चलने के लिए तैयार नहीं था। यहाँ इतना ही बता कर कला के प्रसंग को समाप्त कर दिया जाय कि फिर से न केवल समाजवादी क्षेत्रों में बल्कि सारे सम्य जगत में किसी न किसी रूप में 'फिगरेटिव' यानी पहचान में आने वाली कला का पुनरुत्थान हो रहा है। कहानी और उपन्यास के क्षेत्र में यह पुनरुत्थान या पुनरावर्तन पहले हुआ। ऐसा इस कारण हुआ कि विधा का तकाजा ऐसा ही था और इस विधा में धांधली का भिक्का तभी तक चल सकता था, जब तक उसके साथ महान प्रतिभा का हस्ताक्षर संयुक्त हो, यानी दूसरे शब्दों में, धांधली जब धांधली न रह जाय। कई प्रयोग ऐसे होते हैं जिन्हें केवल महान प्रतिभा ही चमका सकती है।

मैंने पुनरुत्थान और पुनरावर्तन शब्दों का प्रयोग किया पर इससे यह समझने की जरूरत नहीं है कि साहित्य और इस क्षेत्र में कहानी और उपन्यास वही लौट गये जहाँ वे ब्रुल्फ, जायस और प्रूड्स आदि के पहले थे। नहीं ऐसा अभी नहीं होता। इस बीच टेम्स से लेकर गया तक बहुत पानी बह चुका था। बहुत सी लावें मिल चुकी थी, जो नयी और उत्तेजक थी। इसलिए अब जो पीछा सामने आया या आ रहा है, वह पहले की तरह नहीं है, उससे भिन्न है, क्योंकि उसने बीच की चीजाँ खदेड़वाया है और उससे पुष्ट हो कर अपनी जड़े नीचे की ओर और शाखाएँ न जाने कहा कहा फैली हैं। ऊपर बतायी बातों के बाद जब हम हिन्दी के क्षेत्र में लौटते हैं तब महाविचित्र परिस्थितियों का सामना होता है। बातें वही हैं, प्रयोग भी वही हैं, नारे और भंडे कुछ भिन्न इसलिए हैं कि छिपाना है कि यह अनुकरण या जूठन है। साहित्य में अनुकरण कोई बहुत बुरी बात नहीं है, विशेषकर जबकि अब सत्तर दिन ब दिन संकुचित होता जा रहा है। पहले सलनऊ से एक सहर दिल्ली पहुँचने में जितने दिन लगते थे, अब उतने समय में सार सत्तर की परिक्रमा हो सकता है। इसलिए इस संवत्सर में भारतीयता का नारा दे कर दामन बचाने की श्रद्धा व्यर्थ है। इसलिए हम उस संभव में कुछ नहीं कहना चाहेंगे। प्रयोग हो रहे हैं और पहले भी मैं बराबर मान चुका हूँ और मानता रहूँगा कि इन प्रयोगों से हिन्दी भाषा की प्रेषणीयता में बहुत वृद्धि हुई। और उससे वह कच्चा भास तैयार हुआ जिसमें महान प्रतिभा का जन्म हो सकता है। इसके लिए नववर्ष की, जिसमें हम नया कविता को भी गिनेंगे, जितनी प्रशंसा की जाय थोड़ी है।

पर जब जब इस प्रशंसा के मींग पर चढ़ कर यह दावा किया जाता है कि हमी अंतिम पैगम्बर हैं, हमारे बाद कुछ नहीं होने का और हमारे पहले जो कुछ हुआ वह तो खैर कूड़ा ही था, तभी हम राजनीति और दूतान्तरी के हथकड़े दिखायी

देते हैं। मग तब यह भी दावा था कि यह तो पीढ़ियाँ की लड़ाई है और नयी पीढ़ी स्वाभाविक रूप से पुरानी पीढ़ी से अधिक जातिकारी है। दूसरे पक्ष में यह कहा गया कि जो लोग पहले कथा-साहित्य के क्षेत्र में काम कर रहे थे, वे गलत और गुमराह थे, प्रतिक्रियावादी थे, इत्यादि इत्यादि। यह तर्क कुछ दिना तक बहुत अच्छा लगा क्योंकि सबकुछ एक तरफ एक बयान के लोग थे और दूसरा तरफ दूसरी बयान के। जब तक यह परिस्थिति रही तब तब तक ठीक बना, पर इससे सचमुच नाम से कुछ अप्रभावी नयी उम्र के लोगों के सामने धान से उन छोटी का पैदा निकल गया।

कुछ भी हो, यद्यपि हमारे यहाँ नयी कहानी—यहाँ तक कि घटना की प्रतिपादक शिवायी पक्ष थे और उन्होंने वे सब ठीक और स्वस्थान कुछ लिये थे जो पाश्चात्य में तत्कालीन काल में दिये गये, पर जहाँ तक व्यंग्य का प्रश्न है, नयी कहानी वाला ने कतई घटना की भाँति सतर्क को नहीं अपनाया—मिनाय उन चरित्रों के जब वे कहानी बनाने में समर्थ रहे और यह अवस्था करन रहे कि उनका जना हुआ भ्रम या गर्भ-भाव प्राणों में मान लिया जाय। मुझे तो लगता है कि कथा-साहित्य या और इन निरुत्सुक में नयी कहानी के जो नमून सामने आये हैं, उनमें कथानक की प्रचुरता है, चरित्र भी हैं, समय-परिणाम भी हाँकते हैं। इन प्रकार से जो सिद्धान्त प्रतिपादित हुआ और जिस पर बयान बनायी गयी, उसका अनुसरण नहीं हुआ। बयान और कथानक के बीच इस फाट पर हल कर हम आगे बढ़ जा सकते हैं, पर उससे परिस्थिति का ठीक मूल्यांकन नहीं हो पाया। क्या कारण है कि प्रतिपादन कुछ और हुआ रहा है और बायो-पिक किसे और तराज से हुआ रहा? इसका कारण यह है कि जिन परिस्थितियों में पाश्चात्य में कहानी का नाश हुआ, वे परिस्थितियाँ यहाँ अभी उत्पन्न नहीं हुई हैं। वे बातें जो उत्पन्न होगी। होगा ही, ऐसी कोई बात नहीं। क्योंकि कई बार सामाजिक स्थितियों को जीप कर घटना की स्थिति में पहुँचा जा सकता है। छेद, उस बात को यहाँ छोड़ दिया जाय। हमने पुराना पद का प्रयोग इसी अर्थ में किया है कि परिस्थिति उत्पन्न नहीं हुई और नार बुलबुल कर दिये गये, परिस्थिति उत्पन्न नहीं हुई और दूसरा परिस्थिति में उत्पन्न नारे यहाँ की परिस्थिति पर पाए दिये। यह ऐसा है। दूसरे रायनामी के साथ टाई बाँध दी जाय। इसका जायजमान प्रमाण यह है कि नया कहानी के अर्थ को बिना जान का सोभाव्य प्राप्त कर चुक है, सरासर अपनी कहानी में उनको गुलाबी करत है, या कभी और किसी के मानचित्र पर अक्षरों परिण और मूलाक्षर का मानचित्र छाप रहे हैं।

इससे स्पष्ट नहीं है कि नया कहानी मान्यता तब तक उत्पन्न प्रयोगों से

भाषा और शैली सम्बन्धी कुछ उपलब्धियाँ सामने आयी हैं पर अन्तर्गत वस्तु को केवल 'यविन' की कु ठाम्मा और मनोभासा तक सीमित रखने के अपन खतरे हैं। कुछ पाठकों का ता यहाँ तक कहना है कि यदि चारों तरफ अनाचार, दुराचार, भ्रष्टाचार, कु ठा और निराशा है तो मनुष्य साहित्य, नाटक सिनेमा आदि में उससे भाग जाना चाहता है। ऐसी पलायनवादी भनावृत्ति की सराहना नहीं की जा सकती, पर भाषा की किरण न हो अंधेरा बहुत ही कष्टकर हो जाता है। जवदस्ती काल्पनिक भाषा की किरण लाने की जरूरत नहीं है। क्या यह सब नहीं है कि इतिहास की सारी खुराफातों और मनुष्य की आत्मा को गुलाम बनाने के पड़थ था के बावजूद मनुष्य बराबर प्रगति करता गया है, उसको जजीरें टूटती गयी हैं ?

सचतन का नारा, जहाँ तक मैं देख रहा हूँ, उन्हीं पीरे धीरे सही चिन्तन की ओर में जा रहा है। व्यक्ति समाज का मय है, वह उससे मुक्त नहीं हो सकता। यदि समाज में कोई कमी है तो उस सुधारना पड़ेगा और बराबर सुधारते जाना पड़ेगा जैसा मकान में होता है। वक्त की जरूरत के अनुसार उसमें नयी लिङ्कियाँ भी खाली जाती हैं और कभी कभी मकान को तोड़ कर उसकी जगह सम्भव है कि मकान बनाया ही न जाय, सड़क हा बना दी जाय पर मकान से जा लाग निकलेंगे वे कहीं रहेंगे तो नहीं। सचतन या दोलन अभी सफल हो सकता है जब वह इस तथ्य को अपना म कि कला का आखिर कोई उद्देश्य है जैसा वह अपनाता हुआ दृष्टिगोचर हो रहा है। कलाकारों और साहित्यकारों का एक ही मानवता की सृष्टि करनी है। भारत को ऐसे फासीसियों का रक्ष नहीं बनाना है जो हर आक्रमणकारी के सामने घुटन टेक दें। हमें तो एक तगड़ा और स्वस्थ राष्ट्र बनाना है। पर उस प्रकार का भी तगड़ा नहीं जैसा हिन्दू राष्ट्र था। साहित्य के सर्वर्ष में ऐसी भाषनामा और मूल्यों की सार्थकता इस कारण है कि साहित्य स्वयं कोई अलग विधा नहीं है, वह संपूर्ण मानव की एक विधेय अभिव्यक्ति है।

जब पाश्चात्य में ही लाग कु ठावाद से उकता चुके हैं और कु ठावाद में बहने के कारण स्वस्थ लोग क्या-साहित्य से ऊब चुके हैं, तब क्या यह भाषा करना दुराशा मात्र होगी कि हमारे यहाँ भी साहित्यकार समय की गति का पहचान कर और मारे अनुभवों का समर्थन कर भाषा को और बढ़े ?



# स्वतन्त्रता के वाद की कहानी

धोमती विजय चौहान

जैसे नदी कहानी का बदलता हुआ 'परिवर्त' कहा जाता है और जीवन की जो 'संश्लिष्टताओं' की तरफ मकेल किया जाता है, दरमसल वे उस ऐतिहासिक प्रक्रिया के विभिन्न रूप हैं। इस प्रक्रिया का 'गुरुवात्त माया' से पहले ही चुकी थी, उसी वक्त से जब बड़े सहर बनने लगे, मिला की चिमनिमा में से छुँमा निजानन लगा, या यूँ कहें कि 'गान' का गोबर जब से कलकता, बम्बई या कानपुर में नोकरी करने गया। सहर पहुँच कर उसको बोलचाल, पागाक और रहन सहन में भी बदल दिया। उसके जीवन में नई समस्याएँ पैदा हुई जिसका चित्रण कहानीकार आज तक कर रहे हैं, कुछ मजदूर बस्तियाँ की गंदगी का चित्रण करने हैं, कुछ उस कुलित सभ्यता का पर्दाफाश करते हैं जो इंसान को मशीन बना देती है, कुछ धेसक मजदूरों का धरमन्त दयनीय रूप में दिखाते हैं। मूक पशु की तरह काम करने वाला जो दो जून पट भरने के बाद पैर पसार कर सा जाता है, ठाढ़ा पीता या स्निग्ध बहलान के लिए सिनेमा चला जाता है। कुछ धेसकों ने अपनी नई चेतना और आक्रोश का व्यक्त किया है। यह तस्वीर सभी मुकम्मल नहीं हुई है, इसमें नई और पुरानी दोनों पीढ़ियाँ कहानीकार लगे हुए हैं।

पुरानी पीढ़ी के कथाकार नई औद्योगिक सभ्यता के 'गैमर' से चौंकाए जाते हैं बल्कि उन्होंने इस सभ्यता के कमजोर पहलुओं का चित्रण किया। यह मशानों और सहरों की सभ्यता एक निमग्न दुनियाँ के तरह पुरानी मान्यताओं, आस्थाओं और जीवन मूल्यों को तोड़ता चली जा रहा था, आज भी ठाढ़ी जा रहा है, बिना यह पाव बिचारे कि पुरानी सभ्यता में भी पायदार और स्थायी मूल्यों की चीजें मौजूद हैं, जिसका का पाई ने सामंती जाति के जर्जर मूल्यों पर प्रहार किया था। उनका बालक सभ्यता ने औद्योगिक सभ्यता से पैदा हुई 'पेटा दुर्दशा' 'बाबू' महसूस की दुष्चलन पर गहरा किया। 'उम' जनता का जमाना, भस्म, नाशनी करण बना की धनक कहानियाँ हैं। यहाँ धीमे है, बहुत धीमे पहले 'कहानी' में 'भावना' धारक के एक कहानीकार को जो धारक नाक और धर्म स्थापित करना था। दुमाध्य से धेसक का नाम जो मुझे बाद नहीं मिले कहानी की धीमे धमा तक पाद है। एक धमोय सहर नोकरी का धनक में सहर जाता है और धनक परिवार के लिए धनक बन जाता है। सहर में

वह अपने बाबू और अम्मा को एक पत्र लिखकर शिकायत करता है कि उन्होंने क्या उसे उज्ज्व कपड़े पहनाकर और साबुन से नहला कर 'बाबू' बना लिया था। अब वह इन चीजों का दगैर नहीं रह सकता। साबुन का टिकिया और उज्ज्व कपड़े उस शहरी सस्कृति के प्रतीक हैं जिन्होंने लाखों लोगों का बेगाना बना दिया है—अपन परिवार के लोगों से और अतः अपने से भी। यह बंगाली पन (Self Alienation) प्रौद्योगिक सस्कृति की देन है जिसने एक तरफ घोर व्यक्तिवाद को जन्म दिया है तो दूसरी तरफ धर्म विभाजन, यथोक्तकरण और बड़े शहरों के कारण व्यक्ति अपने को प्रकैला और बेगाना महसूस करने लगा है।

स्वतन्त्रता के बाद तरण लेखकों की नई पीढ़ी ने एक नये समाज को देखा जिसमें भट्टियाधिसान अवसरवादिता और स्वायत्तरता का बोल्बाला था। छात्रों की बाँटें करने वाले नेताओं का भी नया पाचरण सामने आया। जीवन का एक नया 'पटन' उभरा—जिसका मूलमंत्र था—हर मूलतः 'सत्ता' हथियाओ, योग्यता अयोग्यता का कोई सवाल नहीं 'अपना' प्रचार करो, 'अपने' लोगों का हर जगह लगवाओ, उसके लिए उचित अनुचित साधनों का इस्तमाल करो। 'सत्ता' पाने के लिए देशव्यापी दौड़ शुरू हुई। प्रेमचंद के समय में यह दौड़ सरकारी दफ्तरों तक सीमित थी। अब स्कूल, कागज, विश्वविद्यालय, विधान सभाएँ, पालियामेण्ट, यहाँ तक कि जिला परिषदें और पंचायतें भी पड़पाया, गुटबाजिया के झगड़े बन गये। झगड़ों के मन में सवाल उठा क्या यही हमारी स्वतन्त्रता का वास्तविक रूप है? 'जिन्हें नक' और 'महान' सम्झा जाता था मुखोटाधारी निरक्षर। पुरानी और नई दोनों पीढ़ियों के लेखकों ने मुखोटा के पाछे छिपे कुत्तित चहरे का बिनए अपनी रचनाओं में किया। लेकिन इस परिस्थिति के लिए पदलालुष नेता जिम्मेदार थे, साधारण लोग नहीं। जनसाधारण में उपदेश और फतवेबाजियों के प्रति विद्रोह पैदा हो गई था और वह नाक में मिकोड कर कहने लगे थे 'सब साध चार हैं'। लेकिन नयेपन' ने भी उनका मन में एक प्रतुप्ति और झकुलाहट पैदा कर दी थी। जीवन सचर्च की जटिलताओं के साथ 'बंगालापन' भी बढ़ता जा रहा था।

शहरी जिन्दगी ने नये सवाल पैदा किये थे जिनका हल अभी तक नहीं निकला—पश्चिमी देशों में भी नहीं यहाँ तो माँगा भल्लाह, अभी शुरूआत हुई है। ये सवाल मूलतः आर्थिक और मनोवैज्ञानिक हैं। शहरी जीवन में सबसे बड़ा सवाल है 'एडजस्टमेंट' का। मिसाल के लिए शिक्षिता नारियाँ की उम्र पीढ़ी को लाजिये जा आर्थिक रूप से स्वतन्त्र होत हुए भी परतंत्र है। वे जिन दफ्तरों में काम करती हैं उनका फर्नीचर तो आधुनिक जरूर है लेकिन उनके माय काम करने वाले पुरुषों की आधुनिकता टरेलीन की बुसट और 'डेक्कन' की पन्तून तक ही सीमित है। उनका

नम्हार सभी तक सामता है, नारी के प्रति उनका दृष्टिकोण भी सामान्य है, जिसकी प्रतियोगिता प्रत्येक स्तर पर कटुता और दुःख पैदा करती है। जहाँ पहल पुष्प वर्ग इन निर्दिष्ट नारियों का ईर्ष्या और शत्रुता की दृष्टि से देखता था अब वह निर्दिष्ट नारियों का धार्मिक दायित्व भी कर्म लगा है। काम करने वाली स्त्री की या तो माँ बाप यादों नही हान देते, या कोई उससे शादी करने को तैयार नही होता, या वह खुद ही शादी के लिये तैयार नही होती या यादों के बाद उसके समुचित वास उसे सताते हैं। चाहते हैं वह कमाकर भी माँ और नौकर की तरह घर का काम भी करे। इन समस्याओं पर हिंदी में नैकदा चर्चा हुई बहानियाँ लिखी जा चुकी हैं और लिखी जा रही हैं कुछ न निर्दिष्ट नारियों से हमदर्दी दिखाई है तो कुछ ने उन पर 'मोहावर' की तोर चलाये हैं।

पाश्चात्य साहित्य विशेषकर गीनयुद्ध की साहित्यिक विचारधाराओं से प्रभावित होकर कुछ कहानीकार व्यक्ति के बगाने पन' का मानवमात्र की नियति मानने लगे हैं कुछ एक काल प्राण बड़ गये हैं और घोषित करने हैं कि 'बारडन' और 'वेगनापन' इन्सान का जन्म विच्छाधिकार है और अल्ट्रा मॉडर्न बनने की प्रतियोगिता रणतंत्रिज्वान है। पूँजीवादी सभ्यता न इन्सान की जिन प्राकृतिक स्वाधपदक प्रवृत्तियों को उभाय है, उस कुस्मित रूप का ही व दम्भान का समता रूप समझने लगे हैं। 'जावन मूल्य' "आधित्य" और "प्रतिबद्धता" की चर्चा उन्हें नारन और दक्षिणाग्र्या मान्य हाता है। कुछ सन्नत पुष्पना पीढ़ी के धनदा और धातावता पर पिल पड़े हैं, माना सारी मानाविक नियमताया और धनमरवादिता व निर पुरानों पीढ़ी ही जिम्मेवार है कुछ धनक तो इमनिव पुराना पीढ़ी पर हमला करते हैं क्योंकि राजनिति व पेटर्न में यह जल्दी है 'व' धारम प्रकार के लिए कई नया प्राधान्य धरा जाय कुछ इमलिए करते हैं क्योंकि यह पैगुन है। विचार लड़न लड़कियाँ अपने व्यक्तित्व को समर्प करने के लिए, अपना हीनभावना का छिपान के लिए, अपने माँ बाप, परिवार और रिश्तावाय के लिए जिन किस्म की बन्धनात्रा नरा और 'बुद्धि' बाँटें रन स र कर और पूरी 'ईमानदारी' के साथ करने हैं, उन बातों का धार जवा का त्याग निरकर भी कहानी का सायक दे दिया जाये तो कुछ साया व यह 'स्मार्ट' कहाना मान्य हाता, उनमें प्राधुनिकता व मार तार हाता (इसी तरह स्त्रियाँ का आकार पर निर धरवाय वाक्या का भी कहानी न आइ कर जगती प्राधुनिकता बड़ा जा सकती है)।

किंगारारस्या में हर लड़का और लड़की अपने ही धनिाज्य और गहोर समनता है। उन बातों है कि जावन का मारी पादा वहा जेन रहा है और बड़ बूढ़ मने उका रह है। ऐसा ही दृष्टिकोण कुछ नय धपका ने धन्याय है जो साहित्य की पार पर म प्रेमवन्ध के जमान तक व 'धन्या' का 'आइकान' काना चाहते है नद



कहानी के अनेक समझका क समय समय पर प्रकाशित हान थापन वक्तव्या का स्था-  
स्वर यही है कि अब तक जो लिखा गया है वह असली साहित्य नही है, पाठकों  
पक्षे में रखा गया है ।

पहले 'नई' और 'पुरानी' कहानी का सवाल उठाया गया था, 'प्राचलिक' और  
'शहरी कहानी' का सवाल उठाया गया था और अब 'नई' और 'पुरानी' पीढ़ी  
सवाल उठाया जा रहा है, लेकिन हकीकत यह है कि स्वतन्त्रता के बाद की अवस्था  
एक कहानियाँ में पुराने खेलका की कहानियाँ भी हैं और नये खेलों की भी, इसलिये  
बाजो और सेहतबाजो से मतलब, कोई भी पाठक जानता है कि पुरानी पीढ़ी के लेखकों  
ने भी नई चीजों पर नई नई कहानियाँ लिखी हैं और 'नई' कहानी जान वाली कहानियाँ  
में भी 'पुरानापन' है । कुछ बरस पहले उपा प्रियम्बदा की 'मापसी' कहानी का 'नया'  
कहानी घोषित किया गया था । लेकिन अगर उस कहानी पर उपा प्रियम्बदा की जगह  
चन्द्रकिरण सौनरिक्ता का नाम होगा तब भी उस कहानी की वैभूता कम न जाती क्या।  
चन्द्रकिरण सौनरिक्ता ने भी इसी गली में अनेक उत्कृष्ट कहानियाँ लिखी हैं । 'माप-  
निकता' और भक्तिवाद के गढ़ अमरीका में रह कर भी उपाप्रियम्बदा और नोमाबो  
का कहानियों में परम्परागत भारतीय जीवन के मूल्यों का प्रति जो 'नास्टल्लिया'  
वह 'नयेपन' का लक्षण है या 'वकियातूसी' हान का ?

जिस तरह 'टर्लीन' की बुशर्ट, और अंग्रेजी में बातचीत एक प्रकार से एक  
कहरी बाबू संस्कृति की प्रतीक बन गई है उसी तरह कई बार दाम्पत्य और सख्त व  
समस्याओं का चित्रण करते समय विदेशी धरावा के सूत्रोपन, और खान की चीजों  
नामों की किलेबन्दी के बावजूद हिन्दी कहानीकार का सामंती संस्कार 'शाम्यदोष'  
बन कर बाहर आकत है तो शिक्षित पाठक का कोपन होती है, लेकिन लेखक बेचा  
क्या करें जब जान माने सभी तक एक तरह का शिक्षाप्रद करते हैं कि हिन्दी में मैथिली  
भार्नलड, टी एस इलियट और एक भार सीविस पर अधिकारपूर्ण चर्चा नहीं होती  
और उसी लक्ष में यह वाक्य पढ़ने को मिलता है "शेक्सपीयर के नाटकों में सामान्य  
तया और मकबेथ के 'द्वितीय' और नोट द्वितीय से गुरु होने वाले अवतरण में निम्न-  
चिन्तन या चेतना 'मेटाफिजिकल' काटि की नहीं है । (डाक्टर देवराज विश्व के सभी  
लक्षों के बीच 'नानादय' अगस्त अंक) गनीमत है कि अभी भी स्कूलों कालिओ में शेक्स-  
पियर पढ़ाया जाता है । 'द्वितीय' और नोट द्वितीय' वाली पत्तियाँ 'हैमलेट' में है 'मैक-  
बेथ' में नहीं ।

नये कहानीकारों में भी ऐसे लेखक हैं जो आस्थावान रचनाएँ लिख रहे हैं, और  
प्रायः की शहरी संस्कृति व अमानवीय पहलुओं और आधुनिकता के आडम्बर तले छिपे



का जीवन और कृतित्व इस बात का साक्षी है कि वे दिन प्रतिदिन 'प्रतिबद्धता' और 'दायित्व' के निकट आते रहे ।

आधुनिकता का भावबोध, दो चार विदेशी पत्रिकाओं में छत्र लेखों का हिन्दी-रूपान्तर प्रस्तुत करके, पाठकों पर रोब जमाना नहीं, बल्कि अपने युग की समस्याओं को समझकर आत्मसात् करना है ।

‘मेरे पास ना एक आदिवासी गन्ध है और उ नु      सब भी हमारी परदेन  
न एक घोर है।’ यह सब सुनाइ यह जाती है। घातक कवन इतना है कि यह वह  
मानुष्यता से ‘नए हूपा एक पता बाजार घोर एकाना घण्टा नहा रहा, बिना वह एक  
मयारक मगर मनुष्य के मरने का मरता अनुभव के रूप में दृष्ट होजा जा रहा है।  
उसका अविचार साधने का रहा है।

स्त्री जब तक कंजल एक समर्पिता थी, तब तक प्रेम केवल एक जनाना शब्द लगता था। लगता था केवल स्त्रियाँ ही प्रेम करने और दुःख भोगने के लिए पैदा हुई हैं, क्योंकि तब तक प्रेम का अर्थ केवल देना था। शरत्चन्द्र और जने द्र कुमार की ग्राम्भीणी नायिकाएँ केवल देने के लिए पैदा हुई थी। भक्ति प्रवण रचनाएँ ही नहीं, ये स्त्रियाँ भी केवल औपचारिक लगती हैं। इसका कारण है। जिन स्त्रियों ने अपनी युवावस्था में इन कहानियों का पढ़कर अपने दुःख से पहली बार साक्षात्कार किया होगा, अब वे नहीं रही। उनका स्थान एक आत्मसजग स्त्री ने ले लिया है जिससे निरुत्तम पुरुष के लिए ही नहीं, कहानीकार के लिए भी बठिन हा गया है।

शरत्चन्द्र की नायिकाएँ अब भी हैं, मगर आधुनिकता से अछूत उन अबलाओं में, जहाँ स्त्री की शिथिलता नहीं बसती है और उसकी नियति में परिवर्तन नहीं हुआ है। अब कुछ निश्चित बल्कि पूर्व निश्चित पता सा रहा है।

सकट उस शिथिल और समूह समाज में है, जिसके स्त्री पुरुषों के सम्बन्धों में एक नये प्रकार की उथल-पुथल चर रही है और जिसके कारण एक नये किस्म की अनिश्चितता ने जन्म लिया है। प्रेम पहले भी, हमेशा से ही, अनिश्चित था। मगर प्रेम से पैदा होने वाले सम्बन्ध निश्चित थे। अब प्रेम भी अनिश्चित है और प्रेम से पैदा होने वाले सम्बन्ध भी। कुछ भी निश्चित नहीं। सबसे बड़ा भ्रम यही है।

यह सकट साक्षरता ने, जनवादीकरण ने, अपने अधिकार ही नहीं बल्कि अपने अस्तित्व के प्रति अज्ञानता ने पैदा किया है। भक्ति यह साक्षरता यह जनवादीकरण यह सजगता—सम्यक्ता ही नहीं, अनुपमत्व का उत्कृष्ट है, इसलिए इस सकट को भी उसकी मानव परिणति के रूप में भवता ही नहीं हागा स्वीकार करना होगा। इससे कोई मुक्ति नहीं। यह अनिश्चितता, यह नियतिहीनता, एक नई विवशता है, एक नई परत पता है। और शायद यह अकस्मात् ही अनुपम को अनुपम बनाए रखने के लिए। सम्पूर्ण स्वाधीनता की तकसमय परिणति यह नयी पराधीनता ही है।

वास्तव में हमारा प्रेम दो स्वाधीनताकामी व्यक्तियों का प्रेम है। स्वाधीनता अतः अनिवार्यता तक पहुँचती है और प्रेम भी आखिर में अनिवार्यता तक ही पहुँचता है। मगर आज का सारा साहित्य स्वाधीनता और प्रेम के सघर्ष का साहित्य है। लड़ाई स्त्री और पुरुष के ही बीच नहीं चल रही है, बल्कि दोनों के अन्दर अलग अलग भी यह सघर्ष चल रहा है।

अपने को स्वीकार करते हुए दूसरों को स्वीकार न कर पाना ही सब से बड़ी विडम्बना है। हम जैसे जैसे अपने को स्वीकार करते जाते हैं, वैसे वैसे दूसरों को स्वीकार कर पाने में स्वयं को असमर्थ पाते हैं। मगर इससे भी बड़ी विडम्बना यह



है। उसकी नैतिक या अनैतिक परिणति कुछ भी नहीं। अगर उसकी कोई परिणति है तो वह केवल परिणति है। उसका आगे अनैतिक या नैतिक विशयणों का प्रयोग अनावश्यक ही नहीं, गलत है। एक घनी प्रौढ़ स्त्री और एक नवयुवक के प्रेम की कहानी केवल एक प्रेम कहानी है या एक विकृत और अनैतिक सम्बन्ध की कहानी, यह इस बात पर निर्भर करता है कि लेखक ने उसका निर्वाह किस रूप में किया है। लेकिन यदि लेखक ने अपनी कहानी का निर्वाह एक प्रेम-कहानी के रूप में किया है, तब भी व्याख्याकार उसकी व्याख्या एक 'शापक स्त्री' और एक 'मेल प्रोस्टिट्यूट' की कहानी के रूप में कर सकते हैं। अतः यह भी उतना सापेक्षिक नहीं—हम इस कहानी की भ्रामक व्याख्या या कह कर टाल सकते हैं—जितना यह आरोप कि ये अनैतिक सम्बन्ध का विकृत कहानियाँ हैं या विकृत सम्बन्ध की अनैतिक कहानियाँ हैं। अनैतिक और विकृति का मुकदमा चला कर जिन समाचारण कलाकृतियों पर प्रतिबंध लगाया गया और जो बाद में एक समूच पाठक वर्ग की मजदूरी में विकास और परिष्कार के फलस्वरूप रूपांतरित हुईं, वे सब से मानवीय अनुभव की कहानियाँ थीं। मनुष्य का सबसे मानवीय अनुभव—प्रेम—मनुष्य में निवसित होता है। किसी प्रेम कहानी का असली ठहराव समय आलाचक्र का पहलू यह फसला कर सना चाहिए पर वह यह फैसला नहीं कर पाता कि कहा ऐसा तो नहीं है कि उसे अस्वाभाविकता से उतनी बिड़बुड़ी, जितना कपड़ों से माह है। आलाचक्र का स्थान शोकान स्त्री का 'बार ड्राव' नहीं होना चाहिए।

प्रेम एक अनिणय की स्थिति है। अनिर्णीत स्त्री पुरुष के सकल्प विकास, राग प्रतिराग की एक दीर्घ मन स्थिति का अनुभव के धरातल पर ठहरी हुई है। लेकिन वह दरमसल ठहरी हुई भी है या नहीं, इसका निणय कर सकना भी कठिन है। वह ठहरी हुई घामद है, लेकिन अपने आप नहीं तीसरे गवाह की प्रतिष्ठा में। प्रतिष्ठा के अतिम क्षण में यह 'तीसरा गवाह' उपस्थित नहीं होता और 'गवाह' के पुनः हान के क्षण के झुटपुट में सब कुछ खो जाता है। जो खो जाता है वह भी सकल्प है और जो उपस्थित नहीं हुआ वह भी सकल्प था। स्वयं सकल्प ही अपना गवाह था, जो दा के बीच में 'तीसरे' का तरङ्ग बैठ गया था और जब उसकी तलाश हुई, तो वह उठकर कही और चला गया। हाजिर ही नहीं हुआ।

लेकिन इस गैर हाजिरी को हम कहानी के माध्यम से समझते हैं। हमारे अपने जीवन में वह कौनसी बीज थी जो उठकर चली गयी या क्या वह सबकुछ ही थी, हम माझूम नहीं कर पाते। प्रेम-कहानी इसकी व्याख्या नहीं करती, बल्कि व्याख्या के लिए एक अनुभव के लिए एक कहानी छोड़ जाती है, जैसा कि 'तीसरा गवाह' कहानी करती है।

यह अनिर्णय ही नया मन स्थिति है, बल्कि धीरे-धीरे वह प्राप्तिमानता का पर्याय क रूप में बनता जा रहा है। इसका कारण 'गान्ध' यह है कि स्वयं बनार होने में ही एक संकट है। यह संकट पक्ष भी रहा होगा। मगर पहल घायल वह धीरे-धीरे किमी नाम से पुकारा जाता होगा। शायद मृत्यु का नाम से। मगर जब उस हम 'यु' का नाम से नहीं, प्रेम का नाम से बुद्ध का नाम से, महत्वाकांक्षी और घणा के तम से पुकारे हैं।

न जान रिजने हजार वर्षों की पामिक धीरे-धीरे नितक गतिता से उत्पन्नित मनुष्य न करने का स माध का मारा जुमा उतार फेंका है। एक ह" एक वह धनेतिहासिक भी हो गया है। मैं यह नहीं मानता कि इस प्राप्तिमानता का मपला नाम 'प्राप्तिमान' है। करने में बड़ी किमी शक्ति में इस प्राप्तिमानता की परिणति प्राप्तिमान नहीं है बल्कि एक नयी प्राप्ति की शोध है—मपन माध में प्राप्ति। मपन मपन मपन में मा रा एक नयी शक्ति है धीरे-धीरे इस का लिए कई गतिमानियाँ तय करनी होंगी। धीरे-धीरे जब तक यह नयी प्राप्ति प्राप्त नहीं हो जाती तब तक मपनी मपनी मपनी निरापार से मपन कर मुझ, प्रनिहिता, घणा धीरे-धीरे उत्पन्नित न नय-नय पथाल हमारे सामने घ घर उभरते रहने।

इतिहास का यह मपनपूज स्थिति है। जो मनुष्य मानने खाहा है या निर रहा है या मुक्त रहा है या रो रहा है या रग जा रहा है, उसे न मपन से बड़ी किमी गति पर दिखाना है न स्वयं में प्राप्ति का स्थान में वह बिल्कुल निरापार है। उनकी पूजा भी निरापार है धीरे-धीरे प्रेम भी।

प्रेम करने हुए प्रेम का मनुष्य में समुद्र हात हुआ भी उसे पता ही नहीं चलता कि वह किसे प्रेम कर रहा है? पास बैठे हुए स्त्री का या जो वही नहीं है बल्कि है हा नहीं, उस स्त्री का, या मपन मपन का। एक स्त्री का या किमी न प्रेम कर रहा है। एक कमरे में है दूसरा गता में। जो कमरे में है, उसमें यह गती शोध की प्रति प्रति रगता है धीरे-धीरे जा मपन में है उसमें कमरे काय की। वह एक में दूसरे की काना में बड़ी है धीरे-धीरे मपन का मपन। वह मपन नहीं पता कि वह दोना में प्यार करता है या दोनों उसे प्यार करते हैं। गान्ध दाता उसे प्यार करने हैं, मगर यह बेमन मपन-गता है। धीरे-धीरे स्वयं से मपनकर कि वह गता में म किमी का प्यार नहीं करता, यह गता का प्यार करने का शक्ति करने दे। मगर न कमरे में मपनी बड़ी है न गती में। इसलिए वह कुछ भी नहीं कर पाता।

मही मपने बड़ी दृष्टि है—मपन। वह न फेंक पता जा बड़ा का न मपन। मारे मपन्य इतिहास मपन मपन का कहानियाँ हैं। यह नहीं कि हा मपन्य म



ईमानगरी नहीं। जब तक यह सम्भव रहा, तब तक पूरा ईमानगरी व साम एक-एक क्षण के स्वयं और नरक की रचना की। मगर एक दिन यह सम्भव एक ठूँठ में बदल गया और फिर कुछ भी अनुभव करने से व वंचित हो गये।

ये वंचित और ठूँठ स्वा-गुण्य हैं, जो बार-बार अपने अनुभव की रचना का सफल और नाकाम कोशिश कर रहे हैं।

प्रेम की मनोदशाएँ ही प्रेम का एनाटमी हैं। यह प्रतीति व्यंग्य है कि दूरे बड़े कयाकार बड़ी-बड़ी चीजें पहचान घेने हैं, मगर छोटी-छोटी चीजों और उन मूल्य धडकना को नहीं मुन पान जिनके नजर घटाव हा जान से हम यन् नहा समझ पाय कि इस अनुभव को बुनियात कहा था। जैसे एक महावृक्ष में तमाम गालाएँ हा, मगर वे पत्तियाँ न हों, वैसे ही प्रेम की भारी भरकम कहानियाँ में भारी पराक्रम है, मगर वे पत्तियाँ नहा हैं जिनमें धन जनकर हवा माना या जिनके होने से पड़ हरा और जीवित बिवाई पडता।

प्रेम-कहानियाँ की जड़ ये पत्तियाँ ही हैं, और कहा उनकी जड़ नहा। एक एक पत्ती एक जड़ है, मगर किम पत्ती के हिलने से या नरने से समूच पड़ में परिवर्तन हा गया इसे एक कयाकार ही समझ सकता है।

कहानी-कला का दृष्टि से महत्वपूर्ण एक छाटी-भरी कहानी 'मानव' (प्रबोध कुमार 'इति' अगस्त १९६१) की कहानी यह है कि एक लडकी एक परिचित डाक्टर की दुकान पर दवा जन आई हुई है। डाक्टर उससे घर नू बात चीत कर रहा ह और यहाँ-वहाँ के सवा न कर रहा है और वह प्रदब के साथ मुन रही है। मगर पीछी हा दर में डाक्टर उससे प्रेम निवृत्त करन लगता है और अपने आप यह प्रव दूट जाता लडकी का समूचा व्यवहार मोसम का तरह प्रचानक बदल जाता है। अभी जो लकी सहमी हुद-नी बात कर रही थी, सजग हा जाती है डाक्टर में अपना एक अधिकार प्राप्त कर छती है और अपना अधिकार जतात हुए कहती है—प्रव वह नहीं आ मके ती वह खुद आए। एक हा क्षण के इस अनुभव में पडकर लडकी एक और नी लडकी में बदल गयी। डाक्टर प्रार्थी नू गया और लडकी डाक्टर से बही हो गई। यह प्रचानक वयस्क हा जाना, सजग ह जाना, दूसरे से ही नहीं, अपने से भी उडा हा जाना ही प्रेम या।

प्रबोध कुमार न व्यवहार में परिवर्तन के जगिय सम्बन्धों के परिवर्तन की कहानी लिखत हुए जो काम लिया है एक दूसरे घरातल पर प्रवर्तत लगातार बदलती हुई मन स्थितियों के विचित्र के घरातल पर अपना कहानियाँ में बही काम निमल वमा न किया है। निर्मल उर्मा की कहानियाँ प्रेम की प्रक्रिया की कहानियाँ हैं और

वस्तुन प्रापुनिक कहानिया को प्रेम-कहाना कहना ठीक नहीं। उन्हें प्रेम की प्रक्रिया का कहानी कहना चाहिए।

निर्मल वर्मा ने कर्म से अधिक महत्व मन स्थिति को दिया, यह स्वयं एक महत्वपूर्ण सवाल है। मन स्थिति का यह उत्तर-वर्णन यह संगीत, यह चित्र राल्फ म कबल कहानी में एक नयी बुनावट पैदा करने की कोशिश है या यह इस लिए है कि कर्म है ही नहीं, साध-का-सारा प्रेम कबल एक प्राकृतिक तथ्य की तरह है, जो कहीं पर मरुस्थल में गायब हो जान वाला नहीं का तरह गायब हो जाता है और कहीं पर फिर मचानक उभरकर बहने लगता है।

मगर परिदे' में मग्रहांत प्रेम-कहानिया की सूची यह है कि उनकी बुनावट में मपीन है उनमें बिम्ब हैं चित्र हैं ता य बहुत साधारण कहानियाँ हैं, अधिक-से अधिक उन्हें कारीमरी कहा जा सकता है, और यह किसी भी समय का और कोई भी कलाकार कर सकता था। लेकिन इन कहानिया की सूची यह नहीं, बल्कि यह है कि यह पढ़ने हुए 'हात हांती है और पहली बार यह अनुभव होता है कि प्रेम एक 'हृदय से भरा हुआ अनुभव है। मारे पात्र निष्क्रिय हैं और उन सबका एक निष्क्रिय समार है। यह समार हालाँकि निष्क्रिय नहीं कि करने को कुछ भी नहीं है, बल्कि इसलिए निष्क्रिय है कि हर कुछ करने की प्रक्रिया परिणति निरर्थकता है। इन कहा निया में तमाम स्त्री-पुरुष इस निरर्थकता में अनुभव और पूर्वानुभव में जा रहे हैं। सबकुछ हाँ इन स्त्री-पुरुषों का देवदर डर लगता है। लेकिन ये स्त्री-पुरुष, ये सभी पात्र मनुष्य की कल्पना नहीं हैं, बिनावा ध्यास्या नहीं हैं, बल्कि प्रापुनिक ससार में मनुष्य से साधारण हैं।

यह निष्क्रियता, यह निरर्थकता, यह उत्तुल्लस मनुष्य का कहाँ से जाँगा या उसकी प्रक्रिया सामाजिक और राजनीतिक परिणतियाँ क्या होंगी, यह एक अलग बहस का विषय है। व्यक्तिगत रूप से मैं यह नहीं मानता कि यह निरर्थकता मनुष्यता का अंतिम मर्म है। मैं यह भी नहीं मानता कि निरर्थकता का यह अनुभव मनुष्य को इतिहास में पहली बार हो रहा है, लेकिन यह जरूर है कि यह अनुभव मनुष्य को अब और अधिक तांग डग से हो रहा है। जब भी कोई मर्यादा टूटती है या वह पर्म हो या कुछ और, उन मर्यादा के मर्म मनुष्य का धारण प्रसिद्धि की निरर्थकता का अनुभव हाँ है। चित्रांगन पात्र संस्था टूटने लगे हैं। मगर यदि कोई नया मर्यादा पड़ती है तो पद यह स्थापित करना होता है जब तक जो मर्यादा या व नहीं रहा। यदि नया मर्यादा अभी उपलब्ध है जब तक यह पूरी तरह अनुभव कर रहा है कि अब या नया मानक-स्थिति मानक है, उनका प्राकृतिक मर्म तक के मारे

दर्शन फीके बल्कि झूठे पड़ रहे हैं। लेकिन जब तक हम अपने लिए, मनुष्य के लिए कोई नया दर्शन, कोई नया अर्थ नहीं ढूँढ़ पाते, तब तक यह बमतलब जिन्दगी ही जिन्दगी है।

मनुष्यता के लिए एक नये दर्शन की खोज को ही मनुष्य नहीं करता, बल्कि सारी मनुष्यता करती है। मनुष्य के अंदर एक सकट की गुरुघात स्वयं एक ताज की गुरुघात है। हर नया दर्शन मनुष्य के आत्मसंघर्ष की परिणति है। चूंकि साहित्य भी मनुष्य के आत्मसंघर्ष की आत्माभिव्यक्ति है, इसलिए उसकी भी परिणति दर्शन है। लेकिन वह अभिव्यक्ति दर्शन की नहीं इस आत्मसंघर्ष का, इस सकट की ही है। हम यह कह सकते हैं कि अगर साहित्य नहीं होता अर्थात् मनुष्य का आत्म संघर्ष नहीं होता तो दर्शन नहीं होता। इसीलिए दर्शन साहित्य से छाटा सा है।

साहित्य में यह भाव कि वह झूठी पड़ रही विचारधाराएँ, संस्थाएँ और सम्प्रदायों की साल रखने के लिए उन नयी मानव-स्थितियों को झुठलाएँ, जिनके कारण ये संस्थाएँ और विचारधाराएँ झूठी पड़ रही हैं, न केवल साहित्य-विरोधी है बल्कि स्वयं मनुष्य-विरोधी है।

प्राज के मनुष्य का प्रेम सबसे नयी मानव-स्थिति है और प्राज के प्रेम का कहानियाँ सबसे नयी मानव-स्थितियों का कहानियाँ हैं।

प्रेम एक अनुभव है, लेकिन उसके अंदर न जान कितना अनुभव हैं। घणा, रति, आत्मरति प्रतिहिंसा, दाह दुःख, आनंद। कोई अनुभव नहीं जो प्रेम के अनुभव में नहीं। इसीलिए प्रेम के अनुभव से गुजरने के बाद सारा घस्पष्ट ससार स्पष्ट हो जाता है।

सकिए ऐसा नहीं है कि प्रेम के भीतरी अनुभव बिल्कुल नये अनुभव हैं। ये प्रादिम अनुभव हैं और हमेशा रहेंगे। मोडिया, इक्षेत्रा और हंकाव के चरित्र, मत्तिलव और प्रेम में जो पाप शाप और प्रतिहिंसा थी, वह प्राज की हर स्त्री के व्यक्तित्व में है। केवल इनकी परिणतियाँ बदल गयी हैं। प्रतिहिंसा की परिणति अब अनिवायस हुआ नहीं, घणा की परिणति अब जरूरी नहीं कि युद्ध ही हो। सभ्यता न मानवीय प्रवृत्तियों की सामाजिक परिणतियाँ बदल दी है और हर रोज बदल रही हैं कानून तोर पर बदल रही हैं। मगर कानून परिणतियों का बदल सकता है भीतर की दुनिया को नहीं। चूंकि भीतर की दुनिया नहीं बदली जा सकती और बाहर की दुनिया बदल रही है, इसलिए बाहर और भीतर की दुनिया में एक असंगति है। इस असंगति की पैदायश है 'न्यूरोसिस'। स्त्री और पुंश के संबंध में आज अधिक असंगति है, इसलिए स्वयं प्रेम में एक न्यूरोसिस है। स्त्री का मन अधिक नाजुक है, यथार्थ

से साजि बैठा सकन म धरि प्रनमय है अउ स्त्री न यउ न्यूरामिन धरि न ।  
इहा कारण से प्राधुनिक प्रेम-कहानिया म अधिकाधिक न्यूरामिन है ।

और इसलिए इन प्रेम-कहानिया म स्त्रियाँ न्यूरोटिक जान पड़ती हैं । व जान ही नही पड़ती हैं । न्यूरामिन कइ बाबा का हो सकता है । मगर आज क मनुष्य व। सनन वही न्यूरामिन है प्रेम ।

प्रेम का दुनिया अनिश्चित है । मगर प्रेम अपने आप म एक झूठा अनुभव नही । जो बात सगुणता व विषय म कहा गयी वहा प्रेम क विषय म कहा जा सकती है कि प्रेम स्वयं और नरक का मिलन-स्पर्श है । 'मिलन' प्रेमिया का सबसे प्रिय गन्ध है । सगता है स्वयं और नरक म भी एक धरातल पर एक-दूसरे व प्रति नयानक, मनबाना और सर्कात आकर्षण है और व एक जाह पर आकर मिलन है । जिस जाह पर आकर मिलन है वहा जाह प्रेम है ।

सगु तला स्वयं प्रेम का एक समुदा अनुभव है, समुदा कविता है समुदा सगता है । प्रेम का परिभाषा अगर किना जा वतल एक धाम म की जा सकता है, तो वह गन्ध है सगुणता । प्रेम का मरणा और प्रेम का पुन, दाना ही वतल एक धाम म परिभाषित हो कर रह गया है । प्रेम का जिवन यह नियति दो यह है दुवाता का धाम । हर प्रेम म दुर्गमा का यह धाम है, लेकिन धार यह धाम न हाता ना प्रेम एक समुदा अनुभव हाता और समुदा अनुभव और कुछ ना हा प्रेम नही हो सकता ।

मकिन यह भा एग गार हो है कि प्रेम समुदा नहा, लेकिन हमारा ( हिं ) का ) अधिकांश प्रेम कहानियाँ बूझ हूँ तक झूठा हैं । व झूठा है क्योंकि व मैत्रन रिहान है । सब भी ऐसा लाता है कि सैन्यो हम प्र मानुस क रूप म स्थावर नहा कर पाय । इसलिए हमारे महा सैन्य को कहानियाँ और प्रेम का कहानियाँ मतलब है । जो सैन्य का कर्तुनियाँ जिवन है उनका रति हो नही, प्रतिभा ना अधि-मे पछि एग बाबा क मरक का है । और व बाबा क हान क लि हो पया हूँ य । जो फिर सैन्य का मनसा दूरक कहानियाँ हैं, जेना कि मर्यादा न लिखी है । मगर जन भी सैन्य नहा है, सैन्य का समस्या है । या जनरल कुमार का कहानियाँ हैं । जिनम न जो मुलासन है न निरेम, बकि सैन्य क प्रति एक धर्मस्य दृष्टि का है, एक नईका माता दिया है । नगर समुदा हिंसा साहित्य पर सैन्य का दृष्टि से दृष्टि बाना एक निपगान समुदा हो है ।

कहानी म सैन्य का धर्म अनिश्चान नहा कि मर्यादा हा हा । महाम क बाय हूँ कहानी सैन्यरिहान हो सकती है ।

जैसे एक स्त्री की उपस्थिति में मधुचे बानावरण में एक उष्णता और सुगंध गूँहाट प्रा जाती है, वैसे ही कहानियों की बुनावट में सेक्स की उपस्थिति से एक उष्णता प्रा जाती है। यह उष्णता हमारी कहानियाँ में नहीं है।

प्रेम कहानियाँ के विषय में ये सारी बातें मैंने नगरवासी स्त्री पुरुष के सम्बन्ध में तनाव और उत्पत्ति को लेकर ही कहाँ हैं, क्योंकि हिन्दी की अधिकतर प्रेम कहानियाँ नगरवासी स्त्री पुरुषों की ही प्रेम कहानियाँ हैं। लेकिन इसका यह अर्थ नहीं कि प्रेम किसी एक घण्टा तक सीमित है, या यह कि केवल नगरवासी ही प्रेम करने में समर्थ हैं।

हिन्दी का दुर्भाग्य ही यही है कि उसके सभी बलक मध्यमगोत्र हैं और नगरवासी हैं। इसीलिए हिन्दी की कहानियों में इनको एकरसता है। जिन बलकों में हिन्दी कहानियों का इस एकरसता को तोड़ने का दावा करते हुए ग्राम्य कथाओं की सृष्टि की वे भी असल में मध्यमगोत्र ही थे और उनकी प्रेम कहानियाँ तो और भी फामूला प्रसन्न हैं, बिल्कुल फिल्मी हैं।

कण्ठीद्वारा 'रेणु' की कहानियाँ जरूर अपवाद हैं और हिन्दी का तोसरा या चौथा सबसे बड़ा उपवास ही नहीं, हिन्दी की सबसे बड़ा प्रेम कहानियाँ भी, यह प्रजोक्त बात है, 'रेणु' ने ही लिखी हैं। कथानिकन ऊँचाई तक पहुँचने वाली महान् प्रेम कथा, 'रमप्रिया' जैसे समूची भारतीय लोक कथा, लोक-कविता, लोक-मगीत का निचाड़ है, बल्कि यह कहना अधिक उचित होगा कि इस एक कहानी में प्रेमानुभव का व्यक्त करने के लिए लोक कथाएँ संगठित और जीवित हो उठी हैं।

हिन्दी में अगर महान् प्रेम कथाएँ नहीं हैं, तो इसका कारण यह नहीं कि हमारा प्रेम छोटा या मोटा है बल्कि यह कि हमारे पास महान् बलक नहीं है। प्रेमानुभव प्राप्ति को उदार और बड़ा बनाता है। अगर यह प्रेम भी, यह विडम्बना ही है, साधारण बलक को महान् बलक नहीं बना सकता। अगर इसके लिए प्रेम का दाप देना फिजूल है। और अगर हम सचमुच प्रेम करते हैं तो किसी को दाप देना ही फिजूल है।

आलोचना के मानदण्डों या मूल्या की अराजकता के उदाहरण हिंदी में राज ही दिखाई पड़ते हैं। 'रत्नना' का 'उपशो-सवाद (या परिमवाद) हा या 'प्रभिनव का-य' मना की स्थापना का प्रयास हो एक बात माफ है कि आलोचना का दृष्टि घुमलो पड़ती जा रहा है। विद्यापीठमय समीक्षक यदि मवदना के स्तर पर लड़खान और उमीन मू धन निवृत हैं ना सृजनशील साहित्यकार पूर्वग्रहा या अपन निज के प्रीकृत्य को सिद्ध करने में प्रवृत्त पय को छाड़न हैं। परन्तु इसमें भी प्रगित स्वजनक स्थिति तब निवाई रही है जब कि केवल चोंकान या लवरा में बन रहने के लिए कुछ फनक दिए जाते हैं और स्थापनाएँ का जानी हैं। इस काम का नया उदाहरण नई कविता बनाम नई कहानी' की समस्या है। कुछ महान पहले 'नई कहानियाँ' में रचना दृष्टि के साथ आलोचना-दृष्टि के न विकसित होान पर स्व प्रवृत्त करत हुए माहून रावण न बताया या कि 'नई कहानी', 'नई कविता' से प्राय का आन्दोलन है। नई कविता' की विवृतिवा का परिवार करके यह 'नई कहानी' अस्तित्व में आई है। माहून रावण के इस मुर के साथ उत्काल तान दा कमसुन्दर न और उन्होंने भी कृता कि हा 'नई कविता' तो कु ठावादा है पर नई कानों' में एक नई सामाजिकता है। हिन्दी के गजधर्मा पाठक आलोचक-कृतक मना हुए रह। चायद इसलिए कि ऐसा स्थापनाएँ हिन्दी में बहुत-सी हाता रहती हैं कोन वि ता में पड़। पर इनर मारिका' में माहून रावण पुन नई निगाहा के जो नए मवाल (या जवाब) छकर आए हैं उनमें इसी बात को दाहपया गया है।

मारिका फरवरी ६४ का एक ले। 'माध्यम की साज' का आधार बना कर उन्होंने अपनी स्थापना प्रकट करना चाहा है। इनके पहले माय स्थापना उन्होंने का थी तक नहा लिए थे। इसलिए ना उन समय कुछ कहना समुचित नहा या। आशा, इन तर्कों की त्वशीलता भी ननिक जाव ला जाए। उपश जो गुल् करने हैं, तान चार महान पहले मैंने एक जगह लिखा या कि ऐतिहासिक दृष्टि से 'नई कहानी' का आन्दोलन 'नई कविता' का सहकर्ता न होकर उनसे प्रागे का आन्दोलन है। ता इस स्थापना के विरोध में कुछ लोग न टिप्पणियाँ लिखा (स्वयं इन पत्तियाँ के फलक के रखने में एकाग्र प्रासगित रिमाऊ ही थाए है।) ऐसे लोगों के बारे में उनका कहना है चायद ऐतिहासिक की ओर चायद उनका ध्यान हो नहा गया। गया होता ता इस कपन में उन्हें प्रवास्तविज्ञता नजर न आता। इस ऐतिहासिक वास्तविकता के बारे में

उनके तक या है —

(१) 'नई कहानी' के आंदोलन की 'गुरुमातृ सन् पंचाम वे' लगभग हुई 'नई कहानी' यह नाम तो उसे सन् पंचपन-छप्पन के बाद से दिया जान लगा। राक्षस जी क्या कृपा कर बनाएंगे कि नई कविता का आंदोलन भी पचास-इक्कीवन के पाम से ही शुरू हुआ था या नहीं? हिन्दी के बहुत से श्रेष्ठ पाठक जानते हैं और स्तम्भ पत्रकों को भी याद होगा कि इसके पूर्व प्रयोगवादी की चर्चा होती रही है नई कविता की नहीं। और 'प्रयोगवाद' यदि कविता के क्षेत्र में १९४३ से चर्चा का विषय बना था तो उसी की सहवर्ती 'अनेय' की 'पठार का धीरज' 'अन्यास' जैसी कहानियाँ भी हैं। और बहुत यदि आप 'नई कविता' को प्रयोगवाद से प्रारम्भ करना चाहते हैं (जैसा कि स्वयं मैं भी चाहता हूँ) तो नई कहानी को भी वही से चलना पड़ेगा। शैली गिल्फ ही नहीं, यथार्थ की पकड़ भी वही दूसरी हो गई है। जहाँ तक नामकरण का प्रश्न है 'नई कविता' नाम भी शायद १९५३ में 'नए पत्ते' ॥ प्रकाशित रडिया परिसराद में अज्ञेय द्वारा दिया गया था। पर सारी, नई कहानी का नामकरण सरकार, बकौल राक्षसजी के १९५५ के आस पास हुआ था और इस तरह यह दो साल छाटी बहिन हो गई। पर किया क्या आज साहित्यिक विचार रूप में कहानी छाटी है ही और अपेक्षाकृत कम महत्वपूर्ण भी। पर जब छोटी बहिन कहा जाता है तब भी 'तना' तो प्रकट हुआ है कि वह भी उसी भाव बोध से उपजी है जिससे नई कविता। और अगर आपकी ही मायता के अनुसार नई कविता का आन्दोलन तब तक एक निश्चित रूप और मर्य प्रहण कर चुका था। तो इससे यह कैसे प्रकट हो जाता है कि उन माध्यम की सम्भावनाएँ समाप्त हो गई थी। सबकुछ केवल हिन्दी में ही माध्यमों के चार में ऐसे विचित्र तक दिए जा सकते हैं।

पर रुकिए। तक का जाल आगे भी मिला। राक्षस भी तरकाल पलट कर कहते हैं, 'जिस क्राइसिस के अंतर्गत नई पाद्री की चेतना 'नई कहानी' के प्रयोगों की ओर उन्मुख हुई, उसका प्रभाव तथा प्रतिक्रियाएँ नई कविता पर अलग से नजर आने लगी थी, शमशेर तथा मुक्तिबोध जैसे कवियों ने उन प्रभावों के अंतर्गत नई कविता' को भी एक नई दिशा दे दी थी।' पत्रकों के इस वक्तव्य में जो 'चतुर्दश' निहित है वह तो बड़ी जल्दी साफ हो जाती है कि कहानी और कविता दोनों की समानताओं को स्वीकार करना आवश्यक हो गया था। पर इस 'चतुर' वक्तव्य में भी एक निहायत अनक्रिटिकल तथ्य है और वह यह कि शमशेर या मुक्तिबोध जस कवियों ने कौन सी नई दिशा ४४-५५ के आस पास नई कविता का दे दी थी तथा 'नई कविता' पर इस नई मंचतना के प्रभाव और प्रतिक्रियाएँ क्या हैं? इसके अतिरिक्त जिस 'क्राइसिस' शब्द का निरंतर मुखर जप खेलक न किया है उसके सम्बंध में कुछ

कहने की आवश्यकता है। जनवणी वाला 'सारिका मे आइसिस को उ हाने विभाजन से जाड़ा या मोर बताया या कि नई पीढ़ी पर इसका गहरा प्रभाव है—उन पर भी जिन्होंने कि इसे भोगा नहीं था। इस सम्बन्ध में भी कुछ प्रश्न और कुछ सवाल उठने हैं। पहला सवाल तो यही कि विभाजन की आइसिस क अतगत मनीष ने भी कुछ कहा-निया ( 'गरगायो मयह ) लिखी थी—क्या इह वे नई कहानी के अन्तगत रहना चाहते ? दूसरी बात यह कि लेखक ने जरूर उन बातों को इमारतों की ढलते हुए देखा होगा—भागा होगा और हर बार नई चेष्टा को बात करने ही उनकी धारें वही पहुँच जाती हो—पर क्या यह सही नहीं है कि नई कहानियों के अन्तगत १९२५ में जन्मे राकेश की पीढ़ी के लेखक ही नहीं १९३५ के बाद उत्पन्न लेखक भी हैं और ये लोग विभाजन की इस आइसिस से क्या कर अनुप्रेरित हुए हैं ? एक तीसरा सवाल और है कि क्या देश की परिस्थिति या नियति या सचेतना मात्र विभाजन में बन्नी है ? अगर विभाजन न होता तो क्या बजर जमीनें हरी न हासी क्या सड़ियों से भानित लाल पान और रहन सहन के तरीके न बदलते ? विभाजन—अस्त तावों को मैं चोट नहीं पहुँचाया चाहता, पर इतना निवेदन अवश्य है कि विभाजन से हमारे सामाजिक संगठन में कोई मौलिक परिवर्तन नहीं हुआ है तथा जो नई 'सचेतना' आई है वह विभाजन के बिना भी आकर रहती। विभाजन की आइसिस को लेकर जिस रुमानी ढंग से वे भावुक हो उठे हैं उसकी आवश्यकता अब नहीं है। इस सदर्भ में साहित्य से बेवत एक उदाहरण देना चाहूँगा—रेणु क क्या—साहित्य का। 'रेणु' को आप नई कहानी के अपने वृत्त के अंतगत रखें हैं या नहीं ? तथा रेणु के लेखन का आपकी इस 'आइसिस' से क्या सम्बन्ध है ? शमशेर एवं मुक्तिबाध का सम्बन्ध भी इस 'आइसिस' से निरूपित करने का कष्ट करें तो हम पाठकों का अधिक भला हो।

अपने बतलाने की इन क्षमशक्तियों पर ध्यान न रखते हुए व नवी कहानियों की अग्रगमिता का एक बड़ा ही मजेदार उदाहरण देन है कि 'इस पीढ़ी की सामूहिक चेतना अपने लिए अनियंती का जो विस्तार चाहती थी उसका लिए कहानियों का माध्यम अधिक अनुकूल पड़ना या इसीलिए क्षुब्ध-सतावन व बाद से बहुत से प्रतिष्ठित और उनीयमान नए कवि भी पीढ़ी की इस माध्यम की ओर आकृष्ट हो गए, क्योंकि दृष्टि और चित्त का जो अनुशासन नई कविता के लिए एक अडिग बन चुका था, उस तादकर नई भूमि से प्रयोग करने के लिए यह माध्यम उन्हें अधिक उपयुक्त जान पड़ा' तर्क वही है जिसे आठम तार्किक परिणति तक पहुँचाया जा सका। सा ५६ ५७ के बाद एक नये कहानीकार ने 'आपाद का एक दिन' तथा 'लहरा का रात्रि' नाटक लिखे—लगत है कि कहानी का माध्यम उनका 'आइसिस' वाला सचेतना के लिए अर्पण हो गया था और ये नाटक नए नाटक हैं और 'नई कहानी' से माने के बाद -



लन हैं (इसलिए भी कि १९६८ तक इनका 'नया नाटक' नामकरण नहीं हो सका—  
गाद्य ही यह संस्कार भी आयोजित करना पड़ेगा।

इस सांस्कृतिक परिणति की बात का छोड़ दिया जाए तो भी यह दिखाना कठिन  
नहीं है कि रघुवीर सहाय या श्रीकान्त वर्मा की कविताओं और कहानियों का संवद  
नात्मक चरानल एक ही है। अंतर न विवादा की आवश्यकताओं का है। काव्य की  
अभिव्यक्ति विगुह्य संवेदना के अधिक निकट रहती है इसी कारण सतही दृष्टि से पढ़ने  
वाले उसे व व्यक्तिक अहंवादी सामाजिक आदि मानने लगते हैं परन्तु कहानी में  
जिन उपकरणों को लिया जाता है अत्यंत सामाजिकता का अधिक ग्रन्थ देते हैं।  
कविता की एक विशिष्ट इकाई है चित्र और कहानियों का पात्र। वस्तुतः साहित्य-रूपों के  
पारस्परिक संपर्क और अन्तर्सम्बन्ध का धरकर बहुत कुछ चर्चा की जा सकती है। संदेह  
से ये रूप एक दूसरे से भिन्न या दूर भाए हैं और नवप्रखन में भी कहानी कविता में एक  
दूसरे का किस प्रकार समृद्ध बनाया है इसकी चर्चा अलग से की जा सकती है और  
अच्छा होता यदि माहुर रावश या कमलेश्वर इस पक्ष पर ध्यान दे सके होत-पर इतना  
निश्चित है कि तब एक जीवने वाली जनलिस्टिक बात न कही जा सकती और एक  
पुष्ट समीक्षा विवरण की आवश्यकता पड़ती। ऐतिहासिक दृष्टि से भी हिन्दी में मैथिली  
शरण गुप्त की कविताएँ और प्रेमचंद का प्रारम्भिक कहानियाँ, निराला और नवीन  
की कविताएँ एवं प्रेमचंद की परिवर्ती कहानियाँ, प्रसाद का कविताएँ एवं उन्हीं की  
कहानियाँ महादेवी और अच्युत की कविताएँ और जेनद का कहानियाँ, प्रगतिशील  
कविताएँ एवं कहानियाँ सहवर्तित्व का भूमिका में देखी जा सकती हैं। ऐतिहासिक  
दृष्टि से इन माध्यमों का किम प्रकार संपर्क करना पड़ा है—अपने ही प्राचरूपों एवं  
आरोपित मर्यादाओं से इसकी भी पड़ताल की जा सकती है।

इस सम्बन्ध में अधिक चर्चा यहाँ नहीं। नई निगाहों वाले सवानकार का  
अनुमान है कि नई कविता से लोग इसलिए नई कहानी में धसे हैं कि नई कविता का  
विकास जहाँ एक सामूहिक शिल्प-शैली को लेकर हुआ नई कहानी में आरम्भ से ही  
हर शब्दक न वस्तु की अपेक्षाओं के अनुसार अपना अलग शिल्प शैली का विकास  
किया। 'शायद ऐसे ही तर्कों को लाजवाब कहा जाता है। हर आदमी के सवाल जवाब  
देने लायक होने भी अब हैं ? फिर भी वदम में एक प्रश्न है कि क्या रावश जो यह  
बताने की चेष्टा करेंगे कि कुँवर नारायण, रघुवीर सहाय केन्द्रनाथ सिंह श्रीकान्त  
वर्मा, भदन वात्स्यायन अजितकुमार आदि की रचनाओं में कौन सी सामूहिक शिल्प  
शैली है। लगता है कि गीतकारों की रचनाओं को वे नई कविता समझते हैं। ये  
वास्तविक रचना के भीतर सामूहिक शिल्प शैली की बात करना अपनी ही नासमझी  
का परिचय देना है। सचमुच ही किसी भी दृष्टि और साहित्य में नई पीढ़ी के बुनियादी

मर्घ को ओड़ी दृष्टि में देखने वाला का कमी नहीं रहनी। हमारे यहाँ यह आशयन कुछ अधिक मात्रा में है वस इतना ही फर्क है। इस आशयन के कारणों से व भी है जो एक साथ ही पूरी नई पीढ़ी के प्रयत्नों का नकार दत्त है और इनमें वे भी गए नीय है जो नई पीढ़ी के एक बहुत बड़े अंश को नई कविता का कुण्डलवस्था प्रादि कहकर बाट दना चाहत है। समझ में लोगों खानी है।

स्वयं मोहन रावग का कहना है कि, कहानी को जिस अर्थ में कविता से अलग किया जाता था उस अर्थ में नय प्रयोगकारों ने उसे अलग नहीं रहन दिया अपन का यात्मक सतर्ग की अभिव्यक्ति के लिए एक वृहत्तर क्षेत्र के रूप में भी इसे प्रयत्न किया है। इतना कहन के बाद भी कविता और कहानी के माध्यमों के अंतर को जिस तरह उन्होंने निरूपित करना चाहा है वह नितांत कृत्रिम एवं असिद्ध साहित्य शास्त्र पर आधारित है। उह यह बात है कि एक यापक माध्यम के रूप में कहानी की सम्भावनाओं को हिन्दी के कहानीकारों ने ही नहीं बल्कि विश्व का कई भाषाओं में इस माध्यम को एक नई प्रयोगात्मक दृष्टि में ग्रहण किया गया है। पर बताया है कि इस प्रयोगात्मक दृष्टि की गंगा उन्होंने नहीं स्वी नहीं तो वे जानत हात कि कहानी की अरम काव्य नियति कही कविता के प्राप्तपास हो है। नई पीढ़ी के एक प्रत्यक्ष अवलोकित कथाकार निमल वर्मा का यह मत यह इस सम्बन्ध में ध्यान देने योग्य है 'बीसवीं शताब्दी की सबसे महान कहानी डेय इन वनिस' बिल्क एक फल है या फावर की कोई भी 'कहानी' गद्य के उत्स्वर पर है एक काव्य-वण्ड चट्टान पर खींच गए भित्ति चित्रों की आदुई।' निमल ने रावग की अपनी माध्यम को बात की ही कहा अधिक चञ्चल एवं गतिपूर्ण भाषा में कहने हुए लिखा है अगर व कहा नियत हैं तो निफ आत्मघात अर्थ में एक फल हैं दूसरी कविता, तीसरी एण्टी कहानी उहाने स्वयं बड़ी निमलता से अपनी ही विधा को तोड़ा है, उनमें चौलदों में मुक्त होकर उन मूखी और कठोर और नामहीन चादा से छूने की वागिग की है, जो पकड़ से बाहर है।'।

इसीलिए जब नई कहानियाँ का यह सम्पादकीय (जनवरी १०) पढ़ने को मिलता है कि 'कवितानुमा कहानियाँ पश्चिम साहित्य की कुण्ड, प्रकलापन, परम्परा होनता, हार और मनास का हा लेकर चल रही हैं जो हमारी जातीय भवना का स्वर नहीं है। तो फलवे की इस सादगी पर दया मा सकती है-भग्न की उदयित नहीं। कविता मानवीय अवलोकनों की सबसे सकल एवं स्पष्टिक अभिव्यक्ति है और यह कहानी की सिद्धि हागी कि उनमें परिमटल पर उपरान्त का जा सक। जहाँ तक जातीय भवना का प्रश्न है हमारे मापने चाहे बिना अब तक इस दस मा जाति की अवलोकन का मुख्य माध्यम कविता हा रही है और हमें प्रवृत्ता है कि यथाय के नाम

पर को जान वाली नयकर विहृतियाँ एवं कलाहीनता से ऊपर उठकर कहानी की काव्यरम्य सबदनाद्या (या सबेदो ?) क निकट आ रही है। कमलेश्वर की भी कहा गया। और जब कमलेश्वर कहते हैं कि नई कविता की कुण्डा ध्वेतापन टूटना और पराजय नई कहानी की माननिकता का अंग नहीं है।' तो क्या यही नहीं लगता कि उनकी और नरेन्द्र गुप्ता या नन्ददुलारे वाजपेयी की माननिकता का धरातल एक ही है। ये लोग भी तो नई कविता पर यही ताहमत मढ़ते हैं। और यह भी कि नई कविता के बारे में तो वे कुछ जानते हैं। नहीं और नई कहानी के बारे में कुछ बोलें कहा जाए। उसके बहुवचन के तो वे सम्पादक ही हैं। पर यदि व्यक्तिमूलकता और सामाजिकता ही कर्मोदिया हैं तो क्या कमलेश्वर या मोहन रायग यह बताने की कोशिश करेंगे कि एक और जिन्गी (माहन रायग) कहानी किधर से सामाजिक है ? सम्पादक एक कहानी को अलग-अलग में नहीं कह रहा हूँ। स्वयं मैं इस कहानी को एक प्रकृति संसक्त कहानी मानता हूँ।

अन्त में इतना अवश्य कहना चाहेंगे कि यह यदि चौकान के लिए है तो तो अनुचित है ही पर यदि यह एक छोटे से वृत्त के प्रोब्लम के लिए है तो और भी बुरा है। अच्छा हो अगर कहानी की चर्चा कथा साहित्य के सदर्भ में ही की जाए। इसी जाह एक बात और भी कहना चाहेंगे कि हिन्दी में कहानी चर्चा अत्यधिक स्फूर्त धरातल पर हुई है—बल्कि कहूँ कि अधिक महत्वपूर्ण विषय उपन्यास की नींव पर हुई है। कहानी में अधिक चर्चा और विश्लेषण की संभावनाएँ नहीं हैं और इसीलिए इधर उधर भाग कर चर्चा का संभावनाओं के लिए स्थान खोजने की चर्चा होनी है। अच्छा हो कि कहानी-परिचय अब कहानी चर्चा की जगह 'कथा चर्चा' करें और तभी तमाम 'यय' की वह वक्तावत बन्द हो सके जो आज नई कहानी का अन्तर्गत रहा है। 'वासन्ती' के कहानी विशेषांक में भी इन पत्रिका के धलक न कहा था कि कहानी की, माध्यम के रूप में, संभावनाएँ सामित हैं। कहानी पर होने वाली तमाम बहस को पत्र सुनकर वह बात मुझे आज और भी ठीक लगता है। हमारे कथाकारों की अवधारण-समता जाती है काफी सीमित है और उपन्यास जैसे अत्यधिक एतिहासिक माध्यम को फेल करने की सामर्थ्य वे नहीं जुटा पा रहे हैं। या कहना तो यह भी चाहेंगे कि तथ्यात्मिक नई कहानी के क्षेत्र में भी साहित्यपूर्ण प्रयोगों का अभी अभाव है और 'प्रातिष्ठा' की बड़ी कीमती चान्द्र हो उनमें मिलती है। बहुधा सामाजिकता (जो प्रातिष्ठा की ज़रूरत हुई वेग-भूषा ही अधिक है।) के नाम पर फामूला कहानियाँ की कमजोरों को धिपान की चेष्टा भी इन कहानीकारों द्वारा की जाती है।

## साहित्य का प्रश्न

कहानी बचन कहन का चीज नहीं है, मान सुनने की भी नहीं—उसे समझना भी पड़ता है, वैसे समझना पड़ना है, जस कविता का शायद यह हिदा में हुई कहानी-चर्चा और कहानी-संरचना का ध्येष्ठतम उपलब्धि है। पर यह उपलब्धि साधारण नहीं है। इसका अर्थ है कि कथा साहित्य का एक कला रूप की गम्भीरता मिली है। अपनी प्रत्यक्ष जन प्रियता व वाचक-उपवास-कल्पना के प्रति एक सम्मानार् भाव-पश्चिमी देशों तक में बना हुआ है, इसीलिए जब उच्चतर कला रूप की तरफ हिन्दी में बचा का बात को जाती है तो यह उपलब्धि महत्वपूर्ण बन जाता है।

पर जहाँ एक ओर इन परिवर्तनों में उनका महत्त्व का स्थापित किया गया तो उसी सामान्यता से भी वेदा का, और अवनत समुचित परिदृश्य के चन्द्र में उसे व्युत्पत्ती किया। उदात्ततर यह भी हुआ कि सात आठ की एक सात विषय पर लिखी गयी कहानियाँ का ही मुख्य जीव-उपरम्परा के रूप में स्थापित करने की चप्टा का गया। इस सम्बन्ध में 'नयी कविता' और 'नयी कहानी' के आदान-प्रदान की प्रारम्भिकता का जाय ता कुछ भजेतर तथ्य निकलते हैं। 'नयी कविता' के कवियों समाधानों का इस बात का बराबर एकाग्र रहा है कि वे पूर्ववर्ती काव्य-रुढ़ियाँ को तोड़ रहे हैं—उनमें हट रहे हैं। इसीलिए जहाँ एक ओर नयी रचनाशालता का उन्मेष प्रकट होता है वही तमाम छायावादी काव्य निदानों पर आक्रमण करते हुए नया कविता के नये सिद्धान्तों का स्थापना भी जाना चलती है। इसका एक उपपरिणाम यह हुआ कि एक ही पीढ़ी के भीतर वे भी बढ़ता या घटता विचार-कविता में उस मात्रा में नहीं दियाया दते जसे कि 'नया कहानी' में दियाया दत है।

ऐसा क्या हुआ ? क्या इसलिये कि कहानी उस मात्रा में नया या प्राधुनिक नहीं हो सका, जितना कि कविता हो सकी ? कहानी बहुत-कुछ अपने रुढ़िगत ढाँचे की सीमाओं के भीतर ही हाथ-पैर मारने का चप्टा करता रही। इसलिये शुरू में नया कहानी और पुरानी कहानी के अन्तर का स्पष्ट करने की चप्टा भी उतनी नहीं हुई। शायद तमाम कहानी-वक्ता-प्रभावक कहानी के इन नये साहित्य-ग्राहकों से स्वयं परिचित नहीं थे। आज भी परिचित है यह नहीं कहा जा सकता। इसका प्रमाण अभी 'मालाचना' के ३१ वें अंक एक नई कहानियाँ के अन्तर्गत अंक के सम्पादन-कोष है। निवेदानमिह चौहान एवं कमलदेवर दाना हा एक-दूसरे के दृष्टिकोण को गालियाँ देते हैं पर दाना की ही नसोटी और मालाचना का गाना-गाना एक ही है—अन्तर कवत कुछ नामा का पड़ता है। सामाजिकता, जन-जावन, यथायथादि के जिन ढाँच-ढाँच

शब्द बाणा को धरकर चौहान आक्रमण करते हैं, वे ही कमलेश्वर के शरकस के भी तीर हैं ।

आधुनिकता बाध की इस कमी या कहानी व रुद्धि प्राप्त रूप बन्ध की प्रमुखता का एक प्रधान कारण शायद उसको जन-प्रियता [यानी मनोरजन-शक्ति] है । यानी कि पाठक की स्थापित प्रत्याशाओं का धक्का देने का माहस नये कहानीकार बहुत कम कर सका है । उपा प्रियवदा क कहाना-सकलन जिन्दगी और गुलाब व फूल की रीछू करते हुए कुवरनारायण ने एक बहुत ही पैनी बात कही थी—और मैं ममभ्रता हूँ कि वह बात अधिकांश तथ्याकथित नये कहानीकारों पर लागू होती है । कुँवरनारायण का मत था, 'जिन्गी और गुलाब क फूल की कहानिया कही भी एक नये तरह क पाठक की मांग नहीं करती । वे "सामा य अनुभवों का इस तरह नया स दम देता है कि पाठक को कही भी सस्कारगत धक्का नहीं लगता ।' कहना चाहूँगा कि तमाम नयी कहानी की यही शक्ति भी है पर यहाँ सबसे बड़ा सीमा भी, जब कि कविता के बारे में यह नहीं कहा जा सकता । जन-रचि, यावसायिक सफलता आदि का मोह छोड़ कर नये कवियों ने कही अधिक महत्वपूर्ण प्रयोग किये ।

यहाँ पर नयी कविता और नया कहानी के पारम्परिक सम्बन्ध परस्पर प्राथम्य, योगदान, या विपमता पर विस्तार से विचार नहीं किया जायगा । यहाँ पर केवल एक तथ्य की ओर ध्यान आकर्षित करना चाहता था कि पुरान और नये का अंतर कहानी के क्षेत्र में अधिक भजगता न अभी हाल में ही सामने आया है—सम्भवत कहानी अच्छी और नयी व परिःवाद के आसपास से ।

इसके पूर्व ग्राम-कथा, नगर कथा, कम्बा कथा, आचलिक-कथा और राष्ट्रीय कथा रोमान-कथा और रोमासहीन कथा आस्था और अनास्था की कहानियों क विदार उठाये जाते रहे । और अब तो देशो कथा बनाम विदेशी कथा, साहित्यिक कहानी बनाम लोकप्रिय कहानी, नयी कविता बनाम नयी कहाना, कवितानुमा कहाना और कहानीनुमा कहानी, अंधेरे की चील का कहानी और अंधेरे में निकलने की कहानी, सचेतन कहानी, सक्रिय कहानी, कहानी प्रथम कोटि की साहित्यिक विषा या द्वितीय कोटि का साहित्य रूप आदि दर्जना सवाल है, जो कहानी क क्षीर (?) सागर का मथन करने में जुट हुए हैं । इन्हीं के बीच यथायथा, सामाजिकता प्रतीकता, नाटकीयता, नया भावभूमि, नया गिल्प आदि भी आते जाते रहे हैं । परन्तु, कहना न होगा कि ऊपर गिनाये गये तमाम चर्चित सवाल एक ही पीढ़ी के भीतर प्रसमानुकूल रहे हैं । फिर सवाल उठता है कि यह आपसी 'कटावुद्ध' क्यों ? इसके पाछे सजग विवेक चेतना है या मात्र 'यावसायिक हाड ?

मैं कहना चाहूंगा कि दोनों हाँ यावसायिक होड़ भी (जिससे सौभाग्यवश नहीं जाता बची रह सकी)। और यथाथ के प्रति आग्रहशील चेतना भी। अपनी बात पट करूँ—सबसे पहले उठने वाले विवाद नगर कथा बनाम ग्राम कथा के विवाद था। आज दोनों ही पक्षों ने इस विवाद की यथार्थता को स्वीकार कर लिया है पर ५ से ५७ तक यह विवाद जिम धुरी पर घूमता रहा है वह यथाथ के प्रामाणिकता का था। माकण्डेय या शिवप्रसाद सिंह के लिए वह यथाथ गांव में था और राजेश या राजेन्द्र यादव के लिये गरम, ताँबे के बरतार के लिए वह कस्बे में बसता था। अपने अनुभव क्षेत्र के प्रति धार्मिक ईमानदारी इससे लभित होती है, पर अपने को अधिक महत्वपूर्ण सिद्ध करने की यावसायिक आकांक्षा भी इस विवाद में विद्यमान थी और तनिक सतत विवाद से विचार करने के बाद इस विवाद पर कफन भी डाल दिया गया। [यही यह याद करा देना अप्रासंगिक न होगा कि ठाकुरप्रसाद, कदारनाथ यह सर्वेश्वर या नरेश मेहता के गांव या जगस के चित्र, रघुवीर सहाय या कुँवर रायण क शहरी चित्रों से इस प्रकार नहीं मिलनाये गये। एक ही आन्दोलन के अंतर्गत दोनों ही प्रवृत्तियाँ स्वीकार की गयी थीं।]

‘यथाथ’ की बात करने के पूर्व ही लगे हाथ तनिक व्यावसायिकता पर और बतार कर देने की आवश्यकता है। कुछ लोग ‘यावसायिकता’ का अर्थ प्रभूत संस्करण से लेते हैं। पर हमें लगता है कि यावसायिकता का यह बड़ा ऊपरी अर्थ है। साल दो साल में एक कहानी लिखकर भी यावसायिक दृष्टिकोण अपनाया जाता है। इस प्रसङ्ग में यावसायिकता का अर्थ है अत्यधिक जन-प्रियता—लोकप्रिय होना का आग्रह। लोक प्रिय होने का यह आग्रह सख्त में उस साहित्य के अभाव को ज़रूर देता है जिसके कारण वह अपनी खरी अनुभूति के लिए पर्याप्त शिल्प का प्रमाण नहीं कर पाता या कि उस अनुभूति को ही काट-छाँट देता है। वह मनोरंजनपरक लोकप्रियता के चक्कर में पढ़कर किस्सागोई को अपनाता है। जिस प्रकार चित्रकला को सबसे बड़ा खतरा फोटोग्राफी से या कविता को संगीत से हाता है उसी प्रकार कहानी या उपन्यास का सबसे बड़ा खतरा किस्सागोई है। कहना न होगा कि तमाम नये कहानीकार भी इस किस्सागोई के चक्कर में जा पड़ते हैं। वे लाग यह भूल जाते हैं कि देवकीनन्दन खत्री विश्वोरीलाल गोस्वामी आदि सख्त एवं प्रेमचन्द के मध्य का सबसे बड़ा अंतर यही किस्सागोई का बिंदु है।

पर, जैसा कि अभी कहा जा चुका है—मूल प्रश्न यथाथ के प्रति प्रतिबद्धता का है। जब निर्मल वर्मा की कहानियों की विदेशी पृष्ठभूमि या विदेशी चरित्रों का संस्कार आरोप किया जाता है तब भी मूल आरोप यही रहता है कि ये अप्रामाणिक यथाथ

की कहानियाँ हैं—कवल चौकाने ॥ राव हासन व लिए लिखा गयी है । या कि जब मजेय, श्रीकांत या सर्वेश्वर की कहानियों पर यत्तिवादी हान का आरोप लगाया जाता है तब भी यही कि यह कृत्रिम भूमि है—यथार्थ की वास्तविक स्थिति नहीं । जब शिवानसिंह चोहान या हसराम रहेबर समस्याओं की लम्बी सूची गिनाते हैं कि नये कहानीकार इन पर क्या नया लिखते तो उनका आक्षेप यही रहता है कि यथाथ की समस्याओं से नया कहानीकार कतराता है और जब उनको उत्तर देने का नया ढङ्ग या आलोचक कहना है कि समस्या' प्रधान (या समस्या का ही लेकर लिखा जाने वाला) साहित्य प्रकमर अप्रामाणिक अनुभव [यानी कृत्रिम यथार्थानुभव] पर आधारित होता है 'मौलिक नकला भी होता है तो यथाथ का ही बात उठाता है । इसी प्रकार जब 'व्यावसायिकता का आरोप तमाम नये या पुराने कहानीकारों पर लगाया जाता है तब भी उसका मूल रूप यही है कि इन लोगों ने व्यावसायिक मार्ग पर अपने यथाथ अनुभव का निष्काशन कर दिया है ।

इसलिए सबसे स्पष्टीकरण यह 'यथाथ' हो जाना है—वही वह समस्या का नाम से आता है, तो कहाँ अनुभव तो कहाँ किमी और नाम रूप में, नाना रूप धरा हरि । इसलिए मानस्यकता इस यथार्थ का समकक्ष बन का है । यथाथ दृष्टिकोण है या विषय वस्तु यथाथ गैली है या रूपरंग का सम्पूर्ण गिन्य । यथाथ के प्रति प्रतिबद्ध होने की शर्त क्या है और उसकी पहचान क्या है ? इन बातों पर तनिक विस्तार से विचार किया जाना चाहिए । बिना इस शब्द की स्पष्ट व्याख्या का तमाम चर्चा अरूप और आधारहीन बनी रहती है ।

कहानी की चर्चा-परिचया व धम्धार में एक बात और झुला दी गयी है कि कहानी सम्पूर्ण 'कथानुभव' वाले साहित्य का अंग है और उसे उपन्यास की चर्चा में अलग करके देखने में बाकी गड़बड़ियाँ होती हैं । यह हो सकता है कि किमी युग विनोद में कहानियाँ अधिक महत्वपूर्ण लिखी गयी हों पर उसे पूरे 'फिक्शन' के सदस्य में काटना उचित न होगा । नाटक की चर्चा से अलग करके गझाकी को परखना या तमाम कथा-काव्यों (या कथ्यकाव्यों) में अलग करके मात्र छोटी आत्मपरक गीतियों की चर्चा करने का जो परिणाम हो सकता है, वही इस कहानी-चर्चा का माप भी हुआ है । कहानी जैसे एक व्यापक सन्दर्भ से बट गयी । इसका तात्पर्य यह भी नहीं कि कहानी का अलग-अलग चर्चा नहीं की जा सकती—तात्पर्य मात्र इतना है कि नयी कहानी का उचित सन्दर्भ में देखने के लिए 'नदी के द्वीप', 'मल्ला आंचल' बूँद और समुद्र 'उमड़े हुए लोग', 'भूठा सच', 'अंधेरे व द कनर' 'यह पय व धुंध' आदि को भी सामन रखना होगा । बल्कि कहना तो यह चाहेंगे कि कविता को भी मद्देनजर रखना

ज्ञाना । मुझे अक्सर यह लगा है कि नयी कविता और नयी कहानी दाना की ही उपलब्धियाँ एवं असफलताओं-में काफी दूर तक समानताएँ भी मिलती हैं ।

● भयावह सदन और कुछ कहानियाँ

इन अठारह सालों में वह स्वप्न बिल्कुल बिखर चुका है । हमने खुद ही जान अपने साथ कोई क्रूर मज्जाक किया था, ऐसा लगता है, जब हम अपनी उन स्वप्निल कल्पनाओं के बारे में सोचने लगते हैं । उस स्वप्न और इस ययाय को जब घाम-पास रखकर रखते हैं तो हम किन्ने में घे ये, इसका होगा हम भ्राता है । जा ययाय हमारे सामने है, वह सचमुच ही भयावह है ।'

—गुलावदास मोकर धर्मपुत्र १५ अगस्त ६५  
भाज इसे (भारत को) जो चीज भयावह है वह है नौकरशाही-कापका द्वारा कल्पित किसी भी चीज से कहीं अधिक दुर्गम्य एक भारतीय दुस्वप्न ।'

—टाइम (साप्ताहिक) १३ अगस्त ६५ का भारत पर मानक ।  
'स्वाधीनता दिवस, १९६५ १८ वर्ष के तदनु भारतीय लोकतन्त्र की भाज की स्थिति पर सरसरी निगाह दोड़ाएँ ता जो बिज सामने आता है उसमें ध्यायाएँ ही अधिक गहरी दोखती है, प्रकाश के बिन्दु उतने उज्ज्वल नहीं दाखने । अतः और वितरण की अनिश्चित स्थिति, बढ़ते हुए दाम, सङ्घटन आयोजन मुद्दा की तगी, विधायियाँ न उपद्रव, असन्तुष्ट और लौक की एक देश यापा पुटन निश्चय ही इनको देखकर किसी का चित्त प्रसन्न नहीं हो सकता ।'

—दिनमान २० अगस्त ६५ का सम्पादकीय वक्तव्य ।

बिना किसी प्रयास के सहसा पुन लिये गये ये कुछ उद्धरण हैं जो हमारे वत न स दर्भ को परिभाषित करने में काफी दूर तक सहायक होंगे । यह भयावह स्थिति दीय स दम की तो है ही, अन्तर्राष्ट्रीय सन्ध की ध्यायाएँ कहीं अधिक बाली और गहरी मिलती हैं । लगता है कि एक सकट में दूसरे सकट पर पहुँचना हा हमारे कदमों का एकमात्र रस्ता बन गयी है । किसी भी सचत ध्यक्ति के लिए यह निरन्तर अधिक प्रचरता से स्पष्ट होने वाला अनुभव है कि शान्त और सुखी दुनिया चीत गयी । अब जो है वह कण्टकर है, मानव की प्राप्ति के लिए चलने वाली प्रतिद्वन्द्विता का निरन्तर तनाव है और इन तनाव में टूटने का डर है ।

ऐसा स्थिति में अगर भलक अपने अनुभव को प्रामाणिकता के प्रति सजग है, अपनी रचना के प्रति ईमानदार है, तो उसे अप्रतिष्ठा के चित्रण में ही यस्त होना



पड़ेगा। प्रेमचंद व लिये यह सम्भव था कि उनकी कहानियाँ क अत सुखद ह। सँ, उममे सत्य की जीत दिखाई जा सक या प्रेम अथवा न्याय की ही अतत स्थापित किया जा सक। वस्तुतः जीवन की मूल तक सगुतता पर उनका गहरा ईमानदार विश्वास था। इसीलिए प्रेमचन्द की सुखान्त कहानियाँ, काय सत्य का विजय वाली कहानियाँ भी अप्रामाणिक अनुभव की कहानियाँ नहीं कही जा सकती। उन कहानियाँ म न पलायन है और न विकृति कुरूपता से बच निकलन का रास्ता और न ही सदन समाज पर अछा प्रभाव डालन की आकांक्षा। उन कहानियाँ में एक प्रामाणिक विश्वास की सचाई भर है। पर जब स यह वास्तविक विश्वास हिला तब स सुखद अत वाली कहानियाँ फामूला बन गयी— यावसायिकता और मनारजन क लिए उत्पन्न पलायन वादिता की नयी कहानी का सारा विशाह इस फामूलाबद्ध गैर इमानदारी व प्रति ही था। आज का मोसत ब्यक्ति भी यह विश्वास नहीं करता है कि ससार क साथ सब कुछ भला और ठीक है और न जिंदगी के पाम किमी विश्वास भरी आस्था स आता है। तब फिर भलक से भी यह आशा नहीं की जा सकती कि वह इस ससार से शास्ता की वरदानी अनामक्त, सदानन्द मुद्रा धारण कर निकल। इसीलिए इस आरोप का कोई अथ नहीं होता कि आज के कहानीकार की दिलचस्पी सिर्फ गलाज, कुरूप या विकृत म है। यह आरोप लगाने वालों का सबसे प्रत्यक्ष तक होता है कि ये नये कहानीकार दश क ययाथ से कटे हुए हैं शेष ता आस्था और विश्वास के साम निर्माण म लगा हुआ है, एक उज्ज्वल भविष्य वह देख रहा है [बल्कि या कह कि यह कहने वाले स्वयं देश क इन निर्माणा को भुना रहे हैं, उनका वर्तमान सुखमय है और भविष्य क लिए काफी बैंक बैलेस है।] और य साथ पश्चिम की कृत्रिम आस्था, निराशा, कुण्ठ, मरणाकांक्षा, बुराई की महता आदि को विव्रित कर रहे हैं। प्रारम्भ क उदरण इस स्थिति का उत्तर देने म समथ है। आशा का यह भाका पहले दौर म नयी कविता, नयी कहानी मे भी आया था, पर सन् ६० क आसपास पहुँचते पहुँचते यह भामित हाने लगा कि वह स्वप्न विस्तर रहा है, ययाथ अधिक भया वह होता जा रहा है।

अभी अगस्त १९६५ की नई कहानियाँ म महेन्द्र भल्ला की एक कहानी का विश्लेषण करते हुए मैंने लिखा था 'एक स्तर पर इस कहानी को पुराना आदशवादी [ या पुरानी कहानियाँ का अग्र्यस्त ] पाठक विकृति, अनेतिकता अस्वीलता, अमान धीयता बुराई आदि की कहानी कहना जाहेगा। पर यही वह स्तर है जहा कहानी ययाथ का उसके अधिक सच रूप म उल्ट मती है। निश्चय ही यह कहानी इन दुष्कर्मों की है, पर आधुनिक सदर्भ म 'बुराई' की सिग्नीफिकेंस' ही कहानी का मूल भाव

प्रतीत होता है। पुराई की इस गणनीयता के पीछे एक अत्यंत प्रत्यक्षीय मस्तिष्क की प्रावश्यकता है और यह प्रत्यक्षीयता अनिवार्यतः अनास्था निराशावादिता आदि की धार से जायगी। स्वतन्त्रता के वास्तविक नवसंघन के प्रारम्भ में 'कल उगन' का जो एक आवाणी रोमांटिक भाषा आया था, वह सर्व ६० तक पहुँचने के बाद पुनः जा रहा है और जो एक अत्यन्त प्रबुद्ध जिन्नामु मन मचाई में गहरे पैठना है वह निरन्तर निराशा अनास्था जब, पुराई अनैतिकता आदि की सिम्नीफिकेस को स्पष्ट करता है।

महेश भट्टा की कहानी का सारांश तो फिर भी उद्धृत सामित है पर उसमें यत्न सारांश में यत्किं और समाज के बीच का बलवर्तन आ गयी है वहीं बलवर्तन में न तो भय आता है या आतंकीयता न तो स जाती है जिससे कि समाज में व्यक्ति को रक्षा कर पाता है और न यत्किं को रोक से अपना बचाव। 'वही' भलभाव या वलवर्तन प्रमत्तता की 'हृत्पार' नियत वर्मा की 'ल'न की एक रात या माकण्ड्य की 'एक बाला गमरा' कहानियाँ में यत्किं स्थितियों के लिए जिम्मेदार होती है। टाइम निम्नलिखित या पमपुत्र के उद्धरणों में यत्किं यथावत् स्थितियों का और भवित किया है वही इन कहानियों का सार है। निम्न का सारांश और अधिक आपक है वह प्रतीति द्वीय भय और आतंकी की पकड़ का सूचक है। प्रारम्भ में गुलाबगुल शेर का जो उद्धरण दिया गया है उसी में प्रागे यह भी कहा गया है 'हमारे सामने इतने भ्रष्टाचारी हाथे, हमारे राजकाजी इतने लुटगर्ज हाथे हमारा नेता लाल इतनी बड़ा बड़ी भूडी बाँटें कहने बाँटें हाथे और इन सबके पार से दबकर हमारा देश नीचे धँसना जायगा, इसकी बाईं बल्पना भी हम कभी नहीं आ सकती थी। तब फिर हम यह माना कि सविष्णु चाहिए थी ?' कहना न होगा कि यह कथन किसी विरोधी पक्ष के नेता का वक्तव्य नहीं है यह है एक सर्वजनशील सत्तक की साक्षी। इस साक्षी को बाहें तो एक काला तपस्वी से जाड़कर देख लें। ये लुटगर्ज नेता, बापका द्वारा परिकल्पित स्थितियों से कहा अधिक दुःख नोकरशाही का जो मिला-जुला नया नाव होता है, उसका विस्तार जनता के एक कमजोर पर मेहनती व्यक्ति। हमारे नावजनिक जीवन का भयावहता टार इन कहानी का कथा भाव है। कहानी जिस मानवीय यथार्थ को उठा रही थी प्रारंभ उसी के उपयुक्त चित्रण में प्राप्त कर सकी होती तो शायद ऐसे दोहराव और काल्पनिक रूपों के दायल बाँट दृश्य का जो मिश्रण कहानी के चित्र में हुआ है उससे बचने की आवश्यकता थी, पर लगता है कि माकण्ड्य प्रभाव के लिए बहुत भी कीड़े डकट्टी कर देन में विश्वास करने हैं। बहरहाल यहाँ पर न कहानियाँ का कलात्मक हमारा विवेच्य नहीं है। मैं बस यथायक उस प्रतीति

पडेगा। प्रेमचंद के लिए यह सम्भव था कि उनकी कहानियाँ के अन्त सुखद हों। मर्कें उसमें सत्य की जीन दिखाई जा सकें या प्रेम अथवा याद की ही अन्ततः स्थापना किया जा सके। वस्तुतः जीवन की मूल तक सगतता पर उनका गहरा ईमानदा विश्वास था। इसीलिए प्रेमचन्द की सुखान्त कहानियाँ, काव्य सत्य की विजय वाले कहानियाँ भी अप्रामाणिक अनुभव की कहानियाँ नहीं कही जा सकती। उन कहानियों में न पलायन है और न विकृति दुरुपना से बच निकलने का रास्ता और न ही सदा समाज पर अच्छा प्रभाव डालने की आकांक्षा। उन कहानियाँ में एक प्रामाणिक विश्वास की सच्चाई भर है। पर जब से यह वास्तविक विश्वास हिला तब से सुखद अन्त वाली कहानियाँ फामूला बन गयीं—यावसायिकता और मनोरंजन के लिए उत्पन्न पलायन वादिता की नयी कहानी का सारा विद्रोह इस फामूलाबद्ध गैर ईमानदारी के प्रति ही था। आज का औसत व्यक्ति भी यह विश्वास नहीं करता है कि संसार के साथ सब कुछ भला और ठीक है और न जिंदगी के पास किसी विश्वास भरी आस्था से आता है। तब फिर भलक से भी यह आशा नहीं की जा सकती कि वह इस संसार से शास्ता की वरदानों, अनासक्त, सदानन्द मुद्रा धारण कर निकल। इसलिए इस आरोप का कोई अर्थ नहीं होता कि आज के कहानीकार की दिलचस्पी सिर्फ गलीज, कुत्तप या विकृत में है। यह आरोप लगाने वालों का सबसे प्रत्यक्ष तर्क होता है कि ये नये कहानीकार दक्ष के यथार्थ से कट हुए हैं। नैसर्गिक आस्था और विश्वास के साथ निर्माण में लगा हुआ है, एक उज्ज्वल भविष्य वह देख रहा है [वस्तुतः या कहें कि यह कहने वाले स्वयं देश के इन निर्माणों को भुना रहे हैं, उनका वर्तमान सुखमय है और भविष्य के लिए काफी बैंक बैलेंस है।] और ये साथ पश्चिम की कृत्रिम अनास्था, निराशा, कुण्ठा, मरणाकांक्षा, बुराई की महत्ता आदि का चित्रित कर रहे हैं। प्रारम्भ के उद्धारण इस स्थिति का उत्तर देने में समर्थ हैं। आशा का यह भाका पहले दौर में नयी कविता, नयी कहानी में भा आया था, पर सन् ६० के आसपास पहुँचते पहुँचते यह भासित होने लगा कि वह स्वप्न विस्तार रहा है, यथार्थ अधिक नया वह हाता जा रहा है।

अभी अगस्त १९९५ की नई कहानियाँ में महेन्द्र भट्टा की एक कहानी का विशेषण करते हुए मैंने लिखा था 'एक स्तर पर इस कहानी का पुराना आदर्शवाद [या पुरानी कहानियाँ का अभ्यस्त] पाठक विकृति, अनेकता अश्लीलता, अमानवीयता, बुराई आदि की कहानी कहना चाहता। पर यही वह स्तर है जहाँ कहानी यथार्थ को उसके अधिक सच रूप में उठाती है। निश्चय ही यह कहानी इन दुष्कर्मों की है, पर माधुनिक संदर्भ में 'बुराई' की सिग्नाफिकेंस ही कहानी का मूल भाव

प्रतीत होता है। बुराई की इस गणनीयता के पीछे एक अत्यंत प्रश्नशील मस्तिष्क की आवश्यकता है और यह प्रश्नशीलता अनिवार्यतः अनास्था निराशावादिता आदि की ओर स जायगी। स्वतन्त्रता के बाद नवसंस्करण के प्रारम्भ में 'बल उगन' का जो एक प्राणायानी रोमाण्टिक क्लासिक आया था, वह सन् ६० तक पहुंचन पहुंचत गुजर जाता है और जो एक अत्यन्त प्रबुद्ध जिनामु मन सवाई में गहर पठना है वह निरन्तर निराशा अनास्था, ऊब, बुराई अनतिक्रान्त आदि की सिमीफिकेस को स्पष्ट करता है।

मछेंद्र भट्टा की कहानी का समारंभ तो फिर भी बहुत सीमित है पर उम्र के यत्न सवार में यत्ति और समाज के बाव जो बलवरा आ गयी है वही 'बेलबरी' यत्न भय घातक या घातकायीपन तक स जाती है, जिसमें कि समाज न यत्ति की रक्षा कर पाता है और न यत्ति को चोट से अपना बचाव।' वही अलगाव या बलवरी अमरका त का 'हृत्कार' निमल बर्मा की 'ल'दन की एक रात या माकण्डय की 'एक काला दायरा' कहानियां में 'यत्न स्थितियों के लिए जिम्मेदार होता है। दाइम निमान या धर्मयुग के उद्घरण में जिन भयावह स्थितियों का और संकेत किया है वही इन कहानियों का स दर्भ है। निर्मल का स दर्भ और अधिक यापक है वह 'मर्तर्ता दीय भय और घातक की पकड़ का मूचक है। प्रारम्भ में गुलाबगल गकर का जो उद्घरण दिया गया है उसी में प्रागे यह भा कहा गया है 'हमारे लोग इतने भ्रष्टा चारी हागे, हमारे राजकाजी इतने खुल्लगर्ज हागे हमारे नंता लोग इतने बड़ा बड़ी एठी बातें कहने वाल हागे, और इन सबके मार से दबकर हमारा देश नीच धसता जायगा, इसकी कोई वल्पना भी हम कमी नहीं आ सकते थे। तब फिर हम यह प्राजापनी किसलिए चाहिए की ?' कहना न होगा कि यह कवन किसी विरोधी गल के नता का वक्तव्य नहीं है, यह है एक सवदनशील अन्धक की साणी। इस साक्षी को चाहें तो एक काला गायरा से जोड़कर देख लें। ये खुदगर्ज नता, कापका द्वारा परिवर्तित उसका विस्तार बनता है एक कमजोर पर मेहनती यत्ति। हमारे सावजनिक जीवन की भयावहता टेरर' इस कहानी का कच्चा माल है। कहानी जिस मानवीय यथार्थ को उठा रही थी प्रगर उसी के उपयुक्त चित्त भी प्राप्त कर सकी होती तो शायद ऐसे उपशित न चली जाती। एक रोमाण्टिक स्फीत (राजकपूर दाय भोवर ऐक्टिव या भोवर हूड ग) और कामू के अजनबी' के दायल वास हृदय का जो मिश्रण कहानी के पि र में हुआ है उसमें बचने की आवश्यकता थी, पर लगता है कि माकण्डेय प्रभाव वृद्धि के लिए बहुत सी चीजें इकट्ठी कर देन में विद्वान्त करत हैं। बहरहाल यहाँ पर इन कहानियों का कलागित्य हमारा विषय नहीं है। मैं केवल यथार्थ के उस अग्रोति

कर भयावह प्रश्न की ओर मनेत करना चाहता हूँ जो इन कहानियों में यत्न हो रहा है और जो नये भक्तियों की मूल्य दृष्टि का चोख है।

अमरकांत की कहानी 'हृत्पारे' सामाजिक विश्रुतता में उत्पन्न होने वाले

नाम और आतंक का कलात्मक दस्तावेज है। किमी भा समाज से यह नारम्वन प्रत्याशा होती है कि वह अपने सदस्या का मुखा दे सक। पर हृत्पारे का जो मतार है उसमें न तो समाज रक्षा देता है और न अपने इन सन्ध्या में सम्मान पाता है। आशानी के बाद के सन्दर्भ में उपजो नया पीढ़ी के लिए व समाज का द

और अवधारणाएँ अब बस मजाक के लिए रह गयी हैं जिनको कर तमाम चित्तक, व्यवस्थापक, राष्ट्रनिर्माता आदि अब तक स्वप्न देखते आये थे। समाजवादी, २१ की तरफ़ी, देश का बाध, विद्वत्ताति आदि आफ पालिटिक्स रूस अमरीका विवाद आदि

उनके लिए हँस कर उड़ा देने की चीजें हैं। वस्तुतः इन शब्दों का उनके लिए अर्थ ही हो गया है। पर इस लोथे हुए अर्थों वाली भाषा से ही बाध बाध में वे कण कण जात हैं जो उनकी आकांक्षा को भी सूचित करने हैं। वे प्रकाशन के उच्चतम पदों में आकांक्ष

हैं यह उनकी व्यक्ति अनाकांक्षा से प्रकट होता है, आज में अक्षयवारी रहने की घोषणा के पीछे जो वासना भरी रही है वह बगल से सड़कियाँ के गुजरने पर हवा में उछाल गये

चुम्बना या चन्द्रासिन्हा-प्रसन्न से ही प्रकट नहा होती, बहुत जल्दी अपने निम्नतम रूप में आगे आती है। एक गरीब औरत को धाखा देकर अपनी दह की भूल बुभान है और फिर लास्की की 'आमर आफ पालिटिक्स' को दस दिनों में कृपापूर्वक डिक्टेट

करा देने वाला, सतीसाध्वी चन्द्रा के सोल का प्रोफेसर दाखित से बचा लेने वाला, जवाहरलाल नेहरू द्वारा प्रणाममन्त्री पत्र के लिए आमन्त्रित थे नवयुवक, उम गरीब

औरत को पसा न देना पड़ इसलिए हाथों में जूते उठाकर भाग खड़ा होता है। पूरा अहिंसात्मक तरीके से नवयुवक का बुद्धिमानी, मौलिकता, साहस और कमठता का पक्षप्रदर्शन इस प्रकार होता है कि उस औरत के शरीर मचाने पर जो 'यक्ति उनके

पीछे बोटते हैं उनमें से एक के पेट में पक्षप्रदक्षक महादय छुरा चुसेट देने हैं। इसमें बाध दाना पुन तेजी से भाग चला। जब बिजली का झग्गा आया तो राशनी ने उनके पसीने से लथपथ ताकतवर शरीर बहुत मुन्दर दिखाई देने लगे। फिर व न मात्रम

किफर में घेरे में लगे गये। इस कहानी का पढ़ कर कवि केदारनाथ सिंह का ये पंक्तियाँ बहुत साफ हो जाती हैं।

और शहर में होने वाली हत्या की खबर

बौकाती नहीं,

न आघात देती है,

सिर्फ आदमी उठता है  
घोर सपनी सघी को उठाकर  
गान क गौर करीब रख देता है ।

आश्चर्य न होना चाहिए कि सन् ६० क बाद की हिन्दी कविता का बदलाव सिर्फ न पूर्ववर्ती कवियों की अपर्याप्त 'हृदयारे और सन्दन की एक रात से जाडना बाधा है । २७ जून ६५ के 'जनयुग' में प्रकाशित इस कविता का शीर्षक है 'सम्पर्क भाषा' उपर कहा जा चुका है कि जब सामाजिक जीवन व मध्य पारम्परिक सम्पर्क मून टूट जात है, जहाँ कोई एक दूसरे का समझ और सहाह नही पाना, वही ऐसी भयावह स्थितियाँ उत्पन्न होती हैं । सम्पर्क भाषा का जा अभाव है वही 'गहर' में हान वाली हत्या व प्रति किसी प्रकार का सगाव नती उत्पन्न हान देती मुनने वाला प्रमाणन की कबी का दर्पण ( जिसमे प्रतिबिम्ब दिखता है । ) क निकट खिम्का देता है और हत्या करने वाला बिजली के तन्त्रे की निशानी में अपने स्वल्प 'गरीर की सु-दृग्ता कमकाकार में घेर में गायब हो जाता है ।

'नन्दन की एक रात' का मतार और अधिक भयावह है । वहाँ भय साकार हा उठता है । वह ऐसा भय है जो अन्तराष्ट्रीय सकट और आतंक से उत्पन्न हुमा है । नीचा छाव, जाज, ल दन में रहना चाहता है, अन्तराष्ट्रीय नागरिक वन सकन का उमम समावना और क्षमता है और जब उसका साथी किसी पृथता है—'वमा बापन घर जाभागे ?

'—घर ? —नीचा छाव आर्ज के स्वर में एक सूना-सा वाक्सापन उभर आया, माना घर' शब्द बहुत विचित्र हा, जैसे उसन पहली बार उसे मुना हो, मैं चाहता था' यहा रहें । लेकिन व हम चाहते नही ।

'—व माह !—बिली न कहा ।

'वे मनायास हमने धारा धार देता । कोई ना न था हालाकि वे हर जगह हर समय हमारे संग थे । हमारे बाहर उतन ही, जितन भीतर । और रग मद की यह अमानुषिकता स्वयं बिला की जिम विद्वत्ति की धार में गयी थी—सक 'होर से बन्ला सते हुए, वह 'मस्तील' नही 'जुगुप्साभय है । रमभे', लिखित सामाजिक गतिता को इस अन्धकार को रोक सकने में अममर्थता, फातिम के अकुर पादि अन्तराष्ट्रीय 'टरर' को इस कहानी में मूर्तिमान करते हैं ।

वस्तुन अतिक और भय को कहानिया क द्वारा नया कटनोकार इस भय क

नीतर स्थित बुराई का गति की नाप रहा है। इन स्थितियों का नर मात्र रचना कर मंथित करना मुझे लाता है कि उनसे नूतन है। नया समकालीन स्तर पर उठने नूतन रहा है वह उनके अपने मूल्यबोध का महत्वपूर्ण हिस्सा है। इन कहानियों को मूल्यहीनता की कहानी कहना अपने मूल्यबोध को कुंठित बनाना है। बोझ को, स्थितियों को स्थितियों का रचन का टा रचन बाधक मूल्य का ही घा हाता है।

वस्तुतः जिन्हें बौद्धिक कहानी कहा जाता है वे दृष्ट गहरे अर्थ में नाश्वर्य या अनुभूत विचार को कल्पित करने हैं। इसका एक प्रमाण यह भी है कि पहले कालों में जहाँ मनमिया प्रदान कहानियाँ लिखा करने थे (उनमें कहा या या कल्पन) जैसी कुछ धोखे कहानियाँ जोड़कर) वहाँ अब धनका न सम-या प्रधान कहानियाँ छाड़ दी हैं—उसके स्थान पर अनुभव-वर्मा कल्पित पर बराबर जोड़ दिया गया है। अपने प्रथम मद्रह 'राजा निरवधिया का भूतिका में कमलेश्वर न नयी भावनामिया की चर्चा की है। मानो कि जो दायित्व केवल कविता के लिए छोड़ दिया गया था, उसे भी उन्होंने अपना ही कल्पित की है। और पुरानी और नयी कहा निया कल्पना का रखा जाय तो पहले का कहाना-धनक एक ऊँचा बौद्धिक गह में कुछ नमस्यामा का घटा या और उनमें भावुकता या कर-गुणाव' का जल मिला कर स्पर्शा (मम या हृदय या सतही नमननाहट) कहानियाँ लिखना था। उनकी बजाय आज का कलाकार अपने अनुभव का पहले दृष्टता है और उसके माध्यम न तमान समस्यामा, प्रश्ना (या अप्रश्ना) को दृष्टता और नमता है। एक का एप्रोच बौद्धिक और अन्त लिजनिजी भावुकता न और दूसरे का एप्रोच भावप्रवण पर अन्त एक गतिपूर्ण बौद्धिक सम्भावना में—आफ क कव गायद इन स्थिति के आसपास होते। (और यह अन्तर आज भी एक पीढ़ी के ही दो धनका में पाये जा सकते हैं।)

जहाँ तक 'जन जीवन' का प्रश्न है केवल इतना याद दिलाता चाहूँगा कि इस मारकी छाया के नीचे लिखा जानेवाला प्रातिपदो रचनात्मक साहित्य कैसे स्मिफिका कर बैठ गया और इन मार का अलग कर सामने अनेकाली नवमनन की पीढ़ी ने किनना गतिगाली जीवन-बोध विस्तित किया है इसे दिखाने के लिए अलग एक धन लिखन की आवश्यकता है। यही नया रचनात्मक धन से अपना समीक्षात्मक चिन्तन में जहाँ यह प्रातिपदो नुस्खा लटका रह गया है वहाँ भी ग्रामकथा-मार कथा रंगी कथा विदगा कथा नया कविता बनाम नया कहानी आदि की विकृतियाँ नय धनका न ना उपस्थित की हैं—वस्तुतः जन-जीवन को ज्यादातर लाभ अपने परिचित जीवन का पयाप मान मन है। ये नाग यह भी नून जान हैं कि कला को दुनिया जीवन की

वासना व नतिष या मनलिक पथा की बात और भी स्पष्टी होती है—इतललए कल इस प्रकार की सल्लावली (जव तक कल एक वलणल्ट सल्लावली लकर न की जाय) समाला क क्षेत्र स बाहर का है । इसललए में इस प्रमग की चला न करना ही बलतर नमलू गा ।

जह तक पच्चीकारो की बात है, नयी कहानी न अगल सबसे अधिक कलसी चीज का लाटा ला इस पच्चीकारो को । पच्चीकारो का आराप लगाने बास लाग आला म पट्टी बापकर चलते है । कहानी ही नया, पुरा आधुनलक भावबाध पच्चीकारो क वलरड है । आधुनलक वलत्रकला, मूलककला, स्यापल्य, कवलता कहानी आलल का ये लाग अगल नही समलक पाते तो नम से कम अपने घरा क दरवाजा और फनोंजर का ही एक नजर नलहार बन का कल्ट करें—सल्यलतल बहुल साक हो जायेगा । अगल ऐतलहासलक हल्टल से दला जाये तो लगातार कहानी म इस पच्चीकारो का लाशन की चल्टा की गयी है । उदाहरण क ललए राकश को ललया जा सकता है । ( इसललए कल राकश कलतलम महल्लपूर्ण पुराने पच्चीकार कहानीकार हैं और प्रारम्भलक नय कहानीकार म स एक हैं । ) राकश की 'मलबे का माललक आलल कहानलयां जहा कटी-पूँदी पच्चीकारी का जलजल कहानलया क उदाहरण है जहा 'एक और जलदमी म साया सल्लप का जलजलून एक बडी सोमा तक वलवर जाता है । आलल मध्य और मल्ल सधप चरम सोमा और समाधान क मुल्ल इस कहानी तक आत आत टूट जान हैं । इमी प्रकार माकण्डय की कहानलया मन ५२ ५५ क आस पास ( पानपूल म सप्रहलत ) जव आतो है तो बहुल से सोमा का लगा पा कल ये कहानलयां नही हैं बल्लल कहानी और रवा वलत्र क बाव की चीजें हैं, बाद की बहुतर कहानीकारो की कहानलया को कहानी और नलबल क बोच की वलया भी कहा गया ।

पवास कर्ष क अल्ललदय म दलन पर हल दी कहानी की प्रगलतल पर आललव्य होता है ।

आधुनलक भावबाध 'कहानी' या कलसी एक म य वलया से कहा वलरडार दे और वलमल्लन कलाएँ तथा वलमल्लन साहलल्यलक वलयाएँ इसे या इसक मल्लन मल्लन पथो को स्यापलल करने की चल्टा कर रही ह । कहाना की बाग्लासलता का भी लदय मही है । जहाँ तक 'अयतम सल्लप प्रयाग और नमय कल्य न प्रन है 'आज क साहलल्य से' नयी कवलता को जकर सवापलक चला की जा सकती है । इसे मल्ल्या गर्व न माना जाय ता हलला का नया कवलता' आन भारतीय भाषाओं म



ही अग्रणी नहीं है, अँगरेजों के माध्यम से उपलब्ध नसार के समकालीन साहित्य में वह महत्वपूर्ण स्थान का अधिकारिणी है। निश्चित ही यह बात में अपनी अत्यंत सीमित जानकारी के आधार पर कह रहा हूँ—इसलिये अगर कोई प्रतिशयोक्ति हा तो क्षमा चाहता और अपनी रायका सुधारने के लिए भी तैयार रहूँगा। यह प्रश्न है कि 'नयी कथा' का विश्व के समसामयिक सखन के समकक्ष सुविधापूर्वक रखी जा सकती है पर दोनो विधाया के सापेक्षिक महत्व (पूरे नसार को ध्यान में रखकर ही) का दिमाग में रखकर इस बात को कहने में हिचक नहीं हो सकती कि आधुनिक भाव बाध का सबसे अधिक वहन कविता ने ही किया है। अ य देशों में कविता के बाद उपयाम न इस णिगा में महत्वपूर्ण काय किया पर हमारे देश में 'गायद कहानी' का माध्यम कथाकारों का अधिक अनुकूल लगा उपयाम के क्षेत्र में नये कथाकारों में रगु को छोड़कर किसी अ य का उत्सखनीय सफलता नहीं मिल सकी है।

हि दा में बहुत स मसौदा हैं जो एक उभ में ही सब कुछ कहने का हाँसला रखते हाने। मैं बल इतना कहना चाहता कि हमारे मम्पादना आलोचका तक का अभी यह बाय नहीं है कि समसामयिक कहानी का एक असत परिनिष्ठित स्तर क्या है और परिणामस्वरूप बहुत मच्छी और बहुत बुरी कहानियाँ एक ही प्रतिष्ठा के साथ एक ही पत्र में छपती रहती हैं।

मेरे भले साहित्य की दृष्टि सम्पन्नता यथाय के प्रति प्रतिबद्धता है और यह नजना नया कहानियाँ में है और इसीलिए मुझे य तमाम नयी कहानियाँ प्रिय हैं। नाम गिनाना (इस स'दभ में) उचित नहीं है। या एक यक्ति जो मात्र अपनी कहानियाँ के बल पर मदन ऊपर दिखायी देता है, वह है निमल वर्मा। या कि यही वह भी कहूँ कि श्वर उनके सखन से मुन कुछ निराशा भी हुई है। इस प्रसंग में यह अभिमत भी कि कला माध्यम के रूप में कहानी के सामने सबसे बड़ा न्तरा किस्सागोईका हाता है। किस्सागोई जिस व्यावहारिकता की ओर जाता है। वहा दृष्टि को सबसे अधिक धु धला करती है। 'नयी कहानी' जिस रूप में के अवषण में रत है वह किस्सागोई के इस जाल से बचन का ही हो सकता है।

## नई कहानी नए पुरानो के बीच से गुजरती हुई

सुरेश

होता कुछ ऐसा रहा है कि विश्व की श्रेष्ठ समृद्ध भाषाभाषा के साहित्य में हर युग में या तो कविता प्रमुख रही है या फिर उसकी प्राप्ति के लिए नारक, उपवास, कहानी तथा दूसरी साहित्यिक विपत्तियों में पर्याप्त कार्य हुआ है लेकिन कविता और उसकी समीक्षा के सम्मुख ये बिधाए प्रमुख न हो सका, तो नहीं ही हो सकी। कविता को प्रमुखता कुछ ऐसी रही कि काव्य शब्द से सम्पूर्ण साहित्य का ही बोध होता रहा और 'काव्य' को साहित्य के पर्याय होने की मान्यता ही स्वीकृति मिल गई।

स्वतंत्रता के बाद हिन्दी में कविता को लेकर (प्राप्ति के लिए) दोनो (को ही) बड़ी महमागहमी रही। 'प्रयोगवाद' से भड़के शुरू हुई और 'नई कविता' पर धारक रकी (रकी व सभी भी नहीं हैं) इन तरह कविता साहित्य में ठोस विस्तार का विषय बनी रही, बल्कि इस समय में वह इतनी विवादास्पद और घटि चर्चित रही कि पिछले युगों में वह और उस पर की प्राप्ति के लिए न कुछ लगने लगी।

लेकिन इसी समय वह हो बमानुस्य तरह साहित्य की एक ऐसी विधा जिसे बवाल मनोरंजन की मामूली ही समझा जाता रहा था और जिसे प्रबन्धना के अर्थों में तर्क के सहारे सिर टिकाये या फिर यात्राओं में समय बर्तन के लिए ऊँचे जैयों में पड़ा जाता रहा था और जिसके सैद्धान्तिक पक्ष पर विचार के नाम—परस्पर मुत्ताना का प्रमाण प्रदान होता रहा था या बहुत ही मसखरेपन के साथ किन्तुल चलाता बग से उस पर बातें होनी लगी थी कि वह एक अदक के समान है (किसी साहित्य विधा को ऐसी फूहड़ उपभाएँ देना और प्राम्भोरता से बना मसखरापन नहीं है ?) का परिचायक भी कि उसे प्रायः घट में समाप्त हो जाना चाहिए कि वह एक गुलदस्ता है कि वह चरित्र प्रदान होती है कि वह घटना प्रदान होती है कि उसे ऐसा हाना चाहिए यदि प्राप्ति, मर्यादक महत्वपूर्ण हो उठी। जगहक पाठक कविता के साथ-साथ उस पर भी गम्भीरता से विचार करने को उत्पन्न दिवारी दन लगे और सख्ता ने उसे प्रत्यन्त गम्भीरता के साथ खने हुए उसे साहित्य की प्रत्यन्त सन्निपाती और बौद्धिक निगम कहा। देखने देखते वह साहित्य की प्रायः

विधाओं से अधिक महत्व ग्रहण करने लगी। इसमें कुछ भी कारण हो सकत है हमारा विषय यथार्थ बढ़ती हुई बौद्धिकता, रित्तो की जटिलता, भीतर का अधिकधिक पचीलापन, मूल्यों का संघर्ष या विगुद्ध कहानी पत्रिकाओं का पचास सत्या में प्रकाशन या कहानी का व्यापारिक और पत्रपरूप ग्रहण करना, जो भी हो। (कविता की विगुद्ध पत्रिका प्रकाशित नहीं हुई और हुई भी तो उनमें गुट्टरदी के आधार पर कुछ कूड़ा सदे निस्तेज नामों का उठाना गया जिसमें कविता का कुछ भला नहीं हुआ भला उन नामों का भी नहीं हुआ, बुरा जकर हुआ)।

इस तरह कहानी जिस दिग्गु पर उमरी थी, वह विगुद्ध बंद बनने लगा और साहित्य की दूसरी विधाएँ परिधिबत्। कहानी अब जीवन मूल्यों की हिमायती विधा हो गई उसकी रचना अधिक जटिल याना रसात्मक और प्रच्छन्न रूप से अधिक मूल्य परक होगई। उसे पहली बार गित्त्य और कव्य की दृष्टि से सम्भीर और सन्तुष्टपूर्ण साहित्यिक विधा स्वीकार किया गया। उसकी सिद्धांत पत्र की समीक्षा सम्भीरता में होने लगी। किसी काल से उसे एक सार्वक नाम भी मिल गया (नाम की सावकता पर यहां विवेचन के लिए अवसर नहीं) 'नयी कहानी' इसलिए कि यतीन कहानी से उसका अपना व्यक्तित्व अपना समार और रूपवध नया है यानी आज का है और कल अधिक निखर सकता है, इस तरह कल का भी कह आगत का भी हो सकता है।

'नई कहानी' महा तक की यात्रा बड़े ही विवादास्पद ढंग से पार करती हुई आ पाई है। यह विवाद अभी भी चल रहा है। 'नया कहानी' का 'पुराना ही नहीं' 'नए' भी अपने अपने कोणों से देख परख रहे हैं। कुछ उनमें अस्तित्व को एकदम नकारते हैं, कुछ उस युग का सच्चा माध्यम प्रतिनिधि मानत हुए उसकी सार्वकता स्वीकार करते हैं।

इस निबंध में अलक का अपने कोण से 'नई कहानी' का विश्लेषण अभिप्रेत नहीं है। वह तो उन 'नए' पुराना के विचारों का उद्धृत करने—जिन्होंने इस पर सोचा समझा है—पाठक तक उनका निर्णय पहुँचाना चाहता है, ताकि प्रबुद्ध पाठक उनके निर्णयों पर विचार करके किसी सही निर्णय पर पहुँच सके

(जैनेन्द्र)



“मेरी यह प्रतीति है कि जितनी इस सम्बन्ध में चर्चा होमासा हुई है उतनी ही कथा के उत्कर्ष में बाधा पड़ी है। कथा सर्जक को अन्तरगता का मूर्त करती है। इस साधना का तत्त्व विश्लेषण से अधिक मूल्य है। कथा का स्वयं प्रतिष्ठ मानकर जब उसी का ऊहापोह हो चलता है तो बाहरा और मानुषिक तत्त्व प्रमुखता पकड़ते हैं और कथा

मनावश्यक के बीहड़ में भटक जानी है। शिल्प विद्या, कथन, कथ्य युक्त बाध, वस्तु-  
बाध आदि आदि भाषा की चक्का खाजिए वास्तु भारी भरकम मात्रा होगी। सक्रिय मुक्त  
उत्सव रस नहीं है।

नयी कहानी का अस्तित्व मेरी समझ में नहीं आ रहा है। नये लिखन का न मूल्य  
है और न अनेक है। नयी अपन अपन तरह की कहानी लिखन है। कोई उनमें अच्छी  
होती है, कोई श्रमिक अच्छी। कोई कम अच्छी। उन सभी का एक वर्ग में डालना  
जल्द ही तो उसके लिये लक्षण के रूप में अन्तर का एक ही रचा हो सकती है और  
वह समय हो। जसा कि सन् ५० के बाद को कहाना या स्वातन्त्र्य-पूर्वक और स्वात-  
न्त्र्योत्तर कहानी इत्यादि। इसका भी सम्बन्ध कहाना से उनका न होगा जितना माध-  
वार्तिकरण की मुद्रि-या से होगा। यह मुद्रिया अन्तर सभी एक और सर्वोत्कृष्ट के लिये  
उपयोगी दुष्सा करना है। बाट तो उनको नया कहानी को बना से लाजिए। पर  
उसका माधव प्रमुख मन्त्र में लिखी हुई कहानी के प्रतिरिक्त दूसरा न होगा।

मान लिया जाये कि पाँच साल दन मजदूर, जा लिख रहे हैं उस सबका मिलाकर  
जो सामान्य नमूना निम्नता है वह नयी कहानी है। तो अभिप्राय यह हो जायगा कि  
उन सबका का परस्पर मिश्रण या विभिन्न अस्तित्व नहीं है। बल्कि व एक कड़ी में  
पिरोय हुए हैं यदि उनका मजदूर-अस्तित्व है तो ऐसा हो नहीं सकता है। फिर भी  
यदि ऐसा होता है तो मानना होगा कि उनको जोड़ने वाली कड़ी गुण का नहीं लाभ  
की है।

जिन नमितिज नाम से हमारा काम चला करता है वह म न मड़ा होगा माना  
हूँसा होता है। उसमें सत्य को स्थिर बना लिया जाता है, जबकि वह गतिशील है।  
यह विमल विकासशील जीवन सत्य संहित होवा है और बौद्धिक विरसपण की  
प्रक्रिया अन्त में उसी मजदूर माना में कार्यक हो सकता है जितनी उस संहित  
जीवन तत्त्व पर कम कर ठहर पाता है।

इसलिए ऐसा माना है कि प्रजन समय का गहरा तत्त्ववाद हो गया है, तरन  
माहिय जीवन रहवा बना गया है। कारण, तत्त्वज्ञान मन्त्र-मन्त्र होतो है।  
प्रतिम विरसपण में वह महम जड़ित होतो है। परस्पर सम्बन्ध का क्षेत्र पर उसकी  
प्राप्तविनता प्रदिन नहीं हो पातो। जीवन से वह घना पड़ जानी है और मानव  
मन्त्रों को पुष्ट और शक्ति बनाने की उसमें धमता नहीं रह जाती। एक शब्द में,  
'य' उसमें नहीं रहता जो एक को दूसरे से मुक्त करना है। यहकृत ज्ञान भर र  
है, जिससे स्वत्व मपना और समाजत्व क्षीण होता है।

कहानी अथवा इतर साहित्य इसी जगह तत्वज्ञान से अलग हो जाता है। विश्वपण बौद्धिक होता है और ज्ञानोत्पादन में सहायक होता है। बल्कि इस ज्ञान का विज्ञान कहना चाहिए। किंतु यदि उमी का जीवन सामान्य में साध्य होना हो तो आवश्यक है कि फिर लोटकर सखिलपट सार से उसे संयुक्त किया जाय।

उस संक्षेपक तरह को मैं आस्था का नाम देना चाहता हूँ। आस्था का रूप सुनिश्चित मतलब का नहीं होता। आस्था प्रश्न से विरोधित भी नहीं होती, बल्कि प्रश्न आस्था के लिए खुरक जैसा जरूरी है। किंतु आस्था प्रश्न को प्रवर बनाता है उसे बस बौद्धिक जिज्ञासा का रूप देकर चुप नहीं रह जाती। आस्था में से यथा प्राप्त होती है, जिसमें न उठा प्रश्न बुद्धि का ही नहीं रह जाता, समूच जीवन से जुड़ जाता है। अतः विश्लेषण का उपयोग वहाँ स्वयं सिद्ध नहीं रहता, संक्षेपण में उसकी तिद्धि होती है। इस तरह कहानी में अवगाहन से अग्रिम सम्प्रेषण आवश्यक है आवश्यक है कि वह सहानुभूति के प्रवाह को छोड़ और बिजरी हुई मानवता में एक सूनता लाये।

इस वक्तव्य को नया कहानी पर घटान का प्रयास मैं नहीं पड़ सकता। कारण, मैं नयी कहानी के अस्तित्व को ही नहीं जानता। लेकिन हर काल में कहानी को यही करना पड़ता है और करना पड़गा। उसकी भक्तता और साधकता की भी यही कसौटी मानी जायेगी। आप विजने भी गहर पत की बात क्या न कहानी में डाल रहे हैं पर आवश्यक यह है कि वह पाठक के संवेदन का छूए, उसे छेड़े। इसीलिए बुद्धि का अमित शब्द-कौशल और ज्ञान का अमित प्रोत्थ उस कार्य के लिए अलग रह जाता है।

अतिव्यापकता से मुझे विशेष मना-देना नहीं है क्या के प्रकार को भी सीमा नहीं है। इसलिए मानी हुई विधा से भिन्न यदि कुछ भक्त-जैसी हो तो क्या में उसका भी स्थान है। प्रश्न यह नहीं है कि प्लॉट कितना है या है भी। प्रश्न यह भी नहीं है कि सामग्री क्या है, अतिव्यापक है, वास्तव, या अवास्तव या कल्पना का है। वस्तु तथ्य की दृष्टि में क्या के लिए कुछ भी निर्दिष्ट और निर्दिष्ट नहीं है। जो आवश्यक है वह यह कि उसमें सवादित हो और संवेदन का प्रमथन और प्रवहन हो। कहानियाँ लिखते लिखते मैं इस परिणाम पर आया हूँ कि इस सम्भाव्यता के लिए बौद्धिक विवेकलता को जितना कम कट दिया जाये उतना अच्छा है। अपेक्षा विशेष बड़ा हार्दिकता की है।

इधर पढ़ने में मान वाली कहानियाँ सब मुझे पसंद या नापसंद आती हैं, यह कहना सज्ज है। कई पसंद आती हैं, कुछ नापसंद भी। उन सबको एकजुट 'नयी कहानी' कह देने से निर्णय का काम मेरे लिए असम्भव हो जाता है। 'नयी कहानी'

क अस्तित्व का मुक्त पता नहीं है। फिर उसके बार में अंतिम वस्तु का प्रश्न नहीं रहता ? सत्क दल बंधकर नहीं रह सकते। सत्तन दलीय कार्यक्रम के रूप में कभी सम्पन्न नहीं हो सकता। भेदक स्वयं का सत्तन के साथ अभिन्न सम्बन्ध होता है। प्रत्येक (भवक) की आंतरिकता ही उसमें मूर्त होती है। इसलिए साहित्य के मामल में मध्य स्थापना के प्रवेश और प्रचनन का मैं कायल नहीं हो पाता। जमम अनिष्ट ही पडित होगा इसकी सम्भावना मैं नहीं देखता।

समय के साथ कुछ परिवर्तन ग्रान आवश्यक हैं। बारख जीवन विकासमान है और सम्पकों की व्यापकता बढ़ती ही जाने वाली है। आपसी धन देन बहुविध होगा और हमारे सामाजिक व्यवहार की इकाई बड़ी होती जायेगा। इसमें भाषा के और भाव के रूप बदलेंगे। पर यह कालकी सतत प्रक्रिया है। उसक फल की विकास कहना ठीक है उस फलकी विचित्रता करना ठीक नहीं है। साथ ही इस सब परिवर्तन की प्रक्रिया में प्रवृत्ताका मून भी रहता है। मूल्य वहा है। प्रजल परिवर्तनायता में उसका नूनन से बल वाक्य पर माता है, विकास खो जाना है।”

(गुलाबदास जोकर) :

उसन कहा था' से बकर यादव रावश, कमेश्वर तक की कहानी से मैं परिचित हूँ परंतु इन परिवय में तम्व प्रश्न का उत्तर देने की योग्यता मैं नहीं रखता।

परम्परा से लगे रहन से कोई भी सत्क सामर्थ्यपूर्ण सिद्धि प्राप्त नहा कर सकता। भाष ही साथ यदि वह परम्परा से विनकुल कट जाये तो भी उसकी कला नीत होन बन जादेगी। परम्परा तो व्यक्ति के रक्तस्रोत से जैसे जुड़ी हुई है। व्यक्ति यदि कलाकार रहा तो उस सात के संगीत से प्रत्यय प्रभावित होगा। भव कलाकार के लिए आदर्श स्थिति यही है कि परम्परा की शृलता से जकडा नी न जाये, न हा परम्परा की ओर घणा से देख। आज के क्या साहित्य की ओर दृष्टिपात करने पर ॥ बात का तम्व परिलगित होगा। आयाजन में, आविर्भाव में, अभिव्यक्ति में तथा और प्र 'ग' में आज की कहानी चाह जितनी क्रांतिकारी हो उसक प्रतीका की परम्परा को र्खें प्रयवा कल्या की सृष्टि र्खें तो उनकी तहां में हमारी परम्परा के स्वाकृत भावों, हमारे पुराण के देव-दानवा तथा तहां की तहां में कही-कही हमारी भावनाओं के स्तर भी दृष्टि पोवर हाने। भव इससे बिन्धित होने की आवश्यकता नहीं। परम्परा का सत्व ता व्यक्ति की चिराभों में वह रहा है, उसका उत्साह साधारणतया नष्ट नहीं होता भवत कलाकार की चिराभों से तो कभी नहा।

जनसाधारण व उत्कर्ष की, शायिता दलितों के उद्धार की, समाज सुधार की मंगल भावनाओं व प्रचार व प्रसार का, प्रगतिवाद को दृढ़भूत करने की आदि नाना प्रकार की भ्रायक मायताओं से रची जाने वाली कहानियों की बाढ़ के सामने नया कहानीकार जैसे प्रत्यक्ष तानकर खड़ा है, उसने सारी मायताओं का प्रस्वीकार कर दिया है। और इस प्रस्वीकार की उत्तेजना में वह हर बात का प्रस्वीकार करने पर तुल गया है। यह उसका और स्वयं साहित्य का दुर्भाग्य है। जितनी दृष्टि के प्रतिकार में लक्ष्य वस्तु भी तिरोहित हो जाये यह तो कोई आश्चर्य स्थिति नहीं है। जनजीवन नहीं, अपितु मानव जीवन, मानव हृदय, मानव प्राणी ही कहानी या अन्य साहित्य स्वरूप की बुनियाद है। उस मानव प्राणी को, मानव हृदय का साकार करने में अगर जनजीवन का भी चित्र बन जाता है तो बने। जनजीवन व प्रति प्रवृत्ति रखना ठीक नहीं। लेकिन कला का जनता की जुबान' बनना चाहिए कहने वाला का गाना भी सवधा प्रदीकार्य नहीं हो सकता। और न ही यह कहना कोई प्रश्न रखता है कि कला कबल कल्पनाओं एवं प्रतीकों का एक नवीन रूप सृष्टि है, नाई दुख भी रहे।

यही बात वासना एवं नैतिकता व निरूपण व विषय में भी कही जा सकती है। कृष्ण का विषय में कहा जाता है कि रूप से वे इतने अधिक आवृत थे कि कुरू कुंजा का उन्हें आकषण हुआ। रूप ही उन्हें नृत्त्य की ओर खींच ला गया। साहित्य में भी वही नैतिक नैतिक, उ नत उ नत, मुष्ट मुष्ट, सु दर सु दर इत्यादि का निरूपण ही जैसे कला का पर्याय बन गया था और इसका प्रतिरेक की प्रतिक्रिया अनिश्चय थी। वर्तमान जीवन की सकुलताओं ने कई मनाहियाँ (Taboos) को धर्महीन बना डाला इस मानी न भी वासना व अनैतिक पक्षों के निरूपण को प्रेरित किया बड़ा प्रवृत्ता से। प्रतिरेक हमेशा अनित्य रहता है, और इस अनित्यता के विषयों के प्रतिरेक का उद्घाटन भी अधिक नहीं दिख सकता, किन्तु भी स्वरूप में हम नव गिच सु दर कलाकृति मिल जाय तो फिर विरोध विवर्तित हान की कोई आश्चर्यवता नहीं।

तो, यह नयी कहानी हम ऐसी नख गिल सु दर कलाकृति दे सकती है क्या ? या फिर वह केवल पञ्चीकारों का एक यथ कला है ? 'यथ' विषय कुछ उन्नेजक है। पर नु इस आक्षेप का तथ्यास का तोलने की सत्परता भी यदि नई कहानी में नहीं है, तब तो उसे छोड़कर अधिक कष्ट भ्रमना पड़ेगा।

कवल नयी कहानी ही नहीं कला के आज के समान स्वरूपों के विकास में टेकनीक प्रति महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। मोदर्थ निर्माण में आयोजन का स्थान अत्यन्त उच्च है यह तो मानी हुई बात है—परन्तु अगर हम टबनाक ही की कला का पर्याय समझें तब तो अनुभव का सुरचित आह्वान प्रदान करने (Organisation of experience)

की अपेक्षा, अनुभूति से भी अधिक आकृति प्रदान करने की शक्ति को महत्व दें—आकृति रचना का पञ्चोक्तारी म यदि अतस्तत्त्व का भी विस्मरण कर जायें तो फलस्वरूप जिन कलाकृति का ज म हागा वह बाहे टक्काक, मार्गोनाइजेसन स्ट्रक्चर तथा पञ्चोक्तारी म कितनी भी तेजस्वा क्या न हो उसमें वर्तमान जीवन की कोई गम्भीर अनुभूति न होगी तो प्रशस्त यथार्थता प्राप्त करगो हो। कलाक decedent युगाका मनक कृतियाँ इसका प्रमाण बन सकती हैं। नये कहानीकार को इस भय स्थान की ओर सतक रहना होगा अनुभूति, आभयकित घोर सवन्ना यह कला मान क अपरिहाय म न हैं। इन्ही क मुनियोजित निभुज से कलाकृति का जन्म होता है। किन्तु, सपूर्ण आधुनिक भावबोध जिसे नया कहानी कहा जाता है उस स्वरूप के माध्यम से ही प्राप्त हो सकता है क्योंकि उसका शिल्प-प्रयोग अत्यन्त है, और कथन समय है यह बात भी प्रसक्त प्रतिगया किपूरा है। असंभव नयी कहानियाँ ऐसी भी हैं जिनमें शिल्प प्रयोग सिद्ध करने का न्य प्रयत्न की यदता व जाध लटक हुए दिखाइ देते हैं। आधुनिक भावबोध को सवेदित करने की क्षमता प्रथम योग्यता भी न हो ऐसी कई नयी कहानियाँ गिनायी जा सकना। अनुभूति प्रभियक्ति घोर सवन्ना का मुष्ट निभुज हा साथ भावबोध सवेदित हुआ हो घोर जिसका शिल्प प्रयोग अत्यन्त हो, कथन समय हो वह उत्तम कहानी है। ऐसी कहानी नयी नहीं है तो क्या दुःख। मसार का उत्तम कहानियो न भी यही किया है। आधुनिक भावबोध की बात का निया जाय ता देखा जाता है कि जब जब भी व उत्तम कहानियाँ लिखी गयी थी तब-तब उनमें सवेदित भावबोध अपने अपने तथापि कलाकृति चिरजीव हा बनी रहती है।

प्रश्न यह है कि एक आधुनिक कला जो सिद्ध करता है वह क्या गन्ने की कला उत्तनी ही सफरता से कर सकती है। उपागानो का प्रश्न सत्य महत्वपूर्ण है इस स्थान पर। आधुनिक कला का उपागान सत्य है। सम्यक साथ साथ मय जुटा रहता है। एव अनुभूति कार्य कर सकती है। फिर भी सत्य है, रग रग। सोचना यह है कि उपादान श्रेष्ठ से कला की प्रभिव्यक्ति के क्षेत्र म भी कोई अंतर पड़ता है क्या ? रग का अपना-अपना व्यक्तित्व होता है, उनका सम्यय सोपा हृदय से स्थापित हो जाता है। रग का सम्यय भी हृदय में स्थापित हो सकता है, परन्तु रग की सी सहजता से नहीं। प्रसक्त सत्य का माध्यम से रग की सिद्धि को प्राप्त करने की चपटा से कई प्रसक्तियाँ उत्पन्न हो जाती हैं, और कलाकार घोषक कुत्ते की तरह कही का नहीं रहता। यह प्रश्न नवल कहानी ही नहीं सपूर्ण आधुनिक को स्पष्ट करता है।



भिन्न भिन्न उपादानों से भिन्न भिन्न सौन्दर्यों को सृष्टि होती है। प्रत्येक का अपनी सभावनाएँ तथा मर्यादाएँ हैं। किसी एक कला के उपादानों से दूसरी कला की सिद्धि की चेष्टा करना, तथा उसके उच्चावच, मर्मों को उसी दृष्टि से तोलना विशेष मर्म नहीं रखता।

धैसे नयी-पुरानी आदि विभेद तो हम अपनी सुविधा के लिए बना सकते हैं, आलोचना आदिमें इसमें सुविधा रहती है। वस्तुतः कवि नरसिंह मेहता को एक पंक्ति प्रस्तुत प्रश्न के सदृश में भी मर्त्य है—जो उत्तम है वह चाहे नयी हो, पुरानी हो, त्रिविध हो या आत्मभोग की हो, उत्तम कहानी उत्तम ही रहेगी—“नाम रूप रूपाय मते तो हमनु हेम होये” (सुवर्ण क विभिन्न चलकार का नाम भिन्न है, वस्तुतः सुवर्ण सुवर्ण ही है।)

नाटक बाजार में फैमकर यथ मसमत्तान्तर—वाद—विवाद करके कटुता का जम देना उचित नहीं। प्रबन्ध ही विचारों की स्पष्टता तथा तार्किक व्यवस्था के हेतु कुछ सीमा तक ऐसा वाद विवाद अनिवार्य है परन्तु उह पक्ष की लकीर मानकर परस्पर मतभेद की कटुता से भर देना योग्य नहीं।

(चन्द्रगुप्त विद्यालकार) :

“साहित्य की सबसे नयी विधा कहानी है। उसीसे नदी का उत्तरार्द्ध में उसका जन्म माना जा सकता है। यह वह युग था, जब साहित्य की मय विराएँ रीति वाली बंधना से मुक्त हो रही थीं पर आज़ादी के उस युग में जन्म लेकर भी कहानी कमश अधिक अधिक बंधना में जकड़ती चली गयी। इतना कि एक अनन्धी कहानी लिख सकना प्रायः दुस्साध्य कार्य बन गया।

बीसवीं सदी के प्रथम दो दशकों के अन्त तक कहानी का जो विकास हुआ था, उसे दृष्टि में रखकर कहानी की यह परिभाषा की जा सकती है—“किसी एक भाव का घटनात्मक, इकहरे, सम्पूर्ण चित्रण का नाम कहानी है।”

उससे पूर्व या तबतक जो कहानियाँ लिखी गयी थी उनमें से कितनी ही प्रायः मनोरंजक थी, उनमें गहरा चिन्तन या और वे पाठक को न सिर्फ अभिभूत कर लेती थी, अपितु वे उसके मन पर गहरी छाप छोड़ जाती थी। पर था तो उनमें सिर्फ एक भाव नहीं बल्कि घनेक भाव रहते थे और या उन कहानियों का चित्रण इकहरे न होकर दोहरा, तिहरा बल्कि कभी कभी और भी अधिक सहोवाला होता था। उदाहरण के लिए बामस हाइको की ‘डेम दि फर्स्ट’, ‘डेम दि सेकण्ड’ आदि कहानियाँ, जो प्रायः मनोरंजक हैं और बहुत अनन्धी लेखी गयी हैं, पर आज उह नावमद

की धरोहरों में ही रखा जायेगा। हमारे देश में गरवपूर्ण बहुसांख्य जैसे महोच्च कोटि के धनिकों की कितनी ही कहानियाँ इसा डा की हैं। नहुआ मनास्जक होने पर भी उन्हें कहानी के स्वीकृत वर्तमान कर्म के अनुसार धन का कमाना नहीं कहा जा सकता।

कहानी के इसी अत्यन्त बड़े कमाय और एकादक रूप के कारण बहुत से प्राचीन कहानी का साहित्य की सबसे अधिक कठिन विज्ञान मानने लगे। उनका कहना है कि मन्त्री कहानी इस तरह की रचना है जैसे किसी से कहा जाये कि 'मिर्क एफ' देवा में अत्यन्त धोखे बजाहति का निमात्र करो। उनका यह भी कहना है कि सवार भर में प्रति वर्ष वस मन्त्री कहानियाँ भी गायद हो लिवी जाती हैं। उनका यह भी विश्वास है कि एक लख एक भी मन्त्री कहानी बिचकर समर हो जायता। उनका यह भी मानना है कि एक मन्त्री कहानी पढ़कर अनुभूतिगोचर पाठक उस कहानी का प्राचीन नुवा नहीं मन्गी। उस तरह की मन्त्री कहानी पाठक के मन का ही एक भाग बन जाती है। राजावा का तो विचार है कि भारत में अभी तक एक भी पूरी तरह निर्दोष कहानी नहीं लिखी गयी। उनका यह भी ध्यान है कि विश्व भर का पात्र तक की वास्तव में मन्त्री कहानियाँ का बीच में पड़ा है अधिक बड़ा समूह नहीं बन सका।

य मन्त्रियों में यहाँ इस उद्देश्य से लिख रहा हूँ कि मन्त्री और निर्दोष कहानी का कुछ सम्बन्ध की जा सके। यह किन्तु विविध स्थिति है कि साहित्य की जो विद्या आज सबसे लोकप्रिय है (जिन विद्या में प्रति मान बहुत बनी सत्ता में 'रचनाएँ' की जा रही हैं) (मन्त्राज है कि आज तक सिर्फ हिन्दी में तात्त हजार भार भारत में दो लाख में ऊपर कहानियाँ प्रति वर्ष लिखी जा रही हैं) वह विद्या वास्तव में इनकी कठिन है। यह एक विविध विरोधाभास का प्रभाव होता है कि कहानी नामक यह लोकप्रिय विद्या एक भार इतनी सरल है कि प्रत्येक मानविक स्तर का व्यक्ति मात्र कथन पकड़न ही कहानी लिखने लगता है और दूसरी ओर मन्त्राज मन्त्राज मान जान बाध सबक जीवन भर में एक भी वास्तव में मन्त्री और पूरी तरह निर्दोष कहानी नहीं लिख पाते।

इस विविध परिस्थिति के विनाश विदाह होना स्वाभाविक था। मुन्त्र ठा माधवर्ष इस बात का है कि यह विदाह इतनी देर बाद क्यों हुआ। हिन्दी में आज 'नयी कहानी' नाम का जो भाषातन्त्र जारा है, वह भाषिक रूप में उक्त स्थिति के निताफ विरोध का है। मन्त्र देखा में इस स्थिति के परिलामस्वरूप कहानी के रूप और शैली में जो परिवर्तन आये हैं हिन्दी का 'नया कहानी' भाषातन्त्र उचित स्पष्ट प्रभावित होत हुए भी जरा अधिक उग्र और कुछ भया तक फेनटिक बन गया है।

सबसे पहले बात तो यह है कि उक्त भाषातन्त्र के चानचा ने कहानी की उक्त

स्वीकृत रूप रखा को अस्वीकृत कर दिया है। उन्नीसवीं सदी के बहुत से कहानीकार कहानी में एक से अधिक भावों का गुथीला चित्रण करते थे और इसी कारण बाद में उनकी कहानियाँ दापपूर्ण मानी जान लगी थी। आज हिन्दी का 'नया कहानी' बिना किसी भाव के भी लिखा जा सकता है। किसी भाव का चित्रण न हाकर नया कहानी' बस किसी अस्थायी मनादशा परित्यक्ति या वातावरण का घुमावदार, गुथीला या एकदम हलका चित्रण भी हो सकता है।

कहने को यह भी कहा जा सकता है कि इस तरह कहानी का बँधी हुई सीमाओं की बंध से छुटकारा दिया जा रहा है। पर वास्तविकता यह है कि कहानी नामक इस नये साहित्यिक माध्यम से जो बड़ा-बड़ी अपेक्षाएँ की जाने लगी थी, उन्हें 'वाद' देकर प्रचलित आ-दालनों द्वारा इस माध्यम का सरलीकरण किया जा रहा है। मालोचक और पाठक कहानियों के रूप के सम्बन्ध में अपना दृष्टिकोण बदल लें, तो उन्हें सभी तरह का कहानीयाँ सन्तोषजनक प्रतीत होन लगेंगी।

दूसरे महायुद्ध के आसपास से कला और साहित्य पर एंस्ट्रैट प्रभाव भी पड़ है। आज के विश्व की परेशान करने वाली परिस्थितियाँ उनके मूल में हैं। एटम शक्ति के इस युग में एक तरफ मनुष्य के सम्मुख समृद्धि और ऐश्वर्य की असीम सम्भावनाएँ दिखाई दे रही हैं दूसरी तरफ इसी शक्ति से सम्पूर्ण मानव-जाति का विनाश भी सम्भव दिखाई दे रहा है। ये परिस्थितियाँ न सिर्फ कला, नृत्य, संगीत और साहित्य पर एंस्ट्रैट प्रभाव डाल रही हैं, अपितु मानव सम्बन्धों को भी प्रभावित कर रही हैं। पिछले कुछ समय से विश्व की कहानी पर भी एंस्ट्रैट प्रभाव पड़ है। पर जहाँ तक भारत का सम्बन्ध है ये प्रभाव सहज स्वाभाविक न होकर काफी अ-शौं तक घाटा पित प्रतीत हो रहे हैं। हमारे देश में ये एंस्ट्रैट प्रभाव मुख्यतः अनुभूति द्वारा हृदय के भीतर से उत्पन्नित नहीं हो रहे हैं, वे बहुत अ-शौं तक बाह्य अध्ययन के आधार पर आरोपित से प्रतीत होते हैं। फिर भी मेरी राय से, वे निस्सन्देह उसी तरह ग्राह्य हैं, जिस तरह वैज्ञानिक आविष्कार मानव मात्र के लिए ग्राह्य होते हैं। पर यह भी स्पष्ट है कि एंस्ट्रैट कहानी की सम्प्रेषणीयता सीमित रहेगी।

जहाँ तक अच्छी कहानी का प्रश्न है, मैं व्यक्तिगत रूप से कहानी के उसी निर्दोष आदर्श को पसन्द करता हूँ, जिस आदर्श तक कहानी को एंस्टन जल्लव ने पहुँचाया था। मुझे अभी तक यही पसन्द है कि इन्सान सारी उम्र अच्छी कहानियाँ लिखने का प्रयास करे, और जितनी उसे सफलता मिले, उससे वह अनुप्रेरित और उत्साहित हो।

दूसरी ओर मैं कहानी के क्षेत्र में पूरी आजादी और अधिक से अधिक विविधता लाने का भी हिमायती हूँ। इस दृष्टि से मैं उन सभी नये-नये परीक्षणों को पसन्द करता हूँ, जो कोई भी नया या पुराना कहानी-संलग्न ईमानदारी से अपनी ताजा कहा निया में करता है। मुझे विश्वास है कि नये प्रयोगों में कहानी क्रमशः अधिक समृद्ध बनेगी और उसकी ताजगी भी कायम रहेगी।

सन् १९२८ का वह दिन मुझे आज भी स्मरण है जब विद्यार्थियों की एक सभा में मैंने प्रेमचन्दजी से पूछा था कि कहानी की विकासमान तकनीक के सम्बन्ध में हम कुछ बताइए। मेरे इस प्रश्न पर जो खोलकर हँस मैंने क बाद प्रेमचन्द जी ने कहा था—“यह सवाल साहित्य के किसी प्राफेसर से कहना। मैं तो भाई, कहानियाँ लिखता हूँ, जो पढ़ने की चीज है। हा, मेरी किसी कहानी का नुस्खावीनी करना चाहो, तो तुमों से कर सकते हो, और उस पर मैं अपना कफियत भी दे सकता हूँ।

बहुत समय तक हिंदी में कहानी सम्बन्धी चर्चाएँ सबसे कम हुईं। सन् १९४५ में हिन्दी के एक सम्मान्य प्रोफेसर (जो आज बहुत प्रमुख व्यक्ति हैं) ने साहित्य सर्वधी चर्चा में जब कहानी का जिक्र धाया तो उन्होंने कहा—“कहानी के बारे में वादविवाद का प्रवाल ही नहीं उठता। यह तो सुस्पष्ट बचि का प्रश्न है। अच्छी और बुरी कहानी में तो कोई माधुर्य पाठक भी विवेक कर सकता है। साहित्य की सभी विधाओं में कहानी पर सबसे कम बहस की जा सकती है।”

आज सन् १९६४ में स्थिति यह है कि कहानी पर धाये दिन इतनी चर्चाएँ टा रही हैं कि साहित्य की किसी और विधा पर धायद ही इतनी तीव्र और इतनी अधिक बढ़त हुई हो। नयी कविता पर हिन्दी में वाकी वाग्विवाह हुआ था, पर वह चर्चा मुख्यतः नई कविता के मामलों और उसने आलोचकों तक ही सीमित रही थी। आज लगभग एक ही आयु के और प्रायः सभी स्तरों के बहुत से कहानी संलग्न में परस्पर भारी मतभेद दिखाई दे रहा है। यह कहने में भी धायद प्रतिशयोक्ति न हो कि पिछले १८ महीना में हिन्दी में इतनी कहानियाँ नहीं लिखी गईं जितने कहानी सम्बन्धी मल या मोट लिख गए हैं। वह भी कहानी संलग्न की नसम में।

जार्ज बार्नार्ड शॉ ने कहा था कि जो व्यक्ति प्रतिभावान होता है, वह मूखनात्मक साहित्य लिखता है। जिस व्यक्ति में मौलिक निम्न की प्रतिभा नहीं होती, वह आलोचक बन जाता है। अच्छा निर्माता बहस में नहीं पड़ता, वह निर्माण करता है, जिसमें निर्माण करने की शक्ति नहीं है, वही बहस करता है। पर बाद में स्वयं बनाए गए साहब भी साहित्य सम्बन्धी चर्चा में आता निवृत्तों धने लगे दे।

मेरा ख्याल है कि कहानी सम्बन्धी ये चर्चाएँ हिंदी पाठकों के लिए साधारणतः और हिंदी कहानी के लेखकों के लिए विशेषतः उपयोगी सिद्ध होगी। कहानी सम्बन्धी कितनी ही बातों के स्पष्टीकरण में इस चर्चा से मूल्यवान् सहायता मिलेगी। इस दृष्टि से ये चर्चाएँ वाञ्छनीय हैं।

पिछले तीन दशकों में हिंदी कहानी पर बहुत से प्रभाव पड़े हैं। ऐसे प्रभाव जिन्होंने हिंदी साहित्य को इस विधा में भी प्रभावित किया था। उन प्रभावों की चर्चा इस दृष्टिकोण से सम्भव नहीं है। पर यह अवश्य विचारणीय है कि प्रगतिवाद प्रयोगवाद आदि आंदोलनों का हिंदी कहानी पर किस तरह का प्रभाव पड़ा। आज के युग में विश्व भर के साहित्य में आदर्शवाद, भावुकता और रोमांस का दाम गिर गए हैं। जाहिर तौर से हिंदी कहानी पर भी कुछ इस तरह का कम अधिक प्रभाव अवश्य पड़े है। पर यह बात बहस तलब है कि हिंदी साहित्य मुख्यतः और हिंदी कहानी साधारणतः किन्हीं नये मूल्यों को (ऐसे मूल्यों को जो आज के पक्षीदा और परस्पर विरोधी शक्तियों से आक्रान्त जीवन से सीधे रूप में सम्बद्ध हैं) स्थापित करने में भी कामयाब हुई है या नहीं। दूसरे शब्दों में उसका स्वर विनाशात्मक है, या निर्माणात्मक है, अथवा दोनों का अभिनवनीय समन्वय है।

कहानी में कथानक अनिवार्य है या नहीं—यह बात भी आज बहसतलब कही जा सकती है। इन शर्तों में, जिनमें कथानक को किसी घटना या घटनाक्रम का क्रम इच्छित माना जाता था। जो आज भी कहानी में एक या अधिक पात्र या कम अधिक परिस्थितियों के द्वारा दोनों का होना आवश्यक है और इन शर्तों में अभी तक कथानक को कहानी का अनिवार्य अंग अवश्य कहा जा सकता है।

वर्तमान कहानी का जन्म उत्तीसवीं सदी के उत्तरार्ध में हुआ, पर साहित्य की यह विधा जिन भाषा और कथाओं की वंशज है उनकी प्रायः मानव इतिहास से कम सम्बन्धी नहीं है। उन भाषा या कथाओं में कथानक ही प्रमुख रहता था। सुनने वाले या पढ़ने वाले यह जानने को उत्सुक रहते थे कि 'आगे क्या हुआ?' उन भाषा या कथाओं के मुख्यतः दो उद्देश्य थे। पहला उद्देश्य मनोरंजन और दूसरा उद्देश्य शिक्षा। कहते हैं कि आचार्य विष्णु शर्मा ने पंचतन्त्र की नीतिमत्तापूर्ण कथाएँ सुनाकर ही राजपुत्रों को राजनीति विचारदत्त बना दिया था। उस युग में केवल मनोरंजन के लिए भी बहुत बड़ी सरया में कथाएँ लिखी या कही जाती थीं। पर समझदार पाठक या श्रोता उन कथाओं की अधिक कद्र करते थे, जिनमें मनोरंजन के साथ कुछ शिक्षा भी हो। उक्त दोनों उद्देश्योंकी दृष्टिसे भाषा में कथानक ही सबसे अधिक महत्वपूर्ण उपादान माना जाता था। यह कथन भी प्रतिष्ठित न होगा कि ठीक ढंग से लिखा गया

कथानक ही गाथा या कथा का रूप धारण कर भता था।

कहानी नामक इस नयी साहित्यिक विधा में स्पष्टतः कथानक का उक्त एकाधिकार जाता रहा। यह ठीक है कि कहानी में भा कथानक एक अनिवार्य और मूल्यवान् महत्वपूर्ण उपादान बीसवीं सदी के पूर्वार्द्ध तक, बना रहा। पर वह ध्वला उपादान नहीं रहा। कहानी में अन्य भी कुछ उपादान महत्वपूर्ण यहाँ तक कि अनिवार्य बन गये। प्रकृतिय परिवर्तन ही यह प्राया कि कहानी में कथानक स्वयं लक्ष्य नहीं रहा। वह कुछ समय बाद कहने का माध्यम बन गया। बहुत समय तक कहानी में सिक कोई एक प्रधान भाव प्रावश्यक माना जाता रहा और कथानक उसके चित्रण का माध्यम बन गया। प्रकृतियाँ कहानी की परब ही यह बन गयी कि उसका राष्ट्रीय भाव कितना प्रभावशाली है, उसका स्वरूप कथानक कितना समतुल्यपूर्ण है और सारी कहानी में एक सन्देश क्या भा फलतः नहीं है, ऐसा नहीं है जो उक्त के राष्ट्रीय भाव के चित्रण में सीधे रूप से सहायक न हो।

इस तरह कहानी का राष्ट्रीय भाव उसके कथानक से कहीं अधिक महत्वपूर्ण बन गया। कहानी में घटनाक्रम का उसमें भरपूर स्थान माना उक्त मूल्य परिवर्तन का कारण धीरे धीरे ध्यान लगा। पामस हार्डी सफ़र तुरन्तव तक का कहानियाँ में भा लम्बे बड़े घट्य में मनोरंजक घटनाक्रम विवृत रहते थे, जिनके कारण उनकी कहानियाँ कभी बहुत लाकप्रिय रही थी, व प्रब कहानी के दोष पतीत होन लगे। मोपासा और एष्टन बेसव ने इकट्ठर कथानक की वाली कहानियाँ कहा। प्रथम लोकप्रिय हो गयी। साहित्य और कला के क्षेत्र में जो रूचि परिवर्तन आ रहा था, उसमें गहरे रंगों का स्थान हल्के रंगों का दे दिया। चित्रकला में जिस तरह शब्द और अनुपात का महत्व कम हो गया, उसी तरह साहित्य में भी बिना आयास समक में माने बाध घटनाक्रम और भाव प्रवणता दोनों का महत्व कम हो गया।

उक्त रूचि-परिवर्तन का सीधा प्रभाव कहानी के रूप पर तो पड़ा ही, सबसे अधिक दस्तने कथानक की कल्पना को प्रभावित किया। कथानक विरल कहानियाँ काफ़ी बड़ी लादाद में लिखी जान लगी। ऐसी कहानियाँ, जिनमें काल और पाथा की स्पष्ट सुष्टि बिने बिना किसी मूड या किन्ही परिस्थितियों के हिलसिल का हल्का-सा, हल्का रेलाओं भर-सा चित्रण हो। इस हल्के चित्रण में बहुत जगह अन्य भा काफ़ी हल्का बन गया। होमियापेपिक डोज या चित्रण और होमियापेपिक डोज सा ही अन्य। हम मानना चाहिए कि प्रकृतिय-न्यून सैन्सिटिव हृदयों पर उनका गहरा प्रभाव पड़ा।

यह ठीक है कि ये कथानक-विरल कहानियाँ विश्व भर में कहा भी प्रभा तक खूब लाकप्रिय नहीं बन पाया। पर इन कहानियाँ के प्रसक्तों की दलील है कि

एण्टन चैसव जैसे श्रेष्ठ लेखक का कहानियाँ भा जानूँसी कहानियाँ के समान लोक प्रिय नहीं हो पाया। इससे लोकप्रियता का साहित्य की श्रेष्ठता की कसौटी नहीं माना जा सकता।

व्यक्तिगत रूप से मैं रुचि की नवीनता का साहित्य का श्रेष्ठता की कसौटी नहीं मानता। हल्क रंगा से लोग ऊँच जाने हैं ता शोच और क्लेश करने वाले रंग पसन्द करने लगते हैं। उनसे ऊँच है तो पहलू की अपेक्षा भी हल्क रंगा की मांग होन लगती है। यह तो वेसा ही बात हुई है जैसी स्थिया क बाला की बनावट, उनकी साज सज्जा और उनके वस्त्रों में प्रति वर्ष परिवर्तन जरूर आता है, पर यदि आप पिछले ५० वर्षों के फैशन को एक माय रखें, तो पायेंगे कि वही फैशन थोड़े बहुत रङ्ग बदल के साथ पुनः वापस आते रहते हैं। पिछले ४० वर्षों में पुरुषों के पट्टों की मोरिया दोबार चौड़ाई की ओर गया है और चार बार सगो की ओर। आज कल व इतना तग हो गया है कि पष्ट और गम पाजामे में भेद करना भी कठिन हो रहा है। साहित्य या कला का इस सभा कथित नवीनता के दृष्टिकोण से मापना एक भारी भूल होगी।

मेरी राय से कहानी में कथानक का महत्व आज भी बहुत अधिक है। यह ठीक है कि कथानक स्वयं सभ्य नहीं है, वह कुछ और बात कहने का माध्यम भर है। पर अच्छा कथानक कहानी को प्राणमय और शक्तिशाली बना देता है। आज भी—सन् १९६४ में भी। यह ठीक है कि कहानी के कथ्य (वैशेष्य भाव), कथानक और रूप (कर्म) तीनों का श्रेष्ठता के बिना कोई कहानी प्रथम श्रेणी की नहीं बन सकेगी। और इसीलिए तो मैं कहता हूँ कि किसी भी देश में कथानक को उपेक्षणीय नहीं माना जा सकता। यह ठीक है कि मौलिक कथानकों का कल्पना कर सकना भी कोई आसान काम नहीं है। एक तरफ कथानकों में पुनरावृत्ति आने और दूसरी तरफ वास्तविकता पर आधारित नये कथानकों के निर्माण में कमी इन दो कारणों से भी कथानक निरलता की प्रवृत्ति यावक बनी है। पर यदि कोई प्रतिभाशाली लेखक आज भी मौलिक रूप से मौलिक कथानकों की कल्पना कर सकता है, उसके पान कहने को बहुत दुर्लभ है, और कहानी के पाम पर उसका प्रभुत्व है, तो उसकी कहानी न सिर्फ बहुत लोकप्रिय सिद्ध होगी, धरिनु वह अत्यन्त श्रेष्ठ कौटि की भी होगी।

विश्व साहित्य में कथात्व की प्रधानता प्रारम्भ ही से रही है। नाटक तो कथानक के बिना चल ही नहीं सकता, प्राचीन धार्मिक साहित्य भी सभी देशों और सभी कालों में कथाओं का आश्रय देता रहा है। महाकाव्यों में भी कथानक आधार के रूप में रहता आया है। यहाँ तक कि भूतकला, चित्रकला, नृत्य और संगीत भी विश्व के सभी देशों में कथानकों का आश्रय लेकर पनपे। प्राचीन और मध्यकालीन

विश्व-साहित्य में जो किसी भी भाषा में बहुत बड़ी मर्यादा में पतन होती है, उनका क्षेत्र और उनके प्रकार जैसे अलग हैं। मनुष्य, पशु, मनु, देवी देवता कृष्ण, परिया यहाँ तक कि यह उपग्रह इन भाषाओं के पास हैं और उनके माध्यम में साहित्यकार चाहें जिन तरह के भाषा की प्रभिव्यक्ति विस्तृत काल में करता रहा है।

पर उसी सदी में जब कहानी नामक एक नए साहित्यिक माध्यम का विकास हुआ तो उक्त भाषा और कथाओं का जैसे तयसकर पमान में बाधा जाने लगा। क्रमशः कथानक के माध्यम से किसी एक भाषा का इकट्ठा विवरण ही 'कहानी' नामक इस नयी विधा का ध्येय बन गया। एक प्रच्छा कहानी में ऐसा एक बाध्य तो क्या, एक सा-तक भी असह्य रूप माना जाना लगा, जो कहानी के उक्त इकट्ठे बन्दाय भाव के विवरण में सीधे तौर से सहायक न हो। इस तरह उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध में, जब नए साहित्यिक विधाएँ क्रमशः आजाद हो रही थी, ध्वन्य, प्रत्यकार, अनुप्रास रस संगति आदि की परम्परागत भाषाओं से प्रभिव्यक्ति मुक्ति प्राप्त कर रही थी, कहानी नामक यह नई साहित्यिक विधा अपने लिए ऐसे बन्धनों का निर्माण कर रही थी, जो इसे एक दम बंधा हुआ, नपा-तुला और एंग्रेज बना रहे प। प्रच्छा कहानी पूरे बारीकी और हासियारी से तय्यार गये होकर के समान बन गई थी।

यह स्थिति कुछ प्रशासक तक प्रत्याभाषिक थी। कहानी एक तरह साहित्य की प्रत्यस्त लाक्षणिक विधा थी, दूसरी तरफ प्रच्छा कहानी लिख सकना एक दुस्साध्य काम बन गया था। इससे कहानी मन्त्र-भी भाष्यताओं में परिवर्तन आना अनिवार्य था। यों यह परिवर्तन न जान जिस तरह और कितने बरसा में आता, पर बीसवीं सदी में कुछ ऐसी ऐतिहासिक घटनाएँ हुई, जिन्होंने सभी कुछ बदल दिया।

बीसवीं सदी के दोनो विश्व युद्धों ने मानव जाति के पुराने मूल्यों को जैसे तहस-नहस कर दिया। पिछली कुछ सदियों में जो सत्पाएँ धीरे धीरे कमजोर हो रही थी, जो नाशपाएँ क्रमशः बचनी पड़ती जा रही थी, उन सत्पाओं और भाष्यताओं को पहले विश्व युद्ध ने एक भारी धक्का दिया और विनाश दूसरे विश्व युद्ध ने जैसे एक साथ जब से उलाहकर फेंक दिया। अघिनार, आचार, मर्यादा आदि के मन्त्रधर्म में पुराने जमाने से बली भा रही सभी धारणाएँ एकाएक बदल गईं। ईश्वर, धर्म आदि प्रवर्तित भाषाओं का भय यदि पूरी तरह समाप्त नहीं हो गया तो वह बहुत हल्का जरूर हो गया।

इस सबका सीधा प्रभाव साहित्य पर भी पड़ा। मानवीय मूल्यों के परिवर्तन ने साथ मानवीय चेतना में परिवर्तन आना ही था। इस सबका एक प्रभाव यह भी हुआ कि साहित्य सही प्रयोगों में जनसाधारण को बन्धु बन गया। (यह साहित्य के



‘बहुजन हिताय’ का आदर्श एकल नया नहीं है, पर आज भाग्य, धर्म और ईश्वर पर से आस्था कम हो जाने के कारण ‘जनहित’ का मूल धर्म ही बदल गया है। परिणाम यह हुआ कि साहित्य मात्र के मायाम बढ गए। साहित्य की महत्ता बढी और उसका प्रभाव भी बढा। इस स्थिति के जो अर्थ परिणाम हुए, उनका उल्लेख यहाँ प्रामाणिक है।

कथा—साहित्य में उक्त परिवर्तनों को आत्म सात करने की सामर्थ्य अपेक्षाकृत अधिक थी। इससे परिचित परिस्थितियों में कहानों का रूप स्पष्टतः बदला। वह पहले की अपेक्षा अधिक विस्तृत हो गया। उपवास की टैकनीक में किसी तरह का परिवर्तन किए बिना उसके मायाम बढाए जा सकते थे। पर कहानी के स्वीकृत स्वरूप को कुछ अंगों तक बदले बिना, उसके मायाम बढाना आसान नहीं था। इससे दूसरे महायुद्ध के बाद कहानी का रूप बदला। केवल एक चमत्कारपूर्ण भाव के चमत्कार पूर्ण इकहुर चित्रण तक ही कहानी सीमित नहीं रही। (यद्यपि उस तरह की कहानी आज भी श्रेष्ठ, उपादेय और प्रभावशाली मानी जायगी।) आज बस एक मन स्थिति या एक प्रतीक या एक व्याख्यात्मक चित्रण के आधार पर भी कहानी लिखी जाने लगी है और सहृदय पाठक उससे रस ग्रहण करते हैं। केवल एक चरित्र चित्रण या मानवीय चिन्तन की एक झलक और यहाँ तक कि विचारात्मेक रैश्चरित्य भी किसी कहानी का उपादान स्वीकार किए जा सकते हैं। इसी तरह स्वयं या रिपार्ताज को आज कहानी के अंतर्गत ही माना जाने लगा है। कहानी के इन बदल हुए मायामों से, मरी राम है कि, कहानी की सामर्थ्य और कहानी का गुणत्व और भी अधिक बढा है। वह कम नहीं हुआ।

जहाँ तक हिन्दी कहानी का सम्बन्ध है हिन्दी कहानी पर ये प्रभाव स्वाधीनता के उपरान्त पड़ने प्रारम्भ हुए। उस युग में हिन्दी कहानी की तीसरी पीढ़ी सामने आ रही थी। इससे द्वितीय में कहानी के मायाम विस्तृत करने में तीसरी पीढ़ी का योगदान सबसे अधिक महत्वपूर्ण है। भीष्म साहनी मोहन रावें रामकुमार, राजेन्द्र यादव, निमल वर्मा हज़िगकर परसाई कृष्णा सोबती, उषा त्रिभुवन आदि भेदों ने हिन्दी कहानी में इस सम्बन्ध में जो नये प्रयोग किए उनसे हिन्दी कहानी क्षेत्र निस्संदेह विस्तृत हुआ है।

यहाँ तक तो ठीक। पर साहित्य की शक्ति और उसके मायाम विस्तृत हो जाने पर भी उसके आधारभूत तत्त्व तो आज भी वही है। साहित्य का ध्येय भव ही बदल गया हो, पर रस आज भी उसका आवश्यक लक्षण है। रस के अतिरिक्त साहित्य में बुद्धित्व का चमत्कार तथा संवेदनशीलता—ये दोनों आज भी उसी तरह आवश्यक

है जिस तरह आज से हजारों वर्ष पूर्व आवश्यक थे। कहानी की टंकनीयता चाहे जितनी बढ़ल जाए, उसका आग्रह चाहे जितना विस्तृत हो जाए, पर यदि उसमें रस, बुद्धित्व या मयदानशीलता की गूँथता आ गई, तो वह अच्छी कहानी किस तरह बन सकेगी ?

कहानी की बात करते हुए मैं पुनः इस बात पर बल देना चाहता हूँ कि कहानी का परिधान चाहे जो हो उसमें वस्तु की जगह कभी सहज नहीं की जा सकती। वस्तु या तत्व का सम्भाव या उनकी 'गूँथता' अच्छे से अच्छे रूप में लिखी गई कहानी का ही कमजोर बना देगी।

बहुत से प्रबुद्ध पाठकों की चिट्ठियाँ मुझे इस आशय की मिली हैं कि पिछले कुछ समय से हिन्दी कहानी का स्वर मशीनता का भार जा रहा है। उनकी शिकायत है कि आज ऐसी कहानियाँ बहूँ अधिक सतर्कता में लिखी जा रही हैं, जिनमें वामना के चित्रण के साथ साथ सैकड़ों मल्लोत्पत्ति का विस्तृत या अति स्पष्ट वर्णन रहता है।

मैं अब बात तो यह है कि मेक्स को प्रगतिशीलता देने की प्रवृत्ति केवल हिन्दी कहानी में ही नहीं है यह प्रवृत्ति आज प्रायः सभी भारतीय भाषाओं की कहानियों में विद्यमान है। अतः आज की विश्व कहानी के सम्बन्ध में तो यह शिकायत और भी उग्र रूप में की जा सकती है। दूसरे विश्वयुद्ध के समय पाम यह प्रवृत्ति सबसे पूरा इटैलियन और फ्रेंच कहानियों में दिखाई दी। या वामनायुद्ध और मशीनता कहानियाँ बहुत पहल से लिखी जा रही हैं पर उन्हें अपने तत्व की रचनाओं के रूप में ऐसे लोग लिखने थे, जिन्हें माहिर्य में सम्मान का स्थान प्राप्त नहीं था। दूसरे महायुद्ध के समय पाम फ्रांस और इटली के कुछ बोली के शक्य मानव सैकड़ों मल्लोत्पत्ति का खुला चित्रण अपनी रचनाओं में करने लगे। 'गुरु' गुरु में पाठकों को यह काफी स्पष्ट भी प्रतीत हुआ, क्योंकि उन रचनाओं पर मशीनता का आरोप कुछ मातृवका ने किया था। पर बाद में यह जैसे एक नया फैशन बन गया। नाम कीदमा कर यह एनीटीमिकल तथा फिजियोलॉजिकल चित्रण बहुत से पाठकों का उद्दीपनपूर्ण प्रतीत न होकर नीम बना निकल चला मा जान पड़ा। ऐसे मातृ का गान, जिसकी जहरीला बेला निवाल हो गई हो।

यह भी ठीक है कि पिछले २० वर्षों में सैकड़ों सम्बन्धी वस्तुओं के मान या पैमाने बढ़ गए हैं। इसके अनेक कारण हैं। दूसरे महायुद्ध के दौरान में विनाशपूर्ण युद्ध के देशों के सामाजिक जीवन में भारी परिवर्तन आए थे। जिन दिनों इंग्लैण्ड पर जर्मन हवाई जहाज बमबारी कर रहे थे, लन्दन के हवाई-सामान नागरिक भूमि के भीतर के रेलवे प्लेट फार्मों पर सोने थे। वहाँ निरन्तर प्रवास रहता था और

बिसी तरह का पर्दा नहीं था। उन्ही फ्लेमिंगों के कुछ प्रकाश में युवक और युवतियों के रात्रि जीवन के सभी व्यवहार उन्मुख रूप से चलते थे। उन परिस्थितियों ने इन्हीं प्ले की मैक्स सम्बन्धी पुरानों परम्पराओं को जिस तेजी से सहस्र नहम किया, उससे बड़ा के जीवन और चिन्तन पर सीधा प्रभाव पड़ा। इटली और फ्रांस की परिस्थितियाँ उसमें भी अधिक विकट थीं और मानव को सेक्स प्रवृत्ति उन दिनों बहुत नग्न रूप में उन तथा अन्य यूरोपियन दशा में दिखायी दी थी। परिणाम यह हुआ कि इस सम्बन्ध के पुराने मीयार बदल गए। साहित्य में जो बातें कुत्सित और अश्लील माना जाती थी, वे बातें अब साधारण दिखाई देने लगीं।

साहित्य में मैक्स सम्बन्धी चिन्तन के मीयार चाहे जितने बदल जाए, हम यह नहीं भूलना चाहिए कि आखिर मैक्स मानव जीवन का एक अंग मात्र है। वही सम्पूर्ण जीवन नहीं है। फ्रायड के अनुसार मानव जीवन प्रारम्भ से ही मैक्स द्वारा परिवर्तित होता है। पर उसका यह अर्थ नहीं है कि मानव जीवन में मैक्स ही एकमात्र प्रेरणा है। जीवन की आधारभूत चित्तनी ही अंग प्रेरणाएँ भी हैं। मानव मन और मानव शरीर के कितने ही अंग और भाग हैं। मन की भूख से पेट की भूख शायद कहीं अधिक महत्वपूर्ण है। ईगो' तुष्टि सामग्य उक्त दोनों भूखों से भी अधिक तीव्र है, क्योंकि उसके लिए मनुष्य अपना जीवन तक कुर्बान कर देता है।

फिर भारत जैसे विशाल देश की अपनी समस्याएँ हैं, जिनकी जड़ें प्रति-क्रिया किमी भी अनुभूतिगील मन और भक्ति के पर अवश्य होनी चाहिए। हमारा देश भारत आज सामाजिक और आर्थिक पुनर्निर्माण में व्यस्त है, जिसके लिए भावनात्मक प्रेरणाएँ सबसे अधिक कीमती सिद्ध होंगी। स्वाधानता प्राप्ति के बाद इस विशाल देश की एकता पर कितनी ही बड़े-बड़े प्रहार हुए हैं। भाषा, धर्म, ज्योतिषी आदि के उदाला ने भारत की आधारभूत एकता को कितनी ही बार सतरे में डाला है। हमारे साहित्यकार को इन परिस्थितियों से गाफिल नहीं रहना चाहिए।

उक्त दोनों तथा अंग भी कितनी ही दृष्टियों से यह आवश्यक है कि हमारे साहित्य में सभी तरह के स्वर सुनाई दें। 'विशेषतः' भारतीय कहानी में क्योंकि कहानी की विधा बहुत अधिक प्रभावशाली तथा सशक्त है। मैक्स सम्बन्धी अच्छी कहानियों का आदर करते हुए भी मैं यह कहना चाहता हूँ कि मानव जीवन तथा अमानव विकास केवल सेक्स तक ही सीमित नहीं हैं। इससे कहानी के विषय और कहानी की वस्तु की परिकल्पना अधिक व्यापक धरातल पर होनी चाहिए। सभी कहानी-साहित्य अधिक समृद्ध, शक्तिशाली और विविध बनेगा।

साथ ही यह भी आवश्यक है कि कहानी के पाठक अपना दृष्टिकोण अधिक

विशाल बनाएँ। आज के मानव जीवन में जो बड़े बड़े परिवर्तन एक-एक आ गए हैं, उन्हें और उनके कारणों को व समझें और विश्व की बदली हुई सामाजिक परिस्थितियाँ और संज्ञाएँ नई धारणाओं से अपने को अपरिचित न रहें। नारी को हीन समझने वाले पर्व युग की सामाजिक तथा भाषा सम्प्रदाय मान्यताएँ आज के युग में काम नहीं रहीं, यह स्पष्ट है।

एक सुप्रसिद्ध भक्त क मर नाम हाल हा में धार पत्र का एक पद्य इस प्रकार है—'भापन सिखा है 'पिछले कुछ वर्षों से भारतीय कहानियाँ में किन हा नये प्रयोग हो रहे हैं। हिंदी में सम्भवतः सबसे अधिक मात्रा में हुए हैं। कहानी सम्प्रदाय पर ज्ञान और चर्चा जितना मात्रा में हिंदी में हुई है, उस मात्रा में धार ही सत्ता की किताब में भाषा में हुई है। यह ठीक है कि इन परिवर्तनों में सभी कुछ उपाय नहीं था। फिर भी सब मिलाकर उनमें ग्राह्य तत्त्व प्रभूत मात्रा में है। पर क्या भाषा यह नहीं मानते कि पिछले कुछ वर्षों में कहानी के सम्प्रदाय में सबसे अधिक धारणी भाँ हिंदी में ही हुई है? अथ भारतीय भाषाओं के साथ आपने हिंदी का क्या मिला दिया? इस तरह की बेसिर पर की नयी कहानी भारत की अथ किसी भाषा में लिखी जा रही है? सत्ता की समूह भाषाओं की बात जान दाजिय। उनमें प्रयोग का प्रयोग के रूप में ही लिया जाता है, मन्त्रालय नारेवाजी के रूप में नहीं। फॉच, इटैलियन, ग्रो जी आदि में दूसरे महामुद्र के बाद जो मुद्रि बाधित है भी, नहीं भी बाधित, सिनिजन प्रयोग पूरी और कही कही प्रभूरी ईमानदारी से हुए हैं, उन्हें तथा उनके कारणों का समझ बिना, उनका महारा विवचन किये बिना, हमारे कुछ अपरिपक्व पर महत्वाकांक्षी मुक्क लेखक उन प्रयोगों की बेजान मकल मात्र हिंदी को दे रहे हैं। और इसी मूलन व कल पर वे हिंदी लेखन के पिछले ५० वर्षों के सानदार रिकार्ड की सिल्ली उड़ा रहे हैं। जो कुछ उहोन नहा निखा, या उनसे पहले लिखा जा चुका है उस सबको वे वचनाना, दक्षिणामुखी, पिता पिता फारमूरे पर आधारित बता रहे हैं। इस मूलनपूर्ण श्रुतांवी में आपका ग्राह्य तत्त्व, वह भी प्रभूत मात्रा में कहें रिकार्ड व रहा है?"

इस पत्र में जो मुकलनाहट है, उसमें आज के युग का एक बहुत बड़ा समस्या मानता है। पिछली पीढ़ी के लेखकों में वर्तमान पीढ़ी की प्रवृत्तियाँ व प्रति जो मुकलनाहट है, वही मात्रा की पीढ़ी में युवकों व प्रति काव्य के रूप में परिणत हो गयी है हम याद रखना चाहिए कि हिंदी कहानी में आज चार पीढ़ियाँ एक साथ विद्यमान हैं। मुदशन, राम कृष्णाल और वृंदावनलाल वर्मा आदि से लेकर मनहर चौहान, विजय चौहान और रमण व ती तक चार पीढ़ियाँ साफ़ तौर से दक्षी जा सकती हैं।

इन सब पीढ़ियों की रूखनईली में, उनके दृष्टिकोण में उनकी एप्रोच में साफ अंतर है वह अंतर क्या है और क्यों है, इसे समझे बिना, इसने कारणों का विवरण किये बिना यदि हमारे कुछ लेखक नयी पीढ़ी या अपने सवाद की पीढ़ी के प्रति भुभला उठते हैं, तो नये लेखक जवानी के जाश में बुजुर्गों के प्रति भ्रांतिपूर्ण क्रोध में भी आ सकते हैं। एक दूसरे के प्रति तीव्रतापूर्ण यह व्यापक गलत फहमी आज हिंदी जगत की एक बड़ी समस्या बन गया है। पर यह हिन्दी-जगत तक ही कहाँ सीमित है? यह भी तो शायद आज के युग की एक व्यापक रन है। विश्व राजनीति से लेकर गांव की पचाइता तक ये गलत फहमियां सभी क्षेत्रों में फैली हुई हैं।

हिन्दी कहानी-लेखकों की इन व्यापक गलतफहमियां के मूल कारण अनेक हैं। दृष्टिभेद और रचिभेद से लेकर दुबानबारी चलाने के लिए सगठित विज्ञापनबाजी तक। दूसरे शब्दों में वाजिब और गैरवाजिब, दोनों तरह के कारण इन गलतफहमियां के हैं।

एक ओर वेल्स का कथन है कि मानव इतिहास शुरू शुरू में एक लम्बी ऊँच के समान था, उसके बाद वह रेंगने लगा। ईसा से ५ या ६ सौ वर्षों से वह चलने लगा, धीरे धीरे उसकी रपतार तेज होती गयी और बीसवीं सदी से वह मानो भागने लगा। उक्त स्थापना में यह जोश जा सकता है कि दूसरे महायुद्ध में मानव इतिहास एक तेज तूफान की चाल से उठने लगा है। एक तरफ विज्ञान ने बहुत बड़ी मारक शक्तियां मनुष्य के हाथ में दे दी हैं, दूसरी तरफ मनुष्य के भीतर का सन्देह, स्वार्थ और ईर्ष्या आज भी नियंत्रित नहीं हो पायी। यह एक अजीब तरह का संघर्ष है। इन परिस्थितियों में स्पष्ट घर्षविरोध है। इस संघर्ष में मानव जाति का भविष्य एकदम अनिश्चित बना हुआ है। एक तरफ सम्पूर्ण विनाश और दूसरी तरफ भारी समृद्धि—ये दोनों सम्भावनाएँ आज मानवजाति के सम्मुख विद्यमान हैं। भारी अंतर्विरोधपूर्ण इन विविध परिस्थितियों ने एंस्ट्रैट प्रभावों का जन्म दिया। चित्रकला, संगीत, नृत्य आदि में ये एंस्ट्रैट प्रभाव सबसे पहले दिखायी दिये। उसके बाद साहित्य पर भी इनका प्रभाव पड़ा। कविता पर सबसे पूर्व, तदनंतर कुछ अन्य विधाओं पर और सबसे बाद में कहानी पर। मैं यहाँ बहुत संक्षेप में इन तथ्यों का निर्देश मात्र इस उद्देश्य से कर रहा हूँ कि हिन्दी कहानी की चारों पीढ़ियों की मानसिक पृष्ठभूमि को समझा जा सके।

हमारी सबसे पुरानी पीढ़ी आदर्शवाद के युग की है। जब हमारा देश आजादी के लिए जहाजहृदय कर रहा था, जो अजीब दृढ़मत की नाराजगी और कई तरह के सतरे मोल लेकर इस पीढ़ी के लेखक रचने लगे। आदर्शवाद और नयी ऊर्ध्व पैदा कर रहे थे। दूसरी पीढ़ी उस जमाने की है, जब स्वार्थिता का का देहना आधुनिक जनजीवन

का प्रयोग किया था जनता निरन्तर ही त्यों ही और हमारे नवयुवक प्राधानी से मोचन लगे थे। इस पीढ़ी ने एक ओर धार्मिकता का पोषण किया, तो दूसरी ओर ठोस वास्तविकताओं को भी तहराई से देखन का प्रयास किया। तीसरी पाठा प्राधानी प्राप्त होने के एकदम बाद की है—उन उत्पादों नौजवानों की जो समा क्षेत्र में नये मूल्यों की स्थापना चाहते थे। स्वाधीनता प्राप्ति के तिन की क्रूरताओं में साधन इस पीढ़ी को कुछ हद तक नियम बनान का काम आ गया। चौथा पाठा प्राधानी की है—गहन ताजी, बीसवीं सदी के सतर्क दृष्टिकोण की। स्वाधीनता प्राप्ति में समूह की जो बढ़ावा प्राप्ति के जनता में लगायी थी, वे पूरी नहीं हुई। इस नवीनता पीढ़ी पर उस तिरागा का स्पष्ट द्योप है—उत्साहनाशन और कुछ नया करने की चाह, जिस कारण नहीं मिलता। परिणामतः एक प्यारी बच्चा इस पीढ़ी में है। इस चौथी पीढ़ी में माधुर्यात तीसरी प्रणी के प्रति और भी अधिक रोष विद्यमान है। यह पीढ़ी साहित्य और कला के एक्स्टेंशन तथा से सबसे अधिक प्रभावित हुई है।

हिंसा का समूह करने में इन चारों पीढ़ियों का योगदान है। इन चारों पाठियों की पारस्परिक तुलना करा उद्देश्य नहीं है मैं यह तो रहा कहना कि पहला पाठा के मध्य नलक धार्मिकता है या दूसरी पीढ़ी के कारण बसक या उत्साहना नहीं है। फिर तीसरी रूप से यह धर्मोत्थरण समूह नहीं बना। मैं तो यह भी मानता हूँ कि यह प्रतीकपूर्ण दृष्टिकोण परिलक्षित है और पहली पीढ़ी का कार्य भी समझना और क्षितिजाओं तक जरा अधिक जागरूक होकर वर्तमान परिस्थितियों में अनुकूल प्रत्यक्ष धर्मोत्थरण का निर्माण कर सकता है।

इस बीच कहानी के रूप (फार्म) में जो परिवर्तन आय है उनका वर्षा में फिर क्या कहना। यह, वदना बहना हो काफी है कि फार्म में समूह में भी कोई एक पीढ़ी किसी एक फार्म पर एकाधिकार का दावा नहीं कर सकती। हाँ यह ठक है कि माधुर्यात एक कलक की रवि और उसका दृष्टिकोण एक दिशा में बढ़ता चला जाता है और उसमें क्रान्तिकारी परिवर्तन तो सक्ता प्राधान नहीं होता।

साहित्यिक विधाओं में कहानी सबसे अधिक सावधान है। एक अच्छी कहानी सार की किसी भी भाषा में दुरुवादिष्ट होकर उस भाषा के पाठकों को भा घटता कहानी प्रतीत होगी। कहानी नामक इस नये साहित्यिक माध्यम का समग्र विकास हो रहा है और उस विकास में सभार के बहुत-से देग भाग ले रहे हैं। हिन्दी कहानी को विश्व-कहानी से प्रत्येक कार्य अन्य विधा मान घना अपने को प्रयत्न करने के समान है। हिन्दी कहानी का जो वास्तविक विकास पिछले पचास वर्षों में हुआ है उसमें इन चारों पीढ़ियों का योगदान है। प्रत्यक्ष यही रहना कि इन चारों पीढ़ियों के समस्त अपने

दृष्टिकोण को अधिकाधिक विस्तृत करें, कहानी के बल्कि साहित्य के नये आयामों को पहचानें और इस तरह अपने सृजन का अधिक प्रभावशाली और परिपक्व बना सकें।

इस सम्बन्ध में एक बात पर मैं विशेष बल देना चाहता हूँ। गाल्सवर्थ ने एक जगह कहा है कि यदि तुम्हारे पास कहन में कुछ है, तो उसे चाहे जिस रूप में चित्रित करो, तुम्हारे पाठक उसे पसन्द करेंगे। तुम्हारा वह सृजन प्रभावशाली होगा। और यदि कहने को कोई ठोस वस्तु नहीं है, तो चाहे अपनी रचना के परिवेश का जितना व्याधुनिक (प्रप्ट्रु डेट) या भडकीला बना लो, उस रचना में तुम प्राण सवार नहीं कर पाओगे।

नये लेखकों का ध्यान मैं विशेष रूप से उक्त सत्य की ओर खींचना चाहता हूँ। आज का मानव जीवन बहुत पचोड़ा है। मनुष्य का मन और मस्तिष्क आज की पारिवारिक, सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक शक्तियों से न सिर्फ प्रभावित हैं, बल्कि परिवर्तित भी हो रहे हैं। इस तरह मनोवैज्ञानिक गतिविधियाँ केवल मानसिक क्षेत्र तक सीमित नहीं रहती, बल्कि बहुत पचोड़ा बन जाती हैं। यह कहना कठिन हो जाता है कि मानव मन की किस क्रिया में कौन सा प्रभाव कहा तक है।

यदि लेखक ने इनमें से किसी भी शक्ति का गहरा अध्ययन नहीं किया, तो उसका पास अपना दृष्टिकोण वहाँ से आयेगा? जिस लेखक के पास अपना कोई दृष्टिकोण नहीं है सामाजिक समस्याओं के प्रति उसकी कोई एंग्रेज कहा से बनगी? इससे किसी तरह की फनबवाजी का शिकार बनने या स्वयं फनबवाजी करने से पहले यदि आप अपनी अन्तर्दृष्टि का ठोस और वैज्ञानिक आधार पर समुचित विकास कर लेंगे, तो न स्वयं फनब देंगे और न फनबवाजी का शिकार बनेंगे।"

(प्रकाश चन्द्र गुप्त) •

विषय वशों में हिंदी क्या-साहित्य का अपूर्व विकास हुआ है, यह बात सर्वमान्य है। भूला सच और मैला साँवल' जैसे उपन्यासों की सृष्टि और अनेक प्रतिभाओं का उदय इसका प्रमाण है। कुछ आलोचकों की राय में कहानी की प्रगति में सभी अन्य साहित्यिक विधाओं की अपेक्षा अधिक वग और तात्त्रता है। हम नहीं समझते, कि हिंदी उपन्यास की प्रगति किसी प्रकार भी कहानी से पीछे है।

कहानी की गति में हम एक विविध अन्तर्विरोध पाते हैं। जहाँ कहानी न एक दिशा में अपूर्व प्रगति की है, वहाँ दूसरी दृष्टि से वह प्रेमचंद की परम्परा से कई चरण पीछे भी हटी है। आज हिन्दी कहानी में जीवन का अधिक सरलपट्ट चित्रण है,

जीवन और यत्नत्व की धनक ॥ तर्पण उसने खोली है । फिर भी वह प्रेमचन्द की तुलना में लोक जीवन से दूर हटी है, उसकी क्रांतिकारी चेतना में ह्रास हुआ है । इसका यह तात्पर्य नहीं, कि आज के कहानीकार की दृष्टि में सामाजिक यमार्थ के प्रति आग्रह नहीं है, बल्कि यह कि सामाजिक नथ्य को दृष्टि में रखते हुए भी वह पवित्र आत्म-लौन हो रहा है और व्यक्तिवाद के घेरे में अधिक बंध रहा है । 'भूठा सच' अथवा 'मेला सच' में हम विकास के साथ साथ तीव्र क्रांतिकारी चेतना का महवाम भी पाते हैं ।

लोक चेतना के ह्रास का क्या कारण हो सकता है ? आज का लेखक बीच के वर्ग की दुलभुल यकीनी का शिकार हो रहा है । वह महवादा का उस हृदय पराजित नहीं कर सका, जितना प्रेमचन्द ने किया था । न आज देश के पास ऐसा वन्द्यीय ध्येय है, जैसा प्रेमचन्द की पीढ़ी के पास था । वह स्वतन्त्रता का ध्येय था, और उसमें संपूर्ण राष्ट्रीय चेतना का अनुप्राणित किया था । समाजवाद का सिद्धान्त उस प्रकार अभी देश में प्राण में व्याप्त नहीं हो पाया है । जब कोई मित्रता या विचार जनता की कल्पना में बस जाता है, तो, मानस के अनुसार, वह भौतिक शक्ति बन जाता है । पुरानी पीढ़ी के लेखकों में भी प्रतिगत बन, असहिष्णुता, यश की लालसा और महत्वाकांक्षा आदि दुबलताएँ थी, किन्तु आज प्रतिभा की इन प्रतिम दुर्बलताओं का जैसे प्रतिफल हो रहा है ।

प्रेमचन्द की सचन परम्परा का अपनी पीढ़ी के अनेक कलाकारों ने हृदय हाथा से संभाला था । 'भूठा सच' में यशपाल आज की दुरावस्था का प्रभावशाली चित्रण प्रस्तुत करते हैं । इस चित्र में आगे बढ़ने की दिशा का भी स्पष्ट संकेत है । महा क्रांतिकारी दृष्टि हम राहुल, रागेय राघव, नागाधुन और रेणु से देखते हैं । कृष्णचंद्र भावि उर्दू के अनेक लेखकों की रचनाएँ, जो हिन्दी में छापी रही हैं, इसी चेतना की समर्थक हैं । इन रचनाओं में तीव्र सामाजिक चेतना है । वे लोक-मानस के निष्कर्ष हैं, और महवादी व्यक्तिवादी भावनाओं को प्रथम नहीं देती । इसी काल में जैनेन्द्र, भगवती चरण वर्मा, 'अज्ञेय' आदि नागरिक, मध्यम-वर्गीय जीवन की ओर मुड़े, और उन्होंने हिन्दी के कथा-पट को नया विस्तार दिया ।

हिन्दी कथा-साहित्य के इतिहास में आज की पीढ़ी की महत्वपूर्ण उपलब्धियाँ हैं । इस पीढ़ी के धनक लेखक श्रम-जीवन की ओर फिर से मुड़ें । उनके ग्राम चित्रण में मद्भुत आत्मीयता है । उनका गाँव से बहुत अन्तरंग परिचय है । शिक्षा दीक्षा से तन्मय हो कर, वे गाँव के जीवन का तीव्र और मार्मिक अनुभूति से प्रकट कर रहे हैं । उनके मन में इस जीवन के प्रति माया ममता है, जिसके कारण वे यहाँ के ग्राम



विश्वास का भी सराहना करत प्रतीत होने है। यह हम माकण्डेय की सुप्रसिद्ध कहानी गुलराब बाबा में देखने है। इन सबको न कला शिक्षा का विशेष महत्त्व दिया, यहाँ तक कि कभी कभी ये माना प्रेमचन्द को सहज सरलता के प्रति अपना का भाव प्रदर्शित करत है, भाषा का भी प्रयत्न, शृंगार और निहार हम इन लेखकों का रचनाओं में पाते है। ये छोटे कस्बे के जीवन का प्रकट करते है, छोटे परिवारों की कुंठा और पराजय भावना उनकी मम-व्यथा का वर्णन करत है, पहाड़ों या मजदूरों का जीवन भी कित करत है। इनकी तीव्र सामाजिक चेतना के प्रति सशय रहना प्रयाय है। यह 'झेंधेरे बंद कमरे, भूदान' उस्ताद और बदलू तथा दोपहर का भावन, जमी रचनाओं से स्पष्ट है।

भाज की परिस्थिति में जो अन्तर्द्वन्द्व है, यह इससे स्पष्ट है कि 'भूदान' और 'पान फूल' का सत्य भाज 'माहो' लिखता है। वह प्रयागबाद और कुण्डबाबा और माकण्डेय हो रहा है, जीवन में अध-कुहासे में उसे हाथ मारना नहीं सूझता। भाज के जीवन में उसे कुछ भी आशावाद नहीं दिखाई देता। उनकी दृष्टि नकारात्मक होती जा रही है।

क्रांतिकारी कला माकण्डेय प्रयाग करती है किन्तु वह विषय वस्तु के प्रति उपेक्षा नहीं दिखाती। यह माकण्डेयकी, घरागा, एलुमार, नेल्स मादि की क्रिया से स्पष्ट है। यहाँ हम मुक्तिबाध के तत्त्व में देखते हैं। मुक्तिबाध ने मुक्त शब्द को शक्ति बढ़ाई किन्तु अपनी क्रांतिकारी चेतना का कुञ्ज नहीं होने दिया। व तेजस्वी स्वर में अपनी प्रतिभा को व्यक्त कर रहे थे क्योंकि वे जीवन का यश से पीड़ित थे, और इस पीड़ा का बोध अपने पाठकों को कराना चाहते थे। यह व्यक्ति की पीड़ा भी था क्योंकि यह समाज की पीड़ा थी। भाज की कहानी में कभी कभी यह भाव्य मिलता है, कि यह व्यक्ति की पीड़ा है, इसीलिए यह संपूर्ण समाज की पीड़ा भी है।

भाज की कहानी अधिकाधिक व्यक्ति के जीवन पर केन्द्रित हो रही है। व्यक्ति समाज का प्रतीक हो सकता है, और समाज से विलग भी हो सकता है। उच्च कला की दृष्टि के लिए यह आवश्यक नहीं कि वह कथानक को आत्मानुभूति से प्रेरित हो। टॉल्स्टॉय का उपन्यास, युद्ध और शान्ति' व्यक्ति पर केन्द्रित नहीं है। नाटक, उपन्यास और महाकाव्य में ही नहीं 'लिरिक' और कहानी में भी समाज का स्वर प्रकट होता है। यह हम कोटस की 'Ode to a Nightingale' और शरी की 'Ode to the west wind' ऐसी रचनाओं में देख सकते हैं। यही पद्य की शाय्या' मयवा 'सुमन' की कविताओं में हम देखने हैं।

भाज की कहानी में अनन्य प्रगति के साथ कुछ चित्राप्रद वृत्तियाँ भी प्रकट हो

रही हैं। मनेवेपन की भावना निष्कलता का अनुभव, दृष्टि में धुधमपन का एहसास, मात्र नवीनता का प्राद्वान, ह्यामो-मुषी पात्रवात्य कला की पुनरावृत्ति, स्त्री-पुरुष के यौन सम्बन्ध का निरावरण भ्रम, जैसे जीवन में कुछ भी ऐसा घप न रहा हो, जिसक प्रति अनुराण हो सके, जिसमे मनुष्य आस्था रख सके। कलाकार को अनुभूति-मत्प क प्रति ईमानदार होना जरूरी है। किन्तु पाठक और आलोचक इस मनुभूति की परीक्षा और विवेचना करेंगे। यह भी साहित्य-सृजन की प्रक्रिया में एक कदम है।

नई कहानी में कुछ ऐसे लक्षण अवश्य प्रकट हो रहे हैं, जिनसे ऐसी आशाका हो सकती है, कि कहानी में भी नई कविता की कुछ पुनरावृत्ति हो रही है। किन्तु कुछ मिला कर कहा जा सकता है, कि आज की हिंदी कहानी स्वल्प, सामाजिक दृष्टि अपना चुकी है, और उसके विकास की दिशा ठीक है। नई कविता का कुण्ड और महाकाव्य कहानी की प्रमुख प्रवृत्ति नहीं है। मार्कण्डेय, निमल वर्मा, राजेन्द्र माधव, माहन रायच, कमलेश्वर, प्रादि मनेक प्रतिष्ठा कथाकार समाजवत्ता धलक हैं, और गेलक क सामाजिक दायित्व को वे स्वीकार करते हैं। उन्होंने हिंदी कहानी की परम्परा में विकास की मनेक नई कडिया जादी हैं। उन्होंने जीवन क नये, मधूने रूपों का उद्घाटन किया है, सिल्पगत प्रयोग किये हैं यापा और कला में शृंगार की दृष्टि में मधुवृद्धि की है। फिर भी दिशा बिभ्रम के लक्षण भी कभी कभी दृष्टिपोवर हा रहे हैं। और इनके प्रति सावधानी रखना आवश्यक है।

नये कहानीकार जीवन की छोटी छोटी मजबूरिया पर कहानी आधारित करते हैं। ऐम बिच हमार सामा य जीवन क प्रतिनिधि बिच हैं, और इन बिचो का भ्रम आज की कहानी की बड़ी बिपत्ता है। इस प्रकार जीवन मृत हा कर पाठक के सामने माता है, और जीवन की आलोचना मप्रत्यक्ष रहती है। हिन्दी कहानी के इतिहास पर जब हम एक दृष्टि डालते हैं, तो ऐसी कहानियाँ ही हमारी श्रुति में उभरती हैं।”

(ममृत राय) :

‘नये’ कहानीकारो ने जितना ‘नयी’ कहानिया के बारे में लिखा है, उसका ‘नयी’ हिन्दा मगर ‘नयी’ कहानियाँ लिखी होगी, तो नयी कहानी’ की चचा करन ममय उह मग। इस पन्नेह वरस पुरानी कहानियो का नाम न जपना पडता, और शायद अपनी बात को मनवाने में भी आसानी हाती, यानी कि मगर उनके पास ऐसी काई बात थी और है।

इस बात को, मैं समझता हूँ, इसी तरह कहना जरूरी है क्योंकि उन सेकटा हज़ारों पन्नों के बावजूद, जो 'नयी कहानी' के बारे में लिखे गये हैं, कोई बात सफाई में उभर कर सामने नहीं आती। वल्कि यह भी कह सकते हैं, कि हर नये भाष्य से इस अभिनव वदात का सूत्र घोर उलभता हो गया है। एक भी जिज्ञासा का समाधान आपको नहीं मिल सकता। सब अपनी अपनी दफली बजा रहे हैं। कोई किसी की बात सुनने को तैयार नहीं है। अब तो घोर कुछ मढ़िग हो गया है, शायद बिल्लान वाला के गले बैठ गये, वरना एक वक्त वह भी गुजरा है, जब कान पड़ी माबाज नहीं सुनायी देती थी। उस वक्त तो कुछ ऐसा हो डालडमाका था कि आसमान तन हिल उठा था और ऐसा ही मानूम होता था, कि किसी नये मसीहा का जन्म हुआ है। चलो, सब लोग चलो, उसके आगे सिजदा करो, वरना जहन्नूम रसीद होंगे। लेकिन वह जो समय नाम का एक मसखरा है, न, उसने आगे किसी को नहीं चलती। वह सब की छाट-नज़ोर कर गया-स्थान रख देता है। कनी घला, भूमी घसग। 'नयी' कहानी के साथ भी यही हो रहा है। इसमें घबराहट या चौंकन की कोई बात नहीं है। और न इस तरह का कोई डर ही मन में होने की जरूरत है, कि 'नयी कहानी' की जितनी और जो सबकुछ नयी उपलब्धि है, यह भी कहीं अंधे वक्त के हाथों फिक न जाये। ऐसा न पहले कभी हुआ है और न अब होगा। पचत न स धकर भाज तन कहानी ने जितनी करवटें ली हैं, और भाज जिस जगह पर आ कर ठहर गयी है, वह खुद इस बात का काफी सबूत है, कि समय और सब हा अंधा नहीं है, और घबल भी नहीं है। पाडा कठोर जल्द है, जल्दी पसीजता नहीं, और तिकडम खेलने वाला से, शाब्दे बाजा से उसे सक्त नफरत है। जहाँ इस तरह का खेल खसने वाला की दुनिया में कोई कमी न हो, इस तरह की एहतिवात शायद जरूरी है। मगर जहाँ बात में खरापन है, सच्चाई है, दम है, और वक्त न अपने ढंग से उसका इस्तहान स लिया है, वहाँ फिर उसने नया असर कबूल भी किया है, वरना आदमी भाज भा अपने वनमानुस पुरखों की तरह उही पुयनी बदराभी में पडा हाता। शायद इसके जवाब में कोई यह भी कह सकता है, कि 'क्या बुरा होता!' लेकिन वह एक प्रसंग वहुम है। यहाँ इतना ही कहना ईप्सित है, कि समय नया असर धता है, सबिन अपने सहज ढंग से भटा है, किसी से घोर भवान से नहीं, काम के नयेपन को देखकर परबकर। जीवन के सभी दोषों में यही उसका ढंग है, और कृती साहित्यकारों ने भी इसी तरह साहित्य के सीमास्ता का विस्तार दिया है, गहराई दी है। 'नये' कहानीकार के पास भी अगर समय को देने के लिए ऐसा ही कुछ नया है, तो वह भी उसी समय सहज भूमि पर, कठोर परीक्षण के बीच होकर, आत्म-बलिदान के द्वारा ही दिया जा सकता है।

दूसरा कोई रास्ता नहीं है। जो पार्टी फट नजर आने हैं, वह सब भटक कर उन्हें सहारा हाथ जा निकलने का रास्ता हैं जहां की छाक इस वक्त 'नयी कहानी' खान रही है।

बड़े दुःख का साथ कहना पड़ता है, कि जिन लोगों ने सबसे पहले नयी कहानी की हाँक लगायी उनका निकट अपन निचय से अधिक अपन आप को मनवाने का मायरा ही बड़ा था। जहाँ निचय बड़ा होता है, वहाँ जाने मनजाने आदमी की निगाह अपन मे बाहर जियो समान घमा पर होती है, और हम तरह परिवार निरंतर बढ़ता जाता है। जहाँ निचय जोग या मानुषिक और व्यक्ति का 'मे' बड़ा होता है वहाँ पर वह स्थिति दबन में आती है, जो आज नयी कहानी में लिखायी दे रही है। तबस में पश्चो कामी लताहुज मबी है। जा इस नयी विद्या के माध्यकार हैं (और जो लिखने वाला हैं, वही उस निचय का माध्यकार भी हैं।) उनके सात्कार्य ने अब आपसी विर फुडौल का रूप में लिया है। सब एक दूसरे का गलत साबित करने में लगे हैं। 'नये कहानीकारों की टोली बढ़ना तो दूर रहा, घण्टा भर घटती ही जा रही है। मुझे पता नहा मैं तो बाहर का आमी हूँ, पर मैंने सुना है कि पहल उसम आरह बीस लोग थे, फिर वह बरबर दस बारह रह गये, फिर और छटती हुई तो मात्रम हुमा कि पाँच हो रह गये, फिर तीन और बस तीन। सकल सुना है, कि उन तीन में से भी एक अब जल्दी ही बाहर जाने वाला है, और भगवान् ने चाहा, तो वह जिन भी आ ही जाएगा जब कि एक यज्ञ के समान एक ही 'नया' कहानीकार होगा। वही किस्सा है, पाँच पूरा रामा बुढ़िया क अजीब हावत है। दूसरा को अपना गोत्र बढ़ने देवकर खुशी होती है, आसकर उन जिनको घसी जाने किताब लड़ना मिटना है, मगर यहाँ तो हिन्दुमा की जाति प्रया की तरह बेरा बराबर छोटा ही होता चला जाता है। कहने की जरूरत नहीं, कि यह जिनगी नहा मौज की प्रसामत है।

मन में पहल तो रचनाकार के भीतर बैठे हुए रचयिता का, सर्जक का डेरा बक्त तो उठा-पटक की इहा तद्वारा में निवल जाता है। आमी लिखे, तो बब निचय ? सकल सिफ बक्त ही बान नहा है मन की भा बात है। एक ही तो मन है। उस आप सर्जना में लगाइ तो सर्जना में लगेगा, उलाह पड़ाइ में लगाइ तो उलाह पछाड में लगेगा। और अगर उहु जिन तक उससे यही उलाह-पछाड का काम मत रहिए, और सजना को भून जाइए, तो एक बड़ा म देवा उसम इस बात का भी है कि मन की कविगानिग मुस्तकिल या लममग मुस्तकिल तौर पर उस उलाह-पछाड का लिए ही हो जाय और आप कभी निचय बैठें भी, तो तबोमत होजिए न हो, घिसते रह अपना प्रतापन का निचय और जिन प्रकट ही न हो ! (जिन में इसलिए कह रहा हूँ,

कि सरस्वती और मूज ये सब प्रतीक पुराने पड़ गये। यह कुछ अच्छी बात नहीं है, कि ऐसी-ऐसी मनुष्य प्रतिभा के हाते बरसो गुजर जायें, और कोई मार्क की नयी कहानी कलम से न निकल, और हर दम उही पुरानी 'नयी' कहानियाँ लिखिया करना पड़े। यह तो कुछ रचना सात के मूल जान की बात है। कुछ समझ में नहीं आता। अभी तो एक एक क पास जान कितनी कितनी जबरदस्त नयी, कहानियाँ बाहर आने को छटपटा रही होगी। यही लिखन की उम्र है। फिर क्यों वह इस फिजूल की मार-नाड में अपना वक्त बर्बाद कर रहे हैं ? यह ठीक है, कि इससे थोड़ा तत्काल लाभ मिलता है, यहाँ वहाँ अपनी कुछ चर्चा हो जाती है, मगर आखिरकार तो अपना लिखना ही बड़ी चीज है, उसी से तो और सब चीजें हैं, और उसी का दम घुटकर रह जाय, तो बात क्या बनी ? हम पुराना की कौन कहे, सब ही बहुत हैं नये कहानीकार।

भी उम्र ढल चली, कनपटी के बाल सफ़ेद हो चले। शायद अच्छा होगा कि इस सब दब फब से अपना ध्यान हटाकर वह अपने लिखने पढ़ने की ओर लगायें। मगर यह मैं क्यों और किससे कह रहा हूँ ? नय क्याकार के पास तो अपने इसे न लिख पाने या बहुत कम लिख पाने की भी दलील मौजूद है, वैसे ही जैसे अपने उलझ हुए, बेजान और फुमफुसे लिखने के लिए। बरसा से नयी कहानी की बकालत करते करते इस दलीलबाजी में सब वह बड़ा हातिम हो गया है। वह अगर ज्यादा लिखता है, तो यह उसका सिकत है। उसके पास इतना कुछ कहन को है, एक ऐसी तडप, एक ऐसा बलबला, जो किसी पुराने क पास नहीं। हाँ भी वहाँ से ? सब मुझ जा गये हैं। वह अगर बहुत कम लिख पाता है, तो यह भी उसकी सिकत है। नयी कहानी लिखना कोई बाल भात का कोर है ? कोई पहलू वाली कहानी तो है नहीं, कि जब मन में आया बैठ गये, और कहानी घसीट दी। भाव के पकने में, शिल्प का रूप धरने में भी तो कुछ समय लगता है कि या ही ? कोई जनता है, समुद्र की तलहटी में एक भाती को मोती बनने में कितना वक्त लगता है ? नयी कहानी भी ऐसी ही चीज है। उसकी चीज अगर पढ़ी जाती है, तो यह उसके लिखन का कमाल है, अगर नहीं पढ़ी जाती, तो यह पढ़ने वाले की जहालत है। आर्वाँ गार्ड (हरावल दस्ते) 'को गार्ड की दुनिया में हमेशा इस चीज का सामना करना पड़ा है। हमारी चीज का खास मजा लोगों की जवान पर चढ़ने में आखिर कुछ तो वक्त लगेगा ही।

इसी चीज को नये से अलग कहानीकार पर पलट दीजिए, तो यह शकल बनती है—

वह अगर खाने-पीने, सोने जागने की ही तरह निसर्ग की प्रेरणा में बराबर लिखता है, और नियम में लिखता है, तो यह आदमी कहानी लिखता है कि पास

घालता है। इमने तो मार्ट को भी मु सींगीरी की उक्कन द दी। मारमाये हर पुराने  
 नुस्खे धकर बैठ गया है, और वही एक रंग क पॉन्ट्रिप्यतर्ष लिखता बता जाता है।  
 कहा ताजगी नहीं। अगर देवारा म लिख पाता है, तो—दया न ? हम पहच ही  
 बहत थ, चुक गया यह माना—विनकुन खनास। अगर उनका चोने पडा जाती है,  
 तो यह उसक घटिया सबक होने का बहुत काफ़ी दलील है। और मार नहीं पनी  
 जानो, तो देखिए जमाना वहाँ से कहा निक्कन गया, माप धर नी मपना वही पवडा  
 माये आ रहे हैं। माबिर कहा तक कोई बदासत कर ? सब दक का नहीं पूछता कोई।  
 यानी कि कित भी मरी और पट भी मेरी, हैउस भाइ किन टलव यू जूज।

मपनी इस लिपि को बनाये रखन के लिए एक जगह पर आकर यह भी  
 जरूरा हो जाता है, कि यह नया कहानीकार मपनी रचना के १ रे म साफ-भाफ काई  
 बात कहने म सयल बच, एक साथ तरह की सभ्या भाषा में तोल मास बाते करे,  
 मपनी उषी बुद्धरे म लिपरी हुई धानवली क सहारे मपनी कला क ई गि एक  
 ऐन्द्रजालिक-स रहस्यमय को सृष्टि करे। और धायद इवालिए मनी ज्यादा नि  
 नहीं हुए, एक प्रमुख नये कहानीकार ने, जो उतन हो प्रमुख भाष्यकार भी है, नया  
 हानी क एक जान मान और धायद पहच भाष्यकार की इ बात का सकर बडी  
 भावत मलायत की है, कि उसने नयी कहानी का परिभाषा करनी चाही और मपना  
 इस कोसिस में इस बरस म दस परिभाषाए का। मरे इस बार न कहा, कीन इस  
 बकदक में पडे, हर बार एक नयी परिभाषा देना पड़ेगी, लाभा कने ही से बाट हू  
 न रहगा बस न बनेगी बपुरी। जब मैं कोई बात साफ-साफ पूछ गा ही नहीं, तो  
 कोई मुझ पकड़ेगा कसे ? इसीलिए ता लाग मपन सैकड़ा द्वारा रूपय देकर बडे बडे  
 कहानी-मुस्तारा से मपने कादूनी दस्तावेज लिखवान है, ताकि कग पड्ड न र।

कादूनी की वृद्धि और साहित्य-सञ्चक की वृद्धि एक नहीं होती। सोना म  
 निषय ही कुछ मौलिक मन्तर है, इन बात का या रखना धायद अच्छा होगा।  
 साहित्य की प्रशस्ति मूल सद्भावता है। उसमें कनाकट के लिए जगह नहीं है और वहाँ  
 कनाकट क लिए जगह नहीं है, और जहाँ कनाकट का सहाय लिया जाता है वहाँ  
 उसका उपदने म भी बहुत देर नहा लगती।

जो ही छोड़िए उसको। फिर नी इन उमास नयी कहानिया और इनक  
 (उतने-मुलके ही सही) भाष्यो से कुछ तो एक सत्वीर उस चीज की हमारी भाषा न  
 भागे बनती ही है। उनी क सहारे हय पुरी सद्भावना से समझने का यत्न करें, कि  
 यह नयी कहानी क्या कहना चाहती है, और नहीं कह पाती, या नहा कहना चाहती,  
 और मनमान कह जाता है ?

पहली बात तो यह, कि अगर 'नयी कहानी' कहानी से इतर कोई बिल्कुल भिन्न विधा नहीं है, तो यह नया विधापण बिल्कुल निरर्थक है। जिस नयेपन को अपने नयेपन का बिल्ला लगाकर घूमना पड़, वह कोई नयापन नहीं है। साहित्य में कृति ही प्रमाण होती है। 'नये कहानीकारों' का अगर इस बात का विश्वास था, कि वह एक ऐसी कहानी साहित्य को दे रहे हैं, जैसी पहले कभी नहीं लिखी गया, तो उनके बाद यह आत्म विश्वास भी होना चाहिए था, कि वह अपनी कहानियाँ के ही गरिबों, अगर अपने नयेपन का ढिंढोरा पीटें सोना पर अपना सिक्का जमा देंगे कि यह एक बिल्कुल नयी और मूल्यवान् चीज है। 'नयी' का साइनबोर्ड टांगना में जो मुस्ती दी जायी गयी, उससे आदमी निश्चय ही सोचने को प्रेरित होता है, कि शायद वह कोई नयी दूकान जमायी जा रही है, और यह भी कि इस नामकरण को प्रेरणा हो न हो नयी कविता से मिली है। कोई किताब ही क्यों भाँके, इस बात से बच पाना शायद मुश्किल है, कि 'नयी' कविता क वजन पर ही 'नयी कहानी' को यह नाम मिला है। इतना ही नहीं, जैसा कि मैं आगे चलकर दिखाने का यत्न करूँगा, नयी कहानी और नयी कविता में निश्चय ही किसी जगह पर कुछ आवश्यक साम्य है।

दूसरी बात यह कि अपने सहज ग्रंथ में हर अच्छी और खूबमूरत कहानी नयी होती है, क्योंकि वह अपना एक नया भावलोक लेकर आती है, और हमको एक नयी सी झलकी से सचेदना देती है। और इसलिए देती है या दे पाती है, कि उसने लिखे जाने से पहले सर्जक के मन को भी कुछ कुछ उसी तरह झुमा था। वही कथा बीज में कुरित-पल्लवित होकर कहानी के रूप में पाठक के पास पहुँचता है, और अगर उसका एक नया भाववाद कहानी में न मिले, तो शायद वह उसको पढ़ भी न सके। इतना ही नहीं, एक और अर्थ में भी उसमें सहज ही एक नयापन होता है—कथ्य और गिल्प दोनों में। वह आधा हुआ नयापन नहीं होता, न विधापित नयापन होता है, यहाँ तक कि ऐच्छिक नयापन भी नहीं होता। वह सहज नयापन होता है, और इस लिए होता है, कि जीवन और समाज और व्यक्ति (जो भी कहानी के उपजीव्य हैं) या सब गतिशील हैं, यानी बराबर बदलते और नये हाते जा रहे हैं, और अगर इस बदलते हुए जीवन यथाय के सत्य को सारमर्म को पकड़ना है, रूपायित करना है, तो कहानी का कथ्य और गिल्प भी उसके अनुरूप बराबर बदलने और नये होने जाने के लिए बाध्य है। यह कोई सिद्धांत की बात नहीं है। यही होता है। रचना के स्तर पर यही वह चुनौती है, जिसका सामना हर सज्जन और गंभीर कहानीकार को करना पड़ता है। हर बार जब वह कोई नयी कहानी हाथ में उठाता है, और जिस सीमा तक वह इस चुनौती का निवाहने में खुद अपनी कमोटी पर सरा उतरता है, उसी

सोमा तक उसकी अपनी रचना से सुख होता है। सृजन के स्तर पर वही उसकी सबसे  
 बड़ी उपलब्धि होती है। और यह कहना जरूरी है कि अपने युग के सत्य का बदलते  
 हुए जीवन परिवेश के नये राग और उसकी नयी संवेदनाओं को अपनी कला में रूपा  
 यित करने का सर्जनात्मक आग्रह कोई ऐसा आग्रह नहीं है, जिससे प्राज्ञ पहली बार  
 नये कहानीकार को नये चार होना पड़ रहा है। यह बहुत पुरानी बात है और देश  
 बाल के लिए सही है। इसी नाते क्या साहित्य का इतिहास, अपने विशिष्ट स्तर पर  
 और अपनी विशिष्ट शैली में बदलने हुए जीवन और समाज का इतिहास भी बन  
 जाता है। इसीलिए हम देखने हैं, कि, दूर क्या जाइये, प्रेमचंद के यहाँ जहाँ प्राज्ञको  
 एक तरफ बिल्कुल पुरानी दक्षिणावृत्ति तिलस्म और ऐयारी की कहानियाँ भी मिलती  
 हैं, वहाँ दूसरी तरफ 'कफन' और 'पूँ' की रात' और बड़े भाई 'माहब' और सुल्मी  
 उठा' और 'नया विवाह' और कश्मीरी सेव जैसी ठेरो कहानियाँ भी मिलती हैं, जो  
 अपने कथ्य और शिल्प दोनों में बिल्कुल नयी हैं। अभी हाल में नयी कहानी' के एक  
 प्रमुख प्रवक्ता ने अपने एक श्लोक में कहा है कि कफन नयी कहानी है जब कि  
 महीने हुए बाद विवाद के भावजूद 'बापसी' नया कहानी नहीं है मैं समझता हूँ,  
 कि उन्होंने समझ-बूझकर काफी जिम्मेदारी के साथ यह स्थापना की होगी  
 और उससे सहज ही निकलने वाले निष्कर्षों पर भी यथेष्ट ध्यान दिया  
 गा। जो हा मुझे स्मरण है कि मात्र स सात पाठ बरस पहले नयी कहानी  
 : वर्षा गोष्ठी में जब मैंने तथाकथित 'नयी कहानी' को हिन्दी कहानी की  
 परंपरा से जोड़ने का यत्न करते हुए उत्तराखण्ड के रूप में प्रेमचंद की कुछ कहानियाँ  
 का उल्लेख किया था, तो इन बहुत से मेरी बात बहुत खिचकर नहीं लगी थी। उस  
 गोष्ठी में विषय का प्रवक्ता इन बहुत न किया था, और प्रायः सभी जान माने नये  
 कहानीकार उसमें उपस्थित थे। मगर खर, अब मैं इन बहुत से इतना ही कहना चाहूँगा  
 कि वह 'कफन' को प्रेमचंद की एक 'कीक' कहानी मानने की गलती न करें, ता  
 प्रख्या होगा, क्योंकि प्रेमचंद के पास ऐसी ही और भी बहुत-सी कहानियाँ हैं नभ  
 वह इन बहुत के प्रागे से न गुजरी हो। और प्रेमचंद के ही यहाँ नहीं, और के यहाँ  
 भी उनको ऐसी कहानियाँ मिल जायेंगी जिनकी परंपरा से अपना योग स्थापित करने  
 में उनको अपनी 'नयी कहानी' की मानहानि का भय न होना चाहिए। यशपाल के  
 संपूर्ण कहानी साहित्य का उन्होंने जितना आसानी से दिसमिस कर दिया है यह  
 ठहा के साहस की बात है। यह ठीक है कि यशपाल ने कमजोर पात्रों को नया  
 निर्वा भी लिखा है, जैसा कि हर कोई लिखता है मगर उसी न 'पूँ' और 'गंडरी'  
 और 'साग' जैसी कम-से कम दो दर्जन ऐसी जबरन कहानियाँ भी लिखी हैं जो सदा  
 उनकी ही नयी और ताजा रहेंगी। यशपाल से जुड़ी हुई और उसकी तलाश बाद की



पाद्री म चद्रकिरण के यहाँ, अमृत व यहाँ रामेय राघव के यहाँ और बहुत-से लिखनवालों के यहाँ जिन सब के नाम यहाँ पर गिनाने की जरूरत नहीं, उनको बहुत मा ऐसी कहानियाँ मिल सकती हैं, जिनसे धाज की कहानी अ गांगि रूप में जुड़ी हुई है। प्रेमचंद से गुरु करके यगपाल के रास्ते होते हुए अज्ञेय की 'राज', राधाकृष्ण की 'मदल' और 'एक लाख सत्तावन हजार', चद्रकिरण की 'बिजुर्बा' और 'मादम' सार' अमृत की 'कठघरे' और 'सोम' और रामेय राघव की 'मदल' जैसी कहानियों तक चली जाती हुई हिंदी कहानियों की अविच्छिन्न जोड़-तोड़ परंपरा से अपना नाता तोड़ कर इस तथाकथित 'नयी कहानी' ने किसी और का नहीं अपना ही अकल्पना किया है। जिस तरह अपनी चर्चाओं में वह अपने से पहले की कहानी की चर्चा से बराबर बचते रहे हैं, उससे यह नतीजा निकालना बहुत गलत न होगा, कि वह अपने से पहले के किसी कहानीकार का अस्तित्व नहीं मानते। न प्रेमचंद को, न जनेन्द्र को, न अज्ञेय को, न यगपाल को, न और किसी को। यह उनकी अपनी खुशी की बात है, पर जो देखने में आता है, वह यही कि इस तरह अपनी परंपरा से समूल अपना नाता तोड़ने का अभिनय करके (व्यापि नाता वह तोड़ नहीं सके हैं, वह तो है, इसी तरह जैसे उनकी रगों में खून बह रहा है), इ होने सामंजस्य अपने को एक आकाशबेल बना लिया है, जिसमें और सब हो स्वायत्त तो नहीं होता, क्योंकि उसकी जड़ धरती में नहीं होती।

'नये' कहानीकारों के लिए यह बात बहुत गंभीरता से सोचनी की है। रुढ़ि से नाता तोड़ना एक बात है, परंपरा से नाता तोड़ना बिल्कुल दूसरी। रुढ़ियों से नाता हर समय साहित्यकार तोड़ता है, इसलिए कि रुढ़ियाँ उसको अपने बढने में रोकती हैं, उसकी बना का, अभिव्यक्ति को कुठित करती हैं। मुर्दा अतीत का ही रुढ़ि कहते हैं। मगर उसी अतीत का ही एक जीवन्त तत्व ऐसा भी होता है, जो हमारे साथ चलता है, बराबर चलता आया है। उसी का परंपरा कहते हैं। चिंतन की उन रुढ़ गलियाँ को, जो अतीत के तकाओ का जबाब न दे सकने के ही कारण मर गयी और रुढ़ियाँ बन गयी, बदलते हुए जीवन परिवेश में, उन्हीं जीवन सघर्षों में होकर निकलती हुई अभिप्रेत रचनात्मक चिंतन सपदा से, जो समय की धारा के साथ बराबर होती चलती है पुरानी मुर्दा चीजें छोड़ती और नयी जानदार चीजें जो अपने में जोड़ती चलती हैं और जिसका ही नाम परंपरा है, ऐसी उन मुर्दा रुढ़ियों का उस जीवन परंपरा से अलग करके देख सकने में ही हर सोचनेवाले और लिखने वाले का सबसे बड़ा इम्प्लान होता है। इसी में उसकी सूक्ष्म-वृक्ष की अन्तर्दृष्टि की सबसे कठिन परीक्षा होती है। यहीन यह मुश्किल काम है, मगर यह कब किसने कहा कि साहित्य

'नयी कहानी' की भावधारा क्या है ? मैं सोचता हूँ, कि उसके भीतर कोई नया भावधारा बूँदना गलत होगा। यानी कि अगर वहस के लिए मान लें, कि 'नयी कहानी' नाम की कोई चीज है। अभी तो वह नये लिखनवालों की बस एक टोली है, जिसमें कई रंगों के लिखनेवाले हैं, और जिनका अपना अपना रंग डग भी भलग भलग कहानियों में भलग भलग ढिलायी पड़ता है। जहाँ तक पढ़नेवालों की बात है, उसको उनकी बूँद सब कहानियाँ या सा पत्थर नहीं पड़ती, या बहुत उबानेवाली भावमय होती है और कुछ जो बहुत अच्छी भावमय होती है (और ऐसी कुछ कहानियाँ सभी के पास हैं) उनका स्वाद उसका किसी तरह पहले की कहानियों से भलग नहीं भावमय होता। बहरहाल जिस तरह इस नाम की कहानियों में भवसर यौन-कुण्ड का उल्ला उल्लासा लाना-बाना बुना जाता है, उसको देखकर ऐसा जरूर भावमय होता है, कि जिस भी घबह से हाँ उठाने अपने स बाहर अपनी भावों के भारों फेंकी हुई रंग-विरंगी दुनियाँ के साथ अपने को मिलाकर जीवन का एक समग्र चित्र देने के लिये अपने भीतर सिमटकर मकड़ी के जैसे बुनना अधिक व्योसकर या नया व्यक्ति परकता का स्वर उभर और समाज-परकता का स्वर दबा गया। ऐसी बात न होती, ता 'नयी कहानियों में हमारा बहुमुखी जीवन बोलता, हमें वही कुण्ड और वासना की ढोली या बड़ी पायनी न मिलती। वही ऊँच, वही यकन जो सब उसी दमका मानसिकता के प्रतिकल है, जिसने भावमय ने बाहर की दुनियाँ पर, जो अच्छी भी है बुरी भी है, काली भी है, सरुद भी है अल्ले भूँद लो है, और अपने भवभवन की मानसिक प्रशियों में लो गया है। इसीलिए बड़ी सीधे-सीधे यौन कुठा नहीं भी है, वहाँ भी समाज में और किसी भी प्रकार के सामाजिक कम में और मनुष्य के भविष्य में भगवत्ता का स्वर बरूर है जिसको उभारने के लिए भावमय की पगुवा पर, नीवता पर, धुलता पर विपणन बल है, और उसका कोई भी भगल रूप भूषण से भी नहीं भाने पाता, क्योंकि भावमय पर गनत बरने लगे होने की वजह से उसको उच्छ्वल भावुकता या यौनी भावमय कावता मान निमा गया है जब कि सब बात यह है कि वह बोद्धिकता ही पोषी है, कण है, एकांगी है जो भावमय को, समाज का, दुनियाँ को उसका दृष्टि नहीं देता, जहाँ दोना तत्त्व बयबर सपर्य कटते रहते हैं। वह कई श्रोत्र दृष्टि नहीं, गेगी को दृष्टि है। शोक दृष्टि वह है, जो जीवन को सुली भावों देखती है, और उसके समग्र रूप में देखती है। और सब तक देखती है। यह ठीक है कि भावमय हमारे इस

पूँजी-संचालित समाज में (समाज की तमाम उत्पादकता के शत्रुद्वय जो निरापाखंड है) समाज का स्वस्थ निर्माण की धार में जाने वाले विनाशक तत्व बड़े ही कमजोर हैं, भविष्य में बहुत ही संशेप है, विदेशी पूँजी और देशी पूँजी की साँठ-गाँठ से जो उद्योगीकरण हो रहा है, उसने हमारे पुराने समाज की, उसकी नैतिक संस्कारों की, मानव-मूल्यों की धूलें हिला दी हैं, और उनकी जगह पर रातोरात लाकर बिठा दिया है महाजनी समाज की तमाम विधृतियों को। भाष्य चाहें तो इसे एक मोनोक्रान्ति कह सकते हैं, जैसा कि नेतागण प्रचुर बड़े गर्व से कहा भी करते हैं, सक्ति क्रान्ति हो चाहे प्रति क्रान्ति, चाहे उत्क्रान्ति, स्थिति निश्चय ही अत्यंत भयानक है, और हम उसके साँगे हैं। गहरे भय का युग है, जो एक चुनौती की तरह हमारे सामने खड़ा है, और हमसे उतने ही गहरे आत्म भय की माँग करता है। जीवन का सारा रंग-रूप हमारी आँखों के आगे बदल रहा है और दुर्भाग्यवश एक बुरी दिशा में बदल रहा है और एक विचित्र सी असहायता की स्थिति है। हम भी उसी स्थिति के भय हैं, और यह जहर हमारे अंदर भी पैठा है, और अपनी इस मन स्थिति में हमारी भी सहज प्रवृत्ति ऐसी जीवन-दृष्टि की ओर हाँती है, जो आदमी की पशुता को ही उभार कर हमारे सामने रखती है (क्योंकि यही तो हम अपनी आँखों के आगे होते भी देख रहे हैं), और मनुष्य की नियति को एक घड़ी गली में जाकर खत्म होने देखती है (क्योंकि अपने आसपास देखकर हमको भी तो बहुत बार ऐसा ही लगता है) लेकिन यही पर हमारे साहस धैर्य और जीवट की परीक्षा होती है। पुराना की भी, नया की भी। हमारे सामने दो ही विकल्प हैं—या तो हम अपनी साहसपूर्ण, प्रखर निमग्न वस्तु-दृष्टि से और गहरी आत्म मजग्न सतर्कता से आज के समाज के बदलने, हुए परिवर्तन का देखने, समझने और पहचानने का यत्न करें, और फिर उसको अपने मानस विन के अनुसार बिना या संस्कार देने का यत्न करें, दहते हुए जीवन मूल्यों की इस घड़ी में सत्य के न्याय के सौंदर्य के नये मूल्यों की सृष्टि करें या फिर आत्यंतिक पराजय की मन स्थिति में इन सबसे पराङ्मुख हो कर अपनी कोठरी में जा बसों, और कोरे सौंदर्यादी मानी ईश्वर की तरह विषय और काफी की चुस्कियाँ चते हुए अपनी आत्मरति की परतों सोलें—मगर युग की प्रकृति की ध्यान में रखने हुए अपने को या दूसरे को छलने के लिए यह कि यह हमारी विनिष्ट सामाजिकता है, जो निरी सामाजिक दृष्टि से अच्छी है, क्योंकि इसको हमने अपने बाहर से पाया है। साहित्य हमें या जो कुछ पाता है, अपने भीतर से ही पाता है, और जो कुछ देता है, वह भी अपने भीतर से ही देता है, अतिरिक्त बुनियादी मूल्य यह है, कि आपने पहले उसके भीतर डाला क्या है, जिसकी पुनः सृष्टि करके आप बाहर ला रहे हैं? और यह एक

ऐसा सवाल है, जैसे सवाल का जवाब दूसरे को दन क बदले अपने पाप का देना ज्यादा अच्छा रहता है, क्योंकि उसमें आदमी ज्यादा अच्छा जवाब देता है। वरना वह सब तो क्यामत तक चन सकती है।”

## (चन्द्रभूषण तिवारी) :

“इतना तो ग्राम सभी स्वीकार करते हैं, कि एक सर्वथा आधुनिक स्थिति इस सम्पूर्ण युग-चनना की विशेषता है, जिसे आज के साहित्य को ‘नया ग्रंथ’ दिया है। लेकिन यह ‘नया ग्रंथ’ सिर्फ कला या साहित्य का ही प्राप्त नहीं है, उसकी अभिव्यक्ति परिवर्तित जीवन स्थितियाँ के बीच भई है, और आज का मनुष्य उससे एक नया सम्बन्ध स्थापित करते हुए ही उसे ग्रहण कर रहा है। समकालीन हिन्दी कहानी में आधुनिक बोध के प्रतिफलन की बात इसी सदर्भ में विचारणीय है।

अब तक की कहानी विषयक चर्चा कतिपय सख्तीय विशेषताओं के ही सदर्भ में की गयी है। सचेतकता के माध्यमों से खरूर पारसीय तत्वों तक का इसमें समाहार हुआ है (नयी कहानी सम्बन्धी प्रारम्भिक चर्चाओं में जिन प्रयासों का उत्सल किया गया है, इनका दायित्व विशेष अनुभूति छण्डा के परोक्ष समागम तक ही सीमित है, यह प्रक्रिया जिस हद तक वाक्य की प्रक्रिया से भिन्न है, यह बात अभी तक स्पष्ट नहीं हुई है।) जिससे कहानी के नयेपन को तथा परंपरा से उसका विनंगम की समस्या अभी तक बनी हुई है। और यह गामद परिवर्तित परिस्थितियाँ में आधुनिक रचना-दृष्टि तथा उसके वस्तुगत आधार की न ग्रहण कर पा सकने के कारण है। परिवर्तित परिस्थितियों में भी कविता की विधा किंचित् काल के लिये सटम्य रह सकती है, एक प्रकार की दूर बलिता (mode of distance) उसे निरन्तर नियत भी करती है। इसीलिये इसमें आत्मगत प्रवाह की विशेष गुंजाइश है। कहानी इसका विपरीत जीवन स्थितियों के समानांतर प्रवाह की अपेक्षा रखती है और अनुभवों के माध्यम से ही प्रकाशित होती है। इसलिये उसकी कल्पित योजनाओं भी (मिश्र स्तर तक) अनुभवों के स्तर पर ही नियोजित की जा सकती हैं।

निम्नलिखित दृष्टिकोण की कहानियाँ इसी ग्रंथ में नयी हैं, क्योंकि परिवर्तित वास्तविकता से सख्त के नये सम्बन्ध-स्तर को उसकी रचना-दृष्टि द्वारा गृहीत अनुभवों के माध्यम से व्यक्त करती है। रूप रचना के स्तर पर इसीलिये उनमें एक असाधारण मूल बात है, जो ‘मेमचदोतर हिन्दी कहानी’ सख्तों की विशेषता नहीं। वास्तविकता उनके लिये काफी हद तक कल्पित और वैयक्तिक थी, जिसे वे इन्द्रिय-बोध तथा अनुभव के स्तर पर नहीं ग्रहण कर सकें थे। इसीलिये उनकी अस्वाभाविक रचनाओं अवास्तविक, अमूर्त और गढ़ी

हुई प्रतीत होती हैं। नये भेदना ने इसक विपरीत, वास्तविकता के प्रमुख सूत्रों को बड़ा ही सजगता और सूक्ष्मता के साथ ग्रहण किया है, और कल्पित सामाजिक भ्रमों पर पूरक न बरकर उसकी असंगतियाँ को ही प्रकाशित किया है। आजादा के बाद सामाजिक जीवन में एक विशेष प्रकार का तनाव लक्षित हुआ है। एक खास तरह की यवस्था गाँवों में, उनकी संपूर्ण इन्धिया और अनिच्छा के बावजूद, पहले-पहल टूटती नजर आई है (इसलिये भी कि गाँवों के जीवन में अधिक पारंपरिकता है) शहरों में इसक विपरीत असलव्य क्रमिकता अधिक रहती है। फिर भी वहाँ इसकी अभिव्यक्ति मध्यवर्गीय जीवन के अंतर्गत हुए विरोध और स्वप्न भंग में हुई है। इसीलिये उसकी प्रतिक्रिया अधिक निजी है। इस समय की लिखी गयी अधिकांश प्रतिनिधि रचनाओं में जो नया पन है, उसमें सामान्य मानवीय जीवन के बदलते सबों तथा उसकी असंगति अधिक करीब खींच ले जाने की क्षमता है। अपने संपूर्ण प्रतीकात्मक संगठन के साथ व जीवन की गतिरता तथा मूल्यों के संघर्ष के अधिक समीप है, जहाँ किनारे के प्रसंग बड़ी तेजी के साथ केन्द्र की ओर खिंचते नजर आते हैं। हिंदी कहानी में यह एक नयी प्रवृत्ति का आविर्भाव है, जिसे मार्कण्डेय, अमरकान्त, कमलेश्वर, शंकर जोशी, भीष्म साहनी आदि की प्रतिनिधि रचनाओं में देखा जा सकता है।

इसी बीच या उससे कुछ ही बाद, हिंदी कहानी में वास्तविकता का एक और पक्ष उभरा है—व्यक्ति के आंतरिक संघर्ष, सुरक्षा आदि के प्रश्न सम्बन्धी सामाजिक संदर्भ भ्रमों बदलती जीवन स्थितियों से जिन्हें अलग करके नहीं देखा जा सकता। ऐसे समय में ये प्रश्न और भी महत्वपूर्ण हो उठते हैं, जब सामाजिक यवस्था के प्रति एक व्यापक आशंका भ्रमों की भाँति फैल गई है। इसीलिये वह 'सामाजिक' कहकर टाला नहीं जा सकता। अप्रत्यक्ष रूप से उनका बीज इस सामाजिक यवस्था के अंतर्गत ही विद्यमान है, जिसकी असंगतियाँ आजादी के बाद विशेष लक्षित हुई हैं। यद्यपि वित्तीय उस मुद्दे पर प्रतिक्रिया में भी हैं, जिसने व्यक्ति को केन्द्र में रखकर उसकी साक्षरता तथा सुरक्षा सम्बन्धी प्रश्नों का दार्शनिक समाधान (साहित्य के अंतर्गत भी) प्रस्तुत किया है। एकमात्र उम्र ही प्रेरित होकर, बिना किसी सही उद्देश्य के, कृत्रिम और कल्पित आधार पर हिन्दी की नयी कविता भी विकसित हुई है, जिसका संवेदन आज तक सीमित है, और जिसकी समुचित रचनाकार के दायित्व की ओर आज भी संकेत करती है। साहित्य के इतिहास में साहित्यहीनता के ऐसे कम उदाहरण मिलेंगे। हिन्दी कहानी में व्यक्ति-चेतना की पुनर्जागरण भी एक सामाजिक भ्रमों की सीढ़ी से हुई है। शंकर जोशी की 'बन्धु' में इसके सही संकेत हैं—जिसे रचनाकार का सम्पूर्ण व्यक्तित्व, उसके निकट के सम्बन्ध, उसके आन्तरिक आधार उसने दृष्टिकोण एक साथ समुक्त हैं, और इन सब के साथ-साथ असंगतियों से गुजर

कर भा उनसे तटस्थ हान की बौद्धिक क्षमता ( बौद्धिक विरक्ति नहीं ) विद्यमान है । और जहाँ इसकी कमा दावनी है, वहाँ भी एक विद्वान् बढना अवश्य है । लदन की एक रान' एक ऐसी ही सृष्टि है ।

यही सवाल निष् वास्तविकता का नहीं है न उसका बदलन सम्भो तब हो वह सीमित है, बल्कि रचनाकार के उस स्वन का है जो वास्तविकता के प्रति वह प्रतिपाद करता है, यथा जिससे प्रकाश में वह वास्तविकता व प्रमुख मूला का, उसका बीच में उभरती सच्चादयाका ग्रहण करता है । और यह बात बदल कानिमाय सत्रधम हो नहीं, किसी कलाकृति व सम्बन्ध में भी रहती जा सकती है । रचनाकार का यह स्व ही (जो उसकी रचना-दृष्टि का आवश्यक प्रग हाता है, बल्कि उससे वह विचारित भा हाता है ) उसकी संपूर्ण रचना दिया का प्रभावित करता है । बल्कि यह कह सकते हैं, कि कहानी के अंत में यही उसका मूल स्वर बनकर ध्वनि हाता है । 'नयी कहानियाँ व पित्रस परित्याग में प्रकाशित में नामवर जो न इसी तथ्य पर चल दिया है । इसा बिन्दु पर उहाने कहानी का प्राधुनिकता यथा उसका नयन का अलग किया है । यद्यपि इस प्रयत्न में भ्रम व लिए भी कुछ हुआ है । जिस 'तत्त्वों लिये एकाग्रता' को उहाने कहानी की प्राधुनिकता यथा नयन से जोड़ा है, नया जीवन बीच बही तक सीमित नहीं है । इसका साथ रचनाकार का रागात्मक स्वर भी प्रभावित है । तभी 'तत्त्वों लिये एकाग्रता' भी साधक है । इसका बावजूद हम तथ्य को स्वीकार करने की आवश्यकता है, कि वास्तविकता के यही टूटमट को, उसकी प्राधुनिकता तथा नयन की रचनाकार के दृष्टिकोण से जाइकर तथा उस पर वच दे कर नामवर जो न हिन्दी कहानी को एक बौद्धिक दिशा और कलात्मक परिणति दी है ।

'६० के बाद की हिन्दी कहानी में रचनाकार का स्व अधिक महत्वपूर्ण हो गया है । यही कारण है, कि उसमें अतिरिक्त सजगता साथ कलात्मक स्तर पर नही व्यक्त हुई है । वास्तविकता को ही टूट करने का यह आवश्यक परिणाम हो सकता है । इस बीच वास्तविकता के भी नये पैदास उभरे हैं जो राजाजी के गोप्य बाद का या उसका निर्माण-स्वप्ना के साथ यक्त हुई, उन सम्भावनाओं से प्रभावित हैं, जिनकी पराधिका पिछले दशक के अंत तक समाप्त हो जाती है । ग्राम तथा शहर के सामाजिक, धार्मिक जीवन में बही कोई बुनियादी फर्क नहीं आता । एक आता है वास्तविकता के प्रति रचनाकार के उस आलाचनात्मक रूप में, जिसकी गुदगात मार्शभेय का परस्पर रचनाओं में हो हो जाती है 'मूदान को कहानियाँ के उस व्यंग्यपरक टूटमट में, जिसके कारण क्षेत्रीय प्रसंग व्यापक जीवन स्थिति में पुनः आ बुद्धत हैं । फर्क आता है कभी के जमींदार बाबू राजा सिंह की इस विद्वान् परिणति के हास्यपरक नियोजन में ।

‘ मेरी माँला में बाबू राजासिंह की वह नाक तोर मयी, जिसे वे बार-बार कपड़े से ढँकने की कागिश कर रहे थे, भक्तिन बम्बून सहू या कि टपका जाता था— टप टप टप । ( जोतसी ने कहा था, कागोनाथ सिंह ) गाव के किसी दूसरे छोर पर एक प्रादिम श्रीःसुख्य तथा स्नेह क साथ प्रथम सत्तान क वयस्क होने क उत्कट प्रतीक्षा करना नीलकांत या ‘दूसरा प्रादमी’ भी कहाँ-न कहाँ से भिन्न प्रवश्य पड़ गया है । वह भिन्नता जो परिवेश क निरन्तर परिवर्तित होने तक हा सीमित न हाकर रचनाकार की दृष्टि तथा उसके आलोचनात्मक दृष्ट से जुड़ा है, ६० क बाबू की ग्राम जायन पर प्रापारित कहानियाँ का, यद्यपि वे सरया में बहुत ही कम हैं व शीघ्र विशेषता है । उनमें कही वह कमानो आर्द्रता नहीं है, जो शिवप्रसाद तिलक का प्रसाद मित्र तथा लक्ष्मीनारायण लाल प्रादि की रचनाओं में यत्न हुई है । प्रसंग भार से अधिक उनमें प्रातरिक तनाव की रेखाएँ हैं, जिसमें रचनाकार का संपूर्ण व्यक्तित्व समाहित बीधना है ।

नये रचनाकार की प्रक्रिया वस्तुतः उम आलोचनात्मक स्तर पर तटस्थ होने की नहीं है, जिसका आभास कभी कभी अमरकांत की कहानियों में मिलता है । उनकी अधिकतर कहानियाँ अपनी संपूर्ण कलात्मक विशेषता क बावजूद कही-न-कही में रिक्त हैं । वह बहुत कुछ रागात्मक स्तर क अनभिप्रेत रह जाने प्रथम सूक्ष्म स्तर पर अर्पित होने क कारण है । इसका बावजूद उनकी रचनाओं में पर्याप्त इतना साफ रहता है, कि अलक्षणीय स्थिति का अंतर कहीं से भाति नहीं होता । अमरकांत और अंधकार क चिरान की अपनी संपूर्ण चेतना क नाथ महसूस करते हुए, नये जीवन मूल्याओं में वस्तुविश्रुता की खोज और उपलब्धि क स्वप्न नये लेखकों में पूरी तीव्रता के साथ इसराइल में व्यक्त किये हैं । आलोचनात्मक स्तर पर अर्पित तटस्थता बरतते हुए भी कागोनाथ सिंह का कहानियाँ, विशेषतया ‘सूत’ और ‘बाय घर में मृत्यु’ भी अधिक मर्मप्र है । अवश्य ही इसका मूल में एक सुनिश्चित दृष्टिकोण का सक्रियता है, और वह बिटकाएँ प्राप्ती हुई समस्याओं क निवेदन का है ।

नयी संवेदना का भी दो स्तरों पर अभिन्न किया जा सकता है, और यह विभक्तता मात्र का कहानी चर्चा में प्रयुक्त ही नहीं, आवश्यक भी है—वास्तविक जीवन स्थितियों से कट कर, सैद्धांतिक वास्तविकता को संवेदन का आधार बनाकर लिखी जाने वाली कहानियों का दृष्टि से और भी, जिनमें नये जीवन-बोध के बदले उसका छद्मवेशी स्वरूप ही अधिक यत्न हुआ है ।

सैद्धांतिक वास्तविकता को आधार बनाकर लिखी जाने वाली रचनाएँ, कविताएँ और कहानियाँ आचार्य के बाबू या उसका पक्ष हिंदी में प्रायी हैं । बाबू जीवन

के अनुभवों से प्रयत्न परिवर्तित वास्तविकता से इनका सामंजस्य न होने के कारण ये प्रभूत ही बनी रहें। उनकी दुर्लभता तथा अग्रगण्यता का कारण भी संभवतः यही है, क्योंकि सम्मूर्तनो तथा प्रतीका से कही गयी। अतश्चेतनावाद अथवा प्रस्तित्ववाद के नाम पर, उनके सैद्धांतिक सूत्रों द्वारा वास्तविकता व एक नये धरातल की कल्पना करते हुये अब तक जो कुछ लिखा गया है, इसलिये इतना अधिक प्रभूत और अवास्तविक है, चूंकि उसमें सामान्य पाठक के अनुभव की कोई वस्तु नहीं है। निमल वर्मा की रचना पराये शहर में की वास्तविकता धारणात्मक नहीं तो, और क्या है ? '५० व मास-मास मनोविश्लेषण के निष्कर्षों का आगार बनाकर कुछ ऐसी ही कहानियाँ लिखी गयी थी। वास्तविकता का दूसरा छपरेशी स्वरूप वह है, जो सूचनाओं के माध्यम से रचनाकार को प्राप्त है, जिसपरतया साहित्यिक सूचनाओं के माध्यम से। किसी एक ही चीज को लेकर यत्किंचित् परिवर्तना के साथ उसे रचना का रूप देना ही दो कहानियों में अंतर भ्रमसर दखा गया है। 'मनोवपन' की समस्या को लेकर जा कुछ जितने प्रकार से लिखा गया है, उससे हम परिचित हैं। यही बात आत्म हत्या, मृत्यु, व्यक्ति के यापक आधुनिक हारर को लेकर भी कहा जा सकती है। नये सख्तों की यह एक बहुत बड़ी सीमा है, जिसमें अनुभव की वास्तविकता न होकर उसका सूचनाओं में परिवर्तन ही प्रकाशित हुआ है। वास्तविक जीवन स्थितियों का तरह इसा लिये यह अधिक तीव्र और सार्थक नहीं है। माकण्डेय व दा मे कहें तो सूचनाओं में परिवर्तन में यह वास्तविकताओं की बुझोवत है। राजेन्द्र मादव पर लिखते हुए उन्होंने यह बात उठायी है इससे कुछ निम्न सर्धर्भ में। 'नेकिन बात यहाँ भी वही है, कि 'सकिन पाशो' जिन्दगी के भीतर से जानता है, और उनका सह-बोला है या उसकी जानकारी सूचनाओं पर आधारित है—नैदानिक सूचनाओं से लेकर साहित्यिक सूचनाओं तक। स्वयं में यह एक ह्रासनीयता है, जिसकी अति प्रतीति की जाता है सूचनाओं में परिवर्तन के विस्तार प्रयत्न अतिरेक द्वारा 'छोटे-छोटे ताजमहल' की भीड़ लगाकर या भावुकता, निषेध, तटस्थता, मनोवपन आदि के जितने सभावित प्रसंग ही सत्य हैं, इनसे जितने प्रकार की कृत्रिम, कल्पित स्थितियाँ निर्मित हो सकती हैं, सब के प्रयोग द्वारा।

प्रयोग के ही स्तर पर अगर अ-कहानी (Anti Story) के पैटर्न की भी कुछ रचनाएँ आयी हैं। सिर्फ प्रयोग के ही स्तर पर। यूरोप में वास्तविकता के विशिष्ट नियामन की दृष्टि से इसमें साथ ही संभवता 'यत्त' हुई है, हिंदी में उसे ग्रहण नहीं किया जा सका है। अगर की कहानी विषयक चर्चा में अ-कहानी की जो या-या हुई है (दृष्ट-य, 'कहानी-नववर्षों' व '६४, व स ग -४) वह बहुत ही भ्रमक और सामान्य है। अ-कहानी का अर्थ उनके अनुसार है 'यजना-मूलक' धर्मात्त दुहरी, तिहरी, अन्त



कथाओं से युक्त कहानी, और इस क्रम में कतिपय ऐसी कहानियाँ को उद्धृत किया गया है जिनमें सतही कथा के समानांतर किसी न किसी भाव कथा अथवा विचार कथा या दाना का प्रवाह है। इस याख्या के आधार पर आज की अधिकांश धार्मिक कहानियाँ का समाहार अ-कहानी के अन्तर्गत किया गया है, और अधिकांश कहानीकार अ-कहानीकार हैं—श्रीकांत वर्मा से लेकर प्रयाग गुप्ता, प्रबोध कुमार खोन्दा कालिया, परेश और दूधनाथ सिंह तक। जब कि वास्तविकता यह है, कि इनमें से अधिकांश की रचनाएँ अ-कहानी के तत्वा से अपरिचित हैं। नये कहानीकार खोन्दा कालिया ने सायास अपनी रचनाओं के अ-कहानी होने का दावा किया है—अबद्वार के 'तानोबय' में इसी नाम से उनकी एक कहानी भी आयी है—उन्में किसी भी पूर्व निर्धारित प्रसंग अथवा ऐसी घटनाओं की जो समसामयिक सम्बन्ध-मूला से विकसित कही जा सकती है योजना नहीं है। बल्कि यत्नपूर्वक उनका निषेध किया गया है। इसके बावजूद, उसमें अ-कहानी की उन प्रक्रिया का अभाव है जो वास्तविकता का निषेध करते हुए उसमें दूधनाथ से नयी वास्तविकता के स्वतन्त्र उभरने अथवा विकसित होने का अवसर देती है। उनकी 'नौ मान छोटी पत्नी' भी, जिसे इस कारण अ-कहानी माना गया है, 'चूँकि पति सदेह के आक्रामक रूप में स्थिर नहीं होता' वस्तुतः अ-कहानी के बलवत् द्विदृष्टि किस्म की कहानी बन गयी है, और अतः में सारी स्थिति बड़े ही भाड़े ढंग से घटना का रूप धारण कर लेती है। खोन्दा कालिया की यह बहुत बड़ी सीमा है, कि उनमें उन रचना-दृष्टि का अभाव है, जिसने पश्चिम के अ-कहानी आवाहन को विकसित किया है। पश्चिम में अ-कहानी का आवाहन टेक्नीक से आर्थिक वस्तुत्व को सनया नूतन धारणा का परिणाम है, जो पूर्वनिर्धारित प्रसंगों तथा घटनाओं का निषेध करते हुए, जायी हुई वास्तविकता के मूलभूत उपकरणों तथा तत्त्वों से स्वतन्त्र विकसित नयी वास्तविकता की अपनी रचनाओं में उपलब्ध करने का प्रयत्न करता है। इस प्रयत्न में कहानी का वस्तुत्व (अथवा धीम) सबसे नये सम्बन्ध स्तरों पर स्वतन्त्र प्रकाशित होने की क्षमता रखता है। अ-कहानी की इस प्रक्रिया को पश्चिमी देशों में विकसित 'साइबरनेटिक्स' अथवा स्वतन्त्र-निर्धारित गति नियमों से सम्बन्ध माना गया है। काफ़ी, न्यालिमा सरात आदि की रचना शैली में यह स्वतन्त्र विकास स्पष्ट रूप से लक्षित होता है जिसकी प्रक्रिया एक साथ उभय स्तरों पर चला होती है—वास्तविकता के निषेध के साथ नयी वास्तविकता के निर्माण पर भी। हिन्दी के नये कहानीकारों में या विशेषतया एक सास हृद तक (और वह भी अ-कहानी की सीमा में नहीं) प्रवाह का कहानीया में लक्षित होती है। एक सख्त नये सिचुएशन को जो प्रसंग के पूर्ववर्ती सम्बन्ध स्तरों पर कही से विभक्त नहीं किया जा सकता, रचने की प्रबोध में असाधारण क्षमता है। महेन्द्र भट्टा ने भी ऐसे प्रयोग किये हैं। मगर उनकी रचनाएँ शीघ्र ही

एक कृत्रिम तनाव में गुजरने लगनी हैं, जो समस्त ऐक्यीय जड़ता (आयाम बढ़ जाने से) के कारण है। परिणामतः उनको रचनाओं में स्थितियाँ ही नहीं टूटती, भाषा भी बार-बार टूटती है। इसके अतिरिक्त उनका रचनाओं में उस पसपेक्टिव का अभाव है जो रचना की सूर्य दिशा को, उनकी वस्तु और प्रक्रिया को भी एक साथ प्रभावित करता है। '६० के बाद काशीनाथ मिह, इसराइल नीलकांत अवधनारायण सिंह, मधुकर सिंह, रमाकांत आदि की प्रतिनिधि रचनाओं में उनकी पृथक उपलब्धियों के साथ ही पसपेक्टिव को अवधारणा रचना दिशा का ही रखा जा सकता है जिनमें बदलते संदर्भों की प्रति प्रसारण जागरूकता है, और सामाजिक असंगतियों के प्रति सही आलोचनात्मक दृष्टि।"

(माकण्डेय) •

"सवाल कहानी का नहीं, कहानी के समय का है, और समय की भी अवस्था तभी है जब वह इतिहास की प्रवाह गति में प्रवाहित हो रहा हो। ध्यान से देखें तो निरंतर विकासमान मनुष्य की चेतना ही इतिहास की चेतना है। इसलिए इतिहास भी और कुछ नहीं मनुष्य की वह कहानी है, जो उसने और उत्पादन की शक्तियाँ का अपना सम्बन्ध के निरंतर परिवर्तित होने के कारण निरंतर परिवर्तित मानवीय चेतना की सृष्टि करती रहता है, और हम लगता है जैसे कुछ बीत चुका है कुछ बीत रहा है, और कुछ बाँतन वाला है। उसी कहानी को हम अतीत, वर्तमान और भविष्य कह कर समय के भिन्न स्तरों का बोध प्राप्त करते हैं। वस्तुतः समय अपने में अलग से कुछ नहीं महज एक सगा है। समय को रूपायित करने का काम तो आदमी करता है। इस लिए नारा बाँत आकर आदमी पर टूटती है।

सवाल समय का भी नहीं, बल्कि उस आदमी का है जो आज के अपने सामाजिक आर्थिक संस्था की सही उपज है। विचार की सही दिशा तो यह होगी, कि इस सही उपज का देखकर हाँ सदा का विश्लेषण किया जाए, क्योंकि मिट्टी और पौधे व समान समाज और व्यक्ति दो भिन्न तत्व नहीं हैं। प्रयोगशाला में मिट्टी का विश्लेषण करके पौधे की हालत बताई जा सकती है, लेकिन समाज के विश्लेषण का मतलब ही है, मनुष्य का विश्लेषण।

इसलिए समकालीन कहानी में चित्रित उस सही आदमी की तलाश ही मुख्य है जिसका विश्लेषण हमारे आज के समाज के सामने आइना बन जाय। प्रसन्न में वह सही आदमी ही एक ऐसा मुरा है जिसमें हमारे चारों ओर फैले रहस्य के फदे का पता चल सकता है। अथवा हम यही कहते जाते रहते कि, "आई, बड़ा समय है।

यह हा क्या गया है सागा को ? कहते कुछ हैं, करते कुछ हैं । आज के आदमी का विश्वास नहीं । क्या जमाना था, क्या हा गया ? " आप भ्रम पदा करने वाली उक्तियाँ दोलत हुए कि हा माँवताआ म उलझ रहेगे और आपका पास ही रहने वाला यथाथ आपकी आवा में हमेशा आगल ही नहीं बना रहगा, बल्कि धार धीरे आपकी उक्तिया ही रुठ हाकर अपना मय खो बैठेगे

"मैं जानता था यही हाल हागा । मैंने कहा भी था इमिरती बाई इलाज करा ल । अब भी बच जाओगी । मगर कम्बलत जिन्दगी भर सारी दुनिया का बीमारी बाटता फिरी । अब मरो तो कोई उठाने वाला भी नहा । मगर कुछ भी कहो इमिरती बाई साफ साफ रडी थी । मुझ उसकी बातें मानूम हैं ।"

शकिन यही इमिरती बाई जब मरघट पर ल जाई गया ता 'बोकीदार ने अपना निगाह उठाते हुए उस जत्ताह से भरे मेहतर बसी की ओर इमलिए दला कि उसने मरने वाला की उम्र एक मटर से बत्तास बष बत्ताइ बी और 'सवाल किया, 'पति का नाम ?"

"बसीलाल बाल्मीक ।" उसने हाथ बल कर दत्तालत कर दिये ।

'बाहर आकर, सँभाल कर उसने शव उतारा । थोड़ी उस पर पूरी तरह डेंक दी । फावडा उठाया और गड्ढा खोदने लगा ।'

कहानी के इन दो त्यला की साधारण मूवनाएँ कहा यह भ्रम न पैदा कर कि रडी तो रडी, वही ऐसा न हो कि बसीलाल खिने खिने उससे सम्बन्ध रखता रहा हो । इसलिए एक नहा सा उडरख और लें, जब बसालाल सहसा सडक पर अपनी मला गाडा स जाते हुए पुलिस द्वारा पकड लिया गया था मार इमिरती बाई की लाश को रफा दफा करने की जिम्मेबारी उसका सिर मड ली गया थी । शायद इमिरती बाई क मरने क बाद वह पहला आदमी था जिसने इस काठरी में पर रखा था । शकिन इतना हा नहीं, 'बसी इस कोठरी में पहली बार आया था और म बार पुसत हुए उसे हल्की-सी कबोट भी हुई ।'

'इमिरती का उमने बहुत बार देखा था, एक-न एक दिन वहाँ जाएगा । गोरी, गुलाबी देह और वन, जो इतना बल चुबने के बाद भी कसा हुआ लगता था । मगर वह जा कभा नहीं सका । इतने पैस ही नहीं आये । शकिन शायद जि दगी में पहली बार बसीलाल शव में जान से पहलू गाढा थाता है । ताग का जिस म दाज में गाडी पर रखता है और जिस तरह अपन सिर क गमछ से उसका सिरहाना बनाता है, फिर जितनी मल्लूड चित्त और मनोमाम से अपना पसाने का कमाई क सात रुपया का रेजगारी सुगता, फूल माला तक का ध्यान रखना और जाना बज्जता जब शव का स

जाता है और घाट पर इमिरली का पति वन देखा है तो वह महा मान में हिंदी कहानी में एक नये मानवीय सम्बन्ध की गुरुप्राप्त का संकेत देता है।

इसलिए नहीं कि श्रीकांत अपनी इस 'धवयात्रा' नामक कहानी में कोई ऐसा विविध जीवन खंड चुनते हैं अथवा किसी नये सदर्भ के सबंध में अनारचित चित्र देते हैं अथवा उगसी, अपरिचय तथा एकाकीपन की तथ्याकृत आधुनिक सच्चावला में नये भाव-बोध का ध्वनि खड़ा करते हैं, बल्कि इसलिए कि वे परिवर्तन के वास्तविक मूल को—एक अत्यंत उलझे हुए, गुम्फित और अमृत भाव-बंध का सहो निशा में विनित कर सकने की क्षमता का प्रदर्शन करते हैं।

अभिप्राय यह कि जीवन की बाहरी गतिविधि में परिवर्तन की दिशा का चित्रण करना जहाँ भ्रम की अन्वेषण अथवा उद्घाटन की भूमि दृष्टि का परिचय देता है वही यह भी स्पष्ट करता है कि जीवन की रचना में भ्रमण का यह तरीका नया नहीं है और इसकी सीमा रेखाएँ हमारे यहां प्रेमचंद और यज्ञपाल तथा विद्या में मोपासा, भी' हजरी जैसे विश्वविख्यात कथाकारों में खोज रखी हैं। साथ ही जीवन की निरंतर परिवर्तनशील सचदना को रूपायित करने में यह तरीका सिर्फ प्रयाग और अवसर की अंगुलियाँ में फँस कर दूसरा काटिक के यानिक्त भाग में प्रतिक्रिया कुछ नहीं रह गया है, क्योंकि यह सच्चाई को रूप देने वाली मानवीय प्रकृति में नहीं बरन् उनके बाह्य क्रिया कलाप से जुड़ा हुआ है, जिस पर पूरी निश्चितता के भाव भरासा नहीं किया जा सकता। एक ही परिस्थिति और एक ही जावन परिवर्तन में हम दो भिन्न व्यक्तियों का दो निष्पत्ति में विकसित होने हुए देखते हैं तो यह स्पष्ट हुए बिना नहीं रहता कि भूमि और जलवायु से प्रभावित दिशा में विकसित होने की क्षमता के कारण आदमी का विकास जहाँ व्यक्तिगत रूप से उनके ऐतिहासिक परिदृश्य का एक नवत उपस्थित करता है, वही यह भी सूचित करता है कि सम्पूर्ण ऐतिहासिक परिवर्तन के नकार का भी अद्भुत चेतना आदमी ही में होनी है। इसलिए सायद यह कहना गलत होगा कि 'बसी' का अपना कोई परिवार नहीं होगा अथवा वह किसी औरत का पति नहीं होगा। लेकिन नये मानवीय सम्बन्ध की संरचना के समय वह अपने व्यक्तिगत जीवन परिवर्तन का संपूर्ण स्तंभ करके सच्चाई के चित्रण का एक सबंध नया प्रतिमान उपस्थित करता है।

तब तक एक ठर विचार करने पर किसी के लिए यह स्पष्ट हो सकता है कि नयी परिवर्तित परिस्थितियों में '६० के बाद के कई महत्वपूर्ण रचनाकारों में भी दृष्टि मानवीय सम्बन्ध के इसी परिवर्तन पर बंदिस्त है। पति-पत्नी के नये सम्बन्ध का तलाश में जहाँ खोज कालिया 'नौ साल छोटी पत्नी' की रचना करते हैं वही डा. पुरान दोस्ता के नये सम्बन्ध को सुरेंद्र वर्मा और नीलकांत अपनी कहानी 'मेहमान'

और 'पहचान' में दो भिन्न स्तरों पर, दो भिन्न परिवेश में रख कर रखते हैं। प्रयाग पुस्तक को 'सामान' और 'सड़क का दोस्त रामनारायण शुक्ल की पास बुक', प्रबोध कुमार का 'आखेट इसराइन की नये मकान का खंडहर', विजय चौहान की 'रजाई' तथा जानरजन की 'सप होते हूँ', जैसी कुछ ऐसी कहानियाँ हैं जो स्पष्ट करती हैं कि भारतीय समाज के नये आर्थिक विकास में आदमी न परस्पर सम्बन्धों का मूल ला दिया है। नो सम्बन्धों के पुराने ढाँचे अब भी सड़े हैं लेकिन वे हाथों के दाँत बन गये हैं। इसलिए आदमी की सही पहचान विरल हो गयी है। ऐसे समाज में प्रापका हर प्रगला कदम किसी ऐसे गड्ढे में पड़ सकता है, जिसका आपकी तनिक भी आँख न हो, और इसका बहुत कुछ श्रेय नये सम्बन्धों के निर्माण को नहीं करके पुराने मुर्दा सम्बन्धों को जीवित रख कर धाँचे की टट्टी खड़ा किये रहने का है, जो किसी भी समाज की अपरिवर्तन क्षमता एवं पुराने व प्रति यामोह का परिचायक है और ऐसा नहीं कि इन सबका ने इस यामोह से नागा ताड़ लिया है। जीवन के व्यापक अनुक्रम में नाता टूटता भी नहीं क्षिप्त पड़ जाता है। धार में बँट पानी की तरह धीरे धीरे मर जाता है और नये रिश्ते उसका स्थान ले लेते हैं। लेकिन इन नये पैदा होने वाले सम्बन्धों में भी कई बार भयंकर घर्षण आ मिलते हैं और जरा सा रगड़ लगन पर पालिंग छूटती है पुराना रंग उभर आता है। इसलिए यही यह स्पष्ट कर देना भी जरूरी है कि नए मानवाय सम्बन्धों का तलाश वही वास्तविक हो सकती है, जहाँ पान अपने आर्थिक एवं ऐतिहासिक परिदृश्य से नयी हैं क्योंकि उसकी चेतना का सम्यक् विकास उन्हें नये रिश्तों तक स्वयं पहुँचा देता है।

कहना न होगा कि वह नये सबका में परिदृश्य की इस चेतना का अभाव वहाँ उन्हीं नयी वास्तविकता के अंकन से दूर करता रहा है, वहाँ उनका रचना क्षितिप भी कमजोर एवं उबाऊ हो उठा है। कई लोग तो जीवन में कहानी के स्थल की पहचान ही नहीं रखते और प्रेमचंद कालीन कमजोर सबक के क्षितिप में नए भाव-बाध की उत्थिता भर कर ऐसे नकली चरित्रों की सृष्टि करते हैं जो न तो नये हैं न वास्तविक। इस दृष्टि से दूधनाथ सिंह की 'रक्तपात' और कागानाथ सिंह की 'सुख' जैसी कहानियाँ दृष्टव्य हैं। 'रक्तपात' का क्षितिप वही पुराना 'बटमान' वाला है। कहानी कहा बीच से शुरू होकर सहसा अणुनात्मक घघटित पर मूल जाती है ता फिर वही बीच से पानी उलीच कर सबक कहानी की गथा बहाता है। ध्यान न रखें तो समय की चेतना लेखक में ठाक वैसी ही है जैसी रोमानो लेखक में होता है, और ठीक उसी तरह लेखक प्रकृति में मनाभावा का प्रक्षेपण करता है। कहानी यहाँ के समय विस्तार में नाहक बौद्धी फिरती है। वस्तुतः कहानी के पहले दो हिस्से उजाड़ हैं। लेखक विघटन का जो

रूप प्रस्तुत करना चाहता है उसमें वह खुद ही विघटित हो जाता है, क्योंकि दस बारह साल के प्रवास में उसके नायक में कुछ भी ऐसा निर्मित नहीं होता जिससे टूटने की अवस्था मिल सक।

‘मुख’ की परिकल्पना ही प्राधिभौतिक है जिससे जीवन के भौतिक परिवेश से दूर का भी सम्बन्ध नही। चमत्कार की तरह सूरज की किरण ‘भोला बाबू’ की छापड़ी पर उतर आती है और वे सहसा बिना किसी आधार के मुख की हवा में उड़ने लगते हैं। कामू के ‘घाउट साइडर’ का नायक भी इसी तरह तब राशनी का कोर्ट में बार बार जिक्र करता है और दायद ‘कामू’ इस तरह हवा को अकारण इसलिए सिद्ध करना चाहते हैं कि वे आदमी में कुछ ऐसा भी मानते हैं जो बाहर के तर्कों से नहीं समझा जा सकता। अतः यही चेतना ईश्वर जैसे महान भूत का निमाण कराती है और प्रकृति को मनुष्य के ऊपर स्थापित करने में ऐसी ही विचार धारा से मदद ले जाने लगी है। वस्तुतः यह माग कहानी को एक ‘माइडिया के नजदीक ले जाने वाला है जहाँ पान और पान के समाज के प्रति लेखक की कोई प्रतिबद्धता नहीं रहती और लेखक कल्पना की पंथ से कहानी उढाया करता है। यह वास्तविकताओं के नजदीक पहुँचने के बजाए, उन पर पर्दा डालने वाला का रास्ता है।

वस्तुतः जीवन की व्यापक वास्तविकता से इस तरह मुँह मोड़ लेने का कारण रचनाकार नहीं होता न वह हो ही सकता है। यदि हाता है तो वह अपनी रचना शक्ति की खुद ही हवा करता है। इसलिए हम जब ‘जबयाना’ और ‘ठंड’ जैसी कहानियाँ के बाद शोकांत की ‘घर’ जैसी कहानी पढ़ते हैं अथवा ‘नौ साल छोटी पत्नी’ तथा ‘पत्नी’ के बाद रवीन्द्र कालिया की ‘अकहाना’ पढ़ते हैं अथवा इन लेखकों द्वारा यत्न विचार और इसकी रचनाओं में सारतम्य को उन की कोशिश करते हैं अथवा इनकी पसंद की रचनाओं का इनके द्वारा नाम सुनते हैं तो सहसा लगता है जैसे हम अपने माँ के सही मामाजिन सदस्य के बीच आ खड़े हुए हों, जहाँ निश्चयपूर्वक कुछ कह पाना उतना ही मुश्किल है जैसे कभी अनिश्चयपूर्वक कुछ कह पाना हुआ करता था। माँ जैसे जैसे बाहरी दुनिया से उमय समय अभि यक्ति का लोप हो रहा है वैसे-वैसे हमारी परस्पर अभि यक्ति की भाषा नाकाफी सिद्ध हो रही है, क्योंकि आदमी सिर्फ सम्बन्धों में आदमी को जानता है या जान सकता है। यदि सम्बन्धों के आ तरिक मूल टूट चुके हैं तो यह मानना चाहिए कि भाषा का अवस्था वही भग हो चुका है और इन लेखकों की प्रसम्बद्ध भाषाभिव्यक्ति कभी कभी सहज लगने लगती है। आप इसे चीख कह कर कह कह, भाषाज कह तो इसकी अभि यक्ति के ये सही नाम हो सकते हैं, क्योंकि स्वयं इनका एक कथन दूसरे के विपरीत जा पड़ता है। स्पष्ट है कि इन्हें एक नयी

भाषा की खोज है लेकिन वह भाषा व्यवसरवाद की नहीं होगी, न वह विदेशी से ग्रान वाले साहित्य की नवीनता सम्बन्धी कुछ सेट शब्दां में निर्मित हो सकेगी वरन् उसके लिए नये लेखकों को एक स्पष्ट सामाजिक दृष्टि अपनानी होगी जिससे उनके शब्दों की सामूहिक अथवा सामाजिक अर्थ मिल सके। अपनी सम्पूर्ण विविधता एवं विस्तराव के बावजूद समाज एक अर्थ से अलकृत है। कोई साधारण समझ का पादमी भी वह कह सकता है कि नयी पूजावाणी अर्थ व्यवस्था ने हमारे समाज के पुराने सम्प्रदाय मूल्यों का जजर कर दिया है, पर क्या इतनी अर्थवत्ता नये लेखन को प्राप्त है? किन्तु हाल यही एक सवाल है, जिसके उत्तर की अपेक्षा हमें ही नहीं वरन् नये लेखन को भी हानी चाहिए।”

(निमल वर्मा) :

“बीमपी शादी में साहित्य की जो विधा सबसे पहले अपने अन्तिम छोर पर प्राप्ति प्राप्त हो गयी वह कहानी थी। केवल की कहानी ‘कहानी’ का अन्त है—या दूसरे में तो यह, उसके बाद कहानी वह नहीं रह सकेगी, जिसे आज तक हम कहानी की संज्ञा देते आये हैं। आज प्रश्न केवल का परम्परा को (इस अर्थ में प्रेमचन्द जी की ‘परम्परा’ सिर्फ एक छाया है—वह अप्रासंगिक है) आये बढ़ाने का नहीं है उसमें मुक्ति पाने का है। मोभाव्यवस्था ही दी कहानी के सामने ऐसी समस्या नहीं है—वह अभी चरम से भी बहुत पाछे है।

इसी लिए जब हम नयी कहानी की बात करते हैं, तो हमें ‘कहानी’ की मृत्यु से चर्चा प्रारम्भ करनी चाहिए। हम इससे मदद मिल सकती है—कहानी को पुनर्जीवित करने के लिए नहीं, बल्कि उसको अन्तिम रूप से छाड़ने के लिए। किसी ने कहानीकार के लिए कहा है प्रात्मा का डिटेक्टिव। डिटेक्टिव की यह विशेषता है कि वह सन्निध व्यक्ति का पीछा करता है, ताकि उनका भेद भाग्न कर सक। वह हमेशा पीछे है और बाहर है। जिस व्यक्ति का भेद वह जानना चाहता है उसे वह छू नहीं सकता। उसका निकट नहीं आ सकता। जिस कारण हम एक कथाकार की हैसियत से अपने इस बाहरीपन का समझ भत हैं कहानी की पुरानी विधा हमारे लिए निरर्थक हो जाता है। हम परिवर्तित भूमि से हट कर एक ‘यूटिल पाउण्ड’ में आजाते हैं जहाँ हर स्थिति गोपनीय है, हर पात्र मरिच्य है।

इस लिए कोई फायदा नहीं ‘पुराने’ भवका से भागे बचने का। डॉन कुइजोट की तरह हम उन पवन-चक्रिया को राशस समझ के गिरा भी दें, तो भी हम वहाँ रहेंगे, जहाँ पहले थे। जिस भूमि पर नयी कहानी को जन्म भना है वहाँ उनकी

‘पुरानी’ कहानी का महत्व काफी कम है, हम जिसे नयी कहानी कहते आये हैं—उसका महत्व और भी कम !

क्योंकि अगर हम ध्यान से रखें—नयी ‘कहानी’ अपन में ही एक विरोधाभास है। जिस हद तक वह कहानी है उस हद तक नयी नहीं है, जिस सीमा तक वह ‘नयी’ है, उस सीमा तक वह ‘कहानी’ नहीं है—जैसा आज तक हम उसे समझते आये हैं। यह जरा भी आकस्मिक नहीं है कि चेल्वर के बाद हर महत्वपूर्ण ‘कहानी’ कहानी एज सच’ से बहुत दूर हट गई है।

बीसवा शताब्दी की सबसे महान् कहानी ‘डेय इन वनिस सिफ एक फव्वल है—या फाकनर की कोई भी कहानी गद्य क टेक्चर पर एक काँच—खण्ड, चट्टान पर खींच गये भित्ति चिनी सी जादुई है। या फिर सबसे नयी कथाकार नातालिये सारुत की खम्बी कहानिया, जिनमें पहली बार पाठक कहानी में कहानी न हान क अजीब—‘टरर’ का महसूस करता है। अगर वे कहानिया हैं तो कबल ‘आत्मघाती’ अर्थ में—एक फव्वल है, दूसरी कविता, तीसरी ‘एण्टी कहानी’—उ हाने स्वयं बड़ी निममता से अपनी ही विधा को तोड़ा है, उसका चौखटा से मुक्त होकर उन मूखी और कठार और नाम हीन चीजों को छूने की काशिश की है, जो पकड़ के बाहर है।

कोशिश—नयाकि अततोमरवा कहानी सिफ एक कोशिश है—एक डिग्निसिन्व का सिर्फ उन सूराबों पर ही निर्भर रहना पड़ता है जो उससे पार चीछे छाड़ गये हैं। उसे एक ऐसे यथार्थ की ओर खे जासकते हैं जो महज मरीचिका हा सक्ती है, एक ऐसी मरीचिका से हटा सकत है, जहा अगर वह जाने का साहम करता, तो शायद कोई उपलब्धि हा सक्ती थी।

विलियम बटलर यीट्स की पंक्तिया हैं—

अब, मेरी कोई सीढ़ी जेप नहा रहा।

अब मैं वहा सट जाऊंगा,

जहा से सब सीढिया शुरू होती हैं,

अपने दिल की उस दुग धमयी दुकान में

जहा सिफ चियटे है, हडिडया है।

नयी कहानी का ज म इसी दुकान में होगा सिर्फ चियटा और हडिडया के पनाम। वहा कुछ नहा होगा कुछ भी नहीं मिलेगा।

जब कोई कहानी में ‘यथाथ’ की चर्चा करता है, तो हमारा दुविधा होती है—वह एक पंथी की तरह भ्रष्टा में छिपा रहता है। उसे वहा से आवित निकान पाना



उतना ही दुःख है, जितना उसके बारे में निश्चिन्त रूप से कुछ कह पाना, जब तक वह वहाँ छिपा है। प्रग्रेजी में एक मुहावरा है—“बोटिंग एगडट दी बुग।” कहानीकार सिर्फ यही कर सकता है—उससे अधिक कुछ करना असंभव है। तुम अगर भाँड़ी पर ज्यादा दबाव डालोगे तो वह मर जायेगा या उड़ जायेगा। हम सिर्फ प्रतीति कर सकते हैं कभी कभार भाँड़ी को इधर उधर घुंरेद सकते हैं।

किसी मनजान शायद जब वह हमारे प्रति उदासीन हो, उससे सम्पृक्त हो सकते हैं—प्रकृति हमेशा बाहर से। यह अभिप्राय है उम सेलक के लिए है, जो कलाकार भी है। जो सही मान में यथायत्न बाँधी है उसका लिए यथार्थ सदा ‘भाँड़ी में छिपा’ रहता है।

हेमिंग्वे इस बात को जितनी मामूलीता से जान पाये थे—शायद हमारी सदी का कोई कलाकार नहीं। ‘क्याकि कहानी लिखना बहुत कुछ ‘बुल-फाइटिंग की तरह है—उपक बहुत नजदीक है। हर कथाकार भलाइ में साँझ के सामने रहता है—घोरी हर बार उसका भयावह साँघ—उत्तर तुम चाहें जितनी कहलो, या मर्यादा यथार्थ—उसे धोला हुआ, छूते हुए निश्चिन्त जाते हैं।

इस भयावह के बीच रहना और सचाती हुई खून के लिए घातुर भीड़ में घिरे रहने के बावजूद प्रश्न में प्रवेश रह सकता है—उपक नजदीक जा सकता है। एक मध्यमालय यन्त्रिका के लिए यह राजनीति है। मुझ समझ में नहीं आता हम अगर अपने समय के महज एकाग्र नहीं बल्कि नाता रहने का माहम रखते हैं तो राजनीति में हम पल्ला भाँड मचान हैं। हमारी ‘गता’दी के लिए घोर उत्तरी सत्त्वति के लिए राजनीति उतना ही जीवित सदर्थ है जितना कि बायजण्टीन मस्कुति के लिए धर्म, पुनरुत्थानयुगान इटली के लिए क्लासिक, ग्रीक मर्यादा। प्रायः बायजण्टीन में धर्म निकाल नीजिए बाकी कुछ भी नहीं रह जायेगा। जिन सलका के लिए फासिज्म या कम्युनिज्म कोई प्रश्न नहीं रखता उनका लिए साहित्य भी कोई प्रश्न रखता है। मुझ गहरा सदर्थ ।

राजनीति एक व्यवसाय या भादवा या प्रेरणा के रूप में नहीं बल्कि एक जीवन्त निमज स्थिति के रूप में—जिसे बाँधने का सन्देह नहीं है, नीयो सेधायेसन है, तिल तिल कर मार देने वाली लास हिन्दुस्तानी गरीबी है।

यह स्थिति है—ममस्या नहीं। शरीर नहीं सलक इनके बारे में निम्न (सेषक की क्रियात्मक प्रश्न का इन से कोई सम्बन्ध नहीं) प्रकृति वह इनके सदर्थ से प्रश्न होकर नहीं लिख सकता। पिछले पाँच सौ वर्षों में यह सदर्थ तेजी से बढ़ता गया है—हर परिवर्तन कहानी साहित्य में (घोर कविता में भी) नये प्रतीका के लिए एक प्रजानी नूतन प्रस्तुत करता रहा है। फासिज्म का जो प्रतीक मोर (गे) के लिए था,

वही फास्ट टामस मान के लिए एक नये सदस्य में ( जर्मन फासिज्म ) विल्कुल एक नये प्रतीक के रूप में उपस्थित हुआ है हम इन प्रतीकों से बच नहीं सकते । वे उस श्रष्टे की लकड़ी की तरह हैं, जिसे भूमि पर टेकता हुआ वह अपना रास्ता खोजता है । ' अगर हम अपने युग के सही और सच्चे प्रतीकों को नहीं खोज पाते तो हमें फासिज्म जैसे गलत और झूठे प्रतीकों को भेलना पड़ेगा ' ( जान तेहमान )

और कलात्मक सौंदर्य ? हमारे समय के सबसे सुंदर और कलात्मक वे लेम्प नेड हैं, जिन्हें यहूदियों की लाल से बनाया गया है । उन्हें देखकर कौन एडोल्फ़ ग्राह्लर दित नहीं होगा ?

यह 'टोटल टेरर' की स्थिति है । - ऐसी स्थिति में अगर नयी कहानी कुछ हो सकती है तो मिर्क श्रष्टे में एक चीज । मदद मांगने के लिए नहीं—बल्कि मदद की हर संभावना को, हर गिलगिले समझौते का झुलान के लिए । अपने को पूर्ण रूप में इस 'टरर' में सम्पूक्त कर पाना—यह ही सबक का कमिटमेंट प्रारंभ होता है ।

मेकिन—मैं दुहरा कर कहना हूँ—कि यह मिफ़ सदभ है—कहानी का विषय नहीं । विषय कुछ भी हो सकता है—टाइम कम के प्रेम से श्रद्धा अपनी चहार दीवारी में फटा पर रेंगती हुई रूप को देखने तक । जहाँ तक सृजनात्मक प्रेरणा का प्रश्न है, वह हर विषय के पीछे छाटी या बढी हो सकती है, वह विषय स्वयं में न छोटा होता है और न बड़ा । यह बात प्रत्यक्ष है कि आज की कोई भी कृति—यदि वह महत्वपूर्ण है—अपने को इस 'टरर' में, उनकी मडरानी हुई छाया से मुक्त नहीं रख सकती ।

एक गद अपनी कहानियाँ के बारे में मैं जो कुछ चाहता रहा हूँ, वह मेरी नियोजन में नहीं आ सका है—मैंने हमेशा उसे दूसरा ही पाया है—इस लिए जो मैंने ऊपर लिखा है वह मान वाली नयी कहानी के बारे में है । अपनी कहानी के बारे में नहीं । मैं अक्सर कहानियाँ में वही चीज सबसे अधिक चाहता रहा हूँ—जो मेरे या मेरी कहानियों में नहीं है ।

अकिन जो 'बीज' दुभाग्य वगैरे मुझ में नहीं है, या जिसे प्राप्त करने में मैं असफल रहा हूँ । उसमें वह कम महत्वपूर्ण तो नहीं हो जाती ।"

## (रमेश बक्षी) :

“मुझे इस बात का दुख है कि नयी कहानियों के बारे में सोवत विचारों में मजाक के मूठ में नहीं रह पाता। वसा वरूँ तो वह जोकि मुझे दस रूप्य लगेगा जैसे स मुझे घणा है। मेरा बलक मेरे अपने भाप से कभी बलक नहीं रहा इसलिए मुखौट लगाने में हर जगह असफलता मिली है। क्षमा याचना इस ऐसी भूमिका के लिए। प्रस्तुत।

कहानी तो कहानी है पर वक्त ने उसे जा त-दीली दी इस कारण वह पुराना का प्रलग ‘नयी कहानी’ बन गया है। ‘नयी कहानी’ हिन्दी कहानी के समुन्नत प्रधुना तन स्वरूप के लिए एक सवधा उपयुक्त सगा है। उठता तो है तिनका भी, हेलीकाप्टर भी, फोन भी जेट भी, स्फुतनिक भी। फिर यं जुवा जुग नाम क्या? इसीलिए न कि उड़नवाली चीजें नाम करने से नय नाम पा गई। एक ग्राम्यी चपरासी या मास्टर बना, फिर प्रोफेसर, फिर कलेक्टर वह चपरासी या यह विगन है उमका, पर गर ग्राज कलेक्टर है तो क्या उसे भूतपूर्व चपरासी के नाम से ही पुकारियेगा? नहीं न? तो फिर ग्राज की कहानी को ‘नयी कहानी’ के नाम से प्रभिहित किये जाने पर वर्ष प्रार्पति क्यों? पुरानी कहानी में सब कुछ था नयी दिशा की सम्भावना भी थी पर वह बध गई था। यूँ कहूँ कि तरबा की बेगभूषा में वह रीति रुड हो गई थी। ‘नयी कहानी’ ने बधन ताडे, उसे हाथा की सकाणता स मुक्त किया, स्थूल ॥ वह सूक्ष्म की ओर बडी, वह मनोरजन भर ही नहीं रह गई। भावों का कोई स्पदन ऐसा नहीं जो नयी कहानी में न था तक, सिल्प का ऐसी कोई दिशा नहीं जो उससे प्रनदेला रही हो।

निश्चित ही ‘नयी कहानी’ न जो प्रयोग दिये उससे बन्ध पानी वह निकला है। उसने भाषागत विभिन्नताओं से सारे गद्य को एक नयी मधुरता प्रदान की है। कथानक ॥ त्रिभुज शिखरों से दूर वह मनचीती पगडंडियों पर चली है। स्थानाय रग प्रगर माँसों को प्रकाशित करता है तो वातावरण मन को, परन्तु क्षण प्रभाव का विवरण तो मारे नृत को झकझोर देन का क्षमता रखता है। हाँ, उसक लिए पाठक को मवेदनशीलता सहज ही उपलब्ध होना आवश्यक है। ईमानदारी से नया कहानी’ को रूप देने वाल शिल्पियों के बीच कुछ नवकाल भी भाड में घाय ही हैं। उनका नकली काम धन्दा को भी ब्रह्मनाम करने में नहीं चूकता। पर वे गौकिया पदान परस्त्व हैं पैरागूट के कपडा की तरह पाडे समय में अपना भाप ही भाउट प्राफ डेट हो जाएंगे। नयी बात चौंकाती है पर ममय को हरा से अपने भाप ही “भुम” उड़ जाता है।

हा मुझे तो हिंदी की नयी कहानी से सतोष है और उसके लेखकों के प्रति मेरी बहुत भद्रा है। मेरा विश्वास है कि यह सब प्रयास एक दिन रंग लाएगा। इन कहानियाँ मेरे पुत्र का प्रतिबिम्ब तो हैं ही, परन्तु अब वह भी मरान हो गया है। ऊगरी रेखाओं को बचकर आज का जलक मन्दर तक गया है। 'नयी कहानी' का लेखक १५ दिन यात्रा सा हो गया है, उसकी ध्वनि का सुन वायुवय की शक्ति को मँदाजा जा सकता है। उसके भावाँ में सागर-तल के बोये भीषण भी हैं और मनमोह मोहो भी।

मैं तो उस क साथ सीखने सीखते प्रभाव ग्रहण का एक छायापट भर रह गया हूँ। वक्त की परेशानियाँ मेरे उलझने उलझने जो भी गिनती के धाएँ बिना चमक कर रह जाने हैं उह ही सूक्ष्म सक्तों और प्रतीका के माध्यम में घटित करने की काशिश करना रहता हूँ। पात्रों और घटनाओं का विलुप्त स्वर इतना विरल हो जाता है कि मान लेंगे तो ही उनका आभास मिल पाता है। अतः मेरी अल्प दिशा का यह मत नहीं अपने प्रयोगों के दौर में बहुत कुछ नया मिलता है। और उस सबका अपना मुझे ठीक लगता है, क्योंकि ईसा ने उन लोगों से रक्षा है मुझे, जिनके हृदय में रास्ते हैं, मजिद नहीं।

मैं निवेदन कर देना चाहता हूँ कि आधुनिक कथा साहित्य की शैली में सब धित मया यह वक्तव्य निराश या भ्रम की गहन में नहीं है यह असद्विस्त में बिना सापेक्ष दग से विषय के आसपास घूमता है। नए कथा साहित्य के पाठक और लेखक होने का महत्त्व मुझे हमेशा बना रहता है, गायब इसी कारण अपनी बात कहने के लिए यह प्रगाम्भीय शैली उपयुक्त लगी।

“आधुनिक कथा साहित्य” बोलते हैं पाठक जिस आशय का ग्रहण करते हैं वह स्पष्ट ही नहीं कहानी, अथवा नया उप मय और एग्री नाबल है। नए आधुनिक के नाम स्वाधीनता व वाद हिंदी में आए हैं। यह भी कहा जा सकता है कि ये नाम परम्परा के विरोध स्वरूप प्रचलित हुए और हिन्दी कथा साहित्य की विकास दिशा के नए मीन स्तम्भ बन। यूँ हिन्दी कथा साहित्य की उम्र बहुत बड़ी नहीं है। जिन सुविधा व लिय हम लोग पुरानी कहानी कहते हैं वह हिंदी कथा-साहित्य का बचपन या और बचपन से आई वय-अधि वाली उम्र। प्रेमचंद प्रसाद और उनका बाद यशपाल अनेक जेनन्ड की कहानियाँ आज की उई कहानी के लिए बेनबम मर थी। स्वाधीनता से पहले भी अच्छी कहानियाँ लिखी गई हैं लेकिन उनसे अधिकतर उन वक्त के अनुसार अच्छी थी या कहानी नाम की कोई ‘एस्टब्लिश्ड चीज’ हिन्दी में नहीं थी इसलिए प्रसिद्ध हो गई। नई कहानियों की बात करते समय पुरानी कहानी का मतक

नकारना मेरी भूमिका है क्योंकि उस सारे कथा साहित्य में न तो देश की रूपरेखा देखता हूँ न मुझे वे काल सम्यक लगती है, वातावरण और मन स्थिति तो काफी दूर की बातें हैं। किसी आलोचक ने विदशी समीक्षा से उधार लेकर, उन्हें वगैरह समझ लूँगे, कहानी उपवास का शास्त्रीय तंत्र बना दिये—यह सब उसी तरह का कार्य है जैसे भाषा और वस्तुओं की गिनती लगा जगाकर कोई छद्म रचना करे। समीक्षा इस तरह होती थी कि जेनेट्र की कहानियाँ चरित्र प्रधान हैं यशपाल की वस्तु प्रधान या हायर सेकण्डरी स्तर पर यूँ कहें कि प्रेमचंद की कहानियाँ गाय प्रधान, गुजरगोशी की त्याग प्रधान और कौशिक की ताई प्रधान। आप किसी की मृत्यु पर थोड़ा सा राखिए, किसी का प्रचलित हृदय परिवर्तन पर चोंकिए, किसी की नुस्खेदार उदासी पर सामने रखी चाय को ठण्ठा कीजिए, किसी का बेमतलब नये होने में गति दिखाइए और 'भारत महान् देश है'—जसा कोई उद्बोधन सुनकर अपनी प्रकृति पर ही तरस लाइए वस, इतना कीजिए और आप हिन्दी के प्राचीन कथा साहित्य की यात्रा पूरी कर चुकेंगे। मुझे यह बिल्कुल समझ में नहीं आता कि हम लोग साहित्य का मामला में ऐसे दिवालिया क्या थे क्या उस गुलामी को पूरी तैयारी के साथ मैं हमन महसूस नहीं किया। जब राजनीतिक सामाजिक धार्मिक रूप से हम नरत थे जब हमारी गर्दन किसी के झूठे तबे दबो हुई थी तब क्या नहीं हमने फस्टेन किया क्या नहीं हमने कुंठाएँ पैदा हुईं, क्या नहीं विद्रोह और विरोध का व्यापक हममें उठे ? जहाँ मेरा यह प्रश्न समाप्त होता है वहीं मैं नई पीढ़ी की तथा कथित सुराईया की बजाय करन लगता हूँ। प्रायः के कथा साहित्य का शिल्प क्या है ! मर्यादित उत्तर है इन्द्रिय संचेतना। अब मुझे आप इसी शिल्प शैली के विश्लेषण की भाँति दें तो मैं कहूँगा कि नई कहानी एक ओर यन्त्रि नहीं सही अनुभूति को सही सही ढंग से ग्रहण करता है तो दूसरी ओर सामक प्रभि व्यक्ति को कलात्मक मोड़ देना भी है। नई कहानी में सबसे पहला जेनेट्र यशपाल आप साबो को प्रतीकार है इसलिए उसका स्वरूप परम्परा का विकास नहीं, परम्परा का विरोध है। विकास उस परम्परा का किया जाता है जिसमें प्रजनन की शक्ति हो, उस परम्परा का विकास नहीं किया जाता जो अपने ही हाथों बधिया गई हो। स्वाधीनता के ठीक बाद की कहानियाँ आप देखें तो ऐसा लगेगा कि शिल्प क हज़ार माड उनमें हैं—बारीकी है, बलिया है, कसीदा है, पुनरावृत्ति है। महा तक सन्दर्भ होने लगा था कि कथ्य की बजाय इनमें शिल्प है—राजेंद्र यादव की एक कमजोर लड़की' हो या कमलेश्वर की 'राजा निरवसिया' या निर्मल वर्मा की 'परिन्द' या माहन रायच की 'मिस पाल' या रत्न की 'मारे गये गुल फाम' अर्थात् तीसरी कसम शिल्प के प्रति एक छटपटाहट आप देखेंगे—इन नए प्रसंगों का प्रयास यह रहा है कि उन्हें अपने का ठीक ठीक प्रभि व्यक्ति करने की बजाय लोटा

देने की चिन्ता ज्यादा रहती थी—ऐसे किसी भी हुए हैं कि व्याज सिर ऊपर चढ़ जाने से अनुभूति उधार देने वाला डिग्री में आया हो—नई-कहानी प्लेटनेस या सपाटपा के प्रति विरोध भी रही है इसलिए गिल्प-शैली के कर्ब उसमें अधिक दिखाई देते हैं। राजेन्द्र यादव, और स्वयं मैंने विषय का ठीक ठीक सम्बोधित करने के लिए जल्दबाजी में ज्यादा प्रयोग किये हैं मैं तो यह कह सकता हूँ कि मैं स्वभाव से प्रयोग धर्मा रहा हूँ। क्या चरित्र वातावरण पुण्य अवकाल और उद्देश्य तक में प्रयोग। प्रयोग की हमशा बा दिशाएँ रहा करती थी एक दिशा वह जो उसे प्राचीन से प्रलग करती है और दूसरी दिशा वह जो उस नई जमीन तोड़ने का कहती है।

मैं सोचता हूँ अब अचल और नागर को धकर विभाजन नहीं किया जा सकता। रंगु ठठ प्राचलिक होकर भी नये हैं और जैन-ब्रज देशातीत कहानियाँ लिख कर भाँ पुराने। नयापन दृष्टि का है। इस दृष्टि को पकड़ा और ग्रहण किया जा सकता है यदि कुछ नये क्या सग्रहों का पाठ ईमानदारी के साथ किया जाये। फणीश्वर नाथ रंगु का 'ठुमरी', मोहन रावे'ग का 'एक और जिन्दगी', राजेन्द्र यादव का 'किनार से किनार तक' कमलेश्वर का 'छोई हुई दिखाएँ' उपा प्रियम्बदा का 'जिन्दगी और गुलाम के फूल' मन्नू भण्डारी का 'तीन निगाहा की तस्वीर' कुण्डलदेव वैद का 'बाघ का दरवाजा', श्री नरस का तथापि रामकुमार का एक चहुरा निर्मल वमा का परिद', हरिश्चकर परसाई का जैसे उनक दिन फिरे' शानी का 'छोट घेर का विद्रोह' प्रवाण फुवन का 'भबेली आकृतियाँ', और मेरा सग्रह मेज पर टिकी हुई कहानियाँ—उसे सग्रह हैं जो प्रलग प्रलग भाव स्तर पर नए हैं। किसी में संवदना की तीव्रता, किसी में युगबोध का स्पष्ट किमी में लोडण यग किसी में विनकना का सूक्ष्म गिल्प और किसी में जावन से काट गये किसी एक समय के दशन किये जा सकते हैं। कहानी कभी समानांतर होकर उभरती है, कभी विरोध रूप हाकर फैलती है। रूपक और प्रतीक क्या के माध्यम से संप्रेषित ही नहीं होत, ध्वनित और प्रतिध्वनित भी हाते हैं। इस सार शिल्प सौष्ठव के बाघ एक बात स्पष्ट दिखाई देती है कि क्याकार युग के साथ सम्पृक्त और रागात्मकता के प्रति असम्पृक्त एक साथ है। आज के कहानीकार की संवदना सान पर चढ़ी हुई है, वह दिन-ब-दिन पनी और गहरा होती जा रहा है लेकिन इसका साथ ही वह भावुक और टचा नहीं रह गया है इन मामलों में वह गूँड़ और रफ की कोटि तक पहुँच गया है। वह स्वभाव से किसी भी गलत निवास का अंश नहीं सकता मैं यह कह सकता हूँ कि समाज के वस्त्र नेतिकता के किसा टेलर ने सोय है—व ऊटपटाग दम से काटे गये हैं और उनकी सिलाई आउट माफ डेट है मैं कहानी लिखने से पहले समाज का आउट फिटर होना चाहता हूँ। देखता हूँ कि वस्त्र पर परस्पर का

गद जमी है मैं पहले ज्ञायकीनर होना चाहता हूँ। यहा तक कि बीमरा सदी के राज पय पर मैं प द्रव्य शनादा के दक्षिणातुस हिन्दुस्तानी का चहलचदमी करते देखना हूँ तो उस पर रेखा फेंकन को मैं अपने ज म का पहला कतब्य समझने लगता हूँ। नई पीढ़ी का नयावार कितना न किमी स्तर पर किसी न कितना बात का 'एण्टी' मयश्य है। यह सब साधुनिकता को देन है और नई कहानी क सिल्व का इसमे निकट सम्बन्ध है।

यव एण्टी कहानी या अकथा का जान मानन आती है। जा अथवा विदश मे है उससे हि न को अकथा का बिरूप बाडा भिन्न होता। भिन्न इसलिए कि जिन साधुवा का फरांगनी कहानी उस बिरल या ईशराय स्वरूप का बहरा प्राप्त कर चुकी है—यहा तक पहुँचन के लिए हिन्दी को कहानी का सभी कुछ सीढ़िया पार करनी हैं। यह सबया पक्तिगन दृष्टिकोण है कि हिन्दी को कहानी पहल एण्टी इन्विमेण्टन, पनत एण्टी—कम्पोजीगन पहल एण्टी रामेण्टिक पहल एण्टी पायट्री होगी फिर बाप का एण्टी—स्टोरी।

इसी बाव लघु उपयाम दजना मे सकथा को स या म पहुँच रहे हैं उसमे मरिकाग माभारण तथा घटिया हैं। बड़े उपन्यास लिखे तो बूत गये लेकिन कोई भी उनका ठीक ठीक निगाह नहीं कर सका है। 'उबडे हुए लोग 'म धेरे द' कमरे 'बीज', 'भूषे बिमरे चित्र' भूठा सच', 'जय वधन', 'पूमबतु एक खुनि सभी कहानी न कहा कोई न कोई कमी लिए हुए हैं। जब उपयास ही नहीं लिखे गये तो एण्टी नाबेल की बात करना निरपेक्ष है। लेकिन यह सही है कि अन्धे उपन्यास लिख आए मे क्याकि उनकी जरूरत स्वयं अन्धक महमूस कर रहे हैं—माय ही यह भा सही है कि अन्ध उपन्यासों का रूप 'मागन' या 'मैला भावन मे नहा लिया जाएगा। उर 'याम कगनी के विराट वनश्म का ही नाम नहीं है, सजन की सम्भूगता का भी नाम है। सार के सारे समाज बोध और कान बोध को दे देने की उममे क्षमता होनी चाहिए, माय ही उमे गालेशोप तत्वा मे मयथा मुक्त होना चाहिए।

यव तक प्रकाशित मारे साधुनिक नया साहित्य का मयें एण किया जात तो यह लगेगा कि सारा साहित्य अनिवाय रूप से यमाथबानी है, इस सार साहित्य म 'यक्ति-व्यक्ति के धेरे कु ठाए उदासीनता, दूष्टन और ऊव प्रकृति मे ऊव मुशी ह— ऐसा कहा नहा लगता कि सागमा सौ नवास साल की उम्र धकर हा धाया है और सामागय-मभागय तक ही उसकी जरूरतें परिमित हैं। एक जमाने में जो किस्मे कगनी लडक लडकिया का अ ट करने वाले समझे जान थे आज उनका ही नया रूप साधुनिक बोध मिथाने वाला माना जाता है। मेरा एक और ध्यययन यह भी है कि अपनी मने क देगहाल का जिनकी बेहतर तसवीर नई कहानी मे बनती है, साहित्य की अ य

किसी विधा में नहीं बनती। नई कहानी का गिल्फ मूव और अमरकांत की कहानियाँ सा कभी साया सादा हो जाना है, कभी सर्वेश्वर और रघुवीर सहाय की कहानियाँ सा चित्रभाषायुक्त कभी निमल वर्मा की कहानियाँ सा सर्वथा त्रिदशी, कभी ग्रेगु की कहानियाँ सा सर्वथा देसी, कभी श्रीकांत वर्मा की कहानियाँ सा शैलीहीन तो कभी राजकमल की कहानियाँ सा शैली प्रमित।—इसके बाद भी नई कहानी एक रास्ता है, एक दिशा है—मजिल या ध्रुवतारा नहीं।”

(राजकमल चौधरी) :

समकालीन कथा साहित्य के बारे में इतने लोग इतनी तरह की बातें कह रहे हैं कि मुझे यह सोचने को मजबूर होना पड़ता है कि फिलहाल और कुछ कहने की जरूरत नहीं है। आज की कहानी को नये आयाम, और नयी भावभूमि, और नया सामाजिकता, और नये दृष्टिकोण, और नये टेक्सचर, और नयी वैयक्तिकता, और नये मूल्यों में इस तरह बाधा बँकड़ा जा रहा है, कि पाठक की बात तो बहुत दूर की है, आज के कहानी लेखक का ही दिशा नहीं मिलती है कि कहानी क्या चीज है। वह नी लेखक इन तथ्यावृत्ति सैद्धांतिक आलोचना प्रत्यालोचनाओं के यूँ में अभिमन्यु की तरह घिर गया है, और अभिमन्यु की हत्या नहीं की गयी, तो कभी कभी वह आत्महत्या भी कर जाता है। यह प्रत्युक्ति नहीं है कि पशेवार समालोचकों समाजशास्त्र के निहित स्वार्थों (Vested interests) के कारण, सहयोगी लेखकों द्वारा दिये गये गलत मारा और गलत स्टडीज के कारण, और मुनाफाखोरी के नानाविध हमकण्डों में आत्मलीन प्रकाशक की व्यवसाय बुद्धि के कारण धीरे धीरे नयी पीढ़ी के कहानी लेखक आत्महत्या करने पर विवश हो, रहे हैं। एक उदाहरण है, कमल ओशा। दूसरा उदाहरण है माकण्डेय। ताजा उदाहरण है, फणीश्वरनाथ रणु। इनमें से किसी का सहयोगी लेखकों द्वारा लगाया गया झूठी लाक्षणिकता न पराजित किया है। किसी का इस खयाल ने मारा है कि नामवर कहानी लेखक बनने के लिए जरूरी नहीं है कि अच्छी कहानी लिखी जाय, जरूरी यह है कि वह फामूस चंद जसूरा चंद पलिमिटी स्टैंड प्रपनाये जाय। किसी का प्रकाशक ने मारा है। किसी को किसी और भ्रम या भाषाजाल या मलतफहमी ने।

कहानियाँ लाना मत रही हैं। कहानी लेखक खुदकुशी कर रहे हैं। और इन लाना का बूढ़ा ही धानदार जुबान निकाला जा रहा है। किसी भी मासिक पत्रिका का कोई भी अंक उल्टा लीजिए। स्वतंत्र सप्ताह में, टिप्पणिगुया में, स्तम्भा में समाक्षा में, यहाँ तक कि प्रकाशित पत्रों में हो, कहीं न कहीं पर ऐसी बात जरूर



मिल जायगी जो किसी भेषक को ऊँचा और किसी भेषक को नीचा करने के लिए, प्राज्ञ की कहानी का किसी न किसी भूषण या दुर्गुण में मद्धित या साधित करती है। हर दूसरा आलोचक, और हर तीसरा भेषक प्राज्ञ की कहानी के दर्श, का, सिर पर का मसीहा बन रहा है।

एक बंधु भेषक ने अपने एक भेष में कथा साहित्य की परिभाषा या दी है, 'मूलतः व्यक्तित्व और परिवेश के सापेक्ष सम्बन्धों में जीवन के स्वरूप और उनकी गति को समझने की सचेत प्रक्रिया का नाम ही कथा साहित्य है।' यह परिभाषा मेरे पक्ष में नहीं पड़ती है। कथा साहित्य क्या जीवन के स्वरूप और उनकी गति को समझने की सचेत प्रक्रिया ही है? कथा साहित्य 'गति को समझने की प्रक्रिया' है या प्रक्रिया की अभिप्राति है? क्या कोई उदाहरण लेकर इस 'व्यक्ति व और परिवेश' के रिश्ते और 'स्वरूप और गति' की समझदारी और इन सबकी 'प्रक्रिया' को समझा जा सकता है?

क्या इस 'प्रक्रिया' को ग्रहण और ग्रहण देने वाली कहानियाँ लिखी गयी हैं, या लिखी जा रही हैं? क्या कहानी की सीमा में (क्याकि, कहानी ग्रन्थात्म्य या समाजशास्त्र मनाविज्ञान या दर्शन की सीमा में नहीं है।) ऐसा करना सम्भव है? और इस परिभाषा को धार दिया भी जाय ता यह परिभाषा केवल कहानी के साथ ही नहीं, साहित्य की किसी भी विधा के साथ लागू हो सकती है।

बात दरमसल यह है कि नयी पीढ़ी के धलक और आलोचक बातों की उलझना चाहते हैं। इस कदर उलझना चाहते हैं, इस तरह स्थितियाँ और परिभाषाएँ और सिद्धांत गड़बड़ पैदा करना चाहते हैं कि जो कुछ भी व लियें और अपने बन्धुओं में लिखवाएँ वह मारा कुछ साहित्य के दायरे में मान लिया जाय—मान लिया जाय कि वह शिल्प का एक नयी विधि है, वस्तु की एक नयी शक्ती है, भाव का एक नया कोण है।

मैं इस पुरानी बहस पर उतरना नहीं चाहता कि साहित्य मानव-जीवन और समाज की उन्नति प्रगति का एक सहायक यन्त्र है, अथवा साहित्य मानव जीवन और समाज को अपने विषय के रूप में अंकित करके भी उनसे भ्रम का स्वतन्त्र है। इस बहस में पढ़ने से फायदा नहीं है, क्योंकि दोनों एकदम दो बातें हैं। मैं जीवन और समाज को साहित्य, विनोद कथा साहित्य के विषय (Subject Matter) से अधिक कुछ नहीं मानता। यह नहीं मानता कि किसी मतवाद का प्रचार किसी सिद्धान्त का प्रचार, किसी नैतिकता या किसी जीवन छल का प्रचार कथा साहित्य का उद्देश्य है। जो लोग ऐसा मानते हैं उनसे मुझे कोई स्पर्शा नहीं है। इतना अवश्य है कि सामा

त्रिक और राजनीतिक तन्त्र से, और इसकी उमल पुल से क्या साहित्य दामन बचा नहीं सकता है, अपने को बेदाग नहीं रख सकता । कि तु साहित्य के सौन्दर्य मूल्य और जीवन के उपयोग मूल्य में कोई एकता नहीं है ।

युद्ध अकाल राजमन्त्र, बेकारी महंगी, दूसरे देशों से सम्बन्ध, ग्रहकलह, ग्राम चुनाव इन सभी बातों का असर क्या साहित्य पर पड़ता है, सामान्यतः क्या कि विषय और स्वरूप पर पड़ता है । मगर इसका यह अर्थ कदापि नहीं है कि क्या-साहित्य को जीवन और संस्कृति की कलात्मक अभिव्यक्तियों के क्षेत्र से हटाकर, समाजशास्त्र और मनोविज्ञान के क्षेत्र में डाल दिया जाय ।

कहानी के बारे में तरह-तरह की परिभाषाएँ गड़ी जा रही हैं । नामवरसिंह जैसे नवोदित धालाचक्रों ने आज की कहानी का एक बार ही 'नयी कहानी' बना दिया है । 'नई कहानियाँ' (वपगाठ विद्योपाक, मई १९६१) में राजेन्द्र यादव का पक्ष धराया, 'आज की कहानी' परिभाषा में नये सूत्र ।' इसी एक धल के पर्यवेक्षण से पता चल जा सकता है कि आज की तथाकथित 'नयी कहानी' क सम्बन्ध और आलोचक क्या सोच रहे हैं, और यह सोच विचार किस हद तक उचित-अनुचित है ।

आठ कालमा का यह सब परस्पर विरोधी बातों, आत्म खण्डन और गलत निष्कर्षों से भरा है । पढ़ने कुछ उदाहरण पेश करता हूँ—

(१) इन दस वर्षों में कहानी का एक ऐसा चरित्र बरकर सबरा और निरुत्तर है, जो उसकी परम्परा से एकदम भिन्न है ।' और (२) कहानी के इस नये रूप में परम्परा को ज्यों-का-त्यों ग्रहण कर लिया है, ऐसा नहीं है । हाँ, कुछ मूल सामान्य बातें हैं ।' और (३) इस दशक की कहानी, जिसे हम आज की कहानी कहेंगे, ने इस समूह-गत सामाजिकता के वातावरण में आखें खोली । चाहे तो इसे ही पिछली पीढ़ी की विरासत मान सकते हैं ।' और, (४) 'बात आरोप के रूप में नहीं जाती है, लेकिन अनजाने ही यह भी सिद्ध करती है कि आज के कथाकार ने उन्हीं (प्रेमचन्द, यणपाल या सम्कालीन उर्दू कथाकारों—मन्टो, देवी, प्रेमचन्द, कृष्णचन्दर इत्यादि) की परम्परा का विकास देने की कोशिश की ।'—ये चारों परस्पर विरोधी versions राजेन्द्र यादव ने अपने इसी एक धल में दिये हैं । अर्थात्, यादव के अनुसार आज की कहानी ('नयी नया कहानी' पिछली परम्परा से एकदम भिन्न' भा है और फिर पिछली परम्परा से इसका कुछ सूना में समानता भी है, और फिर इसके पास (संस्कृत-गत सामाजिकता का वातावरण) पिछली पीढ़ी की विरासत' भी है, और अन्त में, 'नयी कहानी' के कथाकारों ने प्रेमचन्द आदि की परम्परा का विकास देने की कोशिश' भी की है ।

जो ही, आज की 'नयी कहानी' के ये उद्भट कथाकार और दिग्भट आलाचक परम्परा के बारे में इसी तरह बातें करते हैं। वे सोचते हैं कि अगर वे परम्परा का स्वीकार करेंगे, तो उन्हें 'नयी कहानी' का मौलिक सृष्टा नहीं माना जाएगा। मगर साथ ही उन्हें अपने को स्वयं का 'आत्मज' कहने का साहस भी नहीं है।

मैं इस बात का विरोध हूँ कि आज की कहानी पिछली परम्परामें से सर्वथा स्वतंत्र है। मैं यही मानता हूँ कि हमने चण्डीप्रसाद हृदयेन, प्रेमचन्द, गुलरी कौशिक, मुद्गल, विष्णुजनसहाय का परम्परा को ही आगे बढ़ाया है, उसमें एकदम टूट नहीं गये हैं। जहाँ तक कहानी की शिल्प शैली का प्रश्न है हम बहुत सजा से बहुत आगे बढ़े हैं। मुद्राराक्षस, रमेश चन्द, निमल वर्मा और राजकमल चौधरी की कतिपय कहानियाँ गिल्प की दृष्टि से फ्रांसीसी, ब्रिटिश, और अमरीका का साहित्य के आधुनिकतम गिल्प की बराबरी करती हैं। मगर, ये कहानियाँ किसी प्रकार भी विदेशी कहानियों का अनुकरण या 'नकल' नहीं हैं, क्योंकि इनकी समस्या, इनका विषय, इनका परिवर्ग सम्पूर्ण भारतीय है।

परम्परा से भिन्न होकर, परम्परा से टूट विवर कर अपना अस्तित्व और अपना अस्तित्व कायम रखना कठिन ही नहीं, असम्भव जैसा है। आधुनिकता के आधुनिकतम पुजारी ने 'ट्रैडिशन' से सब कुछ स्वाधीन होने की बात नहीं करती है। वे 'ट्रैडिशन' के टूटने की बात करते हैं। हर युग, हर काल, हर दशक क्या, हर क्षण पुरानी और पिछली परम्परा का कोई न कोई अंश दृढ़ता रहता है। हमारा हर कर्म सिद्ध करता है कि हम पिछले स्थान से बाढ़ा आगे ज़रूर बढ़े हैं। साहित्य और जीवन, दोनों ही क्षेत्रों में एक जाना, परम्परा से बंधे बढ़ाए रहना ही अगति और दुर्गति की निशानी है। मृत्यु का आभास है। मृत्यु है।

आज की कहानी में (जिसे मैं 'नयी कहानी' को सत्ता नहीं देना चाहता हूँ) हम साहित्य की अन्ध विद्याभा की तरह ही परम्परागत और तरीका और रास्ते को छोड़कर आगे बढ़ रहे हैं। पहले कहानी की निश्चित सीमाएँ थी, घटना की सीमा, चरित्र की सीमा, कथानक की सीमा, क्लाइमैक्स की सीमा। तरह तरह की सीमाएँ। आज हम इन सीमाओं में बंधे रहना ज़रूरी नहीं समझते हैं। हम ज़रूरी नहीं समझते हैं कि हर कहानी में कोई न कोई नतीजा (moral) निकलना ही चाहिए। कहानी खत्म हो जाती है, और अक्सर कोई नतीजा नहीं निकलता है। साहित्य और कला का अर्थ अभिव्यक्तियों की तरह है। कहानी भी हमारी नविकता या हमारे जीवन में या पर कोई प्रभाव नहीं डालती है, हम कोई 'हितोपदेशीय' सीख नहीं देता है (हल्क १११ में) सिर्फ हमारा मनोरंजन करती है और (आरी भरकम छंदा में)

मारे रमबाध, मो-दय बाध का अपन गिल्ग, अपनी कलात्मकता द्वारा तृप्त करती है ।

इन युग में आकर कविता और कहानी बहुत हद तक चिन्कला और संगीत निकट आ गयी हैं । कविता में संगीत और चिन्कला का प्रभाव मिलता है । कविता में भी मिलता है । कला व सभी फाम्स प्राप्त लिखे आ रहे हैं । अभिव्यक्ति क माध्यम (medium) अलग अलग हैं, अभिव्यक्ति का उद्देश्य एक ही है । और, यह उद्देश्य हम मजबूर करता है कि हम परम्परा से एकदम 'भिन्न' नहीं हो जाएँ परम्परा को ध्यान में रखते हुए और नान में रखकर ही आगे बढ़ने जाएँ । कविता और कहानी का पाठक, संगीत का श्रोता, कला चिन्ता और मूर्तियाँ का दर्शक परम्परा के भाग पर चलकर ही इन 'लासुष्टियाँ' की समझ पाता है, इनके सौन्दर्य का खुश प्राण कर पाता है । और अगर 'लासुष्टियाँ' अगर रचनाएँ गिल्ग 'नये और वस्तु का दर्शन से एक बार हो नये' हैं, 'ट्रेडिंग' में इनकी कोई जड़ नहीं है तो पाठक, श्रोता और 'दर्शक' का तनिक भी सहानुभूति उन्हें नहीं मिल सकता ।

आज की हिंदी कहानी का पाठकवर्ग की सहानुभूति मिली है भिन्न रही है । यह जल्द है कि जितनी तेजी से कथा चित्रण का विकास हो रहा है अपनी कथा के प्रति कथाकार जितना सजग है, सामान्य पाठक की समझदारी का विकास और मजबूत उतनी तेजी से नहीं बढ़ रही है । किन्तु ऐसा तो हर युग में होता आया है । सच कहें तो नयी दिशाओं और नयी उपलब्धियों की खोज में आगे बढ़ता है, और पाठक उमक पीछे-पीछे वहाँ तक पहुँचता है । हाँ, 'कमिश्नल' लेखक के साथ ऐसी बात नहीं होता क्योंकि वह अपनी कला और अपने शिल्प पर जरा भी ध्यान नहीं देता है, अपने पाठक को शक्ति और विषय बाँट का ही ख्याल रखता है ।

दूसरी बात यह है कि आज व एक कथाकार अपना महत्ता मिट्ट करन के लिए यह निराश्रित करत है कि पिछली पीढ़ी के कथाकारों से उन्हें विरासत में कोई चीज नहीं मिली है ।

कनकबाजी से धन (मो नी धोडे दिना तक) चल सकता है, साहित्य-सृजन और साहित्यालोचन नहीं चलता है । किसी एक सक्षक की बात तो दूर का है, पूरा की पूरी पीढ़ी आत्म विनाश और पर निन्दा के कारण समाप्त हो जाती है । आज की पीढ़ी के नयी कहानी लिखने वालों का भी यही हाल होगा, अगर व विनाश और व्यवसाय के 'नये मूना' से प्राण नहीं बचाएँगे । नयी पीढ़ी का विनाश का आवश्यकता नहीं है, नामवरसिंह की तरह निम्न नये नारे लगाने वाले आलोचकों की भी आवश्यकता नहीं है । 'नया भाव भूमि', 'नयी सामाजिकता' 'यत्किंचित् सामू-

हिकता', निवेद्यक्तिक वैयक्तिकता क तथाकथित 'सदभों और परिप्रेक्ष्या मे घला हट कर, अगर हम 'नयी कहानी नहीं, सिर्फ कहानी लिखें, निमल वमा क 'परिद' और कमलेश्वर की 'नीली भील', और रामकुमार का 'डेन' और धनवार भारता का 'गुल को दन्ता', और रेणु की 'तीसरी कसम' और क्षम गटियानी की एक कप चा, और उपा प्रियम्बदा की 'माहवय' और मुद्रारास को सखि' और रमेश बभी की 'उमका न देवना' और कृष्णा सक्ती की भोले बादशाह,' गिवप्रसाद सिंह की 'दिना महाराज', (यह सब तिलन समय जा नाम याद आ गये, वही लिख दिये हैं, वैसे और भी बहुत सारे प्रसक्त प्रच्छो से प्रच्छो कहानियां मिल रहे हैं।) जसी कहानियां। प्रच्छो कहानियां लिखना ही कहानीकार के लिए पर्याप्त उत्कर्ष है, 'परिभाषा के नये मूला' के ताने बाने में लिपट कर वह ज्यादा दूर तक आगे नहीं जा सकता है।

राजेन्द्र यादव भी अपने इस सब में खाड़ा भी आगे नहीं जा सके हैं, अपने ही बनाये दीर्घ-मध्या में उलझ कर रह गये हैं। कभी कहते हैं, 'सारी साहित्यिक क्षतना कविता से हटकर कहानी पर नित्त हो रही है' और कभी कहते हैं, 'इस प्रकार युग की समानता को पान का प्रयत्न आज के कहानीकार को कविता की ओर मोड़ता है।' और फिर यह भी कहते हैं 'इन दम वर्षों की कोई भी प्रच्छो कहानी उठा लीजिए। उसका प्रभाव या परिणति एक भलक के साथ देला या पाया हुआ सत्य नहीं होता। वह तो कुहामे या बन्दन-गंध का तरह समस्त क्षतना पर छा जाती है, उसका प्रग बन जाती है और अनजाने ही आत्मा को स्फुरा और दृष्टि देती है।' बाह, क्या कविताई है।' क्या आपन, 'नयी कहानी' के इस पक्षर के विचार से कहानी का 'प्रभाव और परिणति' कुहासे और बन्दन गंध' में हो रही है। उठा लीजिए, आज की कोई भी प्रच्छो कहानी। और, कहानी नहीं मिल तो 'जहाँ लक्ष्मी कैद है' या 'प्रमिमन्थु की आत्महत्या' या 'लुप्तदू' या 'पुराने नाम पर नया पते' की इन कनाइमन की पक्षिया पर गौर फरमाइये। 'यह युग, यह बदलू सब मेरे हा कारण है। अगर 'मैं' वह' होनी तो सभी कुछ क्षतना साफनुपरा होता।

आज सायद हवा इधर की ही है वडी बन्दू आ रही है यह बन्दू भी वडी मजोत्र-मी है, बनी सन्धो-मड़ी भी जैसे मन्दूक के पीछे कभी चूहा मर जाता है तो बन्दू आगे रहता है न, वैसे ही गंध है।'।

जो हाँ, वैसी ही गंध है, और इन्ने भाई राजेन्द्र जी (जो अपने इस कहानी में सक्ती भी हैं) बन्दन गंध कह कर बचना चाहते हैं। पुराने नाम की सडी हुई बदलू को आप बन्दन गंध मान कर खरोदना चाहते ?

सारा प्रपराय राजेन्द्र यादव का नहीं है। बात ऐसी है कि कहानी लिखना पड़ता है, घोर उसे बाजार में बिकी करना पड़ता है। अपनी कहानियों की दुर्गति के बारे में 'वन्दन-नाथ' का भ्रम फैलाना पड़ता है। सभी सम्पादक और प्रकाशक कहानी खरीदने हैं। अच्छी कीमत देकर खरीदने हैं। यह भ्रम नहीं रहता कहानी नहीं बिकेगी। घोर, कहानी नहीं बिक सके तो लिखी ही क्यों गयी।

बात घूम फिर कर चलन और व्यावसायिक चलन पर आ जाती है। कहानी चलन का उद्देश्य जब तक कहानी बेचना ही रहगा, कभी अच्छी कहानी नहीं लिखी जाएगी कभी पाठकों को अच्छी बात नहीं बग़ायी जाएगी। कबल सिद्धांत गढ़े जाएंगे, और केवल भ्रम फैलाये जाएंगे।

भ्रम फैलाये जा रहे हैं। विनोद मासिक (अगस्त १९६१) के अपने लेख 'म्राज का कहानी नयी चुनौति या मानविक और कुछ नाट्य' में राजेन्द्र यादव ने लिखा है, चाहे इस दशक के प्रारम्भ का 'नये के डीप' हो या इस दशक के 'भूठा सब'—इसपर जो भी उपमाएँ हैं, वे 'नये कथाकारों के नहीं 'पुराने के ही हैं। अपने नये नयी संवेदनाओं की निमित्त और नये बोध का वाहक कहने वाले कथाकार के पास उसकी अपनी पीढ़ी का प्रतिनिधित्व कर सकने वाला आवश्यक नहीं है, क्योंकि मैं राजेन्द्र यादव के इस शिष्ट प्रश्न का उत्तर दिया जाना आवश्यक नहीं है, 'नया उपमा' समझ नहीं आता है कि 'नयी कहानी' और 'नया कथाकार' और 'नया उपमा' भ्रांति नयी नयी विशेषण से भूषित बन चला है उनका मतलब क्या है। 'नया कथाकार' क्या हम उसे कहें जिसने इस दशक में लिखना शुरू किया है, या जो अपनी कहानी में प्राधुनिक शिल्प और शैली का उपयोग प्रयोग करता है? 'रसप्रिया' का नाम कहानी है या वह 'पुराना कथाकार' है (क्याकि, 'रसप्रिया' शिल्प की दृष्टि से प्राधुनिक है) या वह 'पुराना कथाकार' है (क्याकि वह लगभग १९४४-४५ से ही हृदी में कहानियाँ लिख रहा है?)

जहाँ तक हिन्दी के वर्तमान चलन का प्रतिनिधित्व करने वाले कथाकारों का प्रश्न है उनमें से कितना ने ही अपनी पीढ़ी का प्रतिनिधित्व कर सकने वाले उपमा लिख है। उदाहरण के लिए कुछ नाम सामने हैं। लक्ष्मीकांत वर्मा का 'बाली कुर्सी' की भाँति 'सर्वेश्वरदयाल सक्सेना का 'सोया हुआ जल' नरेश महता का 'हवन मस्तूल' दृष्टि सावनी का 'बार से बिछड़ी', हरिश्चन्द्र परसाई का 'ज्वाला और जन' शोमप्रकाश दीपक का 'मानवी' हिमागु घोषास्त्व का 'लोहे के पक्ष' कमलेश्वर का 'एक सड़क सतावन पलियाँ', 'कमल के फूल', अमरकान्त का 'सूखा पत्ता', मुद्रा राक्षस का 'मैडलोन' शेखर मटियानी का 'होलदार' शानी का 'कस्तूरी' राजेन्द्र यादव

का 'कुलटा'। और भी कितने ही 'नये कथाकारों' के 'नये उप यास' का नाम लिया जा सकता है। और, इन नामों के बाद क्या यादव का उपरोक्त प्रश्न हवा में उड़ नहा जाता है कि 'नया उप यास' कहा है ?

राजेन्द्र यादव जैसे एक ही नहीं हैं, कई हैं जिनसे हिन्दी के समकालीन ध्वनि का ग्रहित ही हो रहा है। क्योंकि जब कि यादव ने हिन्दी कहानी गिराने में नैली में, कथानक में, विषय वस्तु में, घटना निर्वाह में कथन में, कथ्य में, बहुविध हो रही है, विशिष्टता प्रधान हो रही है, नये नये कवच और नये नये रंग प्रदान रहा है, जब कि कोई कथाकार कुमायू और गढ़वाल के पहाड़ी भू-धरा में घूम रहा है, कोई महानगर के बड़े बड़े दरवाजे और कबो-होटला बार-बार उमा की जिदगी में डूब रहा है, कोई ग्राम जीवन की सुख-सुविधाओं और दुख-दुविधाओं में कहानियों के मोती निकाल रहा है कोई प्रणय का धकर-यस्त है, कोई हिंसा और अत्याचार में लीन है, कोई आधुनिक गहरी जिदगी, मध्यमार्गीय जिदगी के खोज-खोजन को चित्रित कर रहा है, कोई यौन विकृतियों और कुण्ठाओं के प्रदर्शन में लगा है कोई कल कारखानों और खानों का 'मशीनी' जन जीवन देख रहा है कोई पूज्यपतियों के यावसायिक हृदयका का परल रहा है। ऐसी स्थिति में राजेन्द्र यादव कहते हैं, (एकाध घण्टा बाद जो शायद, स्वयं उनकी कहानियाँ हैं।) छोड़ दीजिये, तो आज की मारी 'नयी कहानी' अपनी विषयवस्तु और उसके निर्वाह में आश्चर्यजनक रूप में एक दूसरी से मिलता है।

और इस निष्कर्ष के बाद वह और भी अतर्कित निर्णय देते हैं, 'नयी कहानी का नायक प्रतीत में जीता है, वह सपना से नहीं स्मृतियाँ से आकाश में है जब कभी भी वह वर्तमान में आता है तो ऐसे चिरियाएँ हुए निरोद्ध कठोर (आपन कभी बहूतर' को चिरियाएँ हुए' सुना है ?) के रूप में आता है, मानो काल प्रपन ध्वजा की प्रगुलिया से उसके एक-एक पल नाच रहा हो।' पढ़ कर आश्चर्य होता है कहानी के साथ ही आलोचनात्मक निष्कर्ष में 'नयी कविता' नुमा ये पंक्तियाँ लिखने का साहस लोगों में है। राजेन्द्र यादव से मैं पूछना चाहूँगा कि क्या उन्हें समकालीन अन्य कथाकारों की रचनाएँ पढ़ने का अवकाश मिलता है ? आज की कहानी कविने नायक में उनका परिचय है ? या, उनका परिचय माहल रावण, निमल वर्मा, और मन्त्र भंडारी के नायक तक ही समाप्त हो जाता है ?

प्रतीतजीवी और स्मृति भोगी हर आत्मी होता है, चाहे वह किसी कारखाने का कुत्ता मजदूर हो, चाहे कोई कमिश्नर। अर्द्ध आदमी अगर समाज में रहता

है, और उसे जीने के लिए, सुख सतोष के लिए मिहनत मजदूरी करनी पड़ती है, तो वह हर वक्त 'मरीत में जीता हुआ' और स्मृतियाँ सँभालता नहीं रह सकता है, नहीं रहता है। और आज की हिंदी कहानी ऐसे ही आदमी की कहानी है। आज की कहानी का नायक दफ्तर या मालिक होता है, किरानी, होता है, प्यार करने वाली बीबी का पति होता है, आबारा लड़की का आसिक होता है, रिश्ता चलाता है, टेक्नी लाता है बारात पोता है, दुमा खेलता है, अपने बच्चा को प्यार करता है, बेटी के ब्याह के लिए रुपये जमा करता है, पड़ोसी की मदद करता है, चोरी करता है, बरौजगारी में मुजिला रहता है, चाबी करता है, डाइवर्स लेता है नये मकान बनाता है, किराये के मकान में रहता है, खेता में ट्रैक्टर चलाता है, चुनाव लड़ता है। हारता है जीनता है, हँसता है, राता है आज की कहानी का नायक वह हर कुछ करता है, जो आज का आदमी करना है।

आज का आदमी कहानी भी निष्ठा है, और कहानी के बारे में आत्मबलोकन और कुछ नोट्स भी लिखता है—मगर, वह जल्दी और पाठकों के सामने गलत जगह और गलत सिद्धांत पेश नहीं करता है। उस नहीं पग करना चाहिए। जीवन भर साहित्य के प्रति ईमानदारी यही बहती है, यही मायवी है।

आज की हिंदी कहानी का नाम प्रायः 'नयी कहानी' रखें या 'पुरानी कहानी' रखें या उसे सिर्फ 'कहानी' कहें, कोई फर्क नहीं पड़ता है। फर्क तब पड़ता है जब आप आज की कहानी पर ऐसी बातें, ऐसे गुण या दुष्गुण आरोपित करते हैं जो उसमें नहीं हैं, और उसकी ऐसी परिभाषा घोषित करते हैं जो आपका पाठक तो क्या स्वयं आप भी नहीं समझ पाते हैं। नासमझी की यह आदत अन्धे आदत नहीं है, और मलक की सैहत पर घुरे असर डालती है।"

(दूधनाथ सिंह) :

"मलक की व्याख्या स्वयं मलक के लिए (कम अर्थ कम मेरे खयाल से) उतनी अहम नहीं होती। 'सम्पूर्ण वस्तु' को रचनात्मक तनाव के दौर में 'पुनः-पुनः जीने' में रचनाकार की काफी शक्ति खर्च हो जाती है। फिर उस 'पुनः पुनः जीने' को पृथक् से व्याख्यायित कर पाना कठिन लगता है। एक बात और है—इस प्रकार की व्याख्या या जाव-परलक्ष्य अपने रचनात्मक अनुशासन के लिए तो आ सकती है, हर खेल करता है, लेकिन यह इतनी अप्रत्यक्ष होती है, सेवन प्रक्रिया के साथ कुछ इस तरह घुली पनी होती है कि उसे पृथक् करना गीन सम्भव नहीं हो पाता।—ऐसा सम्भव होता



तो सत्सार के सभी उच्चकोटि के कलाकार उच्चकोटि के प्रालोचक भी होते ।

नई कहानी और पुरानी कहानी का अंतर क्या है ? बरल हिन्दुस्तान में ही नहीं सारी दुनिया में । अंतर कुछ इस प्रकार है पुरानी कहानी मनुष्य की जीवन की, समाज की इतिहास और व्यक्ति की एक व्याख्या प्रस्तुत करता है एक 'इंटरप्रिटेशन' देती है । चाहे वह चेलव हो या मोपासाँ घो' हेनरी हो या माम या पो प्रयश कथरीन मेसफील्ड या बाल्जाक, प्रेमचन्द हो या शरत ताराशंकर, गंगाधर गाडगिल या जेनेन्द्र कुमार और यशपाल ।

नई कहानी मनुष्य को जीवन की, समाज को और ऐतिहासिक मर्म को 'भिलती' और 'महसूस' करती है । यह अंतर इतना सूक्ष्म है (गो कि घटित हो चुका है) कि साधारणतया हमारे पुराने या बहुत से उन कहानीकारों की समझ में नहीं आता, जिनके सामने 'व्याख्या' वाला रूप उतना स्पष्ट और प्रामाण्य रहा है । (मूलतः ये लोग भी पुराने ही हैं ।)

इसे एक और तरह से कहा जा सकता है । 'कहानी बनाने' और कहानी का अपने आप कथाकार के हाथों से घटित होने का अंतर ही पुराने और नये का अंतर है । चेलव भी कहानी बनाते हैं, मोपासाँ भी, प्रेमचन्द, जेनेन्द्र और यशपाल भी । बहुतों ने उनसे कहानी बनाना सीखा भी है और बनूँगी सीखा है । किन्तु एक बहुत लम्बे प्रसंग के बाद आज हमें पता लगता है कि 'कहानी का घटित होना' (एक तरह से सत्सार की सारी कलाओं में यह प्रवृत्ति आज मिलती है) किस तरह होने इतिहास, समाज युग और मनुष्य के निकट सच्चे प्रयोगों से सा देता है । किस तरह रचनाकार और रचनी जाने वाली वस्तु के बीच की दूरी लोप हो गई है । और उसकी जगह एक सहज आत्मीयता और भागीदारी की भावना ने ले ली है । छातान्दियो से सारे कथाप्रेमियों का 'एप्रोक' या उसकी अनुसृतता इसी निकटता के ग्रहसास की ओर रही है । यह निकटता का ग्रहसास अमरकारिक नहीं है, बल्कि एक सच्चा बोध है । सामाजिकता इतिहास और मनुष्य की यह साधकता पहली बार अपनी सम्पूर्ण तीव्रता के साथ आज रचनाकार के सामने प्रकट हुई है । इसीलिए 'कहानी बनाने' की आवश्यकता उसे नहीं पड़ती । यह कहानी के घटित होने का भाग होता चलता है । इसका गद भी जो मानसिक ऊँचा पोह, एक आरोपित मनोमर्न, विज्ञान के रटे रटाए मिथ्यान्ता या मात्र गिल्फ की चतुराईया में विश्वास रखते हैं, और सामाजिक-ऐतिहासिक आवश्यकताओं की ओर से प्रसंग भूँद मते हैं, वे धीरे धीरे कहलायेंगे ।

नये कहानीकार के लिए 'फस्ट हैण्ड-एक्सपेरियंस' पहली शर्त है । यहाँ कुछ भी जुराया नहीं जा सकता । न जोड़-बटोरकर या शूषकर ही कुछ किया जा सकता

है। ऐसा जोड़-बटोरकर बनाया हुआ सारा खेलन पुराना है—चाहे वह नये या प्राधुनिकता का ही क्या न हो। रचनात्मक स्तर पर छदिया बाद यह तथ्य सामने आया है कि कथाकार को स्वयं और सदा रचना के प्रति एक पार्टी, रचनात्मक स्तर पर, होना पड़ेगा। यह तथ्य शिल्प और वस्तु की धारणा मध्यमो बहुत-से प्रश्न उठायेगा या गायब उठा रहा है, भक्ति जब तक खेलन-कम मनुष्य के पास है— किसी जानवर या देवता या प्रतिमान के पास नहीं—तब तक आज से और आज से आगे की ऐतिहासिक भाग—समाज और समाज निर्माता मनुष्य की त्रिशतांश को सहन और उसका 'निकटतम ग्रहसास' दिलाने के लिए यह शत एक अनिवार्य आवश्यकता बनी रहेगी। इसे प्रस्वीकार करना प्राधुनिक और सच्चे खेलन की दिशा छोड़ना होगा।

पहले का कहानीकार कहता था—'यह आदमी सुखी लग रहा है। इसे सुखी दिवाया जा सकता है। यह आदमी बीमार लग रहा है, इसे बीमार बनाया जा सकता है।' आज का कहानीकार कहता है—'यह आदमी सुखी है, यह आदमी बीमार है।'

उस जादू की छड़ी का आज हमारे लिए कोई भ्रम नहीं, जिससे किसी लड़के का गला काट कर, खून दिवाकर जादूगर दर्जा को प्रकट कर देता था। हम आज बाधने में नहीं, आज खोलने में विश्वास रखते हैं। वैसी जादूगरी आज कितनी उपहासास्पद लगती है।

सच्चा भवक आज पहले की अपेक्षा और भी अधिक अभिमान हो गया है, क्योंकि उसे उन लोगों के प्रति अपने खेलनीय कर्म में (अनुभव की तीव्रता में) उत्तर पायी होना पड़ता है, जिन्हें सुविधापूर्वक जीने की आदत पड़ गयी है, जो एक विस्तर और रजाई के लिए दुनिया का बड़े-से बड़ा गुनाह कर सकते हैं और उनके कानों पर प्रपराध की जूँ तक नहीं रेंगती, जो आपा को तो तक-जाल में उलझा सकते हैं लेकिन सम्पूर्ण जीवन की कठिन यत्नशास्त्रा को न तो सह सकते हैं न यह बात उनकी समझ में आती है, बल्कि जिनके लिए यह सब कुछ एक मजाक है। आज का रचनाकार ऐसे लोगों का क्रूरताओं से भी अपने को घृणित नहीं रख सकता। फिर इसे बड़ा नरक और क्या हो सकता है। जीवन की क्रूरताएँ खेलने की बात इस मन्दम में समझी जा सकती है।

नई कहानी की यह खेलन और महसूस करने की वास्तविकता—मनुष्य और उसकी सामाजिक परिवर्तना, उसके आचरण, व्यवहार और सधन को रचना के लिए प्रथम अनिवार्य वस्तु मानती है। इसीलिए 'वस्तु' के मयाध के परे आज खेलन का

कोई दर्शन नहीं हो सकता। न हो कहानी का। एक गहरे स्तर पर छोटी से छोटी घटना या सक्त, व्यवहार या अनुशोचना—पूरे मानव समाज को पुनर्निर्मित करती चलती है। जब तक आज का कहानीकार इस पुनर्निर्मित की ऐतिहासिक आवश्यकता का नहीं समझेगा, वह अपने लेखन में स्वयं एक पाटी नहीं हो सकता। इस तरह वह मूल रूप में आधुनिक जीवन की अव्यवस्था का समझने से इन्कार करेगा और मूलतः उसका सम्पूर्ण भजन छपभजन होगा, जिसका इतिहास और मानव-समाज की गतिशील धारा से प्रत्यक्ष और अतिरिक्त सम्बन्ध अभी भी स्थापित नहीं हो सका।

वस्तु की महसूस करने की यही वास्तविकता नई कहानी को एक अनिवार्य शिल्प देती है। इस शिल्प के कई रूप हो सकते हैं। लेकिन उसमें कुछ बात निश्चय ही नहीं होती—जैसे चमत्कारिक प्रदर्शन, वस्तु से विचित्रता, अविश्वसनीयता और मनोवैज्ञानिक ऊहापाह। इसके विपरीत यह शिल्प प्रशस्त तीव्र और अंतर में निश्चित होता है। आज छोटी से-छोटा घटना के भीतर एक 'क्लैसिकल टाइप ट्रेजडा' छिपी है। जीवन जितना ही छोटा हो गया है—जितना ही विवश और क्रूर—अपनी गरिमा में उतना ही प्रशस्त और गहन। नई कहानी का असली शिल्प इसी नई 'क्लैसिकल ट्रेजडी' का शिल्प है—हागा। 'वस्तु' के भीतर से उद्भूत, उसको प्रथम माय्यता देता हुआ और साथ ही उसके अधिकार को उजागर करने का प्रयत्न करता हुआ।"

### (अश्विनी कुमार) :

आज की कहानी यात्री नई कहानियों ने साहित्य में इतना महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त कर लिया है कि एक बारगी ही पाठक और आलोचक का ध्यान इसकी ओर गया है। आलोचक जहाँ नई कहानी को समझने के लिए पूरी तरह उसकी पृष्ठ भूमि और उपलब्धियों या विशेषताओं को पक्ष दर पक्ष स्पष्ट करना चाहते हैं, वहाँ प्रबुद्ध पाठक भी उसे पूरी तरह समझने के लिए उत्सुक है।

पाठक निश्चय ही आज की कहानियों में ताज़गी महसूस करता है, पुरानी कहानी के मुकाबले उसे आज की कहानियों अपनी समस्याओं और उलझनों का सच्चा प्रतिनिधित्व करती प्रतीत होती है। नई कहानी पुरानी कहानी की तरह हमारे लिए मनोरंजन का साधन नहीं है, बल्कि हमारे जीवन के सत्यो को गम्भीरता से प्रस्तुत करने वाली है, वह हम पर समाधान नहीं ला देती, हम उपरान्त नही देती हमारे परिवेश और हमको जिस का उस प्रस्तुत कर देती है, मय यह हमारा

काम है कि हम स्वयं पर और अब भी परिस्थितियां पर सोचें और जीवन को बेहतर बनाने के लिए मार्ग तलाशें ।

छायावादो कविता में जो स्थूल के प्रति मूल्य का विद्रोह परिलक्षित होता था, वही आज की कहानी में है । नया कहानीकार जीवन की वारंकिमा पर विचार करता है । आज वह घटना प्रधान या चरित्र प्रधान कहानियां लिखना पसंद नहीं करता, वह कहानी के मध्यम से पसंद करता है किसी जीवन मूल्य का उद्घाटन और इन उद्घाटन में वह बंधी बंधाई सेतु से काम नहीं करता है, यानी उसका शिल्प बदला है । हम यह स्वीकार करने हैं कि पुरानी कहानी की गिल्फ की पृष्ठ भूमि रही है, लेकिन वह है पृष्ठ भूमि भर ही ।

शिल्प के प्रतिरिक्त नए कहानीकार की दृष्टि में भी बदलाव आया है, वह स्थितियां, घटनाएं, समस्याएं तथा यत्तियां के प्रति वैसी पहल नहीं करता जैसा पुराने कहानीकार करते थे, वह अब कहानी में हृदय से उतना काम नहीं देता जितना कि भक्तिष्क से देता है । इसीलिए नई कहानी आज के बौद्धिक युग का प्रतिनिधित्व कर पाती है । भविष्य की विकसित कहानी के लिए हमें नई कहानी को एक मापान मानना चाहिए, कहानी के इतिहास में एक उपलब्धि ।”

इन सार उद्धृत मतों से एक बात बहुत साफ हो जाती है कि नई कहानी पर प्रलग प्रलग कोणों से गम्भीरता पूर्वक विचार हुआ है । नए पुराने सबका न साफ तौर पर अपनी अपनी बातें कहा हैं । यत्किणत आक्षेपों और ममीहार्द भरी सकरीरा (शेना ही प्रलक को कमजोर साबित करती हैं और कमजोर प्रलक की अपनी विगप ताए हैं) का जोड कर नई कहानी पर अब तक की गहम काफी विचारात्तेजक रही है जेमा हम मान मरुने हैं । मान हम यह भी सकन ह कि इन गहम में कहाना की यत्तीन कहानी से भिन्न आलोचना के क्षेत्र में वैचारिक स्तर पर एक नया मदन मिलता है । यह नया सदन (यत्ति हम चाह ता) समूचे कथा साहित्य की ममभने में हमें मदद दे सकता है और कथा साहित्य के पुनर्मूल्यांकन की घटमियत हमें महसूस कराता है । इतना और भी कि अब तक न अपनाई गई एक नई दिगा से हम कहानी की समी ना कर सकने हैं । हम चाहते हैं कि कहानी पर यह गहम हिन्दी कथा साहित्य का एक नया आयाम हो और कथा की मूल्यगत आगत सम्भावना को परत दर परत प्रस्तुत करने के लिए गतिगाता पृष्ठ भूमि बहरहाल ।

## नयी कहानी सम्भावनाओं की खोज

रघुशंकर कालिया

यह सब है कि किसी प्रामाणिक समीक्षा-पद्धति तथा किसी स्पष्ट विचार रेखा का अभाव ही कथा-समीक्षा की दरिद्रता का सबसे बड़ा कारण है, परन्तु यह उसमें भी बहुत बड़ा तथ्य है कि कहानी क्या, जीवन की किसी भी जीवत प्रक्रिया को किसी भी परिधि के सकोच में रखना मुश्किल हो जाता है। यही कारण है कि कहानी की मुक्ति, समीक्षा के लिए बाधन बन जाती है। इस मुक्ति-बाधन का एहसास नई कहानी और उसकी समीक्षा के सन्दर्भ में सहज ही हो जाता है। समीक्षा के किसी अनुकूल आधार को अविकसित कर पाना तो दरकिनारा, विश्व में कहानी का स्वतन्त्र विधा के रूप में अभ्यस्य हो नहीं किया गया था। इथर फॉक्स मो कूनर नेमो हेल् एडविन मोचे, सुम्बाक, मास्टिन राइट स्माग्रा फाउसेन, यस्टन आदि ने इस दिशा में महत्वपूर्ण कार्य किया है।

सम्भारित की इस स्थिति में कहानी का मूल्यांकन प्रोत्साहकों की निजी रूचि-प्रवृत्ति के आधार पर होता रहा है। कहानी का मूल्यांकन कभी नैतिक प्रवर्तक, शैली प्रशंसी, स्वस्थ प्रस्वस्थ अच्छी-बुरी व्यक्तिपरक समाजपरक भाषा विभाजन खण्डों में रखकर किया गया, जो कहानी के बाह्य एवं सतही धरातल का ही स्पष्ट कर पाता है, कहानी की अन्तरालमा और उसके वास्तविक अर्थ का सम्प्रेषण करने में असमर्थ रहता है, और कभी कहानी के मूल्यांकन के लिए रीतिबुध्दी निर्जोष फामू न पुन आधिकृत किये गए। कहानी का 'नख में गिन तक दुस्त' कहानी भा एक ऐसा ही फामूला है, जो कथा-समीक्षा के सन्दर्भ में कोई प्रयत्न नहीं रखता। सुगच्छ, मज्जी हुई, सुनियोजित दरिया हो सकती है, कहानिया नहीं। नख शिव से दुस्त नामिकाए होती हैं, कहानिया नहीं।

यदि कहानी के इतिहास पर दृष्टिपात किया जाए, तो लगता है कि कहाना अपनी सफलता के चरम बिंदु का स्पष्ट करक कई बार निशेष हुई है। यदि प्रो हनरी एक शिखर या तो मोपासा दूसरा चख तोसरा, फिर माम, हेमिंग्वे, फाकर टोमस मान, नाथका इत्यादि कई अपनी अपनी जगह महत्वपूर्ण हैं। ये शिखर कहाना के प्रति मास्था वो उत्पन्न करते हैं पथ प्रदर्शन नहीं। आज का नया कहानीकार

ऐसी जमीन का अन्वेषण कर रहा है, जो कविता न गीत से अपहृत की है, या अमृत कला ने यायार्थ-वादी कला से या सधे हाथों न पेंटिल के 'रफ स्केच' से। कला और विज्ञान नई कहानी में रूपायित हो रहे हैं। निमल वर्मा ने यदि कहानी के लिए संगीत की जमीन तोड़ी, तो मोहन रासदा ने नाटक की, रमेश बशी न चित्रकला की। रेणु, माकण्डेय, शैलजा की कहानियाँ में यदि लोक कलाएँ मूर्त हो जाती हैं तो रामकुमार, विमल, प्रयाग की कहानियाँ में यात्रिक और प्राविधिक सभ्यता का अभिशाप देखा जा सकता है। अमरकांत और शैलजा जोशी की कहानियाँ ययार्थ के मानवीय और जटिलतर रूप की गवाह हैं।

इस विरोधाभास का कारण दूढ़ने में मैं प्रायः असमर्थ रहा हूँ कि जिन कथा-कारों में कहानी का कहानीपन में किस्सागोई से, वास्तविक सीमाओं से मुक्त करने का आभास मिलता है, वे अपनी पहुँच में छाया-वादो होते चले गए हैं, तथा उन्होंने उन उबरा भूमि का भी परिचय किया है, जिससे कहानी ने अब तक छुराक ग्रहण की थी, जिसकी वजह से प्रतिष्ठा अर्जित की थी। ऐसे कथाकार या तो घावों में कुनकुनाते रहे हैं या अपने समय के निजी दुःख, कष्टों, क्लेशों, सनको और कभी कभी अपनी बीमारियाँ को 'ग्लोरीफाई' करके एक भाषावी अथवा हीरोइक या रोमैटिक जगत् की रचना में व्यस्त। इस वजह से कथाकार पाठकों को कष्टादर्शन करने या उनकी सहानुभूति अर्जित करने में अपनी कुशलता का परिचय भी देते हैं।

अपनी धारणा भी यत्न करूँ, तो कहूँ कि भूँठ, फरेब, धोखादेही, प्रवचना, द्विगोत्रता, द्विधामता, दुहरे व्यक्तित्व भी मुझे परेशान नहीं करते और न ही इन पर ध्यान करना मुझे अप्राप्य है, क्योंकि मैं समझता हूँ कि ये यान्त्रिक और प्राविधिक सभ्यता की समस्त यन्त्रणा और रिसगतियाँ का शव अपने कंधे पर ढा रहे हैं। इनका अत्यन्त आत्मीयता से उद्घाटन करना मुझे अधिक प्रिय है। पाठकों का विश्वासभाजन बनने की अपेक्षा उनमें शामिल हो जाने में अधिक आकर्षण है। फाडलर की यह बात मुझे पसंद आती है कि,

द गेट्स्पुरेरी आडिसेस फारमिंग द लायर इन आर्ट, ईविन एड्मेट्स हिम।

इतनी ही इज लायग, बट इट नीडस हिज लायग। इफ हैपोनेस इज द फर्स्टी माफ बोइंग बेस डिस्कोड, मोस्ट मैन कैन नो लायर एबीव इट मान दियर मान। दे मस्ट बी लाइड टु एवेरी डे, एण्ड दे फार बिनिंग टु प बीन फार द सविन।

यह इतिहास की सहज परिणति है कि जब तक किसी बात का विचार और

चिंतन, ज्ञान और विज्ञान की ठोस भूमि नहीं मिलगी, वह मनोरंजन और क्षणिक प्रभाव की नियति से ऊपर नहीं उठ पाएगी। यह गम्भीर आत्मा-वेपथु और सत्या-वपथु के स्वप्न इस ठोस आधार से वंचित होकर निस्तेज हो जाने हैं और छोटी छोटी मुशियो और छोट छोट गम्भो की काल परिधि से ऊपर नहीं उठ पाते। व्यापक मानवीय संवेदना का भार वहन करने को हमारे दैनंदिन जीवन के बीसियों प्रसंग कहानी के लिए निरन्तर अनुपयोगी होते जा रहे हैं। वैसे बक्क पर नहीं मिलती, तो इसका सीधा ताल्लुक गिकायत की किताब में है जो कण्डक्टर के पास हर बत्त रहती है। पड़ोस के बच्चों की है या मुझे किसी लड़की से प्रेम हो गया है, तो इनका भाज की कहानी से क्या ताल्लुक? बाजार में चीनी की किल्लत है या कालिज में एडमिशन की, तो इनका महत्व सम्पादक के नाम या मजी के नाम पर से अधिक नहीं है, क्योंकि इन कठिनाइयों के निवारण का काय पत्रकारिता अधिक कुशलता से सम्पन्न कर सकती है। पारिवारिक झगड़ा, मसौ मुहल्ले तथा म्युनिसिपलिटी की समस्याओं भाभी-ननन्द के झगड़ों, काली-कुंवारी लड़कियाँ कृत्यनिर्धारक चित्रण, या सामाजिक जीवन की ऐसी समस्याएँ भाज स्थानीय राजनीति ईवनिंग 'यूज' से अधिक महत्त्व नहीं रखतीं। महत्त्व है उस मानवीय संवेदना का, उस बृहत्तर काल-प्रवाह का जो इनके स्पर्श में जब-जब और जहाँ-जहाँ लुप्त हो, या गोलिड और विचलित होता है कहानी जब तक पत्रकारिता से ऊपर उठ कर किसी बृहत्तर मानवीय संवेदन का वहन करने की सामर्थ्य नहीं रखती तब तक वह 'मान कहानी' है नाना द्वारा मुनी कहानी का समानांतर। ऐसी ही छटपटाहट का आभास रिल्के की कुछ भारद्वाज कविताओं में मिलता है, जैसे एक बार उसने कहा था

ओह, देह घाई हम बेनिश्च

काम भान टूट

मिथर फूल। मिथर पाइड।

रिल्के का मारा मधुष कविता का विचार या चिंतन की भूमि प्रश्न करना था। इस प्रक्रिया में वह कवि से चिन्तक नहीं हो गया बल्कि यात्रा भी कवि रूप में उसकी प्रतिष्ठा है। यह उसकी सफलता थी। उसका सकल ध्यान वे कथाकार का भी मकलप है जो रियाज मार कर निवारित परिभाषाओं और रेखाओं में रंग भर कर अपने कृत्य की इतिश्री समझने में प्रसमर्थ पाता है

भाइ बिनीव इन एबरीविंग देह हैज नेवर बीन मड बिफार

माई मोस्ट डंडावेटेड फीलिंग्स भाई डिजायर टु मट प्रो

एण्ड वन डे देयर सेल कम टु मी स्पोन्टेनियसली  
 डेट हिच नोबडी हैज एवर डेयर्ड टु विल ।

रिल्क की सफलता के नीचे ऐसे बीसिया प्रश्न दब जाते हैं जो हिन्दी कहानी के सन्दर्भ में बार-बार उठाए जाते हैं ।

जैसे कमिटमेंट का प्रश्न । मेरा कहने का अभिप्राय है कि कमिटमेंट का सीधा सम्बन्ध चलक के विन्तन पक्ष से है । विन्तन और चलन में विरोध की स्थिति केवल 'नाम कहानीकार' के यहाँ मिल सकती है ।

अक्सर यह भी सुनने में आ रहा है कि साहित्य जीवन से दूर हटता जा रहा है । वस्तुतः यह स्थिति बड़ी उत्पन्न होती है जहाँ जीवन का प्रवाह इतिहास का गतिवृत्त और विद्युत्तगामी प्रक्रिया से तानमल नहीं बिठा पाता, जहाँ वह मानव की उस व्यापक उपरार्थिक संमानान्तर नहीं आ पाता, जो उसने जीवन के प्रत्येक क्षेप में प्रजित की होती है । यही कारण है कि प्रकटतः साहित्य जनसाधारण के जीवन के चित्रण से दूर हटता हुआ दिखाई देता है परन्तु मूलतः वह एक नव धरातल में सवेदना का रूप करता है, जिसकी सामान्यता का आभास जनसाधारण को हो सकता है । आधुनिक साहित्य उस बात का उपजोय ही रहा है जो एक ही लीक पर पादने वाले जनसाधारण का संचालन करता है । जो समय का पूरा ज्ञान रखने में मग्न है । जो जीवन की मूढ़ आनुवंशिकता से पृथु नहीं हो जाता, बल्कि जीवन की स्थूल वस्तु चेतना तथा सवेदना द्वारा ने एक नया अध्याय जोड़ता है । जो मानसिक रूप में ज्ञान, विज्ञान तथा दर्शन द्वारा उत्पन्न 'क्राइसिस' से सम्बद्ध है, जो वैज्ञानिक प्रगति तथा प्राविधिक विशिष्टीकरण से सामाजिक संरचना में निरंतर अकला होता जा रहा है । कहानी की स्थूल वस्तु चेतना तथा आंतरिक प्रोडना एवं विन्यास का सृजन करने वाले प्रभुभवन में परिवर्तन कहानी के सिल्प तथा शैली पर भी आधिकारिक कर रहे हैं । कला-सृजन के पुराने अभ्यास निस्तब्ध हो रहे हैं । वह युग समाप्तप्राय है जब कोई 'मोल्ड मास्टर' दसियों वर्ष एक ही कलाकृति में व्यस्त रहता था । पहले उसकी विवर्तनता या वाच्य-ममता अभ्यास मिट्टी होती थी, अब अनुभव सिद्ध । जो कलाकार पहले पैसिल स्क्चर' फिर वाटरकलर' और अंत में प्रायल कलर' का उपयोग करता था आज अपने सघे हाथों की कुछ ही रेखाओं द्वारा अभिप्रेत सिद्धि में समर्थ है । यही कारण है कि आज कला के सभी क्षेत्रों में विस्तार प्रियता के स्थान पर मित कथन के सावक प्रयोगों की प्रवृत्ति अधिक लक्षित होता है । उसकी यह मित कथन प्रणाली अल्प कथन मात्र प्रथवा उसकी कार्य भीरुता का प्रमाण



नहीं है बल्कि समय तथा 'स्पेस' पर अधिकार प्राप्त करने की वैज्ञानिक पहुँच की परिचय बोधक है।

मेरी दृष्टि में कहानी का जो महज रूप कभी-कभी प्रतिभासित होता है, वह मलबे के अश्वस्थित ढेर की तरह है, जिस पर घास उग आई है, डिब्बे में क्रमहीन बिखरे आलपिनो की तरह या लान पर बेतरतीब उगी घास की तरह (मेरा कदापि यह कहने का अभिप्राय नहीं कि पहलू में कथाकार घास काटते रहे है)। मैं अश्वस्थता या बिभ्रसलता का समर्थक नहीं हूँ, परन्तु कहानी के बाह्य अनुशासन की अपेक्षा उस प्रांतरिक हारमनी का अधिक प्रशंसक हूँ, जो कहानी के हर रेखे में गंध की तरह मिली रहती है और जो बिखराव में भी भावस्थिरियाँ में सघटनात्मक एकता स्थापित करती है।

आधुनिक मनुष्य का जो स्वरूप मेरे मस्तिष्क में उभरता है, वह लघुमानव, महामानव, बोहीमियन, यू बोहीमियन यानी बीटनिकन, आउटसाइडर अस्तित्ववादी आदि का मिला-जुला और कहीं कहीं परस्पर विरोधी संस्करण है। परन्तु अक्सर यह भी महसूस होता है कि मन में कुछ ऐसा है, जो कई बार इस रूप से सामंजस्य नहीं बिठा पाता, बल्कि कई बार इस रूप के प्रति अतृप्तता का गहरा भाव भी उत्पन्न कर देता है। शायद ये इतिहास सम्मत संस्कार हैं, जिनका एहसास तब तब हुमा है जब जब हमने अपने को जिंदगी की मजबूत गिरफ्त में पाया है शायद जिंदगी के ये दबाव ही हमें अधिक सतक अधिक सिसितियर, और अधिक सबदलशील कर जमीन पर फेंक देते हैं। हम जिंदगी के इन दबावों और तद्वर्जित विचलितियाँ एवं मन्त्रणाओं से सदैव कतराते हैं। भविष्य यह उतना ही सच है कि इन दबावों के तहत ही अच्छा लिखा जा सकता है, या या कहूँ कि लिखने की पहली गर्जना ये दबाव ही हैं। ये दबाव मौलिक भी हैं और ज्ञान विज्ञान तथा दशनादि के विस्तार से उत्पन्न भी, जो पूर्व और पश्चिम की व्यापक, कला चेतना और अस्तित्व दर्शन की सांभोमिक बोद्धि की प्रति जागरूक करते हैं।

कहानी की चर्चा को 'नई कहानी', 'पुरानी कहानी', चार पीढ़ियाँ, भाषा टैक्सचर, मायाम, उपलब्धि, ग्राम, कस्बा, नगर, महानगर के स्तर से ऊपर उठाकर कहानी के पाठकों का एक नये रचनात्मक वैचारिक और प्रपक्षित स्तर पर ले जाने का प्रयत्न है। मैं नई कहानी की चर्चा के लोग कर रहे हूँ, जो अक्सर गहरी नाद में उठे हैं, और सम्पूर्ण नये माहित्य को अजनबी निगाहा में देखते हुए बोधता रहे हैं। जिन गलियों से पाठक गुजर आए हैं, वे दुबारा उठ उसी तरह हाँक रहे हैं। पिछले तीन चार वर्षों से हिन्दी कहानी के पाठकों का न पाठना का जो दुःख की है, जिस

तक बार किया है, उनका एकमात्र उपचार ऐसी ही विचारोत्तेजक चर्चा है।

‘नई कहानी’ और ‘नई कविता’ कहीं तक समानान्तर भावभूमियाँ से उपजी, इसकी चर्चा बकनम खुद में राकेशजी ने भी की थी, मेरा खयाल है, इस पर और अधिक चर्चा अपेक्षित है।

प्रेम के सदर्भ में कुछ कहानियाँ का तटस्थ विप्लवपूर्ण डॉ० अवस्थी और हृषीकेश ने ही किया है ( यद्यपि डॉ० अवस्थी का सन्ध्यापक अधिक जागरूक रहा है ) । शीकांत ने प्रेम के बदलते हुए स्वरूप को वास्तव में बहुत सुन्दर ढंग से प्रस्तुत की है, परन्तु कहानियाँ की चर्चा में गमना गए हैं। कहीं कहीं उन्होंने अपने सिद्धांतों को गलत चौखट में फिट करके अपनी बात को पुष्ट करना चाहा है। उनके अपने अंत में वे सदर्भ में यदि रेशु को ‘रसप्रिया’ को दखा जाए तो ‘रसप्रिया’ को महान् प्रेम कहा नही जा सकता, जैसा कि उन्होंने अपने सब के अंत में सहसा निष्क्रिय रूप लिख दिया है। प्रशान्त कुमार को ‘आवेद’ कहानी को प्रेम कहा जा सके सदर्भ में ‘महत्त्वपूर्ण’ कहानी नही कहा जा सकता। (कहानी में यह कारणों से महत्त्वपूर्ण है और न ही वह प्रेम कहानी है।) उदाहरणार्थ उनका एक और बकनम दृष्ट्य है ‘निमल वर्मा की कहानियाँ को पढ़ने हुए दहगत होती है, और पहली बार यह अनुभव होता है कि प्रेम एक अज्ञान से भरा हुआ अनुभव है। सारे पात्र निष्क्रिय हैं इस लिए निष्क्रिय है कि हर कुछ करने की अन्तिम परिणति निरर्थकता है। इन कहानियों के तमाम स्त्री-पुरुष निरर्थकता के अनुभव और पूर्वानुभव में जो रहे हैं।

निमल वर्मा का बहुत पुराना पाठक रहा है। एक जमाना था, निर्मल वर्मा की कहानियाँ का धनसाद बिना छाया रहता था लेकिन भूमिनिर्मल से निकलते ही महामुस किया कि इस धनसाद, इन विप्लवपूर्ण और इन लिखनियों अनुभूति का सीधा और स्पष्ट सम्बन्ध शरत् से है। निमल वर्मा की कहानियाँ दहगत नही बती बल्कि लिखनियों अनुभूति देती है। सनिका जिस तरह अतीत से विपकी रहती है वहम के फूला की याद से दबी रहती है ठीक उसी मन स्थिति में पावना है। निमल वर्मा के अधिकांश पात्र निष्क्रिय भी इसलिए नही हैं कि कुछ करने की अन्तिम परिणति निरर्थकता है, बल्कि इसलिए निष्क्रिय हैं कि वह प्रेम की या जीवन की अज्ञानता को सहज रूप से स्वीकार नही करते बल्कि छायावादवाचित कैंगारोय घोर भावुकता से आक्रान्त है। भावुकता को जग न उन्हें निष्क्रिय कर दिया है, उनका प्रिया को इस लिया है। उनकी कहानियाँ के तमाम स्त्री-पुरुष निरर्थकता के अनुभव और पूर्वानुभव में भी नही जीते, बल्कि प्रेम और भावुकता ने उन्हें, सुहावने और सीमित दायरे के अनुभव खण्डों में रीरियात और कुलबुलाते है।

इसके बावजूद इस बात को फिर भी नहीं भूला जा सकता कि इन दायरा से निकलने की वसमसाहट भी उनकी कहानियों में दिखाई देती है। मैं यह भी सोचता हूँ कि निमल वर्मा की कहानियों का खूबी यह नहीं है कि उन्हें पढ़ते हुए दहशत होती है (खूबी इसलिए नहीं मानता कि मैं समझता हूँ पाठक को दहशतग्रस्त करने का अधिकार लेखक को नहीं है), बल्कि खूबी यह है कि भावुकता के गहरे से निकलने का एक प्रयास भी उनकी कहानियाँ में लक्षित होता है, जिसकी धार बहुत कम लोगो ने ध्यान दिया है। उदाहरणार्थ डॉ० मुरुजो (परि दे) को प्रस्तुत किया जा सकता है। डॉक्टर कहीं भी जीवन से प्रेम का उन्मूलन करने का पक्ष में नहीं है लेकिन चिपचिपा हट का भी विरोधी है। वह सतिका से कहता है, "किसी चीज को न जानना यदि गन्त है तो जान बूझकर न भूल पाना, हमेशा जाक की तरह उससे चिपक रहना—यह भी गन्त है। बरमा से घाते हुए जब मेरी पत्नी का मृत्यु हुई थी, मुझे अपना जिन्दगी बेकर सी लगी थी। आज इस बात को घसा गुजर गया और जैसा आप देखती हैं, मैं जा रहा हूँ, उम्मीद है कि काफी घसा और जिऊँगा। जि दमा काफी दिलचस्प लगती है और यदि उम्र की मजबूरी न हासी तो शायद मैं दूसरी दावी करने में भी न हिचकता। इसके बावजूद कौन कह सकता है कि मैं अपनी पत्नी से प्रेम नहीं करता था—आज भी करता हूँ।"

डॉक्टर की उदासीनता या असम्पृक्तता को न ता निष्क्रियता ही कहा जा सकता है और न ही नादानी। वह डॉक्टर के जीवन का प्रौढ़ अनुभव है। वह जीवन में बिडम्बना और अप्रत्याशा का अस्तित्व का धम मानकर चलता है, यही कारण है कि वह अतीत को लेकर परेशान नहीं होता और बहुत सहज रूप से वर्तमान का भी स्वीकार कर लेता है। वह कभी-कभी विनोद में कहा करता है, 'लगता है मिन बुढ़ मुझसे मुहब्बत करती है। मेरी जि दगी के कुछ खूबसूरत प्रेम प्रसंग कम्बवत इस नाद के कारण धधूरे रह गए।'

मेरा खयाल है, निर्मल के सही रूप का डॉक्टर के माध्यम से ही जाना जा सकता है। उनके विकास की रेखा स्पष्ट है। देखना यह है कि निर्मल अपने लिए कौनसा मार्ग चुनते हैं।

प्रेम-व्यापार के सन्दर्भ में डॉ० मनुष्यी ने श्रीकान्त वर्मा की भी कुछ कहा किया की बर्बा की है। वस्तुतः श्रीकान्त के पास प्रेम करना नहीं जानते, प्रेम की अनुभूति में अपरिचित हैं। वे प्रेम नहीं करते, प्रेम से पलायन करते हैं। उनकी कहानियाँ को प्रेम कहानियों की श्रेणी में नहीं दी जा सकता। वे माधुनिक जीवन की जटिलताओं और अनिष्टों के सन्दर्भ में स्त्री-पुरुषों के विकृत सम्बन्ध (प्रेम नहीं) का

प्रस्था करता है। श्रीकान्त ने एक स्थान पर लिखा है 'प्रेम अनिर्दिष्ट है और  
 मिसे वेदा होने वाला सम्बन्ध भी। सबसे बड़ा सकट यही है इस सकट को भी  
 मानव-परिणति के रूप में भेजना ही नहीं होगा, स्वीकार करना होगा।

इस सकट को अपनी कहानियाँ में श्रीकान्त स्वयं ही नहीं भेज पाए हैं, आत्म-  
 यज्ञ स्वीकार करना तो दारिद्र्य है। उनका पात्र इस सकट को सहज रूप से स्वी-  
 कार नहीं करते, बल्कि हाहाकार मचाते हैं, आत्म-यज्ञ, आत्म-पीडन से गुजरकर  
 पात्रों को तरह आत्मरति में डाला जा जाने है। वह पूछे कि देवदास का तरह धनी नहीं,  
 इसलिए गम गलत करने के लिए शराब एफार्ड नहीं कर पाते (देवदास अग्न्याश्री के लिए  
 नहीं, आत्मपीडन के लिए ही शराब पीता था) दफ्तर से छुट्टी लेकर दाढ़ी बढ़ा धते हैं  
 और स्वयं को कमरे में बंद करके यथार्थ मारते हैं और चार यज्ञों के दर्दनाक मार्ग  
 में गुजरते हुए पाठका से सहानुभूति की ओर आगते हैं। ये कुछ ऐसे रूप बदल-बदलकर  
 हमारे सामने आता रहता है कभी शराब में घुल देवदास के रूप में, कभी आत्मरतिहीन  
 न-दक्खिण के रूप में, कभी गलियारे में खड़े चोर अन्धरे में मोड़ोड़ के करने के  
 भुत्ते स्वर सुन रही ललिका के रूप में। आज ये छोटे-छोटे ताजमहल, ये छोटी छोटी  
 मनगुण बहुत हनकी लगती हैं और आधुनिक युग में इनकी अपेक्षा नहीं की जा  
 सकती और न ही इसे 'नए' विशेषण से युक्त किया जा सकता है। इस युग में छोटी  
 घाटा दाता में उद्विग्न और परमान पाना के लिए सहानुभूति या सहसा उत्पन्न नहीं  
 हो सकती, बसल हसी आ सकती है।

इससे आगे एक स्थान पर श्रीकान्त लिखते हैं 'सारे कागिष्ठ यज्ञों से पला-  
 यन कर एक आसान मुख प्राप्त करने को है।' श्रीकान्त के अपने पात्र और निमित्त के  
 पात्र (डाक्टर का चरित्र अपवाद-स्वरूप है) इस आत्म यज्ञ और आत्मरति में इतनी  
 दूरी तरह पग चुके हैं कि इन यज्ञों से निकलना नहीं चाहते बल्कि इसे छोड़कर  
 अपना मुख का अनुभव करने हैं। डा० अवस्थी के स्वर में वे मिमटे, कुशल और नपु-  
 मक हैं।

इसका उत्तर भी श्रीकान्त ने दिया है 'कहानी में सेक्स का अर्थ अनिवार्य  
 नहीं कि सहवास होना। सहवास के बावजूद कहानी सेक्स-विहीन हो सकती है।' और 'होना' का उपस्थिति से सारे वातावरण में उल्लेख आ जाता है।' स्त्री की उप-  
 स्थिति में ही वातावरण की उल्लेख बन जाता क्योंकि बाईसेक्स को अनिवार्य नहीं  
 समझ सकता। अवस्थी का 'नहीं' या (ऐसा पति) पुत्र के लक्षण में आता है।

इसका एक मात्र कारण यही लगता है कि वह नारी का सुख स्पष्ट और सहज  
 रूप में नहीं ले पाए हैं।

एक स्थान पर जहाँ श्रीकान्त सेन्स के स दश में किता प्रकार की नतिवता अनतिवता, श्लीलता अश्लीलता को कोई परिणति नहीं स्वीकार करते, जने द कुमार की कहानिया में सेक्स के प्रति एक अस्वस्थ दृष्टिकोण देखत है।

अत में मैं यह कहना चाहूंगा कि कहानी कभी न्यूरोटिक पाना का अजायब घर नहीं रही है। आज से बीसिया वर्ष पूर्व यूरोप में ऐसी पात्रा की रचना हुई थी नये अजायबघर सजाने क चक्कर में आज किसी भी मृदु भाषा क लेखक नहीं है। यह कहना सरसा चलत होगा कि प्रेम में एक न्यूरासिस है। आधुनिक प्रेम कथाओं क प्रमुख पात्रों क सम्बन्ध में डा० डविड स्टीवेन्सन का प्रस्तुत कथन विचारणीय है

*'They do not linger with used up friendship or used up love. They do not hang on to their commitments. When circumstances become too uncomfortable, they clutch boldly at the next propitious moment in time in the hopes of new excitements in the endless stretch of a consantly recurring present'*

समकालीन कथा साहित्य मुझे स तोप देता है, क्योंकि उसे पढ़ कर मैं कभी नहीं सोचा कि मुझे लिखना छोड़ देना चाहिए। समय क साथ साथ स तोप की मात्रा (जिसे मैं पूर्वाग्रह भी कह सकता हूँ) बढ़ती जा रही है। बढ़ती नहीं जा रही है ता उसमें समतुलन प्रबन्ध कायम है। समतुलन इस तरह कि यूनिवर्सिटी क दिना कृष्ण मोक्षी और निर्मल वर्मा की जिन कहानिया का हम सामूहिक पाठ किया करते थे, आज उनमें कुछ नया टटोल पाता या कुछ ऐसा जो मुझे आज भी प्रिय हो। उन कहानिया की जगह उन्हें लेखक की दमरी कहानिया 'मिथा मरजानी' और 'अंतर' 'पराये शहर में, 'सन्दन की एक रात' आदि न ले ली है। कुछ वर्ष पूर्व जो कहानियाँ मुझे बहुत प्रिय थी, आज प्रिय नहीं हैं। इसको विपरीत करके दम्भूता यह भी सब है कि बहुत सी अप्रिय कहानियाँ दुबारा पढ़ने पर प्रिय हो गयी हैं जस 'नये बादल' 'भूले और नये लाग,' दोपहर का आजन आदि। मगर ऐसी कहानियों की सरसा अधिक है, जिह दुबारा निबारा पढ़ने पर भी राय नहीं बढ़ती। ऐसी कहानियाँ ही मेरे निकट पुरानी कहानियाँ हैं, जो समय की गति का बहान नहीं कर पाती। ऐसी कहानियाँ कहानियाँ ही रहती हैं, यानी कि पुरानी कहानियाँ, चाहे वे ब्रूनाय, परेग, विमल, नानरजन, प्रयाग, या प्रबोध ने ही क्या न लिखी हो।

एक पाठक की दृष्टि में नहीं तो नयी कहानी ने निश्चय ही कथा-साहित्य को

न दिया है। भागे के कयाकारा के लिए नयी जमीन तैयार की है। नया कहानी की शक्ति निर्विवाद है। यह दूसरी बात है कि यह उपलब्धि क्रियोको सम्पाद देती है और फाइ उस दब कर बिद जाता है।

पर तु यह तय है कि मुझे कहानी के उस स्वीकृत रूप से घोर वितृष्णा है जिस प्रथम में वह प्राज्ञ कहानी के नाम से जानी जाती है। (इस तथ्य को भोगने का गौरव भी शायद मेरी पाठो को हा प्राप्त है)। कहानी में कहानीपन मुझे अपन में बहुत हा नगण्य और हास्यास्पद लाता है, जो प्रमुख घावृत्तिया से निरन्तर नि होव जाता जा रही इस विद्या की सम्भावना क प्रति प्रतिस्वाम का प्रौर अधिक गहरा है। प्राज्ञ प्रश्न शायद उप एकाग्रिती को भा करन का है जो कहानाकारा क सावात्मक स्तर, उनके मनस्विम, उनके फारमूना प्रौर उनको व्यावसायिक दृष्टि के रूप में निरन्तर विकसित हा रही है। ये सामाएँ हा भावा कहानी की सम्भावनाएँ है, प्रगले दराश की पीठि, कहानी की आनायात्रा की पाथेय।

विश्व कथा के साथ रखकर हिंदी की कहानी का मूल्यांकन कदाचित् व लाग प्रसिद्ध गुणवत्ता में कर सकते हैं, जो हिंदी कहानी का विश्व कथा से प्रमत्पुक्त करक दबन हैं, मेरे निकट हिंदी कहानी विश्व कथा का एक प्रतिभा-य प्रग है। कहाना व विकास के लिए जिस उर्वरा भूमि की आवश्यकता हा-नी है, वह भारत में उभन है। उपमास साहित्य में प्रप्रणी बस्तानिया, कहानी में शायद इसीलिए पिद्वड गया कि वहा की रुढ़िया प्रौर अनुसासन ने कहानी को भी बांधना चाहा था। भारत में स्थिति अधिक अनुकूल है प्रौर फलस्वरूप साहित्य की प्रपेक्षाकृत नयी विधाभा का वल मिला है। जिन जटिल सवेदनाओं प्रौर द्वाद का सम्प्रेषण करने में कविता कभी कभी असमर्थ हो जाती है, कहानी में वह सहज ही रूपायित हो रहा है।

# आज की कहानी और प्रतिबद्धता का प्रश्न

ज्ञान रजन

आज कहानी—रचना बहुत कठिन हो गई है और अपने दायनीय, अभ्यासपूर्ण और व्यापारिक जीवन से असम्पृक्त होकर कहानी निर्मित करना अब हमारे लिए सम्भव नहीं रहा। सुविधाओं यथवा 'इंस्टैंडिशमेन्ट' को स्वीकार करके ईमानदार और सच्चा लेखन लम्बे समय तक कर सकना काफी कठिन है, इसलिए सुविधाओं के अभाव में और 'इंस्टैंडिशमेन्ट' के प्रति विद्रोही भाव के साथ अपने कम लिखने का मेरे मन में किंचित भी विचलन नहीं है।

पुराने अधिकांश लेखकों को साहित्य से यथेष्ट प्रतिदान मिलता रहा है— विभिन्न रूपों में। कतिपय थोड़े लेखक सुविधाओं के शिकार हुए हैं और उनका रचनात्मक लेखन कुण्ठ हो गया है। ईमानदार नया लेखक यह मानकर चलता है कि उसे साहित्य से कुछ मिलना नहीं है। साहित्य उसके दर्शन की आवृत्ति पुनरावृत्ति है या निर्माण के लिए तो जाता हुई आहुति। अभी तक हमारे देश में स्वयं नतीजा का नर्घ्य करने वाले अपने को 'पॉलिटिकल सफरर' घोषित करके अपने धर्म की भी भुगतान रहे हैं। साहित्य में भी नमोवेश यह हुआ है। नए साहित्यकारों के लिए साहित्य की समस्त रचनात्मक प्रक्रिया—जीवन का मूल्य—मुख्य भोग है और रचना का पुरस्कार हमें महज ऊपर में मिलता है। फिर भी इसका एक आत्मसुख है, जीवन के प्रति अपने दाय के निर्वाह का सुख।

नई कहानी, इस प्रकार बस एक सामान्य शब्द नहीं है। उसका जो रुढ़ अर्थ है, वह हमारे लिए अत्यन्त ही है। नई कहानी बस उस सबका भिन्न जीवन और जीवन-दृष्टि की तस्वीर है, जिसे अपूर्व कहा जा सकता है और जो हमारे लम्बे इतिहास में पहली बार निर्मित हो रही है। हम कहानी की 'गुह्यता' भी यही से मान सकते हैं और नई 'पाठ' की साधना के एक अभूतपूर्व नवीन मार्ग का प्रारम्भ भी।

आज हमारा वर्तमान बीते हुए अत्याचारों के भाग में है। हमारी प्रत्यक्ष तकलीफें पुराने जमाने की हजाराँ गफयतों का दुष्प्रगिंगम हैं। अध्यात्मवाद ने हमें विषमता क्षातिदिमा में जड़ बनाया है। आज नई कहानी जीवन की मोक्ष और वैज्ञानिक आकाशवाणी की एक स्वयं परम्परा प्रारम्भ करने को आकुल है। वह एक

बिराट संघर्ष का एक खण्ड चित्र बन गई है। जो लागू नई कहानी अथवा जीवन के वर्तमान को नहीं समझना चाहते, उनके लिए हमारे पास कोई इनाज नहीं है और न उनको जो अपनी समझ में असह्य हैं अथवा जो पिछड़ेपन पर अड़े हुए हैं, उनसे काल निपटगा। हमारे मन में महज उनके शीघ्र शान्तिपूर्ण अन्त को प्रार्थना है, क्योंकि मान वाली पीढ़ियाँ उनके प्रति अधिक क्रूर होंगी।

नई कहानी किसी एक बिन्दु पर नहीं स्थित है। वह जीवन और कला में प्रविष्ट तत्वात्मा और स्वप्नो से सम्बद्ध है और उनमें ही जीवित है, इसलिए गतिशील है। ये स्वप्न किसी की निजी महत्वाकांक्षा नहीं हो सकते। भागे की अनेकानेक पीढ़ियाँ इन स्वप्नों को पूरुता की ओर बढ़ जाएँगी। इसका यह भी सत्य है कि हम कभी भी सम्पूर्ण सत्पुष्ट और आदर्श नहीं हैं और सामान्य ज्ञान बताता है कि आत्मचरित्रों को कभी भी सचेतकों की जरूरत नहीं रहती।

नई कहानी ने पशु जीवन को अपने कंधों पर उठाया है। वह अपने रचनात्मक भाग में पलायन करने के बजाय तटस्थ नहीं करना चाहती, बरन् वह जीवन चक्र की भाँति से अन्त होने वाली यात्रा में एक स्तम्भ चेतना की तरह उपस्थित है। मैं समझता हूँ कि नए कहानीकारों ने कहानी की इस आधुनिक स्थिति का सीकण्ड से महसूस करना शुरू कर दिया है।

एक तरफ कहानी जीवन से आत्मीयता स्थापित करने की ओर प्रवृत्त है और दूसरी ओर कहानी में घटिया, कलाहीन सुधारवादियों ने गुलामपाड़ा मचाया है। वे यह समझते हैं कि अभी तक आन्दोलन से ही लोग प्रतिष्ठित हो रहे हैं, अच्छी कहाँ नियाँ लिख कर नहीं। यह आश्चर्यजनक नहीं है कि वे अपने बूढ़े चेहरों पर (नई पीढ़ी भी कम बूढ़ी नहीं है) प्रसाधन पीतकर दावा कर रहे हैं कि हम भी नये हैं, या महज हम ही युवा हैं। वे यह जानते हैं कि उनके पैरों के नीचे से धरती लिसक चुकी है और जीवन और कला की क्षमताएँ छुट चुकी हैं लेकिन इस सचाई को स्वीकार करना काफी कठिन है, इसलिए वे अधिक चित्लाकर नई कहानी का भ्रूक्षित घोषित करते हैं। इतिहास की धारा से कटे हुए साया का 'स्ट्रेटजो' का शिलाजीत कब तक जीवित रहेगा, ईश्वर जाने!

प्रतिबद्धता।

आज हमारी आर्थिक, राजनीतिक, सामाजिक और वैयक्तिक परिस्थितियाँ बड़ी हास्यास्पद हैं। हम कहानी लिखते हैं और वह स्वयमेव व्यंग्यात्मक हो जाती है। हम सम्पूर्णता के साथ प्रेम करने हैं और वह हास्यास्पद अन्त में बिखर जाता



है। अबबारा में छप भविष्यो के भाषणा को पढ़ते पढ़ने हमारे माँठो से एक कम्पा हँसो फूट पड़तो है—हमारे परिवार के सदस्य हमारे लिए चुनौतियाँ बन गए हैं। गिधा सस्याघ्रा में हम यत्र की तरह भनहूम मृत मस्कारा बानी पुस्तका को पाप रहे हैं और अपमानित भूख पेट भूतडियो में दद लिये करवट बदलते रहते हैं। हमारे चारो तरफ एक बीमत्स सक्रान्ति है। पिछले कुछ दशका के कहानीकारों में प्रधिकाश का रचना काल बहुत सन्निपन्न रहा है और जीवन सक्रान्ति के हावी हो जाने का प्रमाणित करता है।

कहानी न तो 'विण्डो ड्रेसिंग' है और न राजदूतो द्वारा विदेशों में भ्रमण का सम्मान बचाने वाला भूठा वक्तव्य, इसलिए कहानी में स्वस्थ जिंदगी का ही चित्रण आज की परिस्थितियों में असम्भव है। चूंकि जिंदगी वैसी नहीं रहती है। फिर हाल में सत्य यथार्थ में हमारा जीवन है। नया कहानीकार अपनी निराशा से ऊपर आकर इसे स्वीकार करता है। किसी भी प्रतिबद्धता के लिए यह स्वीकाराति आवश्यक है। अगर हम सूर्यास्त की नहा स्वीकार कर सकते, तो सूर्यादय भी हमारे लिए बन रहेगा। हम पराजय की परिस्थितियाँ और समस्त भ्रष्ट मुलाहतियों को पहचानना होगा, जो बीमार है और जिन पर छप का गहरा मेक अप है।

मल्ल की प्रतिबद्धता किसी घोषणापत्र की तरह नहीं हो सकती। उनका रचना ही उनका कमिट करती है। मैं समझता हूँ कि आज का नया कहानीकार तेजी से प्रतिबद्ध होना जा रहा है, जो प्रतिबद्ध नहीं है, उसकी घुसपैठ का लोटा सिक्का साहित्य में अब छोड़े चलने से रहा।

अबसर यह भय बना रहता है कि 'डिक्टेम्स' या पराभव की स्वीकार करने में नव निर्माण की दिशा प्रवण होती है। यह भय भयाना निर्मूल है। पराभव को स्वीकार करना निर्माण व प्रति रचनाकार का वास्तविक तलफलाहट का बिंदु है। इस पराभव में सघन करने से बचकर कोई प्रतिबद्धता और समामाजिकता नहीं हो सकती।

कहानी के सम्बंध में कुछ चर्चा करनी है। वस्तुतः कहानी के नाम पर ही सूचनाएँ जोड़नी हैं और प्रदर्शन करना है। पिछले तिनो कहानी सम्बन्ध में होने वाले तमाम मतही चर्चाओं और साथ साथ हिंदी की प्रायः हर पत्रिका द्वारा हेर कर कहानी विगेषाका की घोषणाओं के बाद, कहानीकारों के लिए 'स्ट्रेटजी' में परवनात्मक दायित्वों व निर्बाह की सम्भावनाएँ काफी हद तक दृष्टी हैं।

प्रगते वर्षों में हमारा जीवन नया होगा, नहीं कहा जा सकता। एक प्रतिभा

नामद जीवन प्रतीक्षित है। फिर लिखना छूट सकता है, बहुतों का छूट सकता है। प्रयत्न लगाना यथार्थ ही हो सकता है। मुझे नहीं लगता कि अपने चतुर्दिक् विषय वर्तमान को अनुभव करने वाला, भोगन वाला, ईमानदार धक्का करने भावी लेखन के सम्बन्ध में आज कोई निश्चित घोषणा कर सकता है।

ऐसी स्थितियाँ भी आ सकती हैं जब कहानियाँ स्मृति करना इसलिए जरूरी हो जाये कि उससे अधिक आवश्यक रचनाकार के लिए दूसरी जिम्मेदारियाँ को उठाना हो। इन जिम्मेदारियों का विशेष रूप में राजनीतिक सन्दर्भों में कल्पित किया जा सकता है।

चैतन्य भारतीय कहानी-लेखक और कवि और सभी के लिए आज भावी याजनाएँ बना कर लेखन कर सकता बहुत पुरस्कृत होता जा रहा है। प्राश्न्य नहा कि मूल और प्रपमान की बढ़ती सीढ़ता और उससे उत्पन्न निराशा में वह कल तक सम्भव भी हो जाये।

‘आज प्राश्न्य होता है, कैसे एक-एक बैठक में मैंने कहानियाँ लिखी हैं और यम बाधकर महीनो राज उपन्यास को आगे बढ़ाया है। अब तो दोपहर एक बजे बाद कुछ भी लिखना सम्भव नहीं लगता। वह एक बजे तक बैठना भी महाने में न चार पाँच दिन हो पाता है जब बैठे बिना निस्तार न हो।’ राजेन्द्र यादव

वस्तुतः स्वतन्त्रता के बाद के अनेक कथाकारों को जो नियम में नियोजित लेखन करना पड़े हैं, आज इमानदारी से अपने रचनात्मक लेखन की मृत्यु घोषणा करनी चाहिए, (या कम से कम खुशी मार लेनी चाहिए)। ऐसे मुझे उम्मीद नहीं कि ऐसा कुछ ईमान दिला सकेंगे, सिवाय अपने ‘डिक्शन’ के।

स्पष्ट है, हम अनिश्चित ही लिख सकते हैं। याजनाबद्ध नहीं। बहुत सक्षिप्त परस्परों के साथ। हम हमारे काल में इतनी ही सुविधा दो है। इस स्थिति का मैं पायी नहीं मान रहा हूँ। मान सामयिक। नयी पीढ़ी के लेखकों का रचनाकाल पुरानी पीढ़ी के लेखकों की अपेक्षा निश्चित रूप से अल्पकालिक होगा। वह अधिक ईमानदार और श्रेष्ठ नृमिकाया जाता हो सकेगा, इसमें सन्देह नहीं।

केवल कहानी, कहानियों के बारे में उसे दोष (जो महत्वपूर्ण है) से प्रसम्पृत हरकत जिन तरह में सोचा जा रहा है वह बुद्धिमत्तापूर्ण नहीं है। कहानी गजनीनितुद और कविता सभी में जीवन के मूलभूत प्रश्न प्रविभाजित हैं।

कहानी में हमारे विषय और वर्तमान अगले बड़े घटिया रहे हैं। शहरी और ग्राम जीवन की कहानियाँ, आधुनिक कहानियाँ का तूफान, साहित्यिक, सचतन और

सक्रिय कहानी। कहानी का उद्धार (?) करने वाले कहानी को बस कहानी नहीं रहने देना चाहते। वे नये टुकड़े बना रहे हैं, नये नाम खोज रहे हैं, और अपने स्वर्ण हस्ताक्षरों वाले इतिहास के लिए बेचैन हैं।

मुझे आज की कहानी बहुत आरम्भिक लगकर भी धुंध इसीलिए नहीं करती क्योंकि यह तय है कि फिलहाल एक कुतरन वाले धैर्य की बीज से हम गुजरना है। यह एक दूसरा प्रश्न है कि 'हूर जाह हम डेड स्लो' हैं। भिन्न होने के लिए हमारे मन दर उल्टे जनाएँ भी हैं, हम बेसहारा और अजनबी बन भी अनुभव करते हैं लेकिन वही एक खरबटाता हुआ दामित्व भी है जिसके लिए हम आत्महत्याएँ नहीं कर सकते।

फिर भी समसामयिक कहाना काफी अप्रिय स्थितियाँ में खिंच गया है—खींचा गया है। सचेतन और साहित्यिक कहानी—कुछ नयी बातें हैं। सचेतन के सम्बन्ध में यहाँ अधिक कुछ नहीं कहना चाहता। सचेतन कहानी का रोल 'गायद' वैसे ही है जैसा कि 'रोम-स' की नगर मध्यता में कभी दुरे लोगों को ठोक करने के लिए 'करेव'न हाउसज' का हुमा करता था। हम इन्हें कैसे बरदाश्त कर सकते हैं? अगर मेरी उत्तेजना अणु भर के लिए क्षमा कर दी जाये तो मैं कहना चाहूँगा कि ऐसी प्रवृत्तियों के सम्बन्ध में हमें फासिस्ट तरीके से विचार करना चाहिए।

यह माना जा सकता है कि हमारी कहानी कम साहित्यिक है या बिल्कुल नहीं के बराबर है, फिर भी 'साहित्यिक कहानी' कहकर एक नया नामकरण पत्र करना और उसे भी दालित करना बुद्धिमत्तापूर्ण नहीं है। यस्तुत यह एक आन्तरिक और निरुद्देश्यता है जिसने, लगता है, बला-जमताया के मागे घुसना टकनिय है।

इस प्रकार के सभी प्रयत्नों के पार्श्व स्वाद की प्रवृत्ति होती है। श्रीकांत बसा की कहानी दूसरे पर' (आडी पृ० ३४) का मैं सोचता हूँ इससे बड़ी मिडिया ज़िटी और नया हो सकती है कि बादलों काफ़ी भाँसा लेकर पिये। यह जिन्दगी को भी स्वाद भरकर जाता है। पिग।

स्वाद और अन्वेषण—ये दोनों बड़े खतरें हैं। साहित्यिक कहानी भी एक नये जायके—की पसन्दगी में आरम्भ है। उसमें लोग 'एनजायड' अनुभव करते हैं। शायद यह एक इनवैस्टिगेशन है, जिसके रिटर्न की उम्मीदें भी होंगी। इस रास्ते पर अनुकरण करने वाला के नये नाम पैदा होंगे और आकृषक तत्वों के प्रति सच्चे महत्वाकांक्षी लोग सक्रिय सचेतन साहित्यिक और नयी और विविध नामकरणों वाली कहानियाँ लिखने लगे।

## ‘नई कहानी’ और आलोचक

गोपाल कृष्ण कील

आज सबका म अधोपित प्रतियोगिता का भाव है। ‘पर’ की अस्वीकृति और ‘स्व’ की स्वीकृति के द्वन्द्व के रूप में भी प्रतियोगिता है। यह भाव कई प्रकार में अभिव्यक्त होता रहता है। प्रतियोगिता का प्रच्छन्न भाव लेखक की रचना प्रक्रिया में जहाँ कुछ नया करने की सतकता पैदा करता है वहाँ उसमें प्रतिष्ठा की प्रतिद्वन्दिता भी पैदा करता है और यह इतना स्वार्थी हो जाता है कि उसे जिस ‘पर’ में ‘स्व’ की कुछ भी मलक नही दिखाई देती उसका निरस्कार करने के लिए नए नए साहित्यिक नारे गूँगा है। परिणामतः समीक्षा भी पूर्वाग्रह ग्रस्त हो जाता है—चाह वह विराय में हो या पत्र में, क्योंकि जो समीक्षा न विराय में हो और न पत्र में उसको समगत मान कर उपजा-मोथ्य बताने का प्रयत्न किया जाता है।

कहानी व सन्दर्भ में भी आज यही स्थिति है। हिन्दी के नये कुछ कहानी लेखकों ने अपने ‘स्व’ की प्रतिष्ठा के लिए ऐसी सगतियों का साजना ‘गुल’ किया है, जो उनको एतन्म इतना नया साबित कर सकें जिससे वे अपने साहित्यिक अस्तित्व की कहानी व कलागत विकास से विन्मुक्त स्वतन्त्र और अतीत से निश्चित जाहिर कर सकें। इस प्रवृत्ति को सबसे बड़ा सहारा ‘नई कहानी’ शब्द से मिला। यह ‘नई’ शब्द यद्यपि यह कहानी की नई उपलब्धियाँ का वास्तविक परिचायक हो सकता किन्तु इसका प्रतिशय प्रमाण ‘नई कहानियाँ’ पत्रिका व नाम का मायब बनाने के लिए किया गया। यह गनीमत है कि एक पत्रिका ही व सम्पादकों और सौजन्य-सहयोगियों ने इस शब्द को उछाला, यदि वही ‘माया’ और ‘मनोहर कहानियाँ’ के सम्पादक माया और ‘मनाहर कहानी’ का आदातन घेरे हों तो कहानीकारों की अपना रास्ता खोजने में बड़ी कठिनाई होती। ‘नई कहानियाँ’ के तीन प्रत्यक्ष सम्पादक सामने आए हैं, कुछ प्रच्छन्न भी रहे होंगे। सबने नई कहानी व प्रतिपादन में कुछ न कुछ लिखा और लिखना है लेकिन नई कहानी की स्वतन्त्र उपलब्धियाँ और उनके मूल्यनिर्धारण में एकमत सफलता उनका नहीं मिली। इसके लिए उनके मतभेद और विरोधाभास स्वयं प्रमाण हैं।

विरोधाभास और मतभेद मानव स्वभाव है, इसलिए आपत्तिजनक नहीं है किन्तु किसी साहित्यिक आदातन का आधार केवल मानव-स्वभाव की कमजोरी नहीं

वन सकती। कहानी खलको म मतभेद पहले भी थे आज भी हैं कुछ साल पहले ही एक ने कहा कि कहानी वह है जो ग्रामाण वातावरण को उजागर कर सक क्योंकि भारतीय आत्मा गावा म बसती है। दूसरे ने कहा—नही, नगरो की सस्कृति म ही आधुनिकता निवास करती है, इसलिए कहानी वह है जो नगरो की आत्मा का प्रति निधित्व करती है। तीसरे ने कहा—गाव और नगर तो देश म बहुत हैं, भसली बाज है—आवलिकता। कहानी वह है जो आवलिक हो। चौथे से नही रहा गया वाला—कहानी वह, जा 'यक्ति की सामाजिकता क सूक्ष्म सदमों को भलकाती है। पाववे न कहा—यह नही, बलिक समाज से व्यक्ति ने सदधो की सूक्ष्मता को स्पष्ट करने व सी ही कहानी है।

छठे बोझ—आज की कहानी वह है जो पुरान ठावे से आजाद है, वह मात्र एक ब-द्रीय 'माइडिया' को कलाइभेवस तक पहुचाने के लिए नही लिखी जाती।

सातवें ने कहा—आज की कहानी, कहानी के नए शिल्प की कहानी है, नई अभिव्यक्ति की कहानी है।

बीच म आगा भकर एक आलोचक ने कहा—आप सब ठीक कहते हैं कि तु आपको समझन क लिए पाठको के स्तर और पाठको की बचि म परिवर्तन होना चाहिए। यह पाठको की कमी है, जा वे आपक स्तर तक नही पहुँच पाते।

इस प्रकार जन कहानीकार स्वय ही अपने आलोचक बन गए, सब आलोचक या तो चुप हा गए या इन खेलको की सहमति व अनुसार ही अपनी मति प्रगट कर सक। और यदि किसी न स्वतन्त्र रूप से आलोचक धम को निभाने की कोशिश की तो उस इन खेलको ने अपने 'स्व' पर आक्रमण समझ कर सुरक्षा के युद्धस्तरीय प्रयत्न शुरू कर दिए। कुछ तो समीक्षा को प्रेतवाधा समझ कर मृत्युभय से घीबने लगे। य सारा बातें बड़ी दिलचस्प और खेलका की जाग्रत हलचल की निशानी हैं और इसलिए महत्वपूर्ण भी हैं क्योंकि ये खेलक अच्छी कहानिया भी लिखत हैं।

मुश्किल तो तब दरपेठ होती है जब माहित्यकार अपने कृतित्व की वास्तविक उपलब्धिया पर ध्यान न देकर एक नया आन्दोलन खेडने का प्रयत्न करना है जिसका उसके कृतित्व से कोई सम्बन्ध नही होता है। यह खेलको क कृति धम के हित म है कि वे अपना उपलब्धियों के मूल्यांकन का काम आलोचका पर हो छोड दें। स्वयमेनिधन श्रेय पर धर्मो भयावह। खेलक का 'स्व' उसका कृतित्व होना है, खेलक का मू य भी उसका कृतित्व होता है और आलोचना 'पर धर्मा' जिसको अपना कर वह सिफ भया वह स्थिति पैदा करता है। कृतित्व को उपलब्धियों का मूल्यांकन करन की स्वाधीनता आलोचक को देनी चाहिए, खेलक स्वय अपने कृतित्व के प्रति समीक्षक क नात तटस्थ

नहीं रह सकता। बहुत से नये कृतित्व का उचित मूल्यांकन इसीलिए नहीं हो पाता है और साहित्य नई उपलब्धियों के मूल्यांकन से वंचित रह जाता है। कृतिकार जब अपने कृतित्व का स्वयं मूल्यांकन शुरू कर देता है तब न तो वह पूरी तरह से कृतिकार होता है और न पूरी तरह आलोचक हो, उसका अपने कृतित्व के प्रति प्रवृत्ति मोह हर समय सक्रिय रहता है। परिणामतः प्रतिष्ठाजन्य कुछ मनोवैज्ञानिक समस्याएँ खड़ी हो जाती हैं। नये और पुराने की सीमा रेखाएँ इतनी सकीर्णता में घीबा जाती हैं कि हृदय एक दूसरे से बिड़ने लग पड़ता जाता है और नयेपन एवं पुरानेपन का केवल उम्र के आधार पर पीढ़ियाँ के संघर्ष के रूप में पेश किया जाता है जो उस कृतिगत समाजशास्त्रीयता का ही एक नमूना है जिसने एक समय प्रगतिशील साहित्य के मूल्या को भ्रष्ट करने का प्रयत्न किया था और आज आधुनिकता के मूल्या को भ्रष्ट करने का प्रयत्न कर रही है। कभी कभी कृतिगत समाजशास्त्रीयता के कारण कृतिकार अवसरवादी मनोवृत्ति का शिकार हो जाता है और जिन नये मूल्या की वह बातें करता है उनके प्रति स्वयं मानदार नहीं रह पाता।

यदि इरादे साहित्येतर न हों तो समभवतः हर ईमानदार कृतिकार अपने कृतित्व। जीवन के नये यथार्थ की, नये कला स्तर पर अभिप्रेत करने में सहज रूप से ज्यादा यत्न रहेगा। उसे अपने कृतित्व का स्वयं मूल्यांकनकार बनने का अवकाश ही नहीं होगा।

नए कहानीकारों के कहानी खेलन की उपलब्धियों का मूल्यांकन आलोचकों का करना ही चाहिए। वे न तो नए रचनाकारों के चारण बनें और न ही उनके विरोधी। आपस में समीक्षा के प्रति केवल रचनाकारों का सहिष्णु बनने का प्रश्न नहीं है, बल्कि आपस में समीक्षामय छिपी हुई उस दिशा और दृष्टि को भी देखना चाहिए जो नई उपलब्धियों का मूल्यांकन करने पर मजबूर हो जाती हैं। कहानी के नवमूल्यांकन में एक बाधा आलोचकों की वह—मनोवृत्ति भी है जो उनको नए रचनाकारों की जीहूरी करने पर इसलिए बाध्य करती है ताकि उनको नए रचनाकारों के प्रति यत्तिगत पक्षधरों के आधार पर नया आलोचक कहन लगे। ऐसी मनोवृत्ति साहित्य में जाति विरोधी वाद की सकीर्णता पैदा करती है। जिससे एक दूसरे को ठीक समझना मुश्किल हो जाता है। माने आलोचकों के अभाव का नारा लगाया जाता है या फिर संश्लेष और पाठक के बीच में आलोचकों को मदा के लिए हटाने की स्वादिष्ट बाहिर की जाती है।

परिणामतः नए और पुराने केवल संश्लेष और आलोचक एवं आलोचक और पाठक के बीच विचार का ऐसा प्रवृत्ति वातावरण बन जाता है जिनसे साहित्य की

नई उपलब्धियों की महफई तक पहुँचने का किसी को अवकाश नहीं रहता। अगर अंधकाश रहता है तो सिर्फ चिन्ती हुई प्रतिक्रियाओं के माध्यम से एक दूसरे को अप्रतिष्ठित करने का। इससे आधुनिक कथा साहित्य की नवीन उपलब्धियाँ की पहिचान से वक़्त पाठक की नज़र में हर कहानी का मूल्य मात्र मनोरंजन बनकर रह जाता है।

ऐसी स्थिति में 'नई कविता' की नकल में सिर्फ 'नई कहानी' के नामकरण से कहानी की नई गरिमा नहीं आका जा सकती। 'नई कविता' के पीछे प्रयोग और प्रगति की समन्वयात्मक शक्ति के आधुनिक कला मूल्यों और नए जीवन सदमों के नये यथार्थ का चिन्तनशील ऐतिहासिक आधार है किन्तु 'नई कहानी' सना अभी आधार नहीं लाज पाई है। यदि इसके आधार को खोजना है तो नव सत्य की साहित्यिक उपलब्धियों के मूल्यांकन से ही खोजा जा सकता है। इसके लिए नव कथाकारों और आलोचकों के बीच सहानुभूति पूर्ण समझ के साथ-साथ आलोचकों की अभिव्यक्ति की स्वाधीनता सेलक की ओर से होना आवश्यक है।

## आज की हिन्दी कहानी

डॉ० रामदरश मिश्र

कुछ दिन पूर्व कुछ कहानीकारों की ओर से यह वितडावाद गुरू लिया गया था कि आज की कहानी यानी नयी कहानी नयी कविता से अधिक सभ्य विधा है आज के बोध का चित्रित करने के लिए या कि आधुनिक आव बोध का स्वर देने में नयी कविता नयी कहानी से पिछड़ी हुई रचना है। यह एक तूफान का समाप्त हुआ गया इस प्रश्न के कृत्रिम विभाजन रचना या विधा की सृजन धर्मिता के प्रति न्याय करने के लिए नहीं बल्कि कुछ खेलको का मिथ्या गौरव स्थापित करने के लिए हुआ है। मैं तो मानता हूँ कि आज का कहानीकार आज के कवि के समान ही जीवन को उसकी सश्लिष्टता और जटिलता में पकड़ पान और प्रकाश देने के लिए मान्य है। वह यथार्थ जीवन का कलाकार होना चाहता है। वह मिथ्या आदर्शों और नतिकताओं में विश्वास करना छोड़ चुका है क्योंकि वह उसका मत 'नूय परिणामों' में प्रवृत्त हो गया है। ऐसा भी नहीं है कि आज का कहानीकार सुन्दर जीवन या उच्च काटि के मानव मूल्यों को नहीं चाहता, वह चाहता है परन्तु वह यथार्थ जीवन के आधार पर प्रतिष्ठित मानव-मूल्यों या सुन्दर जीवन का खोज में है। यदि वह नहीं मिल पाता तो वह सुन्दर आभाषण नहीं तैयार करना चाहता जो एक हलकी सी भाव से ही पिछे जाय और अपने बीच निवास करने वाला न अस्म कर बैठे।

कल्पना से सुन्दर जीवन या मूल्यों की प्रतिष्ठा करने से क्या हुआ जायगा? वह तो कोई भी कर सकता है और मामा य व्यक्ति भी तो जानता है कि सब बालना चाहिए, परापकार करना चाहिए वगैरह-वगैरह। लज्जित कलाकार का दायित्व बड़ा होता है और दुर्लभ होता है—जीवन के प्रति और कला के प्रति। वह जीवन का मपाट सुन्दर रूप में प्रकट करके न तो जीवन की शक्ति दे सकता है न कला की। अच्छे कलाकार का जीवन के भीतर प्रविष्ट होकर अन्तर्ग्रहित सत्य-मूल्यों को पकड़ना होता है उसका जटिलताओं का उद्घाटन करना होता है मनुष्य की सारी मन्त्रादयों कुशदयों को भाग्यन वाल उसका मन की बनावट को ठीक से समझना होता है। मानव मन ऐसी कोई वज्रान चीज तो नहीं कि उस पर आपने मन्त्रा बुरा साज दिया और वह स्वीकार कर बैठे। आज का कहानीकार सत्य को उसकी प्राकृतिकता और जटिलता में पान के लिए प्रयत्नशील है।



नई उपलब्धियों की महारई तक पहुँचने का किसी को अवकाश नहीं रहता। अगर भय काय रहता है तो सिर्फ चिन्ती हुई प्रतिक्रियाओं के माध्यम से एक दूसरे को अप्रतिष्ठित करने का। इससे आधुनिक कथा साहित्य की नवीन उपलब्धियों की पहिचान में वित पाठक की नजर में हर कहानी का मुख्य मात्र मनोरंजन बनकर रह जाता है।

ऐसी स्थिति में 'नई कविता' की नकल में सिर्फ 'नई कहानी' के नामकरण से कहानी की नई गरिमा नहीं आका जा सकती। 'नई कविता' के पीछे प्रयोग और प्रगति की सम-व्याप्तक गति के आधुनिक कला मूल्यों और नए जीवन सदर्भा के नये मयाप का चिन्तनशील ऐतिहासिक आधार है किन्तु 'नई कहानी' सत्ता प्रभा आधार नहीं लाज पाई है। यदि इसका आधार को खोजना है तो नव सलन की साहित्यिक उपलब्धियों के मूल्यकन से हा खोजा जा सकता है। इसके लिए नन कथाकारों और आलोचकों के बीच सहानुभूति पूर्ण समझ के साथ साथ आलावक की अभिव्यक्ति की स्वाधीनता प्रेवक की प्रार से हाना आवश्यक है।

## आज की हिन्दी कहानी

रा० रामरत्न मिश्र

कुछ दिन पूर्व कुछ कहानीकारों का घोर से यह विचारवाद गुल्लि गल्लि था कि आज की कहानी यानी नयी कहानी नयी कविता से अधिक सम्बन्धित है आज के बोध का चित्रित करने के लिए या कि आधुनिक भाव बोध का स्वरूप नयी कविता नयी कहानी से पिछड़ी हुई रहना है। यह एक तूफान का अनुभव हुआ गया इस प्रश्न के कृत्रिम विभाजन रहना या विधा की स्वयं शक्ति के प्रति शक्य करने के लिए नही बल्कि कुछ मूल्यों का मिथ्या और स्थापित करने के लिए है। मैं तो मानता हूँ कि आज का कहानीकार आज के कवि के समान ही रहना चाहता है उसकी सहिष्णुता और जटिलता में पकड़ पाने और भाकार देने के लिए शक्ति है। वह यथार्थ जीवन का कलाकार होना चाहता है। वह मिथ्या आदर्शों को स्वीकार करने में विश्वास करना छोड़ चुका है क्योंकि वह उसका सत्य धूम परित्यागों के समक्ष हो गया है। ऐसा भी नहीं है कि आज का कहानीकार सुन्दर जीवन या उच्च शक्ति का मानव मूल्यों का नहीं चाहता, वह चाहता है परन्तु वह यथार्थ जीवन के अन्तर्गत पर प्रतिष्ठित मानव-मूल्यों या सुन्दर जीवन की खोज में है। यदि वह नही करता तो वह सुन्दर आभास ही नहीं तयार करना चाहता जो एक हस्तक्षेप का स्वरूप पिछले जाय और अपने बीच निवास करने वाला को अस्म कर बैठे।

कल्पना से सुन्दर जीवन या मूल्यों की प्रतिष्ठा करने के अन्तर्गत जायगा? वह तो कोई भी कर सकता है और मानव शक्ति या शक्ति है कि सब बालना चाहिए परावर्तन करना चाहिए बर्बर-बर्बर। कलाकार का दायित्व बड़ा होता है और दुर्घटना होता है—देखें कि और कला के प्रति। वह जीवन का यथार्थ सुन्दर रूप में प्रकट करके दे सकता है न कला को। शब्द कलाकार का जीवन के अन्तर्गत होकर अन्तर्गत सत्य-मूल्यों को पकड़ना होता है उसका जटिलताओं का स्वरूप करना होता है मनुष्य की सारा धन्यताओं बुराईया को मानव मन की बनावट का ठीक से समझना होता है। मानव मन ऐसी कई वस्तुओं में नहीं कि उस पर अपने धन्य बुरा तान दिया और वह स्वीकार कर लेता है। कहानीकार सत्य का उसकी आंतरिकता और जटिलता में पाने के लिए यत्न करता है।

जो लोग प्रेमचन्द के पहले की या प्रेमचन्द की या प्रेमचन्द दोतर प्रेमचन्द परम्परा की कहानियों की स्वच्छ सरल दोती और स्वच्छ कथ्य के कायल हैं वे जरूर आज कहानियों को मह पान में कुछ बठिनाई अनुभव करते हैं किंतु आज का कहानीकार आज के पाठकों के लिए लिखता है जो स्वयं नजक के साथ जीवन की जटिलताओं को समझने और मुलभाने में सचेष्ट हैं, जो कला के गहन दायित्व को समझते हैं जो समझते हैं कि कला जीवन के बुनियादी सत्या को उद्घाटित कर जीवन को सही ढंग से समझनेवाली दृष्टि का विकास करती है। वह केवल मानन्द नहीं देती, बल्कि हमारी जीवन चेतना, हमारे जीवन बाध को जाग्रत करती है, आधुनिक बनाती है, मनोविश्लेषण ने हमारे मन के अनेक अज्ञात सत्या का विश्लेषण कर उनसे हमें परिचित कराया है। मन के ये उत्पन्न हुए मनक सत्य हमारे व्यक्तिगत और सामाजिक जीवन के निर्माण में कितने सहायक होते हैं हमें आज के कलाकारों ने पहचाना है।

या बाहर भी जो हमारे सामाजिक सम्बन्ध हैं वे बहुत कुछ बने बिगड़े हैं। पुराने मूल्य टूटे हैं, पुराने सम्बन्ध उजड़े हैं, पुराने ढंग से रहने सहने और जीने की पद्धतियाँ में बहुत फेरफार हुए हैं, नये मूल्य बनने की प्रक्रिया में हैं जीवन पुराने आधारों को ताड़ चुका है या या कहिए कि आधार टूट चुके हैं क्याकि उन्हे नयी परिस्थितियाँ से टूटना था और नये आधार अभी बन नहीं पाये हैं, बन रहे हैं कि तु बार बार बाढ़ का पानी उन्हे गिरा दे रहा है। विश्व का जीवन घाति और हिंस, सह अस्तित्व और संदेहमय की मिली जुली घाटियों से गुजर रहा है। घाति और सह अस्तित्व का घोड़ा ना प्रकाश उभरना है तो हिंसा और संदेह का अन्धकार उसे निगल देता है। ऐसे युग में कलाकार एक वृत्तर पमाने पर जीवन की अलख और आराज्य ज्योति की बात कैसे कहेगा ? और यह अन्धकार कब नहीं था ? भिन्न भिन्न युगों में वह अन्धकार रहा ही होगा किन्तु आदर्शवादी कलाकारों ने अलख ज्योति के इस व्यापक अन्धकार के ऊपर लाद दिया। लान्ने से क्या होता है ? अन्धकार ने ज्योति के सदा के जो बंध बाधा अन्ध कर फेंक दिया। इसलिए आज का कलाकार अन्धकार को चीर कर उसका भीतर से जो ज्योति निकलती है, उसीको सत्य मानता है वही स्थाया है, वही हमारी आशा और विश्वास का केन्द्र है। अतः यह कहना कि आज का कहानीकार मूलतः मानव मूल्यों में आस्था नहीं रखता, सत्य नहीं है वह जीवन के खोसभपन की रित्ता का दिखाता है तो इसका यह अर्थ नहीं कि वह ऐसा ही जीवन पसंद करता है बल्कि वह ऐसे जीवन की निस्सारता को खोलकर खोलके जीवन मूल्यों पर आघात करता है और मनेत करता है कि उसे किसी अन्य मूल्य की तलाश है जो अधिक भीतरी है, गहरा है। और सब पुष्टि तो आज का कहानीकार किसी मूल्य के

निष्कर्ष पर पहुँचने की प्रपेक्षा राज के बाहरी भीतरी जीवन के तनाव, द्वंद्व, ट्रेजिक स्थितियों के पास पाठक को पहुँचा कर उसे कुछ गहरे महसूस करने की उत्तुंग करता है। चाहे मोहन राकेश का 'मलबे का मालिक' हो, चाहे कमलेश्वर का 'राजा निरबसिया' या राजेन्द्र यादव का जहाँ लक्ष्मी केद है' हो, चाहे प्रमरकांत की 'डिप्टी कंसवटरी' या 'जाक' हो, चाहे शिवप्रसाद सिंह का 'विन्दा महाराज' हो, चाहे प्रबु कहानीकारों की अन्य कहानियाँ सब में जावन का तनाव और ट्रेजिक स्थितियों का उद्घाटन मिलेगा।

जीवन की सहजता स्वयं एक मूल्य है। हमारी सभ्यता न हमारे ऊपर इतन कृत्रिम भावरण डाल रखे है कि हम मनुष्य की तरह जिन्दगी न जीकर यंत्र की तरह जीते हैं। हमारे पाप पुण्य दोनों बहुत बनावटी हो गये हैं। किसी चीज को सही समझ कर भी हम उसे सही नहीं कह पाते। धीरे धीरे बनावटी जीवन मूल्यों और पद्धतियों को हम प्रोढ़ बैठे हैं। राज का कहानीकार कभी कभी सहज संवेदन, सहज स्वीकृति की मार हम से जाकर कृत्रिम जीवन मूल्यों से मुक्ति का ग्रहण करता है। भी इन सहज संवेदनाओं और मस्ती के ऊपर बैठे हुई पत की पत विवशताओं का चेतनाओं का विवेक्षण कर मूल संवेदना की झलक दिखाता है। कभी यंत्र युग की सत्ता, सभ्यता का उद्घाटन करता है। कुल मिला कर राज की कहानी राज के जीवन की बड़ी ही सीधी यथार्थ-चेतना है। हर कहानीकार अपने अपने अनुभव के अनुसार गहर, कस्बा, गाँव, पिछड़े हुए ग्राम या पहाड़ी ग्राम के जीवन के सत्य को और दृढ़ बनने जीवन मूल्यों का रूपायन कर रहा है। कहा जा सकता है कि राज का कहानीकार अपने प्रति और जावन के प्रति बेहद ईमानदार है। वह अनुभवहीन क्षेत्र दार्शनिक मुद्दा धारण कर प्रविष्ट नहीं होता, वह अनुभव क्षेत्र की सीधी चेतना को भी तत्वीय रूप से अपनी मुद्रा के साथ कभी सहजता से, कभी अनेक संकेत सूत्रों में व्यक्त करना चाहता है। अपने अपने ढंग में वे शिव प्रसाद सिंह, माकण्डेय, दीपक मटियानी, लक्ष्मीनारायण लाल यादव की धुन, परायेपन और ट्रेजिकी का प्रतिफल रहे हैं तो नियम वर्मा राज के चित्र की धुन, परायेपन और ट्रेजिकी का प्रतिभाधुनिक परिवेश में, कहीं कहीं पारंपारिक परिवेश में विवक्षित करते हैं जैसे लक्ष्मीनारायण के 'पराये गहर में'। मोहन राकेश, राजेन्द्र यादव और कमलेश्वर अपने अपने ढंग में मुख्यतया गहर और कस्बे के जीवन का सामाजिक सदन में प्रस्तुत कर उसके अप्रत्यक्ष, अज्ञात और सत्ता को चित्रित करते हैं। मन्मू भट्टारी उदात्त प्रियंवदा, शिवानी आदि को उसकी पीढ़ी के सदन में प्रस्तुत करती हैं। भरती, भीष्म साहू और उमाकांत न

कर नये ग्रंथों में जोड़ती है या पुरानी कथा के साम उसी प्रकार की नयी कथा समा-  
नाम्तर से चलकर आज का मानव चेतना की जटिलता या उसकी विवशता का यत्न  
करती है। भारती की 'सावित्री न० दो' ठाकुर प्रसादसिंह की 'मादमी एक छुला  
किताब' और कमलेश्वर का 'राजा निरवसिया' जसी कहानियाँ नयी कहानी के इस  
शिल्प का अच्छा नमूना पेश करती हैं। इसी सदर्भ में वे कहानियाँ भी ली जा सकती  
हैं जिनमें लोक कथाओं के परिवेश में या उनके रूप में आधुनिक जीवन सत्ता को  
उभारा गया है। हरिश्चकर परमाई को प्रमोद 'यम्य कयाण' ( भेड़े और भेड़िये जैसे  
उनके दिन फिर आदि) इस शाली की उत्कृष्ट कहानियाँ हैं। आज की कहानियाँ ग्राम्य  
की क्षेत्रगत विशेषताओं के अनुसार भिन्न भिन्न स्वरूप धारण करती हैं। गाँव और  
शहर की कहानी का सामान्य निश्चित या अनिश्चित किसान-मजदूर वगैरह निश्चित  
मध्यम वर्ग की कहानी का स्वरूप एक सा कैसे होगा ? गाँव के जीवन में भी यात्रिकता  
का दौर शुरू हुआ है, वहाँ भी नदी राजनीति और विपात सत्ता बाध की स्पर्धा चल  
रही है। फिर भी वहाँ के लोग शहरी पात्र की अपेक्षा सहज गति में चलने वाले होते  
हैं, वे कुछ ठोस और अस्तु-मृदा के शिकार उतने नहीं होते जितने कि शहरी पात्र।  
इसके अलावा गाँव में अभी भी आरमोयता शेष है यद्यपि वह बड़ी तेजी से खंडित हो  
रही है। इसलिए वहाँ के पात्रों का स्वरूप अतिशय अतिशय और उनका विवर्णन करने  
का ढंग वहीं नहीं होगा जो पड़े लिख शहरी पात्रों का अकल और विवर्णन का हो  
सकता है। शहर के जीवन का आर्थिक आधार है यंत्र और गाँव के जीवन का आधार  
श्रम। शहर के पात्रों का सम्बन्ध मूलतः अपने आवास और घर से होता है लेकिन  
देहाती पात्रों का सम्बन्ध बाह्य प्रकृति से अपने पूरे गाँव, प्रकृति और पूरे रीति रिवाजों  
तथा जीवन मान्यताओं से होता है। आवासिकता पर आधारित कहानी में प्रकृति और  
परिवेश उत्तरी सूक्ष्मता से नहीं आ सकत जितना कि शहरी कहानियाँ में। देहाती क्षेत्रों  
में प्रकृति जीवन का अनिवार्य अंग है, उसका सी दाय हमारे जीवन-आपारा के साथ  
गहराई से जुड़ा होता है। शहरी क्षेत्रों में प्रकृति पालनू होती है उनके साथ हमारे  
आवास-आपारों का गहरा या अनिवार्य सम्बन्ध नहीं होता। अतः शहर की कहानियाँ में  
प्रकृति बहुत ही अल्प मात्रा में आती है और वह भी बिम्ब बनकर। शहरी जीवन में  
विमान, रेडियो प्याले प्लेट, सोफासेट मगीत का साज सामान, आफिस टैगल, कुर्सी,  
बाफी हाउस टाइम पीस आदि आते हैं परिवेश बनकर ओ और बिम्ब बनकर भी।  
निम्न वर्ग की कहानियाँ तथा रेतु की कहानियों के शहरी और देहाती परिवेश और  
बिम्बों से यह बात समझी जा सकती है।

मैं इसे अच्छा मानता हूँ कि आज के कहानीकार अपने अपने अनुभव के अनुसार

जीवन-क्षेत्रों का चुन रहे हैं। प्रमुख प्रकार की कहानी श्रेष्ठ है, प्रमुख प्रकार की हीन, इस प्रकार का फेसला देने का मैं पक्षपाती नहीं। व्यापक गहन अनुभव, गहरी दृष्टि और नवीन शिल्प से दर्श पर जो भी कहानी आधारित होगी वह उच्चकाटि की होगी प्राचीन नहीं प्राधुनिकता यात्रिक बौद्धिकता और निरुद्धेय नया शिल्प भगिमा से कहानी श्रेष्ठ नहीं बनती। उसका भीतर जीवन का गहरा दर्द होना चाहिए वह जीवन चाहे किसी क्षेत्र का हो। यह प्राकस्मिक नहीं है कि 'धर्मयुग' के कथा दशक की पूरी शृंखला में सबसे प्रभावशाली कहानियाँ में से एक लगे भीष्म साहसों की 'सिर क सद के' जिसमें कोई तयाकथित प्राधुनिकता या बौद्धिक भगिमा या शिल्प चातुर्य नहीं या एक गहरा जीवन बाध या जबकि पराये शहर में, जैसी प्रति प्राधुनिक कही जा सकने वाला कहानी निहायत प्रभावहीन लगा। इसी प्रकार 'नयी कहानियाँ के विशेषांक में छपी कहानियों में भारती की कहानी 'यह मरे लिए नहीं' अपने बोध की गहराई और सवेदना का तात्परता तथा गृहीत जीवन के सश्लिष्ट सम्बन्ध सूत्रों की पहचान के कारण बड़ी प्रभावशाली है। हो सकता है कि उसका बाध उतना प्राधुनिक न हो जितना कि महेन्द्र भत्ता की स्वच्छन्द नागरिक यौनाचार, गुप्त यौन रहस्या तथा अश्लील चेष्टाओं के दायरे में घूमने वाली कहानियों का। इसी प्रकार हो सकता है कि रतु की 'रस पिरिया' कहानी का बाध उतना प्राधुनिक न कहा जाय जितना कि राजेन्द्र यादव की कहानी 'प्रतीक्षा' का बाध। किन्तु रस पिरिया एक बहुत ही मर्म स्पर्शी कहानी है क्योंकि उसमें सवेदना का प्रसाह गहराई है और जीवन की सहजता कृत्रिम बौद्धिकता से भावुत नहीं की गयी है। शिल्प अपने कथ्य के अनुसार नया होकर भी खुला हुआ है। इसलिए क्षेत्रीय आधार पर कहानी को श्रेष्ठता अश्रेष्ठता का नियम नहीं हो सकता। कहा जा सकता है कि पहलू का कहानी की सपाट या सीधी शैली की जगह साकतिक विनात्मक शैली अपना कर नयी कहाना न कहानों का समृद्ध किया है किन्तु एक खतरा बार बार सामने से घुंजर जाना है वह है अनुभूतिहीन, कथ्यहीन, सवेगहीन निरा तन्त्र-कोशल। पन्थ के कहानाकार की शैली सीधी और सपाट थी इसलिए उसे प्राकट्य, प्रभावशाली जीवन-व्यापार चुनना पड़ना या भाव कभी कभी उलटा दोषन लगता है। कुछ नये कहानीकार नये कवियों की तरह विचित्र विचित्र प्रकार के कथन-कोशल अपना कर कहानी के कथ्य सम्बन्धी खोखलेपन या रिक्तता को छिपाते हैं—एक तो कहानी की प्राण रिक्तता दूसरे उलभाव, एक अजीब छीक होती है इस नवीनता की भगिमा पर। कहानी में प्राण हा तो वह कोशल-वक्रता के बिना भी प्रभाव जमा सकते और प्राणहीन कहानी या कुत्सित व्यापार से खलबलाती कहाना लाख 'पोज' देने पर भी अशक्त और प्रभावहीन ही रहेगी। किस्मा ऊपर किस्सा मारते रहिए लेकिन कोई किस्सा बन नहीं

पाता ।

आज की कहानी को किसी एक नाम से अभिहित नहीं किया जा सकता 'नयी कहानी' नाम पर्याप्त मिट्ट हो रहा है इसीलिए 'सचेतन कहानी' का प्रादोलन गुरु हो गया । इसके प्रतिरिक्त जो नवीनतम कहानीकार आ रहे हैं वे भी अपने को किसी पूर्व दल से बाधना नहीं चाहते । सचेतन कहानी तो नयी कहानी' का सिद्धांततः विरोध करती हुई खड़ी हुई है । सब पूछिये तो यह विरोध गुटबंदी का गुटबंदी से है । सचेतन कहानीकार पहल से लिखत आ रहे हैं यानी सचेतन दल बनाकर उहाने लिखना प्रारम्भ नहीं किया किन्तु उह ऐसा लगा कि 'नयी कहानी' के नाम पर कुछ ही नामा को स्वीकृति प्रदान की जा रही है कुछ लोग धूम फिर कर क ही महत्ता प्राप्त कर रहे हैं तो जब कहानीकार ने स्वीकृति प्राप्त करने व निर कहानी का एक नया सैद्धांतिक आधार खड़ा किया और उनका मुख्य स्वर यह था कि नयी कहानी व्यक्तिगत कु ठा, पराजय, निराशा और यौन विकृतियों की कहानी है जबकि सचेतन कहानी सामाजिक सचेतना की, उमका शक्ति और विजय की, मास्या की कहानी है । वास्तव में इस प्रकार की सीमा रेखा खींच पाना मुश्किल है किन्तु यह सत्य है कि नयी कहानी में अनेक कहानीकारों ने यौन विकृतियां, मानसिक तनाव और शक्ति की एकांत कु ठाओं का आधार बनाकर कहानियां लिखी हैं जिनमें जीवन को उन्मेष देने वाला कोई स्वर नहीं । किन्तु सचेतन कहानी के स्वर वाहकों में से एक जगदीश चतुर्वेदी की लिख लिखी कहानियां को (यदि उन्हें कहानी कहा जाय, क्या कहा जायगा ? सामाजिक सचेतना का अभाव नयी कहानी में भी नहीं है फिर भी यह कहा जा सकता है कि सचेतन कहानीकारों में महोपसिंह, मनहर खोहान धर्म-जैसे कुछ ऐसे कहानीकार हैं जिनमें शक्ति है और जो व्यक्ति केन्द्रित सचेतना के बावरे से निखल कर सामाजिक सचेतना व जीवन में अपने को फैला रहे हैं और आ दालनों का व्ययता अध्ययता के बावजूद ऐसी कहानियां लिख रहे हैं जो प्रेरक तथा शक्ति सम्पन्न हैं । इनकी हिमांगु श्रीवास्तव की तथा रामकुमार की कुछ कहानियां का महत्त्व इस अर्थ में और बढ़ जाता है कि ये उस समय सामाजिक सचेतना और शक्ति की आवाज उठा कर रहे हैं जबकि 'नयी कहानी' की स्थापित नया पोढ़ी निरंतर यौन विकृति और व्यक्ति की एकांत आत्म वन्दिता के रस में डूब रही है इसके साथ ही साथ इन नव विकसित नयी कहानियां में एक बात और लक्षित होती है यह है फामूला बढ़ता । ये कहानियां घटना, चरित्र तो छोड़ ही चुकी हैं, ये आधुनिक जीवन के कुछ सत्य मूला का चुन खती हैं और उनके दर्द निर्दुःख बुझती जाती हैं । इसीलिए आज का कहानी समीक्षक प्रायः कहानी की समीक्षा करते समय उममे से एक फामूला या बारण सींच जाता है । उसकी मानव सचेतना के विश्लेषण पर जोर न देकर वह यह कहता

है कि इस कहानी ने माधुनिक जीवन के इस सत्य को पकड़ा है और फिर वह उसी सत्य पर जोर देता है। माधुनिक जीवन के सदर्थ में उसकी प्राथमिकता अप्राथमिकता सिद्ध करता है। वह कहानियाँ जो किसी जीवन-व्यथा की कथा हैं या सघष की ग्रावाज हैं और जिनसे माधुनिक जीवन का कोई फार्मूला नहीं निकल पाना। वे गालोबका की निगाह पर नहीं चढ़ पाती। कहानी के क्षेत्र में जो नयी पीढ़ी उग रही है उसमें कुछ नाम ऐसे उभर रहे हैं जिनकी कुछ कहानियाँ गाना जगानी हैं। वे हैं 'नौ माल छोटी पत्नी', व रवीन्द्रकांतिलया 'धूप' व उदयभानुमित्र 'मैंन बिदा दी या' के दूधनाथसिंह और 'पिता' व गानरजन। ग्राज की कहानी का परचन व लिए मलग मलग कहानियाँ की प्रवृत्तियों और उपलब्धियों को देखना भी अधिक उपयोगी होगा। और इस तरह यह प्रतीत होगा कि अच्छे मान गये कहानीकार भी कभी कभी कितनी हल्की और नाटकाय कहानियाँ लिखत हैं। उदाहरण के तौर पर कुछ स्वल्प सामाजिक (किंतु शिल्पिक लिहाज में नीले) कहानियाँ लिखन बाध समरकांत व 'काली छाया' और 'बे हसती माँ' जैसी टिकी कहानियाँ भी लिखी हैं। किंतु यह एक मलग निबध का विषय है।



## नई कहानी एक विचार

ग्रोमप्रकाश निमस

कथा जगत में भी इधर काफ़ी असाढ़वाजी और आ दोहन जाँर पकड़ते जा रहे हैं। नयी कहानी, सचेतन कहानी फिर अकहानी के पसधर आये दिँर अपने-अपने पक्ष की हसीलें देते रहते हैं, वक्त-य और पापणए प्रकाशित करते हैं और कुछ पत्रिकाएँ उनक मुखपत्र का काम करती हैं। कुछ यावसायिक सस्थाएँ भी अपनी यवसाय सिद्धि क लिए इस तरह क आग्नोलनो को साधन-सम्पन्न बना रही हैं ताकि किसी नये नाम की चकावंध में वे झूठ चादी कूट सकें। और नारो की इस डेलमडेन में कुछ लोग तो प्रतिष्ठित हो भी गये हैं और कुछ अभी नारबाजा में जुटे हुए हैं और एक से एक बढकर नये नारे ईजाद कर रहे हैं या फिर नारे लगाना झूल कर जो प्रतिष्ठित हो गये हैं उनकी टाँगें खींचने की जब तब कोशिश कर सते हैं।

अमल में, यह कहानी का नही कहानी क विवेक्षणो का समय है इस समय कहानी नही लिखी जा रही, बिगपण लिखे जा रहे हैं। कहानी में से अगर हम बाकी तत्वा को निकाल भी दें तो भी, दो तत्व ठो हमे खास तौर पर रखने ही पडेंगे एक कथानक, दूसरा चरित्र। या तो चरित्रो के अनुसार कथानक की रचना होगी या कथा नक क अनुसार चरित्रा का निर्माण। और आज की कहानी क नाम पर जो कुछ लिखा जा रहा है, उसमे ये दोना ही तत्व निर्बोवप्राय हैं न कथानक सत्रन बन पाता है न पात्र। और जो कुछ बन पाता है वह या तो अति बोदिक होता है या गान्दिक बलाबाजी।

या, अगर हम देखें तो आज जितना गद्य हिन्दी साहित्य में कभी नहा लिखा गया और अभी झूठ लिखा जा रहा है। आज कहानी की कितनी पत्रिकाएँ निकलने लगी हैं, और कहानी पत्रिकाओ से हट कर भी, हर पत्रिका में कुछ कहानियाँ जरूर रहती हैं। लेकिन इन छोटी-बड़ी सभी पत्रिकायाँ में प्रकाशित कहानियाँ को हम छाटने बडेँ ताँ उनमे से सम्भवत एक भी कहानी ऐसी नही निकसेगी जिसे हम विद्व साहित्य की धराहर के रूप में रखने का गौरव प्राप्त कर सकें। कितने 'थ्रेड' कहानी मकलन इधर नहा छे है, जिनने नही छप रहे हैं, कितने नही छपेंगे लेकिन जिस पर हम गर्व कर सकें ऐसी कितनी कहानियाँ उनमें हांगी यह कौन कह सकता है ?

ऊपर जो कुछ लिखा गया है उसका यह अर्थ तो बतई नहीं लिया जाना चाहिए कि जो कुछ लिखा गया है वह कूड़ा-तरकट है। ऐसा तो कोई ना समझ ही कह सकता है। इसमें भी अच्छा है उल्लेखनाय भी है और इसीसे अनिष्ट के प्रति यह भाषा भी बधती है कि कुछ न कुछ जरूर निकलगा भी, लेकिन वित्तनी मात्रा में ? जाहिर बिलकुल कम, करीब-करीब नहीं क बराबर। कहानी की जो प्रतिनिधि पत्रिकाएँ हैं—कहानी, सारिका और नई कहानियाँ, और अन्य बहुत से नये-नये कथा मासिक, उनमें इतन साला में क्या छपा है ? सिवा कुछ इनीगिनी अच्छी कहानियाँ के ही, बाकी सब नहीं क बराबर है। असल में, अगर हम एक ही जुमल में वह तो भाज की कहानी के लिए यह कहना उ यादा उपयुक्त होगा कि वह प्रयोग का स्थिति में है। एक नारा पूरी तरह से प्रतिष्ठित भी नहीं हो पाता कि सभी उसके विरोध में बिलकुल उसके पास से ही जोर का विरोधी नारा उठता है।

नयी कहानी, सचतन कहानी प्रकहानी—ये सब नारे इतन जोर शोर के साथ लगाये जा रहे हैं कि भाज की कहानी न जमीन को छू पा रही है और न किसी दिशा की पहलू कर सक रही है।

कुछ लोग हैं, जो इन नारों और प्रचारों से बन कर खिल रहे हैं उनका कहीं नाम सुनाई नहीं देना, कुछ हैं जो एक-दो कहानियाँ लिख कर प्रतिनिधि कहानीकारों की पंक्ति में शामिल हो गये हैं और कथा चर्चाओं और इन्टरव्यू गोष्ठियों में गदगद निकल कर फाटो खिचवा रहे हैं। वक्त-यो और अपने-अपने ढंग की टिप्पणियों की ता भरमार हो रही है। हर कहानी प्रतिनिधित्व करने वाली है और हर कहानीकार प्रतिनिधि कहानीकार बना बैठा है। एक गुट ने एक आलोचक का सरपरस्त बना रखा है, तो दूसरे ने दूसरे को और बना रही है धक्कमपल।

इस सब भराजकता और धक्कमपल में कहा नहीं कुछ श्रेष्ठ भी पढ़ने का मिल जाता है—कथा वस्तु, पात्र चित्रण और भाषा के नये प्रयोग भी देखने में आ जाते हैं यहाँ जरूरी नहीं कि उन सब कथाओं और कथाकारों के नाम भी गिनाए जाए परन्तु उदाहरण के लिए रघुवीर सहाय की एक ऐसी ही लघु कहानी 'कल्पना' में पढ़ने को मिली थी—'मेरे और नयी औरत के बीच।' फिर एक कहानी सर्वेश्वर दयाल सक्सेना की पागल कुत्तों का भसीहा' पढ़ने को मिली। लक्ष्मीकांत वर्मा की 'टूटी बूडिया की कनिया' रेणु की आत्मक कहानी 'तबे एकला चलो रे' और 'नई कहानियाँ' में धर्मवीर भारती की एक सुन्दर और सशक्त नयी कहानी 'यह मेरे लिए नहीं है' को पिछले वर्षों की उपलब्धि माना जा सकता है। रामकुमार, अमरकांत, निर्मल वर्मा, कमलेश्वर, दूयनाथ सिंह, राजेन्द्र यादव, राजेण तथा बहुत से अन्य नये कथाकारों ने भी

एक अधिक प्रचंडी कहानिया लिखी हैं। लेकिन फिर भी सवाल अभी वही का वही है। कहानी के क्षेत्र में नामा की इतनी बड़ी भाव और सम्बन्धी वृत्तार है, उसमें उसका कही प्रतापता भी नहीं है। वस, 'परस्परम् प्रसन्नन्ति ग्रहा रूपम् ग्रहा ध्वनि, ऊर्द्धा नाम विवाहेषु गीत गायन्ति गदभा। चाली बान ही चारो ओर दृष्टिगत हो रही है।

माज की कहानी के सम्बन्ध में चाहे वह नयी के विक्षेपण के साथ हो चाहे सचतन या प्रसन्नतन या म के साथ—एक बात मुझ सदैव ही परिलक्षित होती रही है और वह है कि इस भीड़ भाड़ और आपाधापी में कहानी कही जा गयी है और कहानी के नाम पर जो कुछ छप रहा है वह इतना निजी और इतना क्षणिक प्रभावकारी होता है कि जैसे-जैसे हम उसे पढ़ने हुए आगे बढ़ने जाते हैं पीछे का कुछ भी याद नहीं रहता न पाना के नाम न घटनाएँ। कोई कोई शब्द चित्र या वाक्य कुछ क्षण के लिए चौकाता है, एक क्षण का ठिठका देता है लेकिन दूसरे ही क्षण प्रभावहीन हो जाता है। इसके विपरीत उदाहरण के लिए हम बहुत पहेल लिलो गयी उन कहानिया को म सकते हैं जो हमें वर्षों के बाद भी ज्यों की त्यों याद हैं और जिनका प्रभाव रचनात्मक भी कम नहीं हो सका है। महादेवी वर्मा की 'बीसा' प्रेमचंद की 'कफन' प्रज्ञेय की 'रोज,' चतुर मेन दास्त्री की 'दुलहा मैं का से कहूँ' और म य कुछ कहानिया। इधर कुछ प्रतिष्ठित पत्रिकाओं के कहानी विरोधक लेखने में आये हैं (गानोदय, लहर, नई कहानिया, कहानी आदि के) उनमें कोई ऐसी बात नहीं जिसका उल्लेख किया जा सके 'धर्म युग' के समा-युग का उल्लेख भी नहीं। इन सब में कहानी पर चर्चा न हाकर कहानीकार के अपने व्यक्तित्व पर ही अधिक ध्यान दिया गया है।

माज की कहानी में सस्ते किस्म के रोमांस, मासतता का भावपूर्ण या छिछली भावुकता या व्यक्ति कुण्ड का ही प्राधान्य है। येन-यन प्रकारेण हर कहानी में यही कहा जाता है। प्रसन्न में, माज की कहानी गहर के मध्यमवर्गीय व्यक्ति विशेष की कुण्ड की प्रतीक मात्र बनकर रह गयी है और उससे आगे नहीं बढ़ पा रही है। भारत के जो प्रमुख करोड़ों लोग गरीब में वसते हैं, उनकी स्थितियाँ परिस्थितियों और मन-आपों का चित्र तो माज का कहानीकार दे ही नहीं रहा है। माज जो कुछ लिखा जा रहा है, वह गहर के एक वर्ग विशेष के भी एक व्यक्ति विशेष की स्थिति का बड़ा ही छिछला और सतही चित्रण-सा होता है। उसमें अधिकतर तो लेखक ही नायक होता है और उसकी अपनी कुंठा, अभाव और अनुत्त इच्छाएँ ही कहानी की विषय वस्तु बन जाती हैं। अब सवाल यह है कि अगर माज का क्याकार इस स्थिति से उबर, कुंठा और व्यक्तिवाद के घेरे को तोड़कर समष्टि की ओर नजरें उठाए तो संभव है कि वह अपने समाज, देश और उसकी मिट्टी की गंध में सनी चीजें दे

जिसका दर्द युगो युगो तक भी अपनी टीस को बरकरार रख सकेगा। रेणु और मटि यानी ने इस ओर ध्यान दिया है तो उनका अपना स्थान भी है और अपना दर्द भी। जो उनका न होकर समष्टि का, या यूँ कह लें कि एक अंचल का दर्द हो गया है, वैसे सारे देश की भी स्थिति वैसी हो है। आज के कहानीकार की दृष्टि बहुत मुची नहीं है। वह बहुत ही सीमित दायरे में सिमट कर रह गया है लेकिन दावे इस तरह के किये जा रहे हैं कि जैसे जो कुछ लिखा जा रहा है वह अद्भुत है, मार्ग दर्शक है।

फसल में इसे मैं तो भ्रम ही कहूँगा। या तो फिर यह मानन में क्या हज़ है कि हम स पहलू जो लिखा गया वह भी हमारा मार्ग दाख रहा है फिर हमने क्या किया ?

तो आज एक धुंध में हम लोग जी रहे हैं और यह धुंध भी हमी ने फैलायी है। अगर हम सबकुछ कहानी के क्षेत्र में कुछ करना चाहते हैं कुछ बना चाहते हैं तो पहले हम इस धुंध को दूर करने का उपाय करना चाहिए ताकि हम अपने आस-पास और दूर का साफ-साफ देख सकें और हम स्वयम् भी अपने को स्पष्ट व साफ देख सकें। स्थिति में खड़ा कर सकें।

आज की कहानी की स्थिति तो यही है कि वह नारा, 'यक्ति प्रतिष्ठा और प्रकाशन लिप्सा और आत्म प्रचार की धुंध में लोकर रह गयी है।

आज जब कि कहानी की भाग पाठक और प्रकाशक की ओर से निरन्तर बढ़ती जा रही है, पत्रिकाएँ मोटी मोटी पारिश्रमिक की रकमें देकर कहानियाँ छाप रही हैं तो ऐसे समय भी अगर अच्छी कहानियाँ और अच्छा साहित्य नहीं लिखा जाएगा तो फिर क्या लिखा जाएगा। जब हम बाजार में कोई चीज़ खरीदने जाते हैं और दुकानदार को कुछ भागा दाम देते हैं तो जाहिर है कि हम खराब या सैकेंडहैंड या नकली चीज़ क्या लेंगे। हम 'फर्स्ट क्लास' चीज़ लेंगे। और कहानी की जो कीमत आज कमूनी जा रही है वह ज्यादा पैसों में घटिया चीज़ खरीदने जैसी है। अतः इस स्थिति में अब छुटकारा मिलना चाहिए। प्रकाशक और सम्पादक का चाहिए वे प्रतिष्ठित या नामवारी के चक्कर में न पड़कर खाली माल और बोला दाम वाली बात को प्रमुग्धता से ताकि कहानी का उच्चार हो और यह धुंध छेँटे, और फिर सब कुछ स्पष्ट और साफ-साफ सुभाई देने लगे। ✓

## नई कहानी

### कथा मानो की एक हद | सुरेन्द्र

बात नई कहानी' क नाम करण वाले भगडे को छोड़कर भी शुरू की जा सकती है, इस तरह कि—

'नई कहानी' आज तक के विकसित कथामाना की एक हद है,

उसका शिल्प बदला हुआ है कि जीवन सत्य उसमें अधिक साक्ष्यता से उभर कर आए है कि उसमें तीखे सबेदन से जीवन के उपेक्षित जीवित सदस्यों को परसा है कि बदलती हुई जीवन स्थितियाँ और घादमी घादमी के बीच के रिश्ते ही उसमें अभिव्यक्त नहीं हुए हैं, बल्कि इन रिश्तों की प्रक्रिया भी उसकी पकड़ से छूटी नहीं है कि वह गीली और सस्ती भावुकता से ऊपर उठी है, उसमें आज के वैज्ञानिक युग की बोद्धिकता का सही दर्जा मिला है कि उसका रूप और ससार पिछली हिंदी कहानी से आश्चर्यजनक रूप से भिन्न है कि उसमें जीवन सत्य और जीवन स्थितियों को लेकर जो नकार उभरा है वह किसी स्तर पर वास्तव स्वीकार का नहीं गहरे समझन की समझ से उपजा है, कह कि उसमें हमारे समीप-जीवन-सत्य को सही माइन में प्रस्तुत किया है और यह भी कि वह 'वाहिए' वाली बात को बहान नहीं करती कि इस बात को वह सांकेतिक तौर पर ही अभिव्यक्ति देती है। उसका नियम थोपे हुए नहीं होते उसके अपने नियम ही नहीं होने। कहानी नियम नहीं देती नियम हाती भी नहीं क्योंकि वह नीतिशास्त्र नहीं है कि वह विधिशास्त्र नहीं है, उसे पढ़कर नियम पाठक लेता है या नियम तन की दिशा में सोचता है, या बस साक्ष्यता भर है, जिसका नियम से सम्बंध नहीं भी हो सकता (बस नियम न ल पाना आज उसकी नियति भी है) इस दिशा में कहानी उसको उबसाती भर है और यही वह संपन्न प्रतिबद्धता के सवाल को उत्तरित भी करती है। कहानीकार इसी के लिए प्रतिबद्ध हो सकता है, क्योंकि यही वस्तु और शिल्प दोनों ही एक बिंदु पर हैं, प्रसारान्तर से उसकी यह प्रतिबद्धता अपनी रचना के प्रति है। यहाँ उसे घनापास वह स्तर मिला जाता है जहाँ वह जीवन सत्यो का सबहान करते हुए, कहानी तंत्र और उसकी प्रयोग-सम्भावनाओं उसकी बारीकियाँ की हिमायत भी कर सकता है बल्कि तंत्र को यही हैमियत दे सकता है, जो रचना की वस्तु को दी गई है। प्रतिबद्धता धसग धसग लेखकों की धसग धसग नियति नहीं, है लेकिन यह बात

मा सही है और महत्वपूर्ण भी कि सखवा को अपनी नियति बनने ही अपनी तरह से तलाशना होगा। वह युग का सम्पूर्ण मूल्यवद्धता के साथ जुड़ी हुई है। यह बात प्रत्यक्ष है और यह बात एक भी है कि सखक अपने अपने कथ्य व निम्न आग्रहों से कुछ प्रत्यक्ष प्रत्यक्ष बातें, प्रतीक प्रतीक तरह कहें, लेकिन सम्प्रोपण होगा उसी पार।

नई कहानी' साहित्य का आलम्बनिक मध्य रूप नहीं है (व्यतीत कहानी एक हद तक ऐसा भी इस अर्थ में कि प्रत्यक्षर इतिहास होता है) वह एक स्वभाविक विधा है, कि प्रत्यक्ष वह स्वभाविक ही रहा है और अभ्यन्तर भी। उसमें चित्त और वस्तु के लिहाज से वह समुचित दिशा देता है जो प्रत्यक्ष से पहले की कहानी में नहीं देखा जा सकता था। नई कहानी' की यह 'उपलब्धि' व्यतीत कहानी से वार्तिक रूप में निम्न है। युग का तनाव और उसमें जीते हुए आदमी की आंतरिक विवशता और घिराव, जो बाहरी घटना और चरित्र में शायद उतना प्रतिक्रियावित नहीं होता, जितना कि वह महसूस करता रहता है। सही मायने में 'नई कहानी' महसूस करने की लगातार प्रक्रिया की कहानी है, इस अर्थ में वह आज के आदमी की नियति से एकमएक हो गई है, क्योंकि आज के आदमी की नियति दबाव को झलत हुए उन्हें लगातार महसूस करने की नियति से जुड़ी हुई है और यह जुड़ना सही मायने में जुड़ना नहीं है, बल्कि लगातार टूटते जाना है, लेकिन नई कहानी' के आयाम और उसकी प्रत्यक्ष दिशाओं सम्भावनाएँ यही नहीं चुक जाती इसलिए नई कहानी' इतनी मर ही नहीं है, बल्कि वह इतना सब हास्य हुए, इतने से भाग का भी कहानी है और दिशाओं की नयी दिशाएँ उसमें आयाम पा रही हैं।

नई कहानी' चरित्र और घटना विरल होती जा रही है यह विरलता आन्तरिकता के बढ़ते हुए दबाव के कारण विवक्षित हुई है। यह आन्तरिक दबाव आत्मा का आंतर में तोड़ता और साखता करता रहता है इसे अभिव्यक्ति देना जरूरी इसलिए भी है जिससे कि तनाव पूर्ण स्थितियों में आदमी कुछ सहज हो सके और इसलिए भी कि उसकी आन्तरिक दशा को उसके सामने रखा जाय। (अपने आन्तरिक दबाव के प्रति उसका दृष्टा भाव जरूरी है) ताकि वह उन पर विचार कर सके और शायद कोई हल भी खोज सके, लेकिन यह खोज हुआ हल उसका अपना होगा और अपने तरह से होगा क्योंकि अपने समाधान में आज वह नितान्त अकेला है, उसे अपना सलीब खुद ही ढोना है।

दरमन्त आन्तरिकता को अभिव्यक्ति देने का सवाल सही यथाय को अभिव्यक्ति देने के सवाल से जुड़ा हुआ है, बल्कि ज्यादा सही होकर इसे यथाय की अभिव्यक्ति

का सही सवाल माना जाय। यह सही है कि भ्रान्तरिकता वा ना यथार्थ एक मिश्र स्तर का यथार्थ है और वही ज्यादा महीन भी है लेकिन सही यह भी है कि वह किसी न किसी स्तर पर जुड़ा हमारा स्थूल यथार्थ न ही है क्योंकि हमारा भीतर हमारे बाह्य यथार्थ में जान भ्रनजाने सम्बन्धित तो है ही यानी हम अपने भीतर का निरपेक्ष नहीं मान सकते और यदि हम उस निरपेक्ष मानते हैं तो उसकी सहूलियें जिन्दगी में पदा करते हैं।

हम भ्रान्तरिक यथार्थ और युग तनाव को लेकर (जो हम भ्रन्तर में ही महसूस होता है) नया कहानीकार अनुभूति की गहराया में पड़ा है, उसने अपना अनुभूति पर खाम किसी रोपित कोण से रचनात्मक दृष्टि नहीं डाली है। (उसने बादा और दशानों से अलग रहने का यत्न किया है कुछ कहानीकारों की कुछ कहानियाँ को छोड़कर) उसने अपनी हुई शुद्ध अनुभूति का मानवीय घरातल पर हा धायाजा लिया है (जिसमें पूर्वग्रहों से भी खुद को अलग रखना चाहता है और रचना प्रक्रिया में भी स्वयं को निस्संग रखने की कोशिश की है जहाँ जितना वह ऐसा नहीं कर पाया है वहाँ वह उतना चुकता भी है) इसलिए भी ऐसा हुआ कि उस अपेक्षित अनुभूत सत्य का प्रकाशन मिला जो समाजशास्त्री की दृष्टि में समाज विरोधी और धिनीना हो सकता है नीतिशास्त्री की दृष्टि से अनैतिक और अवलील, मसलन-बजनाएँ यौन कुठाएँ और विहृतियाँ, युगनद्ध स्थितियों के ब्योरे प्रणिणय, प्रसहायन, प्रवेलापन, रूग्ण मन स्थिति आस, सन्दृ, भ्रमतोष मृत्युनोष असुरक्षा अपरिचय भ्रनस्तित्व होते जाना जीवन की यात्रिकता और साधना की सीमिनता आदि। यह सच है कि जिन्दगी में यह भाज है, हम चाह कर भी इससे इन्कार नहीं कर सकते यो इन्कार न कर पाने की हमारी विवशता भी हो सकती है, लेकिन यह हमारी नियति नहीं हो सकती।

कुछ कृती समीक्षका और रचनाकारों का यह तवा है कि यौन मन्त्रव्य उनकी प्रक्रिया और उनकी विहृतियाँ का चित्रण जीवन निरयकना बोध का परिणाम है। बात सही है, लेकिन पूरी नहीं बल्कि अपने एक निहायत बेमानूम भ्रम में, इसलिए कि हम यौन चित्रण में सही यत्न करने नहीं हैं जिनसे कि फलन परक यत्न, बाजार की भाग्य, रूग्ण स्वात्न और अपने अनुभूत की सीमिनता या चुकने जाने की पतरनाक स्थिति, लेकिन इन दाव के साथ हम इस बात को भुना देते हैं या भूल जाते हैं। भूल हम और और बातें भी जाते हैं बल्कि वे सब जिन्हें हम याद रख सकते हैं या जो हम याद रखनी चाहिए। लेकिन होता ऐसा है कि जिन्हें हम भूल सकते हैं या कम से कम त्रिन बातों को हम भूल

जाना चाहिये, वे हमे याद रह जाती हैं या हम उन्हें याद रखते हैं, यह मिडियाविटी नहीं है और न ही ट्रेजेडी बल्कि यह आज की जिन्दगी की 'एन्सिडटी' है और कुछ बहानीकार बड़े चाव से इसका चित्रण भी कर रहे हैं रमेश बक्षी की चहल कदमी का कुछ कुछ मिसाल के तौर पर पेश किया जा सकता है। सक्स का ह्मण वृत्त चित्रण जान अनजाने नयी कथा का एक माना? ही बन गया है। सवाल ह्मण स्वादन और 'एन्सिडटी' चित्रण का भी उसना नहीं है जितना उमके जनविन न होन का है।

नई कहानी में एक स्तर पर प्रामाणिक अनुभूतियों और उपेक्षित सस्थितियों और परिवेशगत बारीकियों के चित्रण से पाठक को लगा कि व्यतीत कहानी योजित यानी प्रतिवायत कृत्रिम अभिव्यक्ति थी। उसमें जो आदमी चित्रित किया गया था वह पाखण्डी और बलिदानो मुद्रावाला अधिक था जिसके पीछे उसकी मन स्थितिया की कोई सापक्षता नहीं थी और यन्त्रि यो भी ता कम से कम। उसमें का भीतरी, आदमी तो सामन आया ही नहीं था, वह उसे हमेशा छिपाता रहा और जिन स्तरों पर उसने चित्रण का सवाल उठ सकता था उन से बतराता रहा, इतना ही नहीं वह उस गलत तरह और गलत रूपों में वेश भी करता रहा वह उस सामने लान से कुछ आरोपित सत्यो (?) के कारण बराबर बचता रहा। इस तरह वह आदमी समाज शास्त्र, नीति शास्त्र और धर्मशास्त्र का श्लोक और सूक्ति तो था लेकिन वह बसा नहीं था, जसा कि वह होता है या अपने वर्तमान सदमों में हो सकता है।

नई कहानी में इस बदल हुए आदमी ने स्वयं को अभिप्रेत करने के लिए नए नए और अनजाने रास्ते खोजे, इसलिए भी नई कहानी में शिल्प के नए नए प्रयोग हुए, जिनका होना अभिव्यक्ति की सहज मांग थी। लेकिन कुछ लेखकों ने शिल्प प्रयोग को ही कथा का लक्ष्य मान लिया और नए नए प्रयोगों की तरलुम में मूयती हुई अनुभूति की नदी की परवाह नहीं की। नतीजा यह हुआ कि वे रत में नाव चलाते रहे और उसी की पार जाने का सही पराक्रम भी घोषित करते रहे। यह भी हुआ कि इन नए नए प्रयोग धर्मा लेखकों के हाथ से कभी-कभी गफलत में कोई अपक्षाकृत दुस्त कहानी भी निकल गई, ऐसा इनकी सामर्थ्य के कारण हुआ या संयोगवश यह विवाद का विषय हो सकता है लेकिन इस पर यहाँ क्या बहस? बहरहाल

पिछले दिना एक बुजुर्ग अदाकार ने कहानी का निबन्ध 'याद कहानी' माना यानी उनके लिए श्रेष्ठ कहानी वह है जो याद रह जाय, बात कुछ बनी नहीं (हालांकि वे इस बात से भी सुश्रुत होंगे कि कोई यही कहे कि बात बिगड़ गई)



क्याकि बहुत बार बल्कि अक्सर फूहड़ कहानिया याद रह जाती हैं। (अच्छी कहानिया भी याद रह जाती हैं, लेकिन यह एक अलग बात है) और अनेक महत्वपूर्ण कहानिया विलुप्त भूल जाती हैं। याद का कहानी से ताल्लुक नहीं है वह ता व्यक्ति विशेष की धारणा सामग्य से सम्बन्धित है इसलिए याद कहानी कथा मान के रूप में स्वीकृत नहीं की जा सकती, फिर अलग अलग तरह की रचि वाला को अलग अलग तरह की कहानियाँ याद रह जाती हैं और फिर आज इतनी अधिक कहानिया लिखी जा रही है कि युग तनाव और जीवन के जटिल असमंजस से गुजरते हुए आदमी के लिए अच्छी कहानी को याद रख पाना (और न अच्छी का भी) उसके तनाव संकुल मस्तिष्क में उसका याद रह जाना अतिरिक्त मानसिक व्यायाम होगा, जिसके लिए वह प्रस्तुत नहीं है।

नई कहानी विचार नहीं है (वह किसी स्तर पर विचार भी हो सकती है) विचार की प्रक्रिया है और यह धारण्य करने की बात नहीं कि सामयिक समीक्षा में भी विचार उतने नहीं जितनी विचार की प्रक्रिया अभिव्यक्ति पा रही है।

कुछ मित्र क्या माना के नाम पर नख शिख दुस्त कहानी की भाग करते हैं। कहानी नायिका नहीं है कि झूठे के फूल से संकर लिपिस्टिक और नल पालिश तब का हम भुझाईना कर सकें फिर नख शिख दुस्त माने जाने की प्रक्रिया में जो काल खण्ड उस ऋलना पड़ता है उसकी वजह से नख शिख दुस्ती तब पहुचने में वह अपने रूप रंग आकार और प्रकार में बदली हुई हाती है यानी उनके प्रति नजरिए में फर्क आ जाता है। यही कारण है कि दुनिया क रिमी भी साहित्य में आज तक कोई नख शिख दुस्त कहानी नहीं है और न ही हो सकती है। जो लोग नख शिख दुस्त कहानी की भाग करते हैं वे दरअसल कहानी के अन्त की भाग करते हैं, क्योंकि उस दुस्त कहानी की राज में ही लगातार कहानिया लिखी जा रही है, जिस दिन दुस्त कहानी लिख जायगी उस दिन कहानी लगन की आवश्यकता ही मर जायगी, इसलिए जब तक आदमी जिया है तब तक दुस्त कहानी लिख जान का सवाल ही नहीं उठता, यह जानते हुए भी सच्ची कहानी की नियति यही है कि वह दुस्त कहानी को लगातार तलाश में लिखी जाती रहे।

पिछले दिना कहानी को तेमा में बांटने की प्रवृत्ति चली है, कुछ मित्र अभी भी ऐसा मानते हैं। इसलिए कहानियत को महत्वपूर्ण न माना जाकर तेमा को महत्वपूर्ण माना जाने लगा है, प्रतिष्ठा का आधार भी उही को समझा जाने लगा है और लोडरी का ध्यान यह है कि बस्वा क्याकार (या किसी वस्तु विशेष को प्राप्त मानने वाला कोई भी क्याकार)

अपनी कथा नगरपालिका का स्वयं घोषित चयरमन है, उसे कहानी के नाम पर अपना विषय महत्वपूर्ण लगता है, कहानी नहीं। शहराती, कस्बाती, देहाती और पर्वतीय वस्तु हमारे लिए महत्वपूर्ण नहीं है, (यदि है भी तो एक निश्चित दायरे में) और न तो वह कहानी होने का कोई निर्णायक मान हा सकती है। सवाल उर के कहानी होने का और न होने का है। वस्तु उसकी कही की भी हो सकती है। उपक्षित वस्तु का कथा कथ्य बनाना लेखक की अतिरिक्त जागरूकता तो है लेकिन वह प्रतिष्ठा का आधार नहीं हो सकती, आधार है लेखक की अपनी प्रतिभा और प्रशोध, साथ ही एक बात और वह नई कहानी है अथवा नहीं क्योंकि यह बिलकुल जरूरी नहीं है कि एक नए लेखक की मारी कहानियां नयी ही हो।

जन कहानी और कला मूल्यों को लेकर लिखी जाने वाली कहानियां म हमेशा अंतर रहा है। पेने को बरकरार बनाए रखनेके लिए आपको ट्रिप्ली फामू ला-बद्ध और मांस प्रपील वाली कहानियां लिखनी पड़ेगी। यहां पर जनविन, चतुर व पापुलर लेखक का नियुग भी हो जाना है। ग्राम फॉर्म को ध्यान में रखकर आप बड़े कथा मानो को सवहन करने वाली कहानी नहीं दे सकते (जन रचि और कला मूल्यों का साथ साथ निर्वाह कर पाने वाले लेखकों की संख्या नितांत कम जाती है) यदि जन रचि की उपेक्षा कर ऐसा कर पाते हैं तो आपका पशा खरम होता है, इस लिए पापुलर लेखक वह होता है जो कथा माना के सिंहाज में हेच कहानियां लिखता है। हो सकता है, जेनविन लेखक को जन विरोध भी सहना पड़े उसकी कहानियों पर दुर्भृता, जटिलता या उलभाव के आरोप भी लगाए जायें इन्हें हम आरोप नहीं भा मान सकते हैं क्योंकि अक्सर ऐसा भी होता है कि समकालीन स्थितियों में उनका सही मूल्यकन नही भी हो पाता है। अक्सर अपन समकालीनों और समकालीन इतिया के प्रति हमारी बड़ी अजीबोगरीब राय रहती है।

एक वक्त था जब कहानी को जीवन की व्याख्या माना जाता था, लेकिन आज कहानी जीवन की व्याख्या नहीं, स्वयं जीवन है, जीवन के एक सदन की कहानी है और जीवन के सारे सदन उसमें बन खुल रहे हैं। कथा-माना के इस परिवर्तन ने कहानी को किस्सागोई से उठा कर गम्भीर साहित्यिक गद्य-रूप में प्रतिष्ठित किया है। पहली बार कहानी कविता के साथ साथ साहित्य में एक गम्भीर सजनात्मक विधा के रूप में समादत हुई है, न केवल कहानी बल्कि उसकी आलोचना भी। यानी कहानी की आलोचना ने कहानी को जहाँ गम्भीरता से लन का प्रशिक्षण दिया है वहाँ वह स्वयं भी प्रतिष्ठित हुई है। कहानी के तत्वा बात मध्यापकीय विषयपण को छोड़कर नए नए कोणा से कहानी को समझने के यत्न

क्याकि बहुत बार वल्कि अक्सर फूहड कहानिया या- रह जाती हैं। (प्रच्छी कहानिया भी याद रह जाती है लेकिन यह एक अलग बात है) और अनेक महत्वपूर्ण कहानिया बिन्दुल भूल जाती हैं। याद का कहानी से ताल्लुक नहीं है वह तो व्यक्ति विशेष की धारण सामर्थ्य से सम्बन्धित है इसलिए याद कहानी कथा मान क रूप में स्वीकृत नहीं की जा सकती, फिर अलग अलग तरह की रचि जाला को भ्रमण भ्रमण तरह की कहानियाँ याद रह जाती हैं और फिर भ्राज इतनी अधिक कहानिया लिखी जा रही हैं कि युग तनाव और जीवन के जटिल प्रसमजस से भ्रजरत हुए भ्राम्मी के लिए प्रच्छी कहानी को याद रख पाना (और न प्रच्छी को भी) उसके तनाव सकुल मस्तिष्क में उसका याद रह जाना प्रतिरिक्त मानसिक व्यायाम होगा जिसके लिए वह प्रस्तुत नहीं है।

नई कहानी विचार नहीं है (वह किसी स्तर पर विचार भी हो सकती है) विचार की प्रनिया है और यह आश्चर्य करने की बात नहीं कि सामयिक समीक्षा में भी विचार उतने नहीं जितनी विचार की प्रक्रिया प्रमिष्यक्ति पा रही है।

कुछ मित्र कथा माना के नाम पर नख शिख दुस्त कहानी की माग करते हैं। कहानी नायिका नहीं है कि जूडे के फूल से लेकर लिपिस्टिक और नल पालिश तक का हम मुभाइना पर सबेँ फिर नख शिख दुस्त मान जाने की प्रनिया में वह भ्रमण रूप रंग धाकार और प्रकार में बदली हुई हाती है यानी उसके प्रति भ्राज तक कोई नख शिख दुस्त कहानी नहा है और न ही हो सकती है। जो लोग नख शिख दुस्त कहानी की माग करते हैं वे दरअसल कहानी के भ्रन्त की माग करते हैं क्याकि उस दुस्त कहानी की खोज में ही लगातार कहानियाँ लिखी जा रही हैं, जिस दिन दुस्त कहानी लिख जायगी उस दिन कहानी लेखन की आवश्यकता ही मर जायगी, इसलिए जब तक भ्राम्मी जिम्मा है तब तक दुस्त कहानी लिख जान का सवाल ही नहीं उठना, यह जानते हुए भी सच्ची कहानी की नियति यही है कि वह दुस्त कहानी की लगातार तलाश में चिटी जाती रहे।

पिछले दिना कहानी की ममा में वाटने की प्रवृत्ति चनी है कुछ मित्र भ्रमी भी ऐसा मानत हैं। इसलिए कहानियत की महत्वपूर्ण न माना जाकर समो को महत्वपूर्ण माना जाने लगा है प्रतिष्ठा का धापार भी उही को ममना जान लगा है और लोडरी का भालम यह है कि वस्त्रा क्याकार (या किसी वस्तु विषय को प्राप्त मानने वाला कोई भी क्याकार)

अपनी क्या नारपालिका का स्वयं घोषित चरम है, उसे कहानी के नाम पर अपना विषय महत्वपूर्ण लगता है, कहानी नहीं। सहराती, कस्बाती, देहाती और पवनीय वस्तु हमारे लिए महत्वपूर्ण नहीं है (यदि है भी तो एक निश्चित दायरे में) और न तो वह कहानी हान का कोई निष्पत्तिक मान हो सकती है सवाल उसके कहानी होने का और न होने का है। वस्तु उसकी कही की भी हो सकती है। व्यक्ति वस्तु को क्या कथ्य बनाना लेखक की प्रतिरिक्त जागरूकता का है लेकिन वह प्रतिष्ठा का आधार नहीं हो सकती, आधार है लेखक की अपनी प्रतिभा और प्रयत्न, साथ ही एक बात और वह नई कहानी है अथवा नहीं। क्योंकि यह विलक्षण ब्रह्मरी नहीं है कि एक नए लेखक की मारी कहानियाँ नयी ही हैं।

जब कहानी और कला मूल्यों को लेकर लिखी जाने वाली कहानियाँ हमें प्राप्त रहती हैं। वेग को बरकरार बनाए रखने के लिए आपको द्वितीय का मूल्य बढ़ा और मांस अपील वाली कहानियाँ लिखनी पड़ेगी। यहाँ पर जनविन, चतुर व पापुलर लेखक का नियम भी हो जाना है। आम काम को ध्यान में रखकर आप बड़े क्या मानो को सबल करने वाली कहानी नहीं कर सकते (जब कि और क्या मूल्यों का साथ साथ निर्वाह कर पाने का नया नया को समस्या निवारण का है) यदि जन शक्ति की उपयोग कर ऐसा कर पाते हैं तो आपका पक्ष परम हाता है, इसलिए पापुलर लेखक वह हाता है जो क्या-माना के लिहाज में हच कहानियाँ लिखता है। हो सकता है जनविन लेखक का जन विरोध भी महाना हो, नया कट्टरिजों पर दुर्गता जटिलता या उलझाव के कारण भी उगाए जायें, दूरे दूर आगत नदी का मान सकते हैं क्योंकि अक्सर ऐसा भी हाता है कि ममकारीन स्थिति में इनकी सही मूल्यांकन नहीं भी हो पाता है। अक्सर अपने समयमानों का अनुमान नहीं कर पाते हैं कि वे किस स्थिति में हैं।

न कथा माना का एक नया तन्त्र दिया है लेकिन यह भी कि यह तन्त्र अपने संपूर्णत्व में अभी उजगार नहीं हो पाया है। यही कारण है कि कहानी-समीक्षा पूरे तौर पर अभी भी कथा माना के आधार पर उतनी नहीं हो रही है जितनी कि समीक्षक विशेष द्वारा ग्रहण किए गए व्यक्तिगत प्रभाव के आधार पर। और यह जनरे की बात हो सकती है कि कहानी को लेकर कही प्रभाववाणी समीक्षा ही न विकसित हो जाए हालांकि कही यह भी सही है कि यही मित्र-मित्र कारणों से की गई समीक्षाएं कुछ निश्चित कथा—माना का आधार देनी, लेकिन ऐसा भी हुआ है कि नई कहानी पर हुई चर्चा परिचर्चा, परिचर्चा और हाशिए पर समीक्षाओं का प्रभाव यह रहा है कि सबादी मित्र समीक्षकों ने नई कहानी के माना और उपलब्धियों पर विचार करते हुए आपस में शरा शायरी में सवाल जवाब ही नहीं किए बाकायदा उसी तरह म निएय भा पढ़े और इसी दिलचस्पी भवकारी से एक दूसरे पर व्यक्तिगत छोट भी उछाल, इतना और भी कि लगातार हिन्दी नई कहानी का नाम पर विदेशी समीक्षकों के मतों और विदेशी कहानियाँ का बहुतायत से उद्धृत करते हुए हिन्दी कथा में विदेशी कलम लगातार रहे, बिना इस समझ के कि विदेशी कथा—प्रतिमानों की खोज हिन्दी नई कहानी में किस हद तक माइन रखती है। बावजूद इस के नई कहानी पर हुए (और हो रहे) इस बहस मुबाहिसे न नए कथा माना को समझने और नयी कथा का दिशा देने में महत्वपूर्ण उजल प्रयत्न दिए हैं।

एक मित्र समीक्षक ने कथा स्वादन में खण्डित रुचि या खण्डित बाध का प्रश्न उठाया है, वह भी इस आधार पर कि यदि कोई एक ही समय में दो अलग अलग बाधा की रचनाओं को आस्वाद कर पाता है तब उसकी रुचि खण्डित है। दरअसल यह सवाल ही गलत है तब इसका सही उत्तर क्या होगा? और जिस खण्डित रुचि की ये मित्र समीक्षक बात करते हैं उसका लिए पहले रुचि तो बननी चाहिए और जो रुचि बनी ही नहीं वह खण्डित कस होगी? दो अलग अलग बाधाओं की रचनाओं का आस्वाद करने वाली रुचि खण्डित नहीं होती वह व्यापक दृष्टि सामर्थ्य का सूत्र होता है पुराने का आस्वाद कर पाना यदि खण्डित रुचि है तब नए का आस्वाद कर पाना बड़ी हुई रुचि है मित्र समीक्षक के इस गलत सवाल का आधार नए पुराने को आपस में विरोधी मान लेना है जबकि रचने के अर्थ में वे विरोधी नहीं हैं। सफट तब पदा होता है, जब हम नए पुराने का भेद नहीं कर पाते और सिया राम मय सब जग जानी की स्थिति से गुजरते हुए हर रचना को बाह बाह कहते हैं।

और यह नय पुराने का सवाल लेखका की कम ज्यादा उम्र व निष्णय पर आधारित नहीं है, यह तो उन दृष्टि बोधा का सवाल है जिनके ससार चलन चलन हैं। पुराने लेखक और पुरानी कृतियाँ नए की आलोचना का विषय तब बनते हैं जब व नए रचना माना म पुरानी रूढ़ियाँ को स्थापित करना चाहते हैं इसलिए नहीं कि उनकी रचनाओं में वह सब क्या नहीं दिया, तो आज की रचनाएँ दे पा रहा हूँ, क्योंकि इसमें उनके युग-वाच और दृष्टि की विविध भीमाएँ हैं इसलिए जब नए रचनाकार उन पर नयी उपलब्धियाँ न दे पाने का आरोप लगाते हैं तो अपनी नयी बात को 'नये' तरह से पेश करते हैं।

नयी कहानों' दायरे की कहानी है लेकिन ये दायरे बृहत्तर दायरे के लिए ही बनते खुलते हैं जहाँ ये आधी तिरछी रखाभा में एक दूसरे को विरोधी बनकर नहीं, सहयोगी हाकर काटते हैं, यह परिभाषा नहीं है और नयी कहानी की इतनी भर परिभाषा ही भी नहीं मवती फिर परिभाषा देने का चयन इधर ममीक्षका में रहा भी नहीं है बात का परिभाषाओं से समझन-ममझन का मिजाज रिवाज और रिवाज पिछले खूब के समाक्षका में (विद्यार्थियों की मुविद्या के लिए) रहा है और ध्येयत बोध पीडित समीक्षका में आज भी है योकि यही यह भी है कि इधर ममीक्षका में भ्रम बण, परिभाषा न देने का अर्थ कामि न करना मान लिया है जो कुछ में कम खतरनाक बात नहीं है और कहा नहीं जा सकता कि यह खतरा उहाने जानबूझ कर उठाया है या 'मम उनकी अपनी समामय्य निहित है। नई कहानी के मिलमिल में पिछले जिना एक समीक्षक मित्र ने (हालाकि उह अब तक भी समीक्षक नहीं माना गया है और मैं भी उह खास—खामशोका पर समीक्षक मानने से इन्कार कर जाता हूँ, क्योंकि व समीक्षक कम मित्र अधिक है और समीक्षा में भी मिनना का निवाह करते हैं कहा 'म आपकी नई कहानी ममभना चाहते हैं ममे क्या गौरव में नेत्रिन नई कहानों' समझ कर आप हमारे ऊपर कोई झहसान नहीं करी 'मम तो आपका ही गौरव बनेगा योकि आपकी समझ में आजाय तब।' बाने कठिनाई नई कहानी' के कुछ सन्तुलित माना (उन्होंने मान दण्ड शब्द का प्रयोग किया था) उतर कर न आया है। दरअसल सन्तुलित क्या माना की मांग महज उह मित्र की नहीं है बल्कि उन सबकी भी है, जो क्या के लिए नया बल्कि अपनी क्या समझ के लिए सन्तुलित क्या—माना की मुविद्या चाहते हैं 'लेकिन अपनी समझ से नया और एम या इन जम बिनन नहीं है ?

नयी भी और अच्छी भी क्या ही—मांग करने वाले समीक्षक पाठक, मने

अथ म उस कथा की माँग करता है जा शिल्प की दृष्टि से नई हो (या जिसे भर) ललित ससार उसका वही हो जिसके वे अभ्यस्त हैं, क्योंकि कहानी 'नई' हो तो उसके किए आवश्यक बिल्कुल नहीं कि अच्छी भी हो (अच्छेपन का सम्बन्ध हमारी बनो हुई रुचि से है विकसित मानो और बनती हुई रुचि से नहीं) बल्कि जो कहानी नई है वह अच्छी इसलिए भी नहीं हो सकती कि वह हमारे सार वस्तु और शिल्पगत सत्कारों को धनोती हो नहीं देती, उन्हें तोड़कर ही समझ के दायर में आ पाती है (अपने सत्कारों का टूटना हम अच्छा नहीं लगता और इसी वजह से कहानी भी) अब नई कहानी अच्छी भी लगने लगती है तब समझना चाहिए कि वह अपने नएपन में धुनती हुई सत्कारों की उसी जब प्रक्रिया से गुजरती होनी है जो व्यतीत कथा की भागे चलकर मृत्यु रेखा बनी थी यही कारण है कि जो आन्दोलन साहित्य में प्रतिष्ठित होते हैं वे वही स अपदस्थ भी होने लगते हैं। कहानी का 'नया' होना—जितना जरूरी है उतना अच्छा होना नहीं, क्योंकि वह हमारे सम्पूर्ण मान—विचारों को ध्वस्त कर, हमारी कथा समझ को एक नए बिंदु से शुरू कर उस नए कोण से जोड़ती है। बिल्कुल जरूरी नहीं कि हर नए लक्षक की सारी कहानियाँ 'नयी' हो ही बल्कि यह जरूरी है कि उनके सम्पूर्ण दृष्टित्व में कुछेक कहानियाँ ही नई हों या अपने निही अंशों में नई होकर नए मानों को प्रतिष्ठित करने में सहायक करें।

आइडिया' कहानी भी इसी तरह नई नहीं होती क्योंकि नई कहानी बनाई नहीं जाती वह लक्षकमें घटित होती है। लेकिन उसे पूरे तौर पर झेलता हुआ उस लक्षण की विवश क्रिया से जुड़ जाता है। आइडिया कहानी में कोई एक विचार होता है, नक्षक उसका लिए पात्र और परिवेश का जुटा लेता है जनत्र की अधिकांश कहानियाँ ऐसी ही हैं।

आज की कहानी अधिक मशिल्लुट हो गई है और मृज्जन स्तर पर वही अधिक महीन, पुराने कथा तत्व (पुराने अर्थ में) उमम नहीं मिलने और उन्हें जिम-तिस तरह खोज निकाला भी जाय तो पता चनेगा कि जो कहानी है वह ता पन्ड में आई हो नहीं बल्कि वही छूट गई है और जो छूट जान याग्य था या हो सकता था, उस हमने कथाके नाम पर खोज निकाला है और तब कहानी नहा, हमारी पकड़ में उसकी निहायन सतही जमीन होती है। कथा—तत्व हमको सतही जानकारी तो द सकते हैं बल्कि आज उनसे हमारी पुरानी कथा समझ को भी सतरा पना हो गया है, आप जिसे चरित्र ममन्ने धारक हैं वह यहाँ चरित्र है ही नहीं अरन वन हुए—मिजाज में वह परिवेश का प्रतीक भर है बल्कि उसका भी निमित्त मात्र। यहाँ तक

हाता है कि कभी-कभी कहानी का समूचा आदर्श एक उससे हुए वेद च्युत वाक्य में स्थित होता है और कथा का शेष सारा आयोजन निरर्थक बनकर रह जाता है लेकिन जब हम इस एक वाक्य प्रकाश में मुड़कर कहानी का-जायजा लेते हैं, तब कहानी के सारे-वर्णित प्रतीक और अधहीन सा लगती स्थितियाँ एक वृहत्तर प्रतीक के उपाग और जुड़ी हुई सायक विस्तृतियाँ के आशय में बदल जाते हैं, आप खुद को ऐसे बोध में समोत लगते हैं जो इससे पहले कथा पढ़ते समय आपके गिद अनुभव-शायरे में नहीं खुल पाया था। आप जैसे-जैसे और जितनी बार कहानी का पढ़ते हैं। उसके सही अर्थ के समीप पहुँचते जाते हैं। इसी लिए नए कथा मानो में कहानी की पाठ प्रक्रिया भी खास अहमियत रखती है। जरूरत इस बात की है कि-कहानी की पाठ-विधि को गम्भीर और खास धन्यास दिया जाय और उसे सही सदमों में पकड़ पान के लिए नाकदर दृष्टि और आग्रह मुक्त समीक्षा बुद्धि का आधार दिया जाय।

‘नई कहानी’ में पिछली नतिकता और धार्मिक लगाव को बाध स्तर पर ही बहिष्कृत नहीं किया गया है, बल्कि अनिव्यक्ति के स्तर पर भी उसे नकार दिया गया है सम्बन्धों की औपचारिकता के स्थान पर उस में खुलापन है। नया कथाकार ससरहीन बाध और भाषा को लेकर कहीं अधिक साहस के साथ ठास जमीन पकड़े हुए है। जीवन की अधहीन लगने वाली छोटी-छोटी स्थितियों को उनमें सायक सम्मों में लाजा है और उन्हें सायक पाया है। उपक्षित वस्तु को उसका दाय सापा है। उनके चित्रण में लिजलिजपन और भावुक रोमान के स्थान पर तल्ली है यह तल्ली जीवन विसर्गितियाँ का आश्रय परिणाम भी है।

चूँकि नई कहानी न जीवन के नए और सही यथाय का सम्मरहीन कारण से उठाया है इसलिए अपरिचय, अजनबीपन, अनिण्य नकार आसन्न मृत्यु का बाध, माह भय, आत्म त्रास, आकाश और ऊँच व इही जसी और-और सस्थितियाँ के उसने निमग्न चित्र उकेरे हैं। आज के आदमी के इस अभिशाप और विडम्बना को हर नई कहानी में किसी न किसी स्तर पर प्रकाशन मिला है या इस तरह भी कि आदमी की अभिशप्त और विडम्बित नियति अनिव्यक्ति के नए-नए आयामों में गुल रही है जा घणित भी है, रोमाचक भी है और इस टूट भरे जगत् से शायद-उबर सकने के लिए सक्त मात्र्यम भी। और वन।



अथ म उस कथा की माँग करते हैं, जो शिल्प की दृष्टि से 'नई' हो (या दिग्ग मर) लेकिन सत्तार उसका वही हो जिसके व अम्यस्त हैं , क्योंकि कहानी 'नई' हो तो उसके लिए आवश्यक बिल्कुल नहीं कि अच्छी भी हो (अच्छेपन का सम्बन्ध हमारी बनी हुई रचि स है विकसित माना और बनती हुई रचि से नहीं) बल्कि जो कहानी 'नई' है वह 'अच्छी' इसलिए भी नहीं हो सकती कि वह हमारे सारे वस्तु और शिल्पगत सत्कारो को चुनौती हो नहीं देती उसे तोड़कर ही समझ के दायर म आ पाती है (अपन सत्कारो का टूटना हम अच्छा नहीं लगता और इसी वजह से कहानी भी) जब नई कहानी अच्छी भी अपने लगती है तब समझना चाहिए कि वह अपने 'नएपन' मे चुकता हुई सत्कारो को उसी जड प्रक्रिया से गुजरती होनी है जा व्यतीत कथा की आग चलकर मृत्यु रेख बनी था यही कारण है कि जो आम्पोलन साहित्य म प्रतिष्ठित होते हैं, वे वही स अपदस्थ भी होने लगते हैं । कहानी का 'नया' होना—जितना जरूरी है उतना अच्छा होना नहीं, क्योंकि वह हमारे सम्पूर्ण मान—विचारो को ध्वस्त कर, हमारी कथा समझ का एक नए बिंदु स शुरू कर उसे नए कोण से जोड़ती है । बिल्कुल जरूरी नहीं कि हर नए लेखक को सारी कहानिया 'नयी' हो ही बल्कि यह जरूरी है कि उसके सम्पूर्ण कृतित्व म 'कुछेक' कहानियाँ ही 'नई' हों या अपन किन्ही अ शो मे नई हाकर नए मानो को प्रतिष्ठित करने म सहयोग करें ।

आइडिया' कहानी भी इसी तरह नई नहीं होती , क्योंकि नई कहानी बनाई नहीं जाती वह 'नैखकम' घटित होती है । लेखक उस पूरे तौर पर भलता हुआ उसे लिखने की विवश क्रिया से जुड़ जाता है । आइडिया कहानी मे कोई एक विचार होता है, नखक उसके लिए पात्र और परिवेश का जुड़ा लेता है, जनद्र की अधिकांश कहानियाँ ऐसी ही हैं ।

आज की कहानी अधिक सभिलष्ट हो गई है और मृज्जन स्तर पर वही अधिन महीन, पुरान कथा तत्व (पुराने अर्थ म) उमम नहीं मिनगे और उह जिस-तिम तरह खोज निवासा भी जाय तो पता चनगा कि जो कहानी है वह ता पकड म आई हो नहीं बल्कि वही छूट गई है और या छूट जाने याग्य था या हो सकता था उस हमने कथाक नाम पर खोज निवासा है और तब कहानी नहीं, हमारी पकड म उसकी निहायत सतही जमीन होती है । कथा—तत्व हमको सतही जानकारी तो द सकने हैं बल्कि आज उनसे हमारी पुरानी कथा ममझ को भी खतरा पदा हो गया है , आप जिम चरित्र मममने धारह हैं वह यहाँ चरित्र है ही नहीं , धरन बन हुए—मिजाज म वह परिवेश का प्रतीक मर है बल्कि उपरा भी निमित्त मात्र । यहाँ तक



## नई कहानी और उसका रूपबध | सुरेन्द्र

नई कहानी के रूपबध पर अलग से चर्चा करना, दरअसल परम्परागत आलोचना के उसी अंश में बाध करना है जिसमें बाकायदा कथ्य और शिल्प को पूरे तौर पर सिद्धान्तित विभाजित माना जाकर, उनका जायजा लेना होता है।

जबकि इस सत्य को यहाँ रचने की शुजादश नहीं कि यह विभाजन आघातित ही नहीं है, बल्कि अथहीन भी है, और समीक्षा बुद्धि का सासा मनोरंजक उदाहरण भी। शिल्प और कथ्य को अलग अलग खतियाने का अर्थ ठूँध और पानी को अलग अलग करके (जैसे पुराने दृष्टांत के लिए क्षमा किया जाऊँ) उड़ा जायका लेना है हालाँकि उन हंसा की उपस्थिति और उनकी मूर्खप्राप्ति चाँची के बारे में मुझे पूरा पूरा शक है जिनके लिये कहा जाता रहा है कि वे पमा कर पाते थे। लेकिन यह एक अलग बात है और इस पर यहाँ क्या बहस ?

रूपबध को नेवर इसलिए भी अलग से बात नहीं चलाई जा सकती कि यह वस्तु बाध के आंतरिक रचाव का अनिवार्य प्रतिफल ही नहीं है उसका घृत्त आकार भी है जब अपने आंतरिक रचाव का तनाव भलती हुई क्या (या कोई भी रचना) एक खास मिजाज पकड़ लेती है या पकड़ती होती है तब यह मिजाज उसकी नितात अपनी अनिवार्य मांग होता है लेकिन उससे (कथा अनुभव के दृष्ट से) पूरे तौर पर एक नहीं होता और अलग इसलिए कहा जाता कि वह वही नहीं है यानी उसका महज शिल्प ज्ञान से अर्थ नहीं बूझा जा सकता। चित्र की बद्धस्थ एवान्विति में अत्युत आकर्षक चित्र को राट्टन बतानी पड़ कर सबना है (काट्टन को काट्टन के तौर पर नया क्योंकि वह तब बला होगी) लेकिन उसमें निहित या सम्भावित एहनुमा रा नहीं उभार सकता। इसलिए बद्धस्थ अनुभव के वास्तव में हटकर शिल्प-स्तर पर चर्चा उठाना गलत बात का और गलत तरह प्रस्तुत करना है इसीलिए कहा सकता है कि यह चर्चा आपस लिए उमानो हो (और मरे लिए भी) लेकिन मैं अपने उन मित्रों के प्रतिप्रतिबद्ध हूँ (गोत्र यह हर एक के लिए जरूरी नहीं है) जो अपनी कथा ममम के लिए सुविधा चाहते हैं हालाँकि सुविधा वास्तव में अपने-तरफ हात है जिन्हें जानते हुए भी सांग घागिर खतरा उठाते तो हैं ही। बहरहाल

शुरू शुरू छायावाद को शिल्पगत आन्दोलन या उपलब्धि मानने वाले श्रृष्टि आचार्योंकी तरह भी कुछ कथा-समीक्षकाक यहाँ नई कहानी' के लिए भी यहाँ नियम पढ़कर सुनाया गया । ऐसे समीक्षक शिल्प के लिहाज से तो उसे नया मानते ही हैं लेकिन जब उसकी वस्तु पर अलग से विचार करते हैं (शिल्प और वस्तु को अलग-अलग खानों में बांट कर आदरन वे ऐसा करने हैं) तो उसे भी जहाँ तहाँ नया बताते हैं और जब दोनों पर एक साथ विचार करते हैं (भोकि ऐसा व मजबूरी में ही करते हैं) तब बहुमत से वही श्रृष्टि आचार्यों वाला नियम दुहराते हैं । 'नई कहानी' के सद्म में परम्परागत समीक्षा बुद्धि की यह रोचक मिसाल है साथ ही शिल्प और वस्तु को अलग-अलग मानकर उन पर विचार करने में जो खतरा है वह यहाँ समझा जा सकता है ।

पिछले कथाकारों के यहाँ किस्सागाई शिल्प का विकसिततम कथा-मान था । उनकी कहानी इमी शुरू होती थी और खत्म भी यही होती थी लेकिन कहानी यहाँ खत्म होती नहीं है—क्याकि तब वह आग लीवा ही नहीं जाती खत्म होते हैं कहने के खास-खास ढंग और उनकी जगह कहने के और या और और ढंग आ जाते हैं । यह "कहने के ढंगों की यात्रा प्रमचन्द के यहाँ शुरू हुई थी और तब से अब तक लगातार बरसता रही है (भाकि शुरू इस दादी नानी की कहानियाँ व आदिम जमाने में कहने की इच्छा से माना जा सकता है लेकिन तब इसकी नमिक इतिहास के तौर पर विविक्षा करनी होगी और उसने लिए न तो यहाँ गुजाइश है और न ही आवश्यकता) इस दिशा का बदलाव कथा के शिल्प इतिहास की अनिवार्य बात है लेकिन उसमें काल-वर्ष के लिहाज में कोई अनुपात है यह जरूरी नहीं ।

व्यतीत कहानी में वस्तु और शिल्प दोनों में रोचकता और उत्सुकता बनाए रखना जरूरी था भाकि यह जरूरत आज भी बनी हुई है, लेकिन एक अलग माइन में । व्यतीत कथा में या तो किस्सागाई होती थी या अतिरिक्त नाटकीयता नई कहानी' में शायद अब किस्सागाई के विरोध में भी आवाज उठे, क्योंकि यह अब धारणा पारम्परिक वस्तु के समानान्तर तो उपयोगी हो सकती थी लेकिन नए वस्तु बोध के लिए इसका अब गुजर चुका है पिछले कथाकार भटकेदार अत दकर भोचक पाठक को देखते थे और मुस्कराते फिर एक भटकेदार अत लिखने में जुट जाते थे । शिल्प बोध का यह ढंग आज के पाठक को एकत्र बचकाना लगता है वह कहानी से गहरा और अन्दर तक टोहन वाला बोध का भाग करता है । हालांकि अब भी कुछ कथाकारों की चमत्कार वाली दृष्टि पाठक को चौंकाए और शायद दंत में तुष्टि पाती है लेकिन समझदार कथाकारों के यहाँ यह शोक खत्म हो रहा है व

कहानी' में कुछ ही 'स्टोक्स' में अपनी बात कह जाते हैं, शिल्प स्तर पर वे इस तरह के अतिरिक्त धायेजनों की आवश्यकता महसूस ही नहीं करते ।

व्यतीत कहानी की गुरुभात बतौर सजावट के प्रकृति चित्रण में होती थी या विवरण वस्तुन से या फिर सामान्य परिचयात्मक ढंग से । नई कहानी' में शिल्प की २५ शुरुआतों को ठीक दिया गया है । वह धरती शुरुआत में मिनिया विम्बो प्रतीको या सहेनो से करी है । कभी-कभी मापा की ध्वनि और चित्रा के अर्थों से उसे सायक किया जाना है । लेकिन इन या इन जेपे भी शिल्प का प्रयोग किसी विडम्बना या परिवेश गत विरांच को सामने लाने के लिये ही होता है, अर्थहीन होकर या परिभाषाके अनुसार होकर नहीं और न ही अलकरणके तौर पर ।

कहानी की सही जमीन उसका कहानीमन ही है शिल्प की मायकता इसी कहानीपन को उभारने में है । हावावि यह नामुमकिन है कि सही शिल्प के अभाव में कहानीपन' सायक हो पाए और वह भी नई कहानी में । यदि शिल्प क्या का कोई धायाम नहीं दे पाता, सब निश्चय ही वह कहानी को कमजोर बनाता है ।

शिल्प गत क्या समीक्षा में पिछले दिनों तक कथानक का गठन नाटकीयता, वातावरण का मुष्टु संयोजन सवांग की सक्षिप्तता व इही जसी और और मतही बातों का चलन था जिनसे क्या के अंततः शिल्प को समझ पाना भी पठिन था । यह समीक्षा विभाजक बुद्धि में जुड़ी होने के कारण अपने प्रारम्भ में ही स्थिति थी ।

नई कहानी में नए शिल्प का प्रयाग चपिटत हाकर उतना नहीं है जितना वस्तु की भ्रान्तरिक विवशता का परिणाम हाकर । नए शिल्प में कथाकार की वस्तु दृष्टि का लगातार योग रहता है तो वस्तु ध्यान में लेखक का शिल्प कोण बराबर काम करता रहता है ।

शिल्पगत सपाटपा (पलटनस) कोई खास बात नहीं है लेकिन इस कहानी में खास बना पाना या कहानी को इनके माध्यम से खास बनाना जरूर बड़ी कथा कारिता का सबूत है । इस शिल्प बाध के अन्तगत वस्तु, बोध होकर शिल्प स्तर पर जितनी सपाट हाती है रूप भी बसा हो अनुकूल पकड़ती है यहा जीवन का कोई नुकता, घण या कोई स्थिति, बोध स्तर पर क्या में उभरती है, अत्यन्त साधारण होकर कहानी शुरू हाती है (और अन्त भी साधारण तौर पर ही हाता है) वह कि बातों का एक सिलसिला होता है जिसमें हर भाव और हर कोण पर आदमी को विडम्बना आकार पाती चलती है और अन्त में कहानी किसी विडम्बना का पूर

परिदृश्य में आकार देकर लौट जाती है। इस रंग की सबसे अधिक कहानियाँ भीष्म साहना के यहाँ हैं। प्रमचन्द की परम्परा का जब सवाल उठाया जाता है तो हम परम्परा में आगे लिखी गई कहानियाँ भीष्म साहनी की ही ठहरती हैं। कमो-कम ऐसी ही सहजता और प्रवाण निमल के यहाँ भी है, लेकिन इसलिए यह स्वीकार कर लिया जाने का कोई कारण नहीं कि सपाट शिल्प वस्तु वाली कहानी ही ज़रूरी होती है। दरअसल हर लेखक का कहानी का अपना मिजाज होना है और यही मिजाज जितना उभरता है कहानी उतनी ही मजबूती है और लेखक की अपनी स्थिति भी।

चित्रों पीढ़ी के क्या समीक्षकों में वातावरण के आधार पर भी नई कहानी की समीक्षा की है। जबकि उनकी अध्यापकीय क्या समीक्षा की आलोचना का वह हमारे तत्वा के साथ वातावरण भी रहा है। मार्मिक और सजीव वातावरण के लिहाज में निमन वर्मा की कहानियाँ का याद किया गया है और उह इस कारण में सर्वाधिक प्रभावशाली भी माना गया है। मार्मिक और सजीव वातावरण चित्रण के नाम पर निमन वर्मा की कहानियाँ का मजबूत ठहराना नई क्या के समीक्षालय में महज रामन की बहालत करना ही नहीं है अपनी रोमांटिक रुचि का इजहार करना भी है। विदेशी वातावरण चित्रण की बात तो समझन लायक है लेकिन हर देशी वातावरण की विदेशीयता का प्रतिर क्या श्रेष्ठ है? निमल वर्मा के यहाँ यह सब उपलब्ध है।

‘मयबध’ के नाम में महा वास्तव का सवाल स्यात विभाजक समीक्षा बुद्धि का पक्ष नहीं है (यों कि उनकी कोई पसंद भी है? इस पर पूरी बहस के लिए अलग में गुंजाऊ है) लेकिन इस पूरे सवाल का नई कहानी के शिल्प बाध में गहरा सम्बन्ध है क्योंकि महा वास्तव का सवाल उस यथार्थ का सवाल नहीं है जो निरन्तर पर फाटाघापी और वस्तुवाचक नाम पर मात्र विवरण होना है। महा यथार्थ का सवाल इस बात में एकमएक है कि हमारे जस तम में (कुछ कहानीकारों ने मान उस ही चित्र दिया है, हात्ताहि इन चित्र देना कोई राजबाब बात नहीं है) इस चित्रण का कारण सतही क्यावाच और यथार्थ का गहन समझना भी है) जो अनदृष्ट रह गया है या निमन अनन्या रह जान की सम्भावना है (किसी इसके बिना यथार्थ का तस्वीर पूरा नहीं होती हो सक्ता है कि हम फिर भी पूरे अनदृष्ट का चित्र न दे सकें लेकिन जितना जरूरत में वही फोटाघापी वाल शिल्प और विवरण का बन्धुबाध से महत्तर होगा) उन क्या में तस्वीर दें, क्योंकि हमारे यथार्थ की पूरी तस्वीर व तस्वीर को पूरे के करीब करीब प्रत्यक्ष कराने का

लिए इसकी महत्वपूर्ण भूमिका है, और वृत्ति कि इस रूपाकार बनने में मुहावरा हुई भाषा और प्रपञ्च के प्रचलन प्रकार अपर्याप्त दाग इसीलिए यही स उसे महीन वस्तुबोध के साथ प्रपञ्च के लिए नए शिल्प और आयागों में खुलती भाषा की नई तलाश प्राप्ति भी करनी होगी। इसीलिए नई कहानी अपने सही अर्थ में वस्तुबोध के नए क साथ साथ भाषाबोध व प्रपञ्च के लिए लगातार शिल्प के नव-नूतन की तलाश भी है और इस अर्थ में वह एक समूची प्रक्रिया भी है जो आगे चलकर चाहे एक अलग नाम की मांग कर लेकिन अपने प्रक्रियाय में यही स शुरू मानी जायगी। हर 'नई कहानी' (यदि वह वाकई नई है तब) कथाकार के वस्तुबोध व शिल्पबोध के लिए हर बार एक नई चुनौती होती है और हर चुनौती (अगर उसकी कथा क्षमता उस स्वीकार कर पाती है) कथाकार से नए का मांग कराती है, यह अलग बात है कि 'नई कहानी' ने चाहे न सही लेकिन नए कथाकार ने अक्सर इस अर्थ को पूरा निभाया नहीं है पर उसकी नियति इसी को निभान में जुड़ी हुई है। यह बात जुग नहा है, इसे वह चाहकर भी नकार नहीं सकता। आधुनिकता को क्या स्तर पर प्रत्यक्ष कराने का सवाल भी यथार्थ की इसी अर्थ से जुड़ा हुआ है। महानगरों में बढ़ता या ठहरता प्रत्यक्ष आधुनिकता को रूपायित करना बड़ी कलात्मक कोशिश नहीं है, बड़ी कोशिश है इससे इतर आधुनिकता बनते हुए असंख्य यम-सूत्रों को संश्लिष्ट अर्थ यक्ति व पाना। स्पष्ट है कि असंख्य यम सूत्रों का प्रत्यक्ष करने वाला रूप प्रत्यक्ष को प्रत्यक्ष कराने वाले रूपायों से भिन्न कथा दृष्टि के मौलिक रचाव का आंतरिक विविध प्रतिफलन होगा किसी भी तरह छोड़ा हुआ नहीं और इसी कारण अधिक प्रत्यक्षपूर्ण भी।

'नई कहानी' की साकेतिकता का स्पष्ट अंतर व्यतीत कथा की साकेतिकता से है इन माइने में कि अतीत कथा में सकेत का उपयोग कथा के प्रमाणन में हुआ करता था नई कहानी में वह उसकी-संश्लिष्ट परिवेश और व्यस्त सजुल जीवन के कारण-निता त स्वाभाविक और अनिवार्य स्वीकृति है बल्कि किसी स्तर पर वह सकेत का उपयोग न कर स्वयं सकेत होती है। 'नई कहानी' में सकेत का संविशेष होना इस कारण से भी चालित है कि नए कथाकार को 'आदेश देन, लखन की हेमियत से सीधे बात' करने कथा में अतिरिक्त 'नाटकीयता का आयोजन करने आदि जैसी सुविधाएं प्राप्त नहीं हैं। पुराने कथाकार का यह सुविधाएं प्राप्त थी। अन्त में इन सुविधाओं का उपयोग नया कहानीकार कथा में करना भी नहीं चाहता इसलिए कि वह वह नए कथा शिल्पराय के समानांतर नहीं पाता और इसलिए कि आधुनिक वस्तुबोध व अन्वेषण माध्यम के रूप में यह अपना अर्थ सा खुरी है। 'नई कहानी' पुर तोर पर ता सकेत होती ही है, अलग अलग स्तरों पर भी वह सकेत होती है हालांकि य सकेत स्वयं में अलग स महत्वपूर्ण होने और

स्वतंत्र स्थिति रखने पर भी, होते कहानी के प्रभाव की पूरी अविवेक वाले वृहत्तर संकेत के लिए हो दें।

नई कहानी' में संकेत प्रतीक संयोजन जहाँ कहानी के 'रूपवच' की एक हृदयायम करते हैं वहाँ इनके अनन्य प्रयोगगत जबरदस्त खतर भी हैं और य खतरे महज हवाई न होकर कहानीकारों के यहाँ ध्ये भी जा सकते हैं। सिद्धास्त और मयमी कथाकारों के यहाँ भी य खतर भी चूक से आकार लेने लाते हैं। प्रसन्न संकेत प्रतीकों का प्रयोग तब अग्रहीत हो जाता है जब वह स्वयं में नश्य मान लिया जाता है यह जानते हुए भी कि प्रतीक की अलग में अपनी कोई स्वतंत्र नियति नहीं है स्वतंत्र होते हुए भी अन्ततः वह क्या की अविवेक के साथ जुड़ी हुई है इसी को उभारे, वस प्रतीक की इतनी सी ही साधकता है। हान का ता युग की अश्लीलतम औपचारिक कृति लेडी चैंटरलाज लवम युग की महानतम प्रतीक-कृति हो सकती है लेकिन सवाल यह है कि क्या ये प्रतीक क्या-स्तर पर रिवील हो सकते हैं? प्रतीकों की वस्तु बाध की अनन्य आन्तरिक रचना से मगति न बढने के कारण कहानी एकदम हवाई भी हो सकती है यहाँ तक कि समीक्षक समझ में तो वह ऊपर हो ही जाय लेखक की समझ भी उस कोई अर्थ न दे सके, इसलिए यह बात हम याद रखने की जरूरत है कि प्रतीक संयोजन कहानी के लिए है कहानी रचना प्रतीकों के लिए नहीं। कहानी स्वयं प्रतीक हो सकता है, होनी भी है (मैं कह चुका हूँ) लेकिन एक ऐसा प्रतीक जो कहानी के लिए उलटकर किया गया हो और तब कहानी के होत हुए यह प्रतीक या प्रतीक के होते हुए यह कहानी हमारे जीवन की किसी क्रूर विडम्बना या किसी छोटी घटना को अर्थ देती हुई जीवन का अनदेखा सम्मं जोड़ती है या उसके दिशा गौरी मकत देती है या फिर इसके द्वारा एक ही प्रतीक जीवन को (जीवन सण्ड का) उसकी अनुकूलता और प्रतिकूलता में अर्थपूर्णता में बदलकर (आपरेट कर) स्तर-स्तर उजाड़ता है।

नई कविता' में विम्ब संयोजन की शिल्प स्तर पर जितना बड़प्पन मिला है, उतना नई कहानी' के शिल्प में नहीं बल्कि कविता में तो विम्ब का सम्प्रेषण भाष्यम की विकसिततम हृदय भी मान लिया गया है। यदि विम्ब प्रयोग का नई कविता' तक ही सीमित न मान लिया जाय (गोकि कुछ समीक्षकों का निजी तौर पर क्या के शिल्प स्तर पर विम्ब प्रयोगों से आसा परहज है) तो नई कहानी से हम इसके उपयोग में गम्भीर मदद मिल सकती है। और कुछ प्रवृद्ध कथाकारों ने वस्तु अर्थ को बाँटने से छानने के लिए उनमें मदद भी है विम्ब प्रयोग नई कहानी में प्रेषण क्षमता का नई शक्ति देता है लेकिन इनके अपने अपने



भी हैं (इसीलिए रूपवध की किसी भी हद को आयात न करने के लिए धार पर चलने वाली पत्नी सजक नजर जरूरी है) क्योंकि कहानी के विम्ब वही नहीं होगा, जो कविता के हाने। कविता के विम्ब कहानी के गद्य की ठेठ सामर्थ्य के प्रति पाठक का विश्वास गिराते हैं इस से कहानी में यथायत्नी पकड़ जहाँ कमजोर पड़ती है (नापा में अनिश्चित छंद बढ़ता या कवित्तमयता के कारण) वहाँ लक्षणीय बौद्धिक निस्संगता भी दृश्य होती है। छंद कहानी के सदा में यह पतरा अपने समस्त नएपन के बावजूद निमलवर्मा के यहाँ ज्यादा है। परिणाम में घास के नीचे सोयी हुई भरी मिट्टी पर तितली का नहासा दिल घड़वता है मिट्टी और घास के बीच हुआ का घोंसला वापता है। घाए हुए ये विम्ब या इन्हीं जस दूसरी कहानियाँ प्रमाण के कारण ही परिणाम का नई कहानी (शायद पहली भी) मान बैठ हैं जब कि वह बोते हुए के मोह और छायावादी बनना की विवृति (भवसा का फलाव) से जुड़ी हुई कथा है और रोमान के विरोध में उसी रोमान का कहे जाने की विवशता से सम्बद्ध है यह प्रलय घात है कि इन स्थितियों से उबरने के उसमें बराबर संकेत मिलते हैं।

पता नहीं क्या समीक्षा को नई कहानी में कविता पंक्तियों के स्तेमाल से गुरुज क्यों पना हो गया है (संगता है इसका कारण कविता कहानी का एक दूसरे के विरोध में लड़ा करने का विद्वप है और एक से दूसरे विद्या को थोड़ा समझना का भ्रम) कविता पंक्तियों से सहायता लें लें शिवायत की बात नहीं है निरापत्तता कहानी की नापा को कविता की नापा बना देन से है क्योंकि इससे नई कहानी की नापा न जा गद्य को रूप और प्रयोग मजाबट दी है उसकी शक्ति और गति मरना है। कहानी की नापा मात्र शिल्प स्तर पर सम्पन्न है। नापा का बन्ताव नही है, उसका बस्तु बोध में गहरा और मोहरा सम्पन्न है। नापा का बन्ताव युग-बोध-बन्ताव को सूचन करता है (मान नापा से ही किसी भी वृत्तिकार के बस्तुगत सत्ता और दृष्टिकोण का विश्लेषण किया जा सकता है) इसीलिए कविता का नाम नापा प्रसाद का युग बोध की नापा तो हो सकती है सम्प्रति युग बोध का प्रभाव उत्पन्न कराने की प्रयत्ना कविता पंक्तियों का ही उपयोग कर लिया जाय और जहाँ काव्य नापा गद्य नापा के समीप आ रही है तब कहानी की नापा को काव्य नापा के समीप लाना सही प्रश्न का उत्तर देना है। जीवन समीप नापा का समीप जीवन बोध का तभी प्रमाण दे सकती है नई कहानी की नापा इति

‘नई कहानी’ में भाषा प्रयोग वस्तु के समानान्तर ही हुए है, भाषा में नाटकीय लहजों, ससृत निष्ठ रूपा, अधिक से अधिक विशेषणधर्मा वाक्या का युग पीछे छूट गया है। वस्तु के समानान्तर गाव, कस्बा व शहरी भाषा का स्वभाव अपने नितान्त लहजा के साथ उस में वहिचक और प्रभूत प्रयोग पा रहा है। इस स्वभाव में आरोपित कमनीयता, कृत्रिमता और क्लासिक भाषा का वहिष्कार है। यह वस्तु के युग बाध गत स्वभाव का नतीजा है। जिन कथाकारों के यहाँ ऐसा नहीं है, वहाँ कहानी वस्तु और भाषा दोनों में पिछड़ी हुई है। ‘नई कहानी’ में भाषा का सजाव नहीं है, यहाँ सपाट और विशेषणहीन सहज भाषा ही अभिप्रेत है इसी के चलते ‘नई कहानी’ में भर्ती की बातों का कम हात जाना, वस्तु और भाषा के बढते हुए आयामों का संकेत है। ‘नई कहानी’ में कम से कम शब्दों में अभिप्राय को कह डालने में गद्य रण का संस्कार तो होता ही है, लेखकीय सामर्थ्य का आश्वासन भी उस माना जा सकता है। निमल वर्मा की भाषा की तारोफ काफी की गई है, बोध की सूक्ष्म प्रक्रिया और प्रतिक्रियाओं का गह पान में उनकी तारोफ की भी जानी चाहिए लेकिन विशेषणहीन सत्ताएँ और ‘उपमा रहित पदों’ को उनकी भाषा की तारोफ का आधार बनाना या तो तथ्य को न समझ पाना है या फिर बूझ कर कि ही विवशताओं, के चलते, उन्हें झुठलाना है। फाक के भीतर से ऊपर उठनी हुई कच्ची सी गोलाइयाँ में भीठी भीठी सी चुमती हुई सुइयाँ । (मैं नहीं जानता कि कच्ची सी गोलाइयों की यह भीठी भीठी सी चुमन किस इन्द्रिय बोध से चखकर भलगई गई है ?) यह भाषा या इसी जैसी उनकी कहानियाँ में अन्यत्र बरती गई भाषा ‘नई कहानी’ की भाषा की किसी विकसित हृदय का नहीं छूती, बल्कि ध्यायावादी भाषाबोध जगाती है। भाषा के नए-नए रुखा और रंगा को गद्य की मजाबट में राजेन्द्र यादव, भीष्म साहू, कमलश्वर, अमरकान्त, शिवप्रसादसिंह और इंदर श्रीवास्तव, रवीन्द्र कालिया, चान्दजन, दूधनार्थसिंह आदिके यहाँ देखा जा सकता है।

निश्चय स्वभाव की कहानियाँ, इंदर कुछ नए कथाकारों के यहाँ देखी जा रहा है उनको चाहे आन्तरिक प्रवृत्ति निबधा जैसी नहीं भी हो, लेकिन आवयव सगतता और भाषाबोध निबधो जैसा ही होता है अमूर्त का प्रयोग भी, इंदर कथा में हुआ है, श्रीकान्त वर्मा आदि के यहाँ इसका रूपाकार का समझा जा सकता है। ये अमूर्त प्रयोग प्रतीक और संकेत का माध्यम तो पाते ही हैं, किसी किसी स्तर पर अमूर्त चित्रों का मयोप भी इनमें होता है और इसी वजह से वस्तु आयोजन में पेच भी आते हैं और त्रिवरे धारणा में जिया गया काल विरोधा में बटा हुआ भी लग सकता है लेकिन

सतही तौर पर, गहरे उतरन पर नहीं ।

नए कथाकारों ने बावजूद अपनी कमियों के शिल्प के सतुलन और समय का आश्चर्यजनक सवृत लिया है अलकृति और बुनावट कुछेक कथाकारों को शिल्प स्तर पर धमी भी पकड़े हुए हैं लेकिन बहुतां के यहाँ इनकी रमरग पक्षे बिखर चुकी है ।

कहानी में शिल्पहीन शिल्प का रचाव उतना ही दुष्कर है, जितना कि 'मपाटवा को कहानी में खाम बना पाना' लेकिन इधर शिल्पहीन शिल्प वाली कुछ कहानियाँ लिखी गई हैं, कमलेश्वर की 'भास का दरिया' ऐसे ही शिल्प की कहानी है ।

कथाकारों ने पुराने अप्रचलित शिल्प प्रयोगा—सिंहासन बत्तीसी 'कित्मा तोता बना'—का भी नयी कथा में अपनाई की कोशिश की है । इन रूपरन्धों के तहत बुनावट पाई हुई कहानियाँ या तो महत्त्वहीन होकर रह गई हैं या फिर साधारण सा व्यर्थ होकर । इसका कारण चाहे तो युग-बोध रहा हो चाहे फिर लेखकों की अपनी निज की कथा क्षमता । दुहरे कथानक और सोर कथा के रूपबध का नए वस्तु शिल्पबोध के समानान्तर उपयोग नई कहानी में हुआ है लेकिन इस मिजाज की चर्चा करने योग्य कहानी अपने पूरे महत्त्व में कमलेश्वर ही दे पाए हैं 'राना निरव सिया' उनकी ऐसी ही कहानी है ।

नई कहानी में वस्तु मर्य में जहाँ एक स्तर पर एकरसता आई है, वहाँ उसका शिल्प इससे बचा हुआ है । हर लेखक के यहाँ प्रेषण के असंग प्रयोग ढंग हैं चाहे फिर वे काफी हाउस सबसे सिनीमा होटल के यात्राएँ जैसे एक रसता पना करने वाले (करीबकरीब हर लेखक के यहाँ यही कुछ है) वस्तु सत्या को ही क्या न दें । एकरस स्थितियाँ के चित्रण में भाज के जीवन का ग्यान इनमें जुग हुआ जाना भी एक कारण है ।

नए कथाकारों के यहाँ भ्रमामाय (एँवनामल) 'व्यक्तित्व और असामान्य स्थितियाँ' का चित्रण हो रहा है, लेकिन यह असामान्य व्यक्तित्व प्रसाद' आदि के यहाँ का भासाधारण व्यक्तित्व नहीं है जिसके कारण पुराने कथाकारों की वस्तु का सीमित हो जाना अनिवार्य था, बल्कि ये घटना और ये व्यक्तित्व जीवन की यात्रिरता और यात्रिव' वचनानिक युग के आदमी को बोना बना देने वाली भयानक स्थितियाँ छायाभया भयहीन होने हुए रिस्ता मोत और भरेलेपन का जन्म है । जाहिर है कि ऐसी वस्तु वाली कहानियाँ की शिल्प सरचना निम्न और प्रगत स्तर की या सतह में दमन पर असम्बद्ध और विरोधी मूला वाली

होगी। इन के समानान्तर ठंड (धीकातवया) जसी कहानियाँ—जिनमें प्रति परिचित वस्तु और व्यापार में अन्तरभाव की पकड़ से अनदखे ही छूट जाने वाल जीवन के विडम्बना चित्र हात हैं—का सादा और सहज शिल्प अपनी हर म्यिति और हर मोड़ में सामान्य हात हुए भी सहज सकेत और प्रतीक ही उठता है।

नई कहानी को कहानी के अब तक के प्रचलित अर्थ और परिभाषा की धारणा में साफ साफ कहानी नदी कहा जा सकता, यह अन्तर वस्तु की समानान्तरता की अपेक्षा शिल्प और दृष्टि के बदलने के कारण आया है। इन्हो के चलने नई कहानी एक स्तर पर वैचारिक निबंध जसी होती है तो एक और स्तर पर महज बातों का एक दिलचस्प सिलसिला या फिर वह कुछ सचता और प्रतीका में ही शुरू और आखीर हो सकती है। कही वह 'पराश बक' के जरिए अपना निविड और चाहा हुआ अर्थ उजागर करती है तो कही वह फटेसी हाकर कहानी हाती है। कही वह पत्रा का छोटा और लम्बा सिलसिला हो सकती है तो कही डायरी के सम्बन्ध-सम्बन्ध पृष्ठ उसके लिए हाते हैं। गौकि इनमें से कुछ शिल्प कायना की परीक्षा पुराने कथाकार भी कर चुके हैं और नयी कहानी में भी ये शिल्प कायदे कोई महत्वपूर्ण उपलब्धि नहीं दे सके हैं।

कामू तावड़ गिरने नई कहानी में समाहित नहीं हुआ, इसलिए निश्चित आदि अतः चरम सीमा व इन्हा जैसे दूसरे नुक्तों का प्रयोग नए कथाकारों ने अपने यहां नहीं किया जब कि इन नुक्तों में अतीत कहानी के शिल्प का दूर तक निर्देश दिया था। युग की विडम्बना को सम्प्रणाल्य दन के लिए तत्वी और व्यय का नई कहानी में दतना सफल और प्रभूत प्रयोग हुआ है कि जिसके चलने उनमें अवश्य भाषा का रूप एक खास कारण से उभर सका है।

शिल्पगत सारी जागरूकता के बावजूद भास किस्म का मैनरिज्म इधर 'नई कहानी' के शिल्प में विकसित हुआ है। इस खतरे से नए कहानीकारों को परिचित होना जरूरी है। गौकि कुछेक इनमें इससे परिचित भी हैं, क्योंकि कुछ नए उन्नत कथाकारों ने इस गायर का तोड़ने की काशिश की है। लेकिन इसे दुभाग्यपूर्ण ही कहा जायगा कि हिन्दी का नया कथाकार चर्चा कहानियाँ के बाद ही टाइप होना शुरू हो जाता है। उसकी वस्तु के पार्श्व-परिदृश्यों का सीमित होना उसके शिल्प का भी कुछ आजमाई हुई रखाओं तक ही सीमित कर देता है। इसका कारण उनका चुकता हुआ जीवितानुभव जहा है, वही गायर में जाना और अतिरिक्त खतरा मोल न लेने की साहसहीनता भी है। उनकी खुली भाँति की दाद दी जा सकती है, लेकिन एक ही जगह या हर जगह में एक ही नुक्ते को तलाशने वाली उनका खुली भाँति अब तक

प्रशंसा पाती रहेगी ? खतरा उनको आख के खुलेपन से नहा है (क्याकि वह तो 'नई कहानी' की पहली शत है या शनोंम कोई भी प्रम उमे भाप दें) खुलेपन के बंध जान से है । जबकि नई-कहानी के लेखक के लिए जरूरी है कि वह लगातार वस्तु और शिल्प के बने बनाए दायरा और मायामो को ताड़ता हुआ, उनसे आगे लिखे क्योंकि 'नई कहानी' किसी सन् विषय का सिक्का नहीं है वह लगातार प्रनिया में ढलता हुआ सिक्का है । 'मनरिज्म' के चक्कर में कुछ ऐसा होता है कि एक स्तर पर वस्तु से शिल्प का ताल मेल टूट जाता है, वस्तु का विकसित नोकें मर जाती हैं और वह जीवन की पकड़ में पीछे छूट जाती है तब कहानी महज सनही होकर रह जाती है या फिर कहने का ढव मात्र हाकर और यह ढव भी पहल हो कहा जा चुका होता है । इस ढव की चुनौती को जब तब नया क्याकार मुली आख स्वीकार नहीं करता तब तक उसकी नियति अपने पिताआ से ज़िमी तरह बन्तार नहीं हो सकती ।

शिल्प-ढव की इस चुनौती को उसके तयाम खतरो में और और नामा के साथ राजेन्द्र यादव और रमा बंधी न स्वीकारा है । राजेन्द्र यादव क्या शिल्प प्रयोगों को खतरा प्रसिद्ध है तो उस लिए बदनाम भी हैं (कभी कभी हम किसी की आलोचना इसीलिए करते हैं कि बट प्रसिद्ध क्या है ? और जिन बातों के लिए हम उसकी प्रशंसा कर सकते हैं उही बातों को उसके विरोध में स्तेमाल कर लत हैं । उपलब्धि को आरोप के तौर पर प्रस्तुत करने की इस ममीक्षा बुद्धि के पीछे किनने व्यक्तिगत कारणों और ठहरी हुई रचि का हुना है इस पर ध्यान से बहम करने की जरूरत नहीं) बस इतना ही कहना है कि राजेन्द्र यादव ने अभी तक वस्तु बोध की नज़ से अपनी उगली फिमलन नहीं दी है और यह भी कि शिल्प का नए नए मायामो में तालने का खतरा भरा उत्साह अभी उनमें पुरा नहीं है ।

बिचली पीढ़ीके कथा समीक्षक उनके शिल्प और फिर उनकी हुई वस्तु (शिरा यन प्रम काविये गौर है) की शिरायत करते हुए पाए गए हैं लेकिन प्रमन बात का शिरायत नहीं करते (या तो वहां तक उनकी पहुंच नहीं है या फिर जानकर वहां वे 'मपहुंचा' रहना चाहते हैं यानी आख के 'यस्त सकुल जीवन में शिरायत की बात उलझी हुई जिन्दगी से हो सकती है जिसका आवश्यक परिणाम उलझी हुई वस्तु और इसी के चलते उलझा हुआ शिल्प है वे इन आवश्यक परिणामों में खतरात हुए इन तथ्यों को उनके वस्तु शिल्प के नाम पर नकारते हैं और सपाटपा की (पलटन में) प्रहमियत को कहानी में बंद दना चाहते हैं । वहीं एमा तो नहा है कि चक्करदार वस्तु-शिल्प से भयभीत उनकी 'सपाट समीक्षा' बुद्धि अपने तई सपाटपा की मुनिया चाहती है ? या भी हो, (या जो न भी हो) ऐसा जरूर हो सकता है कि चक्र

दार वस्तु-शिल्प आयाजन में लेखक से चूक हा जाय पर उसके क्षेत्रे उठान वाल साहस और उरलविया के प्रति अनजान वनत हुए महज उसकी चूक की आलोचना करना या तो मतुलित समीक्षा-बुद्धि के अभाव का वायस हा सकती है या फिर कुछ निजी और सतही कारणों का नतीजा और इमीनिए इस समीक्षा स्तर पर गम्भीरता से नहीं लिया जा सकता ।

दुनिया के साहित्य में महत्वपूर्ण वृत्तियाँ बँवल सपाट वस्तु-शिल्प का परिणाम ही नहीं हैं और फिर आज जिन वस्तु शिल्प को चकुरदार समझा जा रहा है वह भ्रान्त वाली पीढ़ियों के यहां भी गमा हो समझा जायगा, इसके लिए साहित्य इतिहास से हम कोई विश्वमनीय नियम प्राप्त नहीं है । चकुरदार वस्तु शिल्प की आलोचना हो की जा सकती है लेकिन उसकी साहित्यिकता को सदिग्ध नहीं ठहराया जा सकता, बल्कि क्या के वदत वस्तु-शिल्प आयाजों के लिए एक स्तर पर चकुरदार वस्तु शिल्प आयाजन महत्वपूर्ण भी हा सकता है । बहरहाल ।

# नई कहानी उसका यथार्थ और पाठक

डॉ० राजेन्द्र शर्मा

इधर 'नई कहानी' के सफल प्रवाह की तीव्रता इतनी बढ़ गई है—सच तो यह है कि उसके पर करीब-करीब उछड़ गए हैं।

पाठक हर सफल को कहानी को धूल के साथ हाथ में लेता है और उसमें उसमें नीरसता की धूल का झंझार ही मिलता है, उसे लगता है जैसे हाथ पर घाव—नाक मुंह में धूल ही धूल भर गई है।

अब वह धीरे-धीरे इतना तो शायद समझने लगा है कि कहानी से भिन्न यह नई कहानी क्या है? कहानी अपने आप में एक पुरानापन है। ऐसा पुरानापन जिसका सम्बन्ध जिंदगी से जोड़ते हैं। हृदय है इस कठोर पुरानी चीज का स्वागत सत्कार कौन नासमझ करेगा। नए कहानीकार को कहानी का यह सुन्नीप भली-भाँति समझकर का एक अनन्त इतिहास प्रतीत होता है। उन्हें लगता है कि किसी राक्षस ने कहानी की आत्मा का बंधन के पास में बन्दी बना रखा था। उन्होंने प्रतिभा की है कि वह राजकुमार की भाँति इस राजकुमारी का राक्षस के हाथों से उधार करेंगे और उधार उद्धार प्रायः किया भी है, लेकिन राजकुमारी का शरीर ही उनके हाथ लगा है। आत्मा उसका साथ पहले ही छोड़कर चली गई है। इन नवयुवक कहानीकारों की यह सफलता, जायसी की इन पंक्तियों का महसा ही स्मरण करा देती है जो उन्होंने भलाउद्दीन के चित्तोड़ दुःख प्रवेश के सदम में लिखी है। भलाउद्दीन की उपलब्धि और नए कहानीकारों की उपलब्धि में तात्त्विक अन्तर नजर नहीं आता।

'लीन उठाई छोर एक भूटी  
दान उठाई पिरयभी भूटी।'

अन्तर इतना ही था भलाउद्दीन अपनी इस उपलब्धि पर सज्जित था नया कहानीकार इस उपलब्धि पर गर्वोन्मत्त है।

नया कहानीकार जीवन का सभी सदमों से बाहर, बबल प्रतमान के नियम पर परगना चाहता है—वर्तमान शब्द भी बड़ा है—बबल धरा के नियम पर। धारण्य तो यह है कि उन्ने अभी यह धारणा नहीं की है कि आज के जीवन मनुष्य का प्रतीक के मनुष्य में कोई सम्बन्ध नहीं है। वह सब के साथ अपने का बचानिब

को सन। स अभिभूत करता है और जीवन क अग-प्रत्यग को काटकर अलग अलग उनकी परीक्षा करना चाहता है। इस परीक्षण प्रेम मे वह यह भी भूल जाता है कि वह मृत्युत्तर शव परीक्षा कर रहा है या जावित मनुष्य के अग-भग करन मे लगा है।

उस अपने अतीत वतमान और भविष्य सभी से एक अजीब विरक्ति और बिड है। उसके हृदय मे सबके प्रति प्रतिशोध की एक मयकर ज्वाला अकारण प्रज्वलित है। वह अनजान मे एक आत्मघाती मृजन का जनक बन रहा है उसकी मृष्टि अपने पिता के लिए ही सबसे भारी पड़ रही है। जो व मे वह 'एक दुनिया समा नान्तर' के मृजन का दम्भ धारण करके चल रहा है और उसकी विवशता है कि वह विश्वामित्र को भी नहीं भूल पाता।

संस्कृति शब्द मे उम बिड है और भारतीय शब्द मे एनर्जी (जुगुप्सा) लेकिन उसके गृहीत आधे प्रतीक पौरणिक है। अपने दान की हजारों वर्षों की संस्कृति का वह मूल्य नहीं समझा घर की मुगा वाल बराबर जा है। मेरे एक अमरीकन प्राप्तेर मित्र एक बार आमेर का दुग जेवन अग्र। लगभग चौथा शताब्दी के एक मपाट दूप ने उनकी चेतना को सहमा अपनी ओर कर्तित कर लिया। मैंने क्वचित होकर पूछा 'इतनी तल्लीनता के साथ आप दसव नया दच रहे हैं ? व जोन 'देखिए हमारे ऋ म २५० वर्ष पञ्च का कुछ भी नहीं है, इसलिए जा ना चीज - ५० वर्ष पहन की है वह हमारे लिए महती आश्चर्यमयी है। प्रोफेसर का पुत्र और उनकी पत्नी उम किल के मध्यकालीन भीमकाय गौरव मे इतने अभिभूत थ कि आर वश चउता तो वे पूरे दुग को उठाकर अमेरिका ले जात।

एक दवी अमेरिका से यहा अग्रोत्री पठान आइ थी। अमेरिका के समाज सघटन और पारिवारिक जीवन पर बात चनी मुझे लगा कि भारतीय परिवार ने गठन, यहा के पति पत्नी के मुहद सम्बन्ध का आग वह दश अमी बीता है। उन्मान माना कि अमेरिका के सबसे धनाढ्य परिवार मे आज भी सगुक्त परिवार प्रधा है और इन परिवार मे नडकी लडका व विवाह सुय का सभी भार उनके ब्यावृद्ध नगा पर ही है।

य मारी बातें अप्राप्यिक नहीं हैं नलिए कि हमारा नया कहानाकार (या नया नया कहानीकार) अपने' के सार कन्व स मुक्त होकर पराए के पच (अरु म नहीं) गिरना सृहणीय मानता है परन्तु मीमांसह को बात अब उस काई अथ नहीं गेती।

नयी कहानी' का यथाय, कुछ नए कहानीकारा का बहना है कि वह अनात क प्रति सर्वांगीण बिद्रोह है। एक दुनिया समानातर' के सम्पादक न सगुक्त परि



वार के विरोध में प्रमचन्द का आग्रह लिया है और उनका हृदय यह जानकर गव स मर गया है कि प्रमचन्द में भी कुछ प्रगतिशील तत्व अवश्य थे। (व प्रमचन्द के राजनीतिक आर्थिक दृष्टिकोण की प्रगति तत्व के अन्तर्गत नहीं लाना चाहते) संयुक्त परिवार प्रथा का विरोध प्रमचन्द ने प्रारम्भ नहीं किया था इसका विरोध तो बहुत पहले ही आरम्भ हो गया था। सन् १८८६ जुलाई के 'हिन्दी प्रदीप' में मट्टजी ने इस सदन में जा कुछ लिखा था सूचनाएँ निर्वाचित हैं— आज हम सबसे बड़ा और एक प्रचलित कारण हिन्दुओं की हीनता का दर्शाते हैं और वह यही एकाग्र भोजन की प्रथा है। पहली बात महा हानिकारक यह है कि एकाग्र में रह कर लड़का की तालीम में बड़ी बाधा पहुँचती है। हम कहते हैं प्रेम कमा जसी फूट और जसा जल्द घर का सत्यानाश इस एक चूल्हे की बसोल्त होना है वसा किसी दूसरी तरह से बची हो हीगा नहीं। बीते दो दिन तक रहने के उपरान्त इन एकाग्र भाजियों में ऐसा वमनस्थ फलता है कि आपस में एक का दूसरे का मुँह देखना भी रवा नहीं होता और अन्त में हिस्सा बांट के कारण एक एक जमाने के लिए लड़कर वकील मुस्तार और अनालत का खातिर साह पेट भरते हैं।'

संयुक्त परिवार का विघटन क्या हो रहा है इसके मूल की ओर भी मट्टजी इंगित करते हैं— देश की प्रचलित रीति के अनुसार हम अपनी स्त्रियों का एक ता य ही सब तरह पर दीन हीन दासी बनाए हुए हैं दूसरे यह एकाग्र की प्रथा उनके लिए और भी दुष्प्राई हो रही है सोचने की बात है कि एक स्त्री का दर्जन और काढ़ियों मनुष्यों की रसाई अलग पकाएगी उसकी क्या गति होगी।

आज भी हमारे देश में परिवार की स्थिति योक्ष और घमरीका की तुलना में अच्छी है। विगत सत्स्रा वर्षों के विकास प्रेम में परिवार का सबसे महत्व पूर्ण स्थान रहा है। संयुक्त परिवार प्रथा में कठिनाइयाँ उत्पन्न हो गई हैं। उनका हल ढूँढ़ना आवश्यक है उसका यह तो काइ हल हो नहीं है कि परिवार प्रथा को समाप्त करती जाय।

नए कयाकारों की पारिवारिक विपन्नताओं का मुली भाँते से अध्ययन करना चाहिए था। अशिक्षा आर्थिक विपन्नता, उन्मुक्त और अबाध प्रेम की बाधा तथा नारी की प्राणा प्राकांक्षा परिवार के ढाँच में परिवर्तन लाने वाली प्रमुख धाराएँ हैं। इनके मुनियोजन और मुख्यवस्था में परिवार सस्था फिर सुदृढ़ और समाज की सबसे उपयोगी इकाई बन सकती है।

नए कहानीकारों का समाज ने नवीन की भरपूर वरात देखा होगा पन्ट और कोट का नवीनीकरण करते देखा होगा, पन की निव बन्धनमान देखा होगा घर में

दरवाजे और नई खिड़कियां बनवाते भी देखा होगा । वे इनमें सुधार पसाव करते हैं तो समाज में सुधार की कामना न कर उसके सर्वांगीण विध्वंस की कामना क्या सचमुच वाधनीय है ?

मेरे साथ एक डाक्टर उस में सफर कर रहे थे एक बस के अड़्ड पर सहसा उनकी आँखें तरल शुभ्र हो गईं' बोले 'यहाँ मेरी छोटी बहिन रहती है । मने देखा उनकी बेचनी क्षिप्त नहीं क्षिप्त रही थी । हृदय की यह भावुकता ही वह सहज चुम्बक है जिससे व्यक्ति व्यक्ति से जुड़ा है, इस आत्मीयता और भावुकता के अभाव में बसी ही सामाजिक प्रलय का दृश्य उपस्थित हो जायगा' जैसा आकर्षण शक्ति के अभाव में प्रकृति के आमूलचूल विघटन से ।

नए कहानीकारों का दावा है कि वे केवल दृष्टि रखते हैं 'दृष्टिकोण नहीं । कोई भी समझदार आदमी इस बयान की भगम्मीरता से प्रभावित हुए बिना नहीं रहेगा । सच तो यह है कि दृष्टिकोण रहित दृष्टि दृष्टि है ही नहीं । वह जो कुछ देखती है उस काण ही सायकता देता है । कई बार फटा आँख भी कुछ नहीं देख पाती कई बार देखकर भी अनदेखा कर दिया जाता है ।

नयी कहानी में यथाय के नाम पर पति-पत्नी के सम्बन्धों को जिस रूप में लिया जा रहा है वह अभूतपूर्व और अश्वतपूर्व है । पश्चिमी दृष्टिकोण न लेखकों के सम्मुख एक ऐसा कुहासा सधन कर दिया है कि उसके पार व आक ही नहीं पाते ।

बड़ी विचित्र बात यह है कि नया कहानीकार अपनी सम्पूर्ण शक्ति से चीख चीख कर एक ही बात कहना चाहता है, दसों हर आदमी कितना सक्षुब्ध व्यपित अनाश्वस्त, अविश्वस्त, अविश्वसनीय और आस्थाहीन है । वह अपने को सबसे अलग काटकर एक ऐसी इकाई के रूप में देखता है, जिसका दूसरी इकाई से कोई सम्बन्ध नहीं । उसकी दृष्टि में एक-एक ग्यारह होना तो दूर एक और एक का भी नहीं होत । पति और पत्नी भी अलग-अलग एक सम्पूर्ण इकाई के रूप में पड़े रहते हैं । उसकी दृष्टि वासना, प्रेम की सीमा तक जा ही नहीं पाती । पश्चिम में प्रेम का जो विनाशित रूप है वही इन्हें प्राप्त है और किसी भी दूरे प्रकार के प्रेम को वे कोरा आदर्श और भावुकता कह कर, उसे नकार की सबसे अवाधनीय वस्तु के रूप में चित्रित करते हैं । नया कहानीकार ऐसे आदर्शों से सबसे अधिक घबराता है जा कहे मैं बड़ा मुर्खी सलुष्ट हूँ, कोई मानसिक तनाव मेरे व्यक्तित्व का विराधी दिशाओं में नहीं खींचता, मेरे मन में कोई कुठार और कटुता नहीं है । एम स्वस्थ आदर्शों को नया नयाकार सबसे पहले अस्पताल भजने की जिद करता । वह सोचता कि इससे बड़ी गड़बड़ और क्या हो सकती है कि इस आदर्शों के माथ कुछ गड़बड़ ही नहीं है ।

सच तो यह है कि जीवन की जा उसके वास्तविक अर्थ में भोगते हैं व नेत्रक नहीं हैं और जो नेत्रक है (नए कयाकार विशेषतः) व जीवन का स्वस्थ रूप में भोग नहीं पाते रात के दो बजे तक उपवास—कहानी और पत्रिकाएँ पढ़ते—पढ़ते दिन के १०-११ बजे साकर उठने में मारा मसार उह शीर्षासन करता दिमाई देता है। वे यथाय की जमीन पर पर खन में इनने कतराते धरराते हैं कि या तो रेस्त्रा में भागेंगे या सीधे पहाड़ पर।

पहाड़ी सर गाहा और रेस्त्राभा को यदि नई कहानियों में से निकाल दिया जाय तो फिर उनमें क्या बचेगा ?

किन्हीं की इस बात पर आपत्ति नहीं हो सकती कि आप रेस्त्राभा पहाड़ी सरगाहा और बहा एकत्र मानव मृष्टि का अध्ययन कर चित्रण करें, इतने भी किसी की आपत्ति नहीं है कि आप अपने कथा-साहित्य की ग्लिली कपकता कानपुर या नखनऊ की कारा में ब्रू करें। आपत्ति केवल इस बात पर ही है कि आप इन स्थानों के प्रतिरिक्त सभी जगह जीवन को नकारते चलें।

एक नए कहानीकार ने शिवप्रसाद मिश्र की कमनाशा की हार में प्रसाद प्रमचन काल का रोमांस देखा है उसकी इमर्निए बबहेवना की है कि वह एक कहानी है और उसमें लेखक का एक सामाजिक दृष्टि बाण है उह उस कहानी में पंचतंत्र और हितोपदेश की गंध आती है ऐसे सागा का ज्ञायन मज पर टिकी कोहूनियाँ पसल आए या जीवन का प्रवास उह जलती भाड़ी में दिखाई दे।

नई कहानी शब्द में एक विचित्र रोचक घटना मुझ पाद हो आता है मर एक घनिष्ठ मित्र थे (भव भी हैं) छात्रेनाल, म्महवण उह छोटे ही कहता था, जब भी अपने बच्चा के मामने में उह छाटे कहना, वे कहते बाबू ये तो इनन रहे हैं आप इह छाटे कहते हैं ? नई कहानी का दगा भी कुछ ऐसी ही है। कुछ ऐसे मुहूर्त में उसका नामकरण संस्कार हुआ है कि पचास बप बाबू भी उह नई कहानी हो रहगी।

हर कहानी में अपनी नवीनता हाती है और पंचतंत्र और हितोपदेश की कहानियाँ भी इसका अपवाद नहीं हैं, लेकिन नवीनता होने कहानियों के लिए एक नया नाम नई कहानी ठीक हो गया है।

सबसे बड़ी कठिनाई यह है कि आन्ध्र शब्द से ही इन अत्यन्त नवीनता को आन्तरिक पूरा है। आदश यथाय ने मित्र क्या बस्तु है ? आध्यात्मिकता को बात में नहा करता, एकांत भौतिक स्तर पर ही आदश भवम अधिन बाधनीय है। यदि आदशों के प्रति सत्त्व लगाव भी हमारे मन में नहीं होता तो आज जा राजनीतिक पराधीनता का परिच्छेद अपने ऊपर से उतार कर हम फेंक मने हैं, नहीं फेंक पाते।

म्वत्त-योत्तर आदश भी हमारे है किस दश म नहीं है । उसकी प्राप्ति का सरल और आवाध माग हम प्रशस्त करना है (नया कहानीकार उसम सहायता को धार आसाहित्यिक गाय मानता है ।) आज उसकी दशा उस तपस्वी जसी हो गई है जो समाज स दूर पवत की खाह म एकांत जीवन व्यतीत करता है, किसी क सुख-दुख स उसे कुञ्ज लना-देना नहीं ।

छोटी उमर क नए कहानीकार जीवन के सारे रहस्या को पलक नपकते ही समझ लते हैं । उनकी दार्शनिक पनी दृष्टि इस असीम प्रपञ्च को वेध कर सीधे ही तत्व के तत्व को स्पष्ट करने लगती है । इतनी कम आयु म तत्व ज्ञान के बाद सारी आयु अव ये योग क्या करण, य ही जान ?

आज भी हम मित्र की आवश्यकता हाती है । जीवन म अपार विश्वास के घरातल पर हम अपने पर रखना चाहत हैं । निशु को भाति वायु म कब तक लटका रहा जा सकता है । नए कहानीकार से यह सब आशा करना शायद उसक साथ आयाय है कि वह मनुष्य का बोध्यनीय रूप चित्रित करने म अपनी मेधा का उपयोग कर ।

नई कहानिया म चिन्तित लोग अधिकतर बीमार व कु ठाग्रस्त, सक्षुब्ध और उन्निद्र मिलें । बिना दवाई की गोली लिए व नए आदमी की सना प्राप्त नहा कर सकण, चाहे उन गोलीयो स उनकी सारी सना ही विलुप्त हो जाय ।

सारे जिन कठिन परिश्रम कर ईंट का सिरहाना बनाकर सो जाने वाले निद्राद लोग, इनकी दृष्टि म पशु हैं, जीवन का स्वस्थ सौंदर्य किसी परिवार म दख कर वे शायद चौंकेगे । नए कहानीकार एस परिवारो को शायद समाज स हटा दना पसंद कर जा उनकी कहानिया की कुत्सा का समथन अपने जीवन स नहीं करत । समाज म व्याप्त अशिव का चित्रण न किया जाय एस कौन कहेगा ? तकिन शिव को उपेक्षा की भट्टा म क्या भाका जाय ? और अशिव का चित्रण भी प्रकारांतर स शिव का सदश बन जाता है । नए कथाकार उपदशपरकता के ज्वर स बचना चाहत है, इसलिए अशिव क नाम पर व अशिव का ही चित्रण करत है ।

नए कथाकार यथाथ क नाम पर साहित्यिक बमन कर रहे है । व जगत और जीवन को बिना समझ बिना पचाए उस केवल छपास के साम म उगल रह है, उससे सबम अधिक बल्याण उही का हाता है ।

आज का कहानीकार पाठक क लिए नहीं दूसरे कहानीकारा के लिए लिख रहा है और जीवन के प्राणण से हटकर, अलग एक रगमच बनाकर वहाँ एक दूसर की बाहवाही कर रहा है ।

कहानी को शहर और गाँव के वर्गों में विभाजित करने से उसे सभ्य परहेज है क्या कि शहर की सुख सुविधाओं से दूर, गाँव के जीवित जन समाज का दखने से वह घबराता है। रस्त्राओं के झुंड से दूर उसकी प्रेरणा जवाब दे जाती है। विपर और काफी के सहारे मानविक अस्वस्थता की दशा में, वह जो कुछ लिखता है उसकी मृष्टि भी अस्वास्थ्य के सारे बीटाणुओं से सम्पन्न और समृद्ध रहती है।

यथाय के नाम पर जसी अकल्पनीय और अश्रुतपूर्व घटनाओं की ये लोग आयोजना करते हैं, उनकी तुलना में 'विहासन बत्तीसी' और 'क्रिस्ता हातिमताई' कम असाधारण लगेंगे। गव के साथ वे एक अश्लील कहानी लिखने और झराखे से घटो नग्न नारी का सर्वांग दर्शन करना चाहते हैं। यथाय का प्रश्न जो है इसलिए स्वप्न लोप की व्यञ्जना भी उन्हें बहुत आवश्यक और अपरिहार्य लगेगी। नारी को वे जन समूह में निवस्त्र कराने में अपनी कला की माधकता समझते हैं (और तुरा में कि वे जनेन्द्र यशपाल और अन्य में बहुत आगे निकल गए हैं) बिल्कुल नहीं हैं।

राजनीतिक विचारधारा से अनभिज्ञ या समझदार लखक कबल लिखना चाहते हैं उनके पीछे उद्देश्य कुछ नहीं है। जब और दूसरे देश अपने देश की सभी सीमाएँ पुष्ट करने में लगे हैं हम अपने देश पर अन्तर से प्रहार कर रहे हैं। प्रहार इसलिए कि हम हिंसा भी आदर और उद्देश्य के लिए माहिल्य सजना का अमाहि लिखना के पात्र का फतवा दे रहे हैं। यह प्रवृत्ति व्यक्ति को परिवार को समाज और देश को सभी को कमजोर बनाती है। कमजोरी समझ कर उसे उद्धृत करना एक बात है और उसे पकड़ कर अलग जा बठाना 'और न मैं ठीक करूँगा न करन दूँगा' की हठ दूँगी बात।

आज की तथ्यावधि में नई कहानी में नया इतना ही है कि वह कहानी नहीं है और तब नए में उसका क्या सम्बन्ध? यथाय में वह उतनी ही दूर है जितना नया कहानी नए जीवन से।

